सीता-चरित पर आधारित आधुनिक संस्कृत महाकाव्यों
का
एक आलोचनात्मक अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि के लिए प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

अनुसन्धाता

दयानन्द मिश्र

प्रवक्ता (संस्कृत)

राज्य शिक्षा संस्थान, उ० प्र० (इलाहाबाद)

निर्देशक

डॉ० राजेन्द्र मिश्र

रीडर, संस्कृत-विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

संस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

दिसम्बर 1989

आत्मकथ्य

वस्तुत: प्रत्येक कार्य का कोई न कोई एक प्रधान कारण होता है और साथ ही साथ उस कार्य के सम्पादन में उसकी अपनी कोई न कोई एक भूमिका भी होती है, जिनके मध्य से उस कार्य की फलश्रुति लोकमानस के समक्ष उभर कर आती है। प्रस्तुत शोध के सन्दर्भ में भी यही तथ्य गतार्थ होता है।

सन् १६६५ ई० में इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद से स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात् भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के सद्जात संस्कारों से अनुप्राणित अनुसन्धाता के तरुण मन ने स्वभावत: संस्कृत विषय में ही स्नातकोत्तर उपाधि उपार्जित करने का जब ऐकान्तिक निर्णय ले लिया, तो स्वेच्छया अनुसंधाता को संस्कृत विषय में ही एम०ए० की कक्षा में प्रवेश लेना पड़ा और कालक्रम से १६६७ ई० में उसने एम०ए० की परीक्षा भी सफल उत्तीर्ण कर ली।

एम० ए० परीक्षाफल निर्गत होते ही अनुसंधाता का संकल्पशील, संस्कार-सम्पन्न मन उसे तत्काल शोध कक्षा में प्रवेश लेने के लिये प्रेरित करने लगा। परन्तु शीघ्र ही राजकीय माध्यमिक विद्यालय में संस्कृत के प्रवक्ता पद पर लोक सेवा आयोग द्वारा नियुक्ति हो जाने तथा पारिवारिक अप्रत्याशित दायित्वों के निर्वाह का भार आ जाने से यथार्थ जीवन की समस्याओं को सुलझाते हुए समयाभाववश चिर अभिलषित शोध सम्बन्धी कांक्षा सातत्य रूप में सम्भव न हो सकी। किन्तु उसकी आपूर्ति निरन्तर अनुसंधाता के मानसिक एवं बौद्धिक धरातल को क्रान्त करती रही। फलस्वरूप वह शोध कार्य तथा शोध सम्बन्धी विषय के सन्दर्भ में अन्तिम निर्णय लेने के लिये विचार मग्न हो उठा।

उसी क्षण आधुनिक संस्कृत-साहित्य के लोकप्रिय महारचनाधर्मी

अभिराम डा० राजेन्द्र मिश्र का सारस्वत व्यक्तित्व अनुसंधाता के चितमंच पर सहसा आ उपस्थित हुआ और संयोग से तत्काल ही उसने उनसे जाकर अपनी शोध-सम्बन्धी जिज्ञासा को अविकल रूप से निवेदित भी कर दिया फिर क्या था। उन्होंने शीघ्र ही अनेक विषयों का सुझाव प्रस्तुत करते हुये अन्तत: उसकी रुचि के अनुकूल 'सीता चरित पर आधारित आधुनिक संस्कृत महाकाव्य का एक आलोचनात्मक अध्ययन' शीर्षक पर शोध कार्य करने के लिये अन्तिम रूप से निर्णय दे दिया। सन्देहों के वात्याचक्र में चक्कर काटता हुआ अनुसंधाता का असंस्तुत मन संस्तुत हो गया और हो गया पूर्णत: उद्यत अपनी संकल्प-शक्ति का पाथेय लेकर उपर्युक्त शोध शीर्षक पर शोध कार्य सम्पन्न करने के लिये ।।

अनुसंधाता ने यथाशीघ्र शोध-कक्षा में फरवरी १९८३ ई० में प्रवेश लेकर शोध-कार्य करना प्रारम्भ कर दिया, उत्थान-पतन, आशा-निराशा आदि के द्वन्द्वों से जूझता हुआ राजकीय सेवा की नियामकताओं के अधीन रहता हुआ शनै: शनै: अपने शोध कार्य में प्रगति लाने का यत्न करने लगा। तत्पश्चात् जब शोध कार्य ने गति पकड़ी, तो उसी के फलस्वरूप आज अनुसंधाता का वह चिरअभिलाषित शोध सम्बन्धी सारस्वतयज्ञ अपनी पूर्णाहुति को प्राप्त कर रहा है।

यद्यपि राम कथाश्रित महाकाव्यों पर मान्य विद्वानों द्वारा जाने कितने मानक कार्य हुये और हो रहे हैं। परन्तु सीता-चरित पर आधारित आधुनिक संस्कृत महाकाव्यों (जानकीचरितामृतम्, सीताचरितम्, जानकी-जीवनम्) पर कोई भी अनुसंधान कार्य न होने से यह आवश्यक था कि इन महाकाव्यों पर समवेत रूप से कोई विद्वतापूर्ण शोधप्रबन्ध लिखकर इनमें निरूपित, विकसित राम कथा के स्वरूप तथा इनकी सर्वातिशायिनी काव्य कला को राम कथा के मर्मज्ञ विद्वानों के समक्ष उपस्थित किया जाय।

इसी चिरअवेदित आवश्यकता की पूर्ति हेतु प्रकृत अनुसंधाता अपना यह शोध-प्रबन्ध राम कथा के बोधव्य सुधी जनों के समक्ष प्रस्तुत कर रहा है।

यदि इससे राम कथा के मर्मज्ञ विद्वानों को तनिक भी तुष्टि मिली तो अनुसंधाता अपना प्रयत्न सफल समझेगा ।

जहां तक प्रस्तुत शोध के सम्बन्ध में अपने सहयोगियों के प्रति आभार प्रदर्शन एवं कृतज्ञता ज्ञापन का प्रश्न है तो उस सन्दर्भ में सर्व प्रथम शोधकार्य के निर्देशक कविसहृदय अभिराज डा० राजेन्द्र मिश्र, रीडर संस्कृत-विभाग,इलाहाबाद विश्वविद्यालय के उस महार्घ सारस्वत सहयोग का हृदयेन अतीव ऋणी हूं जिन्होंने समय-समय पर अपने सत्परामर्शों एवं प्रेरणाप्रद उद्बोधनों के माध्यम से अनुसंधाता का सफल निर्देशन किया है । तदन्तर गुरुवर्य डा० सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव संस्कृत विभागाध्यक्ष एवं पं० राजकुमार शुक्ल, रीडर, संस्कृत-विभाग,इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद के उस वात्सल्य का भी आभारी हूं, जिन्होंने समय-समय पर अनुसंधाता को निरन्तर अनुकूल दिशा में शोध सम्बन्धी प्रेरणा दी है । श्रीयुत गौरी शंकर मिश्र, प्राचार्य, राज्य शिक्षा संस्थान, उ० प्र० के प्रति भी अनुसंधाता आभार प्रदर्शित करना अपना नैतिक कर्तव्य समझता है जिन्होंने अप्रत्याशित रूप से समय सम्बन्धी सौविध्य एवं प्रेरणाप्रद परामर्शों के माध्यम से अनुसंधाता का पर्याप्त उत्साह वर्धन किया है । इसी क्रम में अनुसंधाता अपने अनुजकल्प उदीयमान, प्रतिभा सम्पन्न सहयोगी डा० श्रीश नारायण त्रिपाठी को साधुवाद देना अपना गुरुतर दायित्व समझता है जिन्होंने प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का आद्यन्त अवलोकन कर सर्वतोभद्र से सम्पन्न करने के लिये जो अनाख्येय महार्घ सारस्वत साहाय्य प्रदान किया है ।

पूज्य पितामह पं० वागीशदत्त मिश्र, ज्योतिषी एवं भागवतावतार श्रद्धेय पितृचरण गुरुशास्त्री पं० दिग्विजय नारायण मिश्र, व्याकरणाचार्य के उस उज्ज्वल स्नेहाशी: का मनाक्त: ऋणी हूं जिनके रस से परिपुष्ट होकर आज मैं इस योग्य बन सका हूं ।

धर्म सहचरी सधर्मिणी श्रीमती सरस्वती मिश्रा के प्रति किसी प्रकार की कृतज्ञता का ज्ञापन तो उनके प्रति औपचारिकता का छद्म कंचुक धारण कर स्वयं का प्रवञ्चक होना होगा । सच तो यह है कि अनुसंधाता के इस दु:साध्य

शोध कार्य के सारस्वत यज्ञ में उनकी सत् प्रेरणाओं, सहयोग एवं सद्भावनाओं की आहुति सर्वथा अविस्मरणीय ही है ।

अन्तत: स्वच्छ एवं सुन्दर टंकण के लिये टंकक श्री श्याम लाल तिवारी को हार्दिक धन्यवाद देना अपना नैतिक कर्त्तव्य समझता हूं ।

विनयावनत

दिसम्बर १४, १९८९

(दयानन्द मिश्र)

१२ बी तुलारामबाग

इलाहाबाद ।

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

तृतीय अध्याय : डा० रेवाप्रसाद द्विवेदी एवं उनका 'सीताचरितम्'

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

-o-

प्रथम अध्याय

-o-

विषय- प्रवेश

राम कथा का उद्भव एवं विकास

विश्व वाङ्मय में भारतीय वाङ्मय अपने जिन मौलिक विशेषताओं के कारण सदैव से कीर्तिमान रहते हुये शिखरस्थ रहा है उनमें उसके साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं दार्शनिक साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । भारतीय साहित्य में राम कथा एवं कृष्ण कथा का अपने लोक-व्यापी प्रचार-प्रसार और उदात्त मानवीय मूल्यों की स्थापना के कारण अप्रतिम स्थान है ।

राम-कथा के नायक राम भारतीय साहित्य एवं संस्कृति के यदि अथ (प्रारम्भ) बिन्दु हैं तो कृष्ण उसके इति बिन्दु । दाशरथि राम यदि आदर्श एवं सिद्धान्त के लोकोत्तर प्रतिमान हैं तो कृष्ण व्यवहार एवं प्रयोग के सफल प्रतिनिधित्व कर्ता । राम यदि मर्यादापुरुषोत्तम है, तो कृष्ण लीला पुरुषोत्तम । इन दोनों महापुरुषों के सम्मिलित व्यक्तित्व में सम्पूर्ण भारतीय साहित्य एवं संस्कृति अखण्ड एवं अक्षुण्ण है । दाशरथि राम एवं वासुदेव कृष्ण ही क्रमश: राम-कथा एवं कृष्ण-कथा के मेरुदण्ड हैं ।

वेद, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषदों में राम-कथा :

जहां तक राम-कथा के उद्भव एवं विकास का प्रश्न है तो इस दृष्टि से राम कथा से सम्बद्ध पात्रों का उल्लेख अत्यन्त वैदिक साहित्य से ही उपलब्ध होने लगता है । ऋग्वेद के दशम् मण्डल में सूर्य वंशी इक्ष्वाकु का नामोल्लेख मिलता है जिसमें कोई राजा होने का संकेत मिलता है[1] । ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में एक दान स्तुति में अन्य राजाओं के साथ-साथ दशरथ की प्रशंसा का भी उल्लेख किया गया है जिसमें यह बताया गया है कि दशरथ के चालीस भूरे रंग के अश्व, एक सहस्त्र अश्वों के दल का नेतृत्व करने में समर्थ थे[2] ।

१- ऋग्वेद, १० । ६० । ४

२- वही , १ । १२६ । ४

ऋग्वेद के दशम् मण्डल में भी राम नामक किसी प्रतापी राजा का भी संकेत मिलता है जिसमें यह बताया गया है कि उसके स्तोता ने राम नामक यजमान के लिये सूक्त गान किया है और उसके बदले राम ने उसे पांच सौ अश्व अथवा रथ देकर उस पर विशेष अनुग्रह किया, जिससे उनका यश चतुर्दिक प्रथित हो गया[१]।

इस प्रकार यजमानों के साथ राम के नामोल्लेख होने से ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि वैदिक काल में राम नामी कोई प्रतापी राजा रहा होगा।

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के १४० वें सूक्त में तथा चतुर्थ मण्डल के ५७ वें सूक्त में कृषि की अधिष्ठात्री देवी के रूप में सीता का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद के चतुर्थ मण्डल के ५७ वें सूक्त में तो स्पष्ट बताया गया है कि - हे सुभगे सीते ! कृपादृष्टि से हमारी ओर अभिमुख होओ, हम तुम्हारी वन्दना करते हैं जिससे तुम हमारे लिये सुन्दर फल और धन देने वाली होओ। इन्द्र सीता को ग्रहण करें, पूषा (सूर्य) उसका संचालन करें, वह पानी से भरी सीता प्रत्येक वर्ष हमें धान्य प्रदान करती रहे[२]।

ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल में कृषि सम्बन्धी अनेक शब्दों का एक साथ प्रयोग किया गया है और वास्तविक अर्थों में यह एक ऐसा स्थल है जहां सीता में मानवीय व्यक्तित्व के साथ-साथ देवत्व का भी आरोप किया गया है और आगे के वैदिक साहित्य में यत्र-तत्र इसका इसी रूप में उल्लेख होता रहा है।

यजुर्वेद में कृषि की अधिष्ठात्री देवी, तथा सीता सावित्री के रूप में सीता का, काठक संहिता, कपिष्ठल संहिता, मैत्रायणी संहिता, तैत्तरीय

१- ऋग्वेद, १० । ९३ । १४

२- वही, ४ । ५७ । ६, ७

संहिता आदि में स्पष्टत: उल्लेख मिलता है[1]। इसके अतिरिक्त शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयि संहिता में भी सीता का निदर्शन प्राप्त होता है[2]।

अथर्ववेद के तृतीय मण्डल के १७वें सूक्त में कृषि की अधिष्ठात्री देवी के रूप में सीता के सम्बन्ध में स्पष्टत: उल्लेख मिलता है कि - इन्द्र सीता को ग्रहण करे, पूषा उसकी रक्षा करे। पानी से भरी हुयी वह सीता प्रति वर्ष हमें अधिकाधिक धान्य प्रदान करे। हे सीता ! हम तेरी वन्दना करते हैं, हे सुभगे ! कृपादृष्टि पूर्वक हमारी ओर अभिमुख होओ, जिससे तुम हमारे लिये हिताकांक्षिणी होओ और हमें सुन्दर फल देने वाली होओ। घृत और मधु से सम्पृक्त सीता विश्व देवताओं और मरुतों से अनुमत (रक्षित) होवे। हे सीते ओजस्विनी और घृत से सिंचित तुम हमारे लिये जल के साथ सदैव उपलब्ध रहो[3]।

ऐतरेय ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण, जैमिनीय आदि ब्राह्मण ग्रन्थों में भी क्रमश: मार्गवेय राम[4], औपतपस्विनि राम[5], क्रातुजातेय राम का यथा स्थल उल्लेख उपलब्ध होता है। कृष्ण यजुर्वेदीय, तैत्तरीय ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण आदि में जनक का भी अनेकशः उल्लेख किया गया है। यह भी ध्यातव्य है कि शतपथ ब्राह्मण में वैदेह जनक का विभिन्न सन्दर्भों में बार बार उल्लेख मिलता है। प्रथम सन्दर्भ में जनक अग्निहोत्र के विषय में याज्ञवल्क्य से प्रश्न पूछते हैं और समुचित उत्तर पाने पर वे उन्हें सौ गायों से पुरस्कृत करते हैं[6]।

१- यजुर्वेद, का० सं० २०।१, कपिष्ठल सं०, ३२।५,६, मैत्रायणी सं०, ३।२, ४-५।

२- शु० यजु०, तै० सं०, ४।२। ५-६
वही , का० सं०, १६।१२, मैत्रायणी सं०, २।७।१२ आदि

३- अथर्ववेद, ३।१७। ४, ८, ६

४- ऐ० ब्रा०, ७। २७-३४
शतपथ ब्रा० ४। ६। १,७
जै० ब्रा०, ३। ७।३, २। ४।६।११

द्वितीय सन्दर्भ में मित्रविन्द यज्ञ का गोतम राहुगण के पास से वैदेह जनक के पास जाने का उल्लेख है । इस सन्दर्भ में जनक अनेक ब्राह्मणों में से याज्ञवल्क्य को अधिक विद्वान देखकर उन्हें एक सहस्र गायों को पुरस्कृत करते हैं[१]।

शतपथ ब्राह्मण के तीसरे सन्दर्भ में जनक याज्ञवल्क्य सहित तीन ब्राह्मणों सहित अग्निहोत्र के सम्बन्ध में सविस्तर जिज्ञासा प्रकट करते हैं, तीनों ब्राह्मणों में याज्ञवल्क्य अग्निहोत्र के सम्बन्ध में जनक को अधिक विस्तार से समझाते हैं किन्तु फिर भी जनक उनके उत्तर से सर्वात्मना सन्तुष्ट नहीं हो पाते तो वे स्वयं ही अग्निहोत्र सम्बन्धी रहस्य से अधिक विस्तारपूर्वक स्पष्ट करने का सफल यत्न करते हैं[२]। तथा च याज्ञवल्क्य से यथेच्छ अनेक प्रश्न भी करते हैं । शतपथ ब्राह्मण के चतुर्थ सन्दर्भ में जनक अनेक याचकों को प्रचुर दक्षिणा प्रदान करके एक विशाल यज्ञ का आयोजन करते हैं और उस यज्ञ में आये हुये सर्वोच्च विद्वान को एकसहस्र गायों से पुरस्कृत करने का वचन भी देते हैं[३]।

जनक सम्बन्धी शतपथ ब्राह्मण के उक्त चार सन्दर्भों में प्रथम एवं चतुर्थ सन्दर्भ का उल्लेख जैमिनीय ब्राह्मण एवं बृहदारण्यकोपनिषद् में भी किंचित् परिवर्तन के साथ मिलता है ।

शांखायन आरण्यक में भी जनक का उल्लेख किया गया है[४]। तैत्तीरीयारण्यक में कृषि की अधिष्ठात्र देवी के रूप में सीता का उल्लेख करते

१- शतपथ ब्राह्मण, ११। ४ । ३ । २०

२- वही, ११ ।६ । २ । १-१०

३- वही, ११ ।६ ।३ । १

४- शांखायन आरण्यक, ६ । १

हुये यह बताया गया है कि सीता अपनी कृपा-दृष्टि से अपने स्तोताओं को अभीष्ट धन धान्य देने वाली देवी हैं ।

बृहदारण्यक उपनिषद् में दो स्थलों पर तथा कौषितकीय उपनिषद् में भी जनक का उल्लेख स्पष्टत: उपलब्ध होता है[१]।

उक्त के अतिरिक्त पारस्कर गृह्य सूत्र, अथर्ववेद के कौशिक गृह सूत्र आदि अनेक गृह सूत्रों में सीतायज्ञ, `सीता युञ्जन्ति` आदि का स्पष्टत: वर्णन उपलब्ध होता है ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वैदिक संहिताओं, ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्यकों, उपनिषदों आदि में राम-कथा से सम्बन्धित इक्ष्वाकु, दशरथ, राम, जनक, सीता आदि के पात्रों के नामोल्लेख यद्यपि यथा स्थल अनेकश: उपलब्ध होते हैं परन्तु इस तथ्य का स्पष्टत: संकेत उपलब्ध नहीं होता है कि इन पात्रों का परस्पर कोई निकटस्थ सम्बन्ध भी है और ये सभी एक ही कथा-वस्तु से सम्बन्धित हैं । ऐसी स्थिति में यह भी निश्चित नहीं कहा जा सकता कि वैदिक काल में राम-कथा का वैसा ही स्वरूप विकसित रहा होगा जैसा कि परवर्ती रामायण काल में । वैदिक साहित्य में प्राप्त उपर्युक्त संकेतों के आधार पर मात्र इतना ही कहना समीचीन प्रतीत होता है कि राम कथा से सम्बन्धित पात्रों के नाम वैदिक काल से ही किसी न किसी रूप में उपलब्ध होते रहे हैं किन्तु राम कथा का स्पष्टत: कोई व्यापक प्रचार नहीं रहा है ।

रामायण एवं महाभारत में राम-कथा :

राम कथा का सर्वप्रथम सर्वांगीण व्यापक एवं लोकप्रिय स्वरूप अपने पूर्ण विकास के साथ आदि कवि महर्षि वाल्मीकि द्वारा प्रणीत

१- बृहदारण्यक - ४ । १४ । ८ ; २।१।१

कौषितकीय उपनि०, ४ ।१

'वाल्मीकि रामायणम्' में ही उपलब्ध होता है। आदि कवि वाल्मीकि ने दशरथ की वंशावलि विवाह, रामादि के जन्म से लेकर राम के द्वारा रावण का वध, सीता की अग्नि परीक्षा के अनन्तर उनके अयोध्या प्रत्यावर्तन एवं उनके राजसिंहासनारूढ़ होने तक की कथावस्तु का बालकाण्ड से लेकर युद्ध काण्ड तक के कुल छः काण्डों में विस्तारपूर्वक वर्णित किया है।

बालकाण्ड में दशरथ की वंशावली, कौशल्या, सुमित्रा एवं कैकेयी के साथ दशरथ का विवाह, दशरथ के रामादि चारों पुत्रों का जन्म, विश्वामित्र के द्वारा राम और लक्ष्मण का यज्ञ के रक्षार्थ दशरथ से याचना पूर्वक ले जाना, राम के द्वारा जनकपुर में सीता स्वयम्वर में धनुर्भंग, राम और सीता के विवाह के साथ-साथ लक्ष्मण, उर्मिला, भरत, माण्डवी, शत्रुघ्न एवं श्रुतिकीर्ति का विवाह, उन सबका परस्पर प्रेम संवर्धन, रामवनगमन आदि का वर्णन है तो अयोध्या काण्ड में राम की चित्रकूट की यात्रा, अन्धमुनि पुत्र का वध, चित्रकूट निवास, राम को मनाकर वापस लाने के लिये भरत की चित्रकूट यात्रा आदि का वर्णन है।

अरण्यकाण्ड में राम का दण्डकारण्य प्रवेश, लक्ष्मण का संयम, शूर्पणखा का राम एवं लक्ष्मण के रूप पर मुग्ध होकर अनुचित प्रणय सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न, लक्ष्मण द्वारा उसकी विरूपीकरण खरदूषणादि का राम के साथ युद्ध करना, राम द्वारा उन सबका संहार, शूर्पणखा का रावण के पास जाना, रावण का मारीचि को लेकर सीता के हरण की योजना बनाना, मारीचि को कनकमृग तथा स्वयं रावण का यती के वेश में परिवर्तित होकर सीताहरण की योजना को क्रियान्वित करना, सीता का कनक-मृग को देखकर उसके चर्म को लाने के लिये राम से निवेदन, राम का कनक को मारने के लिये यत्न करना तथा उसके द्वारा छलपूर्वक राम को दूर ले जाया जाना, राम द्वारा मारीचि वध, मरण के समय उसका राम के स्वर में लक्ष्मण को पुकारना, रक्षार्थ सीता द्वारा लक्ष्मण को भेजना, सीता को एकाकी समझकर रावण का सीता के समक्ष यतीवेश में प्रकट होना, उनसे भिक्षा याचना करना और उसी सन्दर्भ में रावण द्वारा सीता का बलपूर्वक हरण

किया जाना, सीता को मुक्त करने के लिये रावण का पक्षिराज जटायु से युद्ध, रावण द्वारा जटायु का वध, राम, लक्ष्मण द्वारा सीता की खोज, शबरी के आश्रम में राम और लक्ष्मण का पदार्पण आदि कथावस्तु विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है ।

किष्किन्धा काण्ड में सीता की खोज में आगे बढ़ते हुये राम और लक्ष्मण से हनुमान का मिलन तदनन्तर वानरराज सुग्रीव से हनुमान द्वारा राम और लक्ष्मण का परिचय, सुग्रीव एवं बालि से सम्बन्धित समस्त वृतान्त, राम के बल की परीक्षा, राम और सुग्रीव की परस्पर मैत्री, राम द्वारा बालि का वध, सुग्रीव का स्वराज्य प्राप्ति, प्रस्रवणगिरि पर राम का वर्षाकाल निवास तदनन्तर सुग्रीव की सहायता से सीता की खोज के लिये विभिन्न वानर यूथों का विभिन्न दिशाओं में प्रस्थान आदि वर्णित है ।

सुन्दरकाण्ड में हनुमान का लंका प्रवेश, हनुमान के समक्ष ही सीता एवं रावण का परस्पर संवाद, त्रिजटा सीता संवाद, सीता एवं हनुमान का परस्पर संवाद, लङ्का दहन, हनुमान का प्रत्यावर्तन आदि सविस्तार विवेचित है ।

युद्ध काण्ड में सीता को मुक्त कराने के लिये सुग्रीव की सहायता से राम की सैन्य शक्ति का व्यवस्थापन, लंका पर आक्रमण करने के लिये राम का ससैन्य अभियान, दक्षिणी समुद्र पर राम की सेना का पड़ाव, लंकेश्वर रावणानुज विभीषण की शरणागति, नल नील द्वारा दक्षिणी सिन्धु पर सेतु बन्धन, लंका में राम की सेना का प्रवेश तथा लंका का घेराव, राम-रावण युद्ध, मेघनाद के द्वारा राम-लक्ष्मण का नागपाश बन्धन, गरुण द्वारा विमोचन, इन्द्रजित द्वारा लक्ष्मण पर वीरघातिनी शक्ति का प्रहार, हनुमान की हिमालय-यात्रा, लक्ष्मण का पुनर्जीवित होना, मेघनाद का वध, राम द्वारा कुम्भकर्ण तथा रावण का वध, सीता की अग्निपरीक्षा, अग्निदेव के द्वारा सीता के चारित्रिक शुद्धि को प्रमाणित करते हुये उन्हें राम को सौंपना, ब्रह्मादि देवों द्वारा राम से सीता को पत्नी के रूप में स्वीकार करने के लिये

पर आरूढ़ होकर राम का ससैन्य लंका से अयोध्या प्रत्यागमन तथा राम का राज्याभिषेक क्रमश: वर्णित किया गया है ।

यों तो अधिकांश मान्य विद्वान बाल्मीकि रामायण को केवल बालकाण्ड से युद्ध काण्ड तक के छ: काण्डों में ही समाप्त मानते हैं । परन्तु कुछ विद्वान उत्तरकाण्ड को भी स्वीकृति देते हैं । बाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड में शत्रुघ्न चरित, सौदास की कथा, शम्बूक वध, राम का अश्वमेध यज्ञ, रजक द्वारा सीता चरित पर आक्षेप, सीता निर्वासन, कुश एवं लव का जन्म, कुश-लव युद्ध, आदि तक की कथा वर्णित की गयी है[१] ।

बाल्मीकि रामायण के पश्चात् तो परवर्ती संस्कृत वाङ्मय में यत्र-तत्र सर्वत्र किसी न किसी रूप में लक्ष्यालक्ष्यतया न्यूनाधिक रूप में रामकथा का वर्णन, संकेत आदि उपलब्ध होना कोई आश्चर्य नहीं । यही कारण है कि परवर्ती महाभारत आदि में राम-कथा की अनेकत्र अनेकश: चर्चा उपलब्ध होने लगती है । स्वयं महाभारत कार व्यास ने ही अपने 'महाभारत' में ही अनेक स्थलों पर राम-कथा को बारम्बार दोहराया है ।

यों तो महाभारत के आरण्यक पर्व में वर्णित रामोपाख्यान तो लोकप्रसिद्ध ही है किन्तु इसके अतिरिक्त भी आरण्यक पर्व के १४७ वें अध्याय में भीम, हनुमान के संवाद के अन्तर्गत हनुमान द्वारा ग्यारह श्लोकों में राम के वनवास, जानकी हरण, तथा उनके अयोध्या प्रत्यागमन तक की राम-कथा को संक्षेप में वर्णित किया गया है[२] ।

पुन: द्रोणपर्व में पुत्र के मृत्यु के कारण शोकविह्वल संजय को

१- सविस्तर द्रष्टव्य, बाल्मीकिरामायणम् - हिन्दी अनुवाद सहित, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं० २०४० ।

२- महाभारतम्, ३ । १४७ । २८-३८

शान्त्वना देने के निमित्त नारद ने षोडश राजाओं की कथा सुनायी है, पुन: इसी द्रोणपर्व में अभिमन्यु के वध से सन्तप्त युधिष्ठिर को सांत्वना देने के लिये व्यास उन्हें षोडश राजोपाख्यान सुनाते हैं । इन षोडश राजाओं में राम भी एक राजा के रूप में वर्णित हैं । इनमें राम की महिमा वर्णन के सन्दर्भ में अयोध्याकाण्ड से लेकर युद्ध-काण्ड तक की राम-कथा को अत्यन्त संक्षेप में उपन्यस्त किया गया है । यही नहीं शान्तिपर्व में भी इसी षोडश राजोपाख्यान को कृष्ण ने युधिष्ठिर को पुनः सुनाते हुए राम की महिमा से उन्हें अवगत कराकर उत्तरोत्तर उत्साहित करने का यत्न किया है[१] ।

आरण्यक पर्व के २५८-२७५ तक के अध्यायों में ७०४ श्लोकों में रामोपाख्यान को मारकण्डेय ऋषि के माध्यम से धर्मराज युधिष्ठिर को उस समय राम कथा को विस्तारपूर्वक सुनाया गया है जब वे द्रौपदीहरण के पश्चात् उन्हें पुन: प्राप्त करने के उपरान्त अपने घोर दुर्भाग्य पर शोक प्रकट करते हुये महर्षि मारकण्डेय से यह कहते हैं कि महर्षे ! क्या मुझसे भी कोई अधिक दुर्भाग्यशाली इस संसार में हुआ है ? (अस्ति नूनं मया कश्चिदल्पभाग्यतरो नर:)[२] ।

इस रामोपाख्यान में महर्षि मारकण्डेय ने राम के अपने भाइयों सहित जन्म, उनकी शिक्षा-दीक्षा, राम सीता विवाह आदि से लेकर रावण के द्वारा सीताहरण, राम-रावण युद्ध, रावण वध तदुपरान्त राम के अयोध्या प्रत्यागमन एवं उनके राज्याभिषेक तक की कथावस्तु का महिमापूर्ण वर्णन किया गया है जिसमें संक्षिप्त रूप से वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड से लेकर युद्धकाण्ड तक की समस्त राम कथा आ जाती है ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि महाभारत की रचना के समय तक वाल्मीकि रामायण का लोकव्यापी प्रचार-प्रसार अवश्यमेव हो गया रहा होगा ।

१- महाभारतम्, १२। २९ । ४९-५५

२- वही , ३ । २६० । ४०

<u>पुराणों में राम-कथा :</u>

महाभारत के अतिरिक्त हरिवंश पुराण, विष्णुपुराण, वायु-पुराण, ब्रह्माण्डपुराण, भागवतपुराण, कूर्मपुराण, वाराहपुराण, अग्नि-पुराण, लिङ्गपुराण, वामनपुराण, ब्रह्मपुराण, गरुड पुराण, स्कन्द पुराण, पद्मपुराण, ब्रह्मवैवर्त आदि पुराणों में तथा विष्णु धर्मोत्तर पुराण, नृसिंह पुराण, वह्नि पुराण, शिव पुराण, देवीभागवत पुराण, वृहद्धर्म पुराण, सौर पुराण, कालिका पुराण, कल्कि पुराण आदि उप पुराणों में भी यथा स्थल न्यूनाधिक रूप में रामकथा सम्बन्धी कथानक उपलब्ध हैं ।

<u>महाकाव्य, नाटक आदि में राम-कथा :</u>

पुराण साहित्य के पश्चात् परवर्ती ललित संस्कृत साहित्य के महाकाव्यों, नाटकों तथा अन्यान्य काव्यों में तो वाल्मीकि रामायण पर आश्रित राम-कथा वस्तु को किंचित संशोधन, परिवर्धन, उतार चढ़ाव आदि के साथ तो वर्णन करने की एक परम्परा ही चल पड़ती है । कालिदास विरचित रघुवंश, महाकविभट्टि प्रणीत भट्टिकाव्य (रावण वध) कवि कुमारदास प्रणीत जानकीहरण, अभिनन्दन विरचित रामचरित, क्षेमेन्द्र विरचित रामायण मंजरी, कविवर मल्ल प्रणीत उदार राघव आदि प्राचीन संस्कृत महाकाव्यों तथा महाकवि चक्र विरचित जानकीपरिणय, श्रीश कवि प्रणीत रामलिंगामृत एवं रामोल्लास, मोहन स्वामी विरचित राम-रहस्य आदि अर्वाचीन महाकाव्यों में राम कथा की उद्दाम धारा अविराम रूप से प्रवाहित होती हुयी निरन्तर गतिशील रही है ।

यही नहीं भास कृत प्रतिमा नाटक, अभिषेक नाटक, भवभूति विरचित महावीर चरित एवं उत्तररामचरित, दिङ्नाग प्रणीत कुन्दमाला, मुरारि विरचित अनर्घ राघव, राजशेखर विरचित बाल रामायण, दामोदर मिश्र द्वारा सम्पादित हनुमन्नाटक, शक्तिभद्र प्रणीत आश्चर्य चूड़ामणि, महादेव प्रणीत अद्भुतदर्पण, हस्तिमल्ल विरचित मैथिली कल्याण, भास्कर प्रणीत उन्मत्त राघव, रामभद्र दीक्षित

प्रणीत जानकी परिणय आदि रामकथाश्रित नाटकों, राघवपाण्डवीय आदि श्लेष काव्यों तथा च विभिन्न विलोम काव्यों, चित्र काव्यों, खण्ड काव्यों, सन्देश काव्यों, चम्पू काव्यों, कथा कृतियां आदि विभिन्न साहित्यिक विधाओं में राम कथा अविराम रूप से प्रवहमान है ।

यही नहीं उल्लिखित संस्कृत साहित्य के अतिरिक्त योगवशिष्ट रामायण, अध्यात्म रामायण, अद्भुद रामायण, तत्व संग्रह रामायण, कालनिर्णय रामायण, आनन्द रामायण, भुशुण्डि रामायण, महारामायण, मन्त्र रामायण, वेदान्त रामायण, वशिष्ठोत्तर रामायण आदि विभिन्न धार्मिक महाकाव्यों में तो राम कथा की निर्मल गंगा अपने उत्ताल तरंगों के साथ बहती हुयी समस्त लोकमानस को अन्तरंग से आप्यायित करती रही है ।

इसके अतिरिक्त पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, तमिल, तेलगु, मलयालम, कन्नड, गुजराती, मराठी, बंगाली, उड़िया आदि विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्य में भी रामकथा सम्बन्धी विपुल साहित्य भरा पड़ा है ।

इस प्रकार रामकथा की अजस्र-मन्दाकिनी वैदिक हिमगिरि के उत्तुंग शिखर से जीवनदायक जल लेकर संग्रह करती हुयी आदि कवि महर्षि वाल्मीकि प्रणीत वाल्मीकि रामायण की गंगोत्री से फूटकर प्रवाहित होती हुयी परवर्ती समस्त संस्कृत किंवा पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी आदि का भारतीय भाषाओं के विपुल साहित्य के समतल धरातल को परिप्लावित करती हुयी लोकमानस के विशाल गंगासागर में मिलकर अपना अप्रतिम स्थान बनाये हुये है ।

सीता-चरिताश्रित आधुनिक संस्कृत 'महाकाव्य':

ज्ञातव्य है कि आज भी रामकथाश्रित साहित्य सलिला की अमृत धारा संस्कृत आदि विभिन्न साहित्यों में उसी गति से प्रवहमान है । इस आधुनिक युग में भी रामकथाश्रित अनेकों महाकाव्य विभिन्न कवियों द्वारा लिखे गये हैं और लिखे भी जा रहे हैं । यद्यपि राम को चरित नायक बनाकर प्राचीन

काल से लेकर अब तक अनेकों संस्कृत महाकाव्यों की रचना होती रही है । किन्तु सीता को चरित नायक मानकर रामकथाश्रित महाकाव्यों का प्रणयन तो अङ्गुलि गण्यमान ही है । सीता को चरित्र नायक मानकर प्रणीत संस्कृत महाकाव्यों में कवि कुमारदास प्रणीत जानकीहरण एवं चक्र कवि विरचित जानकी परिणय जैसे पुरातन महाकाव्यों के अतिरिक्त बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में विरचित अत्याधुनिक रामस्नेहिदास प्रणीत जानकी चरितामृतम्, सनातन कवि डा० रेवाप्रसाद द्विवेदी द्वारा प्रणीत सीताचरितम् तथा त्रिवेणी कवि अभिराज डा० राजेन्द्र मिश्र विरचित जानकी जीवनम् महाकाव्यों का महत्वपूर्ण स्थान है ।

प्रस्तुत शोध का औचित्य :

परन्तु जानकी चरितामृतम्, सीताचरितम् एवं जानकीजीवनम् सीताचरिताश्रित तीनों संस्कृत महाकाव्यों पर आज तक कोई भी अनुसन्धान कार्य नहीं हुआ है अतएव अधुनातन सीताचरिताश्रित इन तीनों ही मानक संस्कृत महाकाव्यों का अनुशीलन करके विद्वानों के समक्ष इनके वैशिष्ट्य को उपस्थापित करना और इसके माध्यम से विकसित राम कथा से न केवल विद्वानों अपितु जन मानस को भी परिचित कराना एक महत्वपूर्ण कार्य है ।

यही कारण है कि प्रकृत अनुसन्धान "सीताचरित पर आधारित आधुनिक संस्कृत महाकाव्य का एक आलोचनात्मक अध्ययन" शीर्षक के अन्तर्गत उपर्युक्त तीनों आधुनिक संस्कृत महाकाव्यों का आलोचनात्मक अध्ययन करके अपना शोधप्रबन्ध प्रस्तुत कर राम-कथा के मर्मज्ञ विद्वानों का स्नेह भाजन बनना चाहता है और यही है अनुसंधाता के प्रस्तुत अनुसंधान का औचित्य ।

--

द्वितीय अध्याय

-o-

रामस्नेहिदास एवं उनका 'जानकीचरितामृतम्'

रामस्नेहिदास का व्यक्तित्व एवं कृतित्व :

युगानुकूल काल के गर्भ से साहित्य, विज्ञान, कला, राजनीति आदि विभिन्न क्षेत्रों में प्रतिभाओं का आविर्भाव होता रहता है । जिनसे उन उन क्षेत्रों की केवल मानकता ही सुरक्षित नहीं रहती अपितु उनमें गुणात्मक विकास भी होता रहता है ।

२० वीं शताब्दी के द्वितीय दशक में संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में ऐसे ही किसी प्रतिभाशाली सन्त का आविर्भाव उत्तर प्रदेश के सीतापुर जनपद के अन्तर्गत गयाप्रसाद के पुत्र रत्न के रूप में हुआ, जो सम्प्रति महात्मा रामस्नेहिदास के नाम से जाने जाते हैं । सन्तवर रामस्नेहिदास का शैशव अधिक सुखद नहीं रहा, तीन चार वर्ष की अवस्था में हीं इनकी माता का देहावसान हो गया, फलत: इनका लालन-पालन इनकी मातामही ने ही किया ।

महात्मा रामस्नेहि दास ने विद्यालयीय शिक्षा अधिक नहीं प्राप्त की केवल अपने गृह जनपद सीतापुर के विद्यालय में उर्दू माध्यम से मिडिल तक की शिक्षा प्राप्त की है । किन्तु शनै: शनै: स्वाध्याय की साधना कर अपनी प्रतिभा का विकास करने का यत्न किया और उस क्षेत्र में अप्रत्याशित सफलता प्राप्त की ।

महात्मा रामस्नेहि दास मूलत: भक्त कवि हैं । पन्द्रह वर्ष की अवस्था में ही इनमें वैराग्य का अंकुर जागृत हो गया जिसके फलस्वरूप इनका मन सांसारिक व्यवहार में आबद्ध पारिवारिक जीवन से धीरे-धीरे दूर होने लगा और एक दिन ये घर से निकलकर समीप के ही एक गुफा में जाकर रहने लगे, वहां इन्हें ऐसी प्रेरणा हुयी कि जब पंचवर्षीय ध्रुव को छ: मास के स्वल्पकाल में ही आत्म साक्षात्कार हो सकता है तो फिर मुझे क्यों नहीं हो सकता है । ऐसा विचार कर इन्होंने आत्मसाक्षात्कार करने के पश्चात् ही अन्न ग्रहण करने का प्रण किया । और उस गुफा को छोड़कर अन्न न ग्रहण करने का व्रत लेकर ये वृन्दावन की ओर चल पड़े । मार्ग में इनके मन में यह विचार आया कि युगल सरकार के आगमन के अवसर पर उन्हें किस आसन पर बैठाऊंगा अत: मौली में रेलगाड़ी से उतरकर इन्होंने वहां सुन्दर कुसुमों

गोटे से युक्त एक मखमली आसन क्रय किया । तदनन्तर ये वृन्दावन में अक्रूर घाट पर स्थित बलदाऊ मन्दिर में पहुंचे । वहां अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार बिना अन्न ग्रहण किये कठोर साधना में लग गये । एक मास के पश्चात् सम्वत् १९९० की माघ शुक्ल दशमी को ब्राह्म मुहूर्त में भगवत्साक्षात्कार कर ये धन्य हो उठे और तत्पश्चात् अन्न जल ग्रहण कर व्रत तोड़ा । तबसे इन्हें निरन्तर अनेक दिव्य भागवत लीलाओं की अनुभूतियां होती रही हैं ।

सन्तवर रामस्नेहीदास के चार गुरु होने का स्पष्ट प्रमाण मिलता है । इनके प्रथम गुरु स्वामी हरिनारायणदास हैं, जो अयोध्या के प्रमोद वन में श्री जानकी निवास नामक आश्रम में रहते रहे । यह इनके भगवत्साक्षात्कार के पूर्व के गुरु हैं । उनसे इन्होंने सन् १९३३ की फाल्गुन पूर्णिमा को 'नाम' मन्त्र की दीक्षा ली थी । इनके द्वितीय गुरु अयोध्या के जानकी घाट पर स्थित वेदान्ती मन्दिर के महन्त श्री रामपदारथदास जी हैं । जिनसे इन्होंने युगल सरकार के स्वरूप की दीक्षा ली थी । रामस्नेहीदास के तृतीय गुरु जनकपुर के विहारकुण्ड नामक स्थान के निवासी श्री रामदास जी हैं जिन्होंने इन्हें श्री सीताराम की अष्टयाम सेवाविधि की दीक्षा दी थी । इनके चौथे गुरु जनकपुर के ही कार्तिकेय जी हैं । जिनके द्वारा इन्हें भगवती जानकी का दिव्य दर्शन प्राप्त हुआ था ।

जनकपुर निवास के समय ये टीकमगढ़ की महारानी द्वारा निर्मित श्री रामजानकी नौलखा मन्दिर में पुजारी का कार्य किया करते थे, संयोगवश सन् १९६२ में आश्विन शुक्ल द्वितीया को रात में राम जानकी की मूर्तियों की चोरी हो गयी । ऐसी स्थिति में इनके विरुद्ध न्यायालय में अभियोग चला और ये सात-आठ मास तक कारागार में रहे । उस समय युगल सरकार के गुप्त हो जाने पर इन्होंने शरीरधारण उचित न समझ कर आमरण अनशन प्रारम्भ कर दिया । कुछ दिनों बाद भगवती जानकी दयार्द्र होकर प्रगट हो गयीं और स्वयं उन्हें समझा बुझाकर अपने हाथ से भोजन कराया । उसी समय जनकपुर से २७-२८ मील दूर स्थित बोनियारा गांव के एक पोखरे से मूर्तियों के मिलने की सूचना मिली । फलत: ये न्यायालय से ससम्मान अभियोग मुक्त कर दिये गये ।

तभी से ये अद्यावधि फैजाबाद में सरयू तट पर स्थित गुप्तार घाट के आश्रम में निवास कर रहे हैं ।

सन्त श्री रामस्नेहिदास मूलत: सीता की नित्य सखी हैं । जानकी जीवनम् महाकाव्य में जिस स्नेहपरा का सविस्तार वर्णन मिलता है वह मूलत: रामस्नेहिदास का ही व्यक्तित्व है ।

इस प्रकार इनका मूल नाम तो रामस्नेहिदास है किन्तु सख्य कोटि की भक्ति होने के कारण इन्होंने अपना नाम स्नेहपरा रखा है । इनका एक और नाम है जो लताजी के नाम से जाना जाता है।यह नाम इनके चतुर्थ गुरु कार्तिकेय ने रखा है ।

रामस्नेहिदास ने जानकी चरितामृतम् महाकाव्य के अतिरिक्त श्री किशोरीमंगल, श्री किशोरी जी की अद्भुत लीला, महर्षि कार्तिकेय जीवन दर्शन, श्री किशोरी सुमंगलम् एवं श्री सीताराम कृपाकटाक्ष स्तोत्र: जैसे भक्तिपरक ग्रन्थों की रचना की है । इनमें श्री किशोरी सुमंगलम् तथा श्री सीताराम कृपा कटाक्ष स्तोत्र संस्कृत में प्रणीत लघु काव्य है तथा अन्य हिन्दी गद्य में लिखित है जिनका वर्ण्य-विषय उनके शीर्षक से ही स्पष्ट है । आत्मप्रकाशन से सर्वथा दूर रहने वाले सच्चे सिद्ध सन्त जानकी चरितामृतकार श्री रामस्नेहिदास का व्यक्तित्व एवं कृतित्व कथन इतना ही पर्याप्त है ।

—

कथावस्तु -

रामस्नेहिदास विरचित जानकीचरितामृतम् महाकाव्य में परात्पर ब्रह्म श्रीराम एवं सर्वेश्वरी भगवती सीता के अपने साकेत धाम से जीवों के कल्याणार्थ अयोध्या नरेश दशरथ एवं कौशल्या तथा मिथिला नरेश सीरध्वज जनक एवं सुनयना के यहां अवतार लेने से लेकर उनके विवाहित होकर अयोध्या में सौभाग्य रात्रि तक की कथावस्तु का एक सौ छ अध्यायों में मुख्य रूप से वर्णन हुआ है ।

एक सौ सातवें अध्याय में संक्षिप्त राम-कथा के रूप में कतिपय श्लोकों में उनके विवाहोपरान्त से लेकर लङ्का विजय करके पुनः अयोध्या में आकर राजसिंहासनारूढ़ होने तक की कथा अत्यन्त संक्षेप में उल्लिखित है । श्री जानकीचरितामृतम् में कुल १०८ अध्याय है । इसके १०८वें अध्याय में महाकाव्य के प्रत्येक अध्याय के वर्ण्य-विषय की संक्षिप्त सूची प्रस्तुत की गयी है ।

जानकीचरितामृतम् महाकाव्य का प्रारम्भ याज्ञवल्क्य और उनकी पत्नी कात्यायनी के परस्पर संवाद के माध्यम से हुआ है । कात्यायनी के प्रश्नों के माध्यम से कथावस्तु का क्रमशः प्रस्तार किया गया है जिसके फलस्वरूप याज्ञवल्क्य को उत्तर देना पड़ा है । इसी क्रम से जानकीचरितामृतम् १०८ अध्यायों में जाकर समाप्त होता है । राम और जानकी के साकेत धाम से मर्त्यलोक में दशरथ एवं सीरध्वज जनक के यहां अवतार लेकर विवाह तक की संक्षिप्त कथावस्तु को सन्त कवि रामस्नेहिदास ने अपने उर्वर कल्पना के माध्यम से १०८ अध्याय में सार रूप से उपन्यस्त किया है । जिनमें प्रत्येक अध्याय की कथावस्तु का सारांश इस प्रकार प्रस्तुत है ।

श्रीजानकी-चरितामृतम् के प्रथम अध्याय में याज्ञवल्क्य की धर्मपत्नी कात्यायनी का जीवों के कल्याणार्थ अपने धर्म पति महर्षि याज्ञवल्क्य से

से भगवती जानकी के पुण्य चरित के विषय में प्रश्न करने का विवरण है। द्वितीय अध्याय में महर्षि याज्ञवल्क्य का कात्यायनी के प्रश्नों का उत्तर देते हुये सर्वेश्वरी सीता एवं सर्वेश्वर राम के सम्बन्ध भाव की निष्ठा का वर्णन किया गया है। इसी अध्याय में स्पष्ट रूप से आराधक का आराध्य के प्रति होने वाले सम्भाव्य सम्बन्ध दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं शृङ्गार (माधुर्य) चतुर्विध सम्बन्धों का सविस्तर वर्णन हुआ है[1]। तृतीय अध्याय में सर्वेश्वरी सीता सर्वेश्वर राम के अवतार लेने के कारण का तर्क-सम्मत उत्तर देने का निदर्शन उपस्थित किया गया है, जिसमें शिव एवं पार्वती के महत्वपूर्ण सम्वाद का भी संक्षेप में उल्लेख है। चतुर्थ अध्याय में सीता और राम की अनन्य भक्ति प्राप्त्यर्थ श्री सीता मन्त्रराज और उसके अर्थ का सविस्तर वर्णन किया गया है[2]। इसी अध्याय में यह भी बताया गया है कि श्री सीतामन्त्रराज 'श्री सीतायै स्वाहा' है। इस मन्त्र में श्रीज्ञात शकार का अर्थ प्रभु की सेवा सर्वथा निपुण चतुर जीव, रकार का अर्थ है कोटि ब्रह्माण्ड नायक सर्वेश्वर (श्री राम) ईकार का अर्थ मूल प्रकृति है। इसी ईकार से युक्त होने से किशोरी सीता जीव और ब्रह्म दोनों से युक्त कही जाती है[3]। पुनश्च सीता पद में सी का अर्थ सदैव प्रेम पूर्वक उच्चारण करने से मनुष्यों को बिना अन्य साधनों के ही प्रेम, आनन्द, कान्ति तथा स्वाभाविक विशुद्ध भाग्य की निःसन्देह प्राप्ति बताया गया है[4]। इसके अतिरिक्त इसका दूसरा अर्थ सत्व,

---

१- जा० च०, २ । ७४०

२- वही, ४ । ४-२४ तक

३- ईकारो मूलप्रकृतेर्वाचक: कथ्यते बुधै: ।
परीता जीवब्रह्मभ्यां पदेनानेन भव्यते ॥
- जा० च०, ४।४-५

४- सीति सूच्चारणादस्मिन् प्रेमानन्दत्वचां सदा ।
स्वाभाविकभाग्यस्य भवत्प्राप्तिर्न संशय: ॥
- वही, ४ । ६

रज, तम इन तीनों गुण रूपी समुद्र से पार कर देने वाला, तीव्र वैराग्य और भागवद अनुराग की वृद्धि करने वाला, प्रिय मिलन कराने वाला, प्रिय वियोग से प्राप्त मानसिक व्यथाओं को दूर करने वाला सात्विक भाव को तरुण अवस्था में लाने वाला सीता की प्रसन्नता को ही अपना मुख्य सुख मानकर सब कुछ कर्तव्य करने वाला आदि 'ता' के चतुर्थी विभक्ति में बनने वाले 'तायै' पद का अर्थ है[1]। स्वाहा का प्रयोग समर्पण अर्थ में किया जाता है। अतएव इस पद का अर्थ है कि जीव अपनी स्वतन्त्र सत्ता का परित्याग करके सद्वृत्ति पूर्वक अपना तन, मन, धन आदि सर्वस्व सर्वेश्वरी किशोरी सीता को समर्पित कर दे और उन समर्पित वस्तुओं के ह्रास-विकास में केवल यही भाव दृढ़ रखे कि मेरी समर्पित वस्तुओं को परमाराध्या श्रीसीता जिस समय जिस रूप में रखना उचित समझती हैं वैसे ही रख रही है और आगे भी रखेंगी। वे समस्त वस्तुयें उन्हीं की हैं मेरी नहीं[2]। अतएव उनकी वृद्धि-ह्रास में हर्ष विषाद हमें नहीं करना चाहिये।

इस प्रकार 'श्रीसीता मन्त्रराज', 'श्री सीतायै स्वाहा' का अर्थ स्पष्ट है। पंचम अध्याय में महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा कोटि ब्रह्माण्ड नायिका भगवती सीता की स्तुति करके उनके मुक्त जीवों की सेवा करने का

१- 'ता' पदोच्चारणं चैवं त्रिगुणार्णवतारणम् ।
तीव्रवैराग्यसन्दोहमनुरागाङ्कुरार्दनम् ॥
यावत्कृत्यं हि सीतायै प्राणिनो क्षेममेव तत् ।
प्रधानं तत्सुखं मत्वा चतुर्थ्यर्थोऽयमुच्यते ॥
- जा० च० ४।७-६

२- स्वाहा स्वातन्त्र्यमुत्सृज्य सुवृत्याऽनन्ययाऽऽत्मनः ।
समर्पणं हि सीताया अर्पणार्थे प्रयुज्यते ॥

- वही, ४ । १०

वर्णन है । षष्ठ अध्याय में मिथिलेश्वरा राजनन्दिनी सीता वास्तविक अर्थों में भक्तों के लिये अपार कृपा पारावारा है । इसे सप्रमाण सिद्ध करने के लिए भगवान आशुतोष द्वारा पार्वती की शङ्का को दूर करने का वर्णन किया गया है । इसी अध्याय में वराहक देश के धर्मशील नामक ब्राह्मण के चारों पुत्रों मोद, सुमोद, अनुमोद एवं प्रमोद की कथा का उपन्यास दृष्टान्त के रूप में किया गया है[1] । सप्तम अध्याय में जीवों के कल्याणार्थ साकेत धाम में भगवती सीता और भगवान राम के उस सम्वाद का वर्णन किया गया है जिसमें सर्वेश्वरी सीता ने सीरध्वज जनक की यज्ञ-वेदी से पुत्री के रूप में और भगवान राम स्वायम्भु मनु एवं शतरूपा के अवतार रूप दशरथ और कौशल्या के पुत्र रूप में अवतार लेने का निर्णय अभिराम रूप में वर्णित है[2] ।

आठवें अध्याय में सीरध्वज जनक के उस पावन निमि वंश का वर्णन किया गया है जिसमें अव्यक्त विष्णु से लेकर सीरध्वज जनक पर्यन्त समस्त निमि वंशियों का नामोल्लेख मिलता है । नवम अध्याय में मिथिलेश्वर सीरध्वज जनक के मातामह आदि सम्बन्धियों का संक्षिप्त उल्लेख किया गया है ।

दशम अध्याय में सीरध्वज जनक के अनुज यशोध्वज की कन्या स्नेहपरा की राम के प्रति आसक्ति सेवा-विधि तथा उनके प्रति पद्मगंधा सखी का दिव्य उपदेश वर्णित है । एकादश अध्याय में स्नेह परा का पद्मगंधा के भवन में जाकर उनसे सीता और राम को अपने भवन में लाने का उपाय पूछना तथा पद्मगंधा का का स्नेहपरा को उपदेश देना और उसे यूथेश्वरी चन्द्रकला के पास प्रेषित करना आदि वर्णित है । द्वादश सर्ग में चन्द्रकला द्वारा सान्त्वना पाने से स्नेहपरा के हृदय में सीता की कृपालुता के प्रति दृढ़-विश्वास होने का वर्णन किया गया है । त्रयोदश अध्याय में स्नेहपरा का सीता राम भवन में जाकर उनके भोजन के पश्चात् उनकी स्तुति करना, तदनन्तर अपने मनोभाव को निवेदित करना कि

1- बा० च०, ६ । १-५४

2- वही , ७ । ४०-५७

वे दोनों अपने परिकर सहित उसके भवन में कृपापूर्वक पधारने की अनुकम्पा करें आदि वर्णित है ।

चतुर्दश अध्याय में सीता और राम के द्वारा स्नेहपरा के भवन में परिकर सहित आने का उसे आश्वासन देना और उस आश्वासन को पाकर स्नेहपरा का अपने विश्राम भवन में आने का इतिवृत्त उपन्यस्त है ।

पंचदश अध्याय में `सर्वेश्वरी सीता ` और `सर्वेश्वर राम ` आज मेरे भवन में पदार्पण करेंगे ` इस तथ्य को स्मरण करके स्नेहपरा द्वारा किये गये स्वगत प्रेम-प्रलाप का निरूपण किया गया है । षोडश अध्याय में निखिल ब्रह्माण्ड नायिका सीता तथा अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक राम का परिकर सहित स्नेहपरा के भवन में पदार्पण करना और उसके द्वारा उनकी भोजन पर्यन्त की जाने वाली सपर्या का हृदयहारी वर्णन किया गया है ।

सत्रहवें अध्याय में भोजनोपरान्त सेवा सपर्या को पूर्ण करके स्नेहपरा का अपने प्रमादजनित हुई त्रुटियों के लिये युगलेश्वर सीताराम से क्षमा-याचना करना आदि विवेचित है ।

अठारहवें अध्याय में पर्यङ्क पर शयन कराये हुये युगलेश्वर जानकी एवं महाराघव राम की शयन मनांकी करके स्नेहपरा के द्वारा उनके पुष्प शृङ्गार किये जाने का मनोहारी वर्णन प्रस्तुत है ।

उन्नीसवें अध्याय में आकाश को मेघों से आच्छन्न देखकर यूथेश्वरी चन्द्रकला का जानकी एवं राघव से दोला झूलने के लिये अपने भावों का प्रकाशन करना आदि सहज रूप से दिखाया गया है । बीसवें अध्याय में वैदेही एवं राघवेन्द्र राम का स्नेहपरा के भवन से विसर्जित होकर उन दोनों का वशिष्ठ-पुत्री सरयू नदी के तट पर दोला विहार मनोज्ञ रूप में वर्णित है ।

इक्कीसवें अध्याय में सरयू के तट से विसर्जित होकर अयोनिजा सीता एवं अयोनिज राम का अयोध्या के राजभवन के रत्नसिंहासन गृह की

और प्रस्थान करने का वर्णन किया गया है ।

बाइसवें अध्याय में जीवा सखी की विनयपत्रिका का पांच सौ दस श्लोकों में सविस्तर विविध दार्शनिक आयामों के साथ वर्णन प्रस्तुत किया गया है । यह भी ध्यातव्य है कि जीवा सखी सीता की ऐसी भक्त है जो किसी भी जीव के सीता एवं राम के भक्त होने का प्रतिनिधित्व करती है और अपनी भक्ति के माध्यम से दोनों की अनन्य भक्ति प्राप्त कर उनके साकेत धाम की अधिकारिणी हो सकती है ।

तेइसवें अध्याय में सीता एवं राम के द्वारा जीवा सखी के उद्धार का तथा चौबीसवें अध्याय में जीवा सखी द्वारा उन्हें पुष्पाञ्जलि समर्पण और तदनन्तर उन राघव एवं वैदेही का निशा भोजन और शृङ्गार कुञ्ज के लिये प्रस्थान करने का वर्णन किया गया है ।

पचीसवें अध्याय में रासेश्वरी सीता और रासरसेश्वर सर्वेश्वर राम की अपनी चन्द्रकला आदि यूथेश्वरियों एवं अन्य सखियों के साथ अपूर्व रासलीला का अद्भुत वर्णन किया गया है । छब्बीसवें अध्याय में स्नेहपरा का उसके अपने भवन में भगवती वैदेही एवं रघुराज राम की आश्चर्यमय शयन झांकी का उपन्यास किया गया है ।

सत्ताइसवें अध्याय में किशोरी सीता के प्रति प्रेम प्रदान करने वाली लीलाओं का उल्लेख करने के लिये मर्यादा पुरुषोत्तम राम की आज्ञा से स्नेहपरा द्वारा देवर्षि नारद के आगमन का वर्णन किया गया है और इसी अध्याय में नारद द्वारा दशरथ को यह भी सूचित किया गया है कि पूर्ण परात्पर ब्रह्म श्री राम ने अंशों सहित आपके पुत्र के रूप में अवतार लिया है । अतएव इनकी भक्ति आप ईश्वरीय भावना से करें ।

अट्ठाइसवें अध्याय में मिथिलेश्वर सीरध्वज जनक के हृदय में सर्वेश्वर

श्रीराम को श्वसुर सम्बन्ध द्वारा प्राप्त करने हेतु सर्वेश्वरी सीता की प्राप्ति के उपाय के सम्बन्ध में ऋषियों को बुलाने का उपक्रम वर्णित किया गया है। उन्नतीसवें अध्याय में मिथिलेश्वर सीरध्वज का राम को जामाता के रूप में प्राप्त करने के लिये सर्वेश्वरी सीता को पुत्री के रूप में प्राप्ति का उपाय आहूत किये गये ऋषियों से पूछने का वर्णन सविस्तर प्रस्तुत किया गया है[1]। तीसवें अध्याय में ऋषियों द्वारा जनक को बताया गया है कि सर्वेश्वरी सीता की प्राप्ति का सहज उपाय भगवान आशुतोष ही बता सकते हैं, अतएव एतदर्थ उन्हीं का परामर्श लेना उचित होगा।

इसी अध्याय में ऋषियों की आज्ञानुसार सीरध्वज जनक का अपने तप से आशुतोष को प्रसन्न करना और उनसे सीता की प्राप्ति का यथोचित उपाय जानकर पुत्रेष्टि यज्ञ विधान का संकल्प करना आदि का क्रमशः वर्णन किया गया है।

इकतीसवें अध्याय में पुत्रेष्टि यज्ञ के लिए यथोचित निवास स्थान को बनवाने एवं आमन्त्रित महर्षियों व समस्त राजाओं आदि का समुचित सत्कार करने का वर्णन किया गया है। इसी अध्याय में यह भी बताया गया है कि जनक के पुत्रेष्टि यज्ञ में वशिष्ठ विश्वामित्र, विश्वेदेवा, गालव, विश्वकर्मा, अगस्त्य, शाकल्य, त्रिशिरा, विकल्वाशु, देवाति, पावकाग्नि, विश्वमना, भयोमुख, सुमेधा, उशना, देवल, वामदेव, परमेष्ठि, प्रजापति आदि छ सौ से भी अधिक महर्षि सम्मिलित हुये थे, जिनका नामोल्लेख विस्तार भय से करना सम्भव नहीं है[2]।

बत्तीसवें अध्याय में अनन्त ब्रह्माण्ड नायिका परात्पर शक्ति सीता

१- बा० ब० २९। ३८-५८

२- वही, ३१। ५२- ६५

की प्राप्ति के लिये मिथिलेश्वर सीरध्वज जनक का कुलगुरु शतानन्द[१] की अध्यक्षता में पुत्रेष्टि यज्ञ आरम्भ करना तथा यज्ञ-वेदी से सर्वेश्वरी सीता के प्रादुर्भाव का अत्यन्त संरम्भपूर्वक वर्णन किया गया है ।

तैंतीसवें अध्याय में सुनयना की गोद में किशोरी सीता का दर्शन करके समस्त दर्शकों की षाड्मासिक चेतना समाधि का लगना पुन: विविध प्रकार का दान करके मिथिलेश जनक का यज्ञभूमि से मिथिला (राजप्रासाद) की ओर प्रस्थान करना तदनन्तर स्नेहपरा द्वारा निमिवंशीया राजकुमारियों की हार्दिक इच्छाओं का सविस्तर निरूपण किया गया है ।

चौंतीसवें अध्याय में स्नेहपरा द्वारा महाराघव श्रीराम से मिथिलेश राजदारिका जानकी के षष्ठी उत्सव का वर्णन किया गया है । पैंतीसवें अध्याय में चन्द्रकला आदि कुंजेश्वरियों का जन्म तथा उनके द्वारा किशोरी सीता का आदि दर्शन व आदि प्रसाद ग्रहण लीला प्रस्तुत की गयी है ।

छत्तीसवें अध्याय में सीता के द्वारा चन्द्रकला को सर्वेश्वरी पद की प्राप्ति का वर्णन है । सैंतीसवें अध्याय में सीरध्वज जनक के भवन में देवर्षि नारद का आगमन तथा उनके द्वारा किशोरी जानकी के चरण की ऊर्ध्वरेखा, स्वस्तिक अष्टकोण, लक्ष्मी, हल, मूसल, शेष, बाण, अम्बर, कमल, रथ आदि अड़तालिस चरण-चिन्हों का वर्णन किया गया है[२] ।

अड़तीसवें अध्याय में नारद द्वारा जानकी के बायें हाथ की ऊर्ध्व

१- अनुमत्या महर्षीणां शतानन्दो महामुनि: ।
यज्ञं प्रवर्तयामास सात्विकं वेदपारग: ।।
- बा० च०, ३२ । १२

२- वही, ३७ । १३-४०

रेखा, चिन्तामणि, कामधेनु, हय, कु जर, घट, अष्टकोण, लता, चक्र, ध्वज, वज्र, पंचकोण, कमल, मन्दिर, बाण, खड्ग, त्रिकोण, त्रिशूल, मीन आदि चौंसठ हस्तचिह्नों[1] का फलपूर्वक विवेचन किया गया है ।

उन्तालिसवें अध्याय में किशोरी सीता के दर्शनार्थ भूतनाथ आशुतोष का तांत्रिक के वेश में मिथिलेश्वर जनक के नगर में पदार्पण और किशोरी सीता की रोदन लीला का विवेचन किया गया है । चालिसवें अध्याय में नारद द्वारा सर्वेश्वरी सीता का सीरध्वज जनक की पुत्री के रूप में अवतार लेना सुनकर ब्रह्मपुत्र सनक, सनातन , सनन्दन एवं सनत् कुमार चारों का एक साथ मिथिला में जनक के राजप्रासाद में पदार्पण करना और सर्वेश्वरी सीता का दर्शन कर पुन: उनके अन्तर्धान होने की कथा वर्णित की गयी है ।

इकतालिसवें अध्याय में अहिल्या नन्दन ब्रह्मर्षि शतानन्द द्वारा सर्वेश्वरी सीता के सीता, श्री, श्री सीता, भूमिजा, यज्ञ-वेदी, पद्मजा, अयोनिजा, जानकी एवं मैथिली आठ प्रमुख नामों का औचित्य प्रतिपादित करते हुये सीता को प्रधान नाम के रूप में स्वीकृति प्रदान करना और इस रूप में सीता के नामकरण महोत्सव को सम्पन्न करना आदि का वर्णन किया गया है[2] । इसी अध्याय में जनक की औरस सन्तानें उर्मिला, लक्ष्मीनिधि, गुणाकर आदि तथा सीरध्वज जनक के अन्य अनुजों के सन्तानों के नामकरण, महोत्सव का भी उल्लेख किया गया है[3] ।

बयालिसवें अध्याय में सुनयना के निवेदन पर सीरध्वज जनक का अयोध्या नरेश दशरथ के रामादि चारो पुत्रों को लाने के लिये वहां जाना और रामादि चारों कोशलेन्द्र कुमारों को अपने जनकपुर में लाना आदि वर्णित किया गया है ।

१- बा० च०, ३८ । ३-२४

२- वही, ४१ ।१३-१६

३- वही, ४१।२०-२३

तैतालिसवें अध्याय में अम्बा, सुनयना द्वारा राम आदि चारों राजकुमारों को अपने कौतुक भवन का दर्शन कराकर भोजनालय ले जाना तथा भोजनोपरान्त दिवा विश्राम भवन में उन्हें विश्राम कराना वर्णित किया गया है ।

चौवालिसवें अध्याय में अम्बा सुनयना के साथ रामादि चारों कौशलेश कुमारों का विहार कुण्ड में नौकायन करके साठ खण्ड ऊंचे हाटक भवन की छत पर विराजमान होकर सुनयना से नगर के मुख्य भवनों का विवरण सुनना और तदनन्तर निशा भोजन करके शयन कक्ष में शयन करने का वर्णन किया गया है ।

पैंतालिसवें अध्याय में सुनयना द्वारा चक्रवर्ती राजकुमार रामादि को स्वस्तिक दन्तधावन, स्नानादि भवनों से शृङ्गार भवन में ले जाकर सांगोपांग सम्पूर्ण शृङ्गार कराकर उन्हें मिथिलेश की राज सभा भवन में भेजने का वर्णन किया गया है ।

छियालिसवें अध्याय में मिथिलेश्वर जनक के राज सभा भवन से रामादि चारों राजकुमारों का भोजन गृह में आगमन तथा भोजन करते समय उनके मनोविनोदार्थ अम्बा सुदर्शना द्वारा कथ्य शृङ्गी की कथा का वर्णन किया गया है[1]। सैंतालिसवें अध्याय में रामादि चारों दशरथ पुत्रों का अम्बा सुनयना के साथ समन्तक भवन की छत पर जाना और वहां सुनयना के द्वारा उनके अपने नगर के चौबीस वन व पर्वतों के साथ-साथ सप्तावरण राजप्रासाद के निवासियों के भवनों का परिचय कराने आदि का विस्तार से विवेचन किया गया है । इसी सर्ग में सन्तान, अशोक, पाटीर, बिल्व, आम्र,पुन्नाग, वृन्दावन, कदम्ब, अर्जुन, बकुल, पलाश, कदम्ब, पारिजात, माधवी, शृङ्गार, मधु, केतकी, माधवीक, कोविदार, तमाल, अश्वत्थ एवं वट आदि चौबीस वनों

१- बा० च०, ४६ । २६-६४

का तथा विद्रुमाद्रि, वैदूर्य, नीलाचल, रजताद्रि, शृङ्गाराचल, वसन्ताद्रि, संजीवन गिरि, पद्माद्रि पर्वतों का नामोल्लेखपूर्वक विवेचन किया गया है।[1]

इसी सर्ग में मिथिला नरेश जनक के सप्तावरण महाराज प्रासाद का सविस्तार विवेचन भी किया गया है जिसमें यह बताया गया है कि प्रथम आवरण में अन्त्यज, शूद्र जातियों सहित सैनिक निवास करते हैं और इसी आवरण में पूर्व दिशा में विघ्नेश्वर गणेश, पश्चिम में विद्याधिष्ठात् सरस्वती, उत्तर में लक्ष्मी और दक्षिण में राजेश्वरी अपने-अपने नामों से विख्यात सुन्दर वाटिकाओं में स्फटिक नामक आवरण में रहती हैं। द्वितीय आवरण में वैश्य आदि ,तृतीय में क्षत्रिय, चतुर्थ में ब्रह्म वर्चस्वी ब्राह्मण, पंचम में अभ्यागत महर्षि गौतमादि, षष्ठ आवरण में जयमान, सुदर्शन, विष्वक्सेन, सुदामा, सुनील, विजिज्ञ, सुमन एवं संधि वेदन आदि मन्त्रिगण तथा निकटस्थ कर्मचारी। सप्तम आवरण में मिथिलेश्वर जनक के अनुज अनुजितु, यथा: शाली, चन्द्रमान, बलाकर, यशध्वज, वीरध्वज, रिपुतापन, हंसध्वज, केकिध्वज, मनोहरण, तेज: शाली, अरिमर्दन, विजयध्वज, प्रतापन, एवं मही मंगल तथा स्वयं मिथिलेश्वर सीरध्वज जनक के निवास करने का वर्णन है।[2]

अड़तालिसवें अध्याय में निशा भोजन भावना के द्वितीय खण्ड में अपनी देवरानियों के साथ विराजमान अम्बा सुनयना का निचले खण्ड में मिथिलेश्वर जनक के साथ भोजन करते हुये लक्ष्मण-भरतादि अनुजों के सहित राघवेन्द्र राम के अप्रतिम सौन्दर्य को देख करके उनका अपनी किशोरी सीता के साथ सादृश्य वर्णन करना आदि विनोदपूर्वक वर्णन किया गया है।

उन्चासवें अध्याय में सुमन्त्र द्वारा राम के वियोग से अयोध्यावासी

१- बा० म०, पृ० १७-१९

२- वही , पृ० १९-२७

प्रजा के अत्यन्त दु:खी होने का समाचार सुनकर चक्रवर्ती नरेश दशरथ का विशेष दु:खी होना और वशिष्ठ द्वारा समाचार को सुनकर सुनयना की अनुमति से मिथिलेश्वर जनक द्वारा रामादि चारों भाइयों को चक्रवर्ती नरेश दशरथ के पास प्रेषित करने का वर्णन किया गया है ।

पचासवें अध्याय में मिथिलेश जनक के यज्ञ में आये हुये दशरथ आदि सभी राजाओं की विदायी करने का वर्णन प्रस्तुत किया गया है ।

इक्यानवें अध्याय में सर्वेश्वरी किशोरी सीता के दर्शन के लिये प्रजापति ब्रह्मा का दैवज्ञ के वेष में जनकपुर में आने का वर्णन है । बावनवें अध्याय में स्वयं लक्ष्मीनारायण के ब्राह्मण का वेश धारण कर किशोरी सीता के दर्शनार्थ जनक के यहां आने का वर्णन है ।

तिरपनवें अध्याय में किशोरी सीता के कन्दुक्रीडनक लीला का वर्णन हुआ है । चौवनवें अध्याय में गायिका के रूप में विद्याधिष्ठातृ भगवती-सरस्वती का आगमन, उनके द्वारा अम्बा सुनयना की प्रेम परीक्षा तथा किशोरी सीता की वन्दना में सरस्वती द्वारा प्रस्तुत मधुरगान किया गया है । पचपनवें अध्याय में पराम्बा भगवती पार्वती का स्वर्णकारिणी के रूप में मिथिलेश्वर के भवन में आगमन और उनकी चिर अपेक्षित भाव की पूर्ति का वर्णन है ।

छप्पनवें अध्याय में अम्बा सुनैना के द्वार बन्द भवन में किशोरी सीता की आगमन लीला का वर्णन हुआ है । सत्तावनवें अध्याय में श्री कंचन भवन में अनन्त ब्रह्माण्डों के अनन्त ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवों के द्वारा किशोरी सीता की स्तुति तथा दोलनोत्सव के निमित्त सखियों की प्रार्थना का वर्णन प्रस्तुत किया गया है । अट्ठावनवें अध्याय में किशोरी सीता की प्रसन्नता के लिए अयोध्या के कनक भवन से सर्वेश्वर राम को लाने के लिये प्रधान यूथेश्वरी चन्द्रकला के द्वारा सखियों को आदेश दिया जाना तथा राम प्रभु का रूप-प्रदर्शन वर्णित है । उनसठवें अध्याय में स्वप्न परीक्षण के लिये

प्रमोद वनगत राम को प्रच्छन्न रूप से सीता की सखियों का मिथिला में ले जाना तथा वहां की भूमि का संस्पर्श होते ही प्रसंगानुसार किशोरी जानकी का स्मरण करके होने वाले उनके विरह का वर्णन किया गया है ।

साठवें अध्याय में राघवेन्द्र राम और प्रधान यूथेश्वरी चन्द्रकला का संवाद वर्णित है ।

इकसठवें अध्याय में प्रधान यूथेश्वरी चन्द्रकला को किशोरी सीता के द्वारा वर-प्राप्ति तथा युगलेश्वर सीता एवं राम के मिलन का साहचर्य सुख वर्णित किया गया है ।[१]

बासठवें अध्याय में अन्य सखियों के सुखार्थ युगलेश्वर राम और सीता के मानक्त आनन्द को प्राप्त कराने वाली रास विहार लीला, जल विहार लीला तथा नौका विहार लीला का वर्णन है ।

तिरसठवें अध्याय में अपनी सहचरी सखियों को नित्य संयोग सुख प्रदान करने हेतु किशोरी सीता के प्राणेश्वर राम से प्रार्थना उनकी समाज्ञा से लीला देवी के द्वारा राघवेन्द्र राम के प्रमोदवन के सहित अयोध्या प्रेषित करके उस लीला को स्वच्छन्द करने का निरूपण किया गया है ।

चौसठवें अध्याय में किशोरी सीता के कंचन वन से कुछ विलम्ब से राजप्रासाद में लौटने के कारण व्याकुलित अम्बा सुनयना का राजदारिका किशोरी से उनके प्रेममय संवाद का वर्णन किया गया है ।

पैंसठवें अध्याय में निमिवंशीया राजकुमारियों को सर्वेश्वरी जानकी के साथ क्रीड़ा करने के लिये पूर्णतः स्वातन्त्र्य की प्राप्ति तथा किशोरी जानकी के द्वारा अपने साथ क्रीड़ा करने वाली उन सभी राजकुमारियों के

१- जा० च०, ६१ ।११-१४

भावों को उनके मनोनुकूल ही पूर्ण करने का मनोवैज्ञानिक वर्णन किया गया है ।

छाछठवें अध्याय में भगवती जानकी का धनुर्भवन में जाकर के धनुर्भूमि को अपने कर कमलों से लेपन तथा उसी क्षण में शिव धनुष को उठाना और सखियों का साश्चर्य उसे देखना आदि वर्णित किया गया है ।

सड़सठवें अध्याय में किशोरी जानकी की नयन निमीलन लीला एवं चन्द्रकला द्वारा, उनके छिपने में असमर्थ होने पर, परिहास करने पर उनकी अन्तर्धान लीला का भी चारुतम वर्णन किया गया है ।

अड़सठवें अध्याय में किशोरी जानकी के वियोग से व्याकुलित सखियों का आर्तविलाप तथा तदनन्तर उन सभी सखियों को जानकी के पुनर्दर्शन होने का वर्णन किया गया है ।

उनहत्तरवें अध्याय में यूथेश्वरी चन्द्रकला और सर्वेश्वरी जानकी का संवाद वर्णित है । सत्तरवें अध्याय में भगवती जानकी की भोजन लीला का वर्णन किया गया है ।

इकहत्तरवें अध्याय में सखियों द्वारा सर्वेश्वरी किशोरी जानकी से मिथिला की कभी भी उपेक्षा न करने के लिये विनयातुर प्रार्थना की गयी है ।

बहत्तरवें अध्याय में शिवधनुष का पूजन करके आये हुये मिथिलेश्वर सीरध्वज जनक को चिन्ताकुल देखकर अम्बा सुनयना का उसका कारण पूंछना और किशोरी जानकी के द्वारा धनुर्भूमि लेपन में कुछ त्रुटि का अनुमान करके भगवान आशुतोष और उनके धनुष से क्षमा याचना करना तथा च उनकी वह त्रुटि भी अनिष्टकारी नहीं है ऐसा सिद्ध करने आदि का वर्णन किया गया है ।

तिहत्तरवें अध्याय में मिथिलेश्वर जनक का धर्मपत्नी सुनयना से

यह जान करके कि आज जानकी ही धनुर्वन में धनुर्भूमि के लेपन हेतु गयी थी आश्चर्य में पड़ना पुन: उनसे समस्त वृत्तान्त जानकारके अपनी शंका को निर्मूल करने के लिये मरकत भवन में स्थित सर्वेश्वरी जानकी के पास स्वयं जाने का वर्णन प्राप्त होता है ।

चौदहवें अध्याय में मिथिलेश्वर सीरध्वज जनक के पूछने पर यूथेश्वरी चारुशीला के द्वारा सर्वेश्वरी जानकी की धनुर्भूमि लेपन लीला का अपेक्षित वर्णन किया गया है ।

पन्द्रहवें अध्याय में चारुशीला आदि सभी राजदारिकाओं से किशोरी जानकी के द्वारा शिव धनुष उठाये जाने के सन्दर्भ को प्रामाणिक मान लेने पर मिथिलेश्वर जनक की इस प्रतिज्ञा का वर्णन किया गया है कि जो शिव धनुष को तोड़ेगा उसी के साथ किशोरी जानकी का विवाह होगा[1] ।

सोलहवें अध्याय में कमला के तट पर ब्रह्मपुत्र देवर्षि नारद के साथ सनकादिकों के आगमन और किशोरी वैदेही के द्वारा उनके भावों की पूर्ति का वर्णन प्राप्त होता है ।

सत्रहवें अध्याय में मिथिला में आगत सप्तपुरियों के साथ भगवती मुक्ति से सनकादिकों का मिलन तथा उनके द्वारा अपने-अपने विविध भावों का वर्णन किया गया है ।

अठारहवें अध्याय में जानकी की फाग लीला, उन्नीसवें अध्याय में अम्बा सुचिना के भावों की पूर्ति के लिये किशोरी जानकी का

१- सुतां मे योनिजां सीतां त्रैलोक्यविजयश्रिया ।
इमां सर्वगुणोपेतां स एव वरयिष्यति ॥

— बा० च०, ७५ । २३ -२५

उनके भवन में पदार्पण करने का वर्णन प्राप्त होता है ।

अस्सीवें अध्याय में किशोरी वैदेही की चम्पक वन में कन्दुक लीला एवं मुरली सरोवर का उद्भव तथा उसके अपूर्व महात्म्य का वर्णन किया गया है ।

इक्यासीवें अध्याय में किशोरी जानकी का विद्यारम्भ एवं उनके जन्म-महोत्सव के उपलक्ष्य में स्वयं देवराज इन्द्र की पट्ट महिषी शची के आगमन का वर्णन किया गया है ।

बयासीवें अध्याय में दासी पुत्री सुशीला को किशोरी जानकी के सखीत्व की प्राप्ति का वर्णन प्राप्त होता है ।

तिरासीवें अध्याय में मिथिलेश्वर सीरध्वज जनक से उनके राजदारकों के साथ अपने राजकुमारियों के उद्वाह सम्बन्ध की स्वीकृति प्राप्त करके नरपति श्रीधर का अपने कुल पुरोहित कुशशील को जन्म कुण्डलियों के साथ मिथिला भेजने का वर्णन किया गया है ।

चौरासीवें अध्याय में जनकात्मज लक्ष्मी निधि का विवाह एवं विरहाकुलिता अम्बा सुकान्ति एवं किशोरी जानकी का संवाद निरूपित है ।

पचासीवें अध्याय में श्रीधर नरेश की सिद्धि आदि राजकुमारियों का किशोरी जानकी से मिलन एवं पारस्परिक संवाद वर्णित है ।

छियासीवें अध्याय में चातुर्मास व्रत के निमित्त महर्षियों के आगमन पर भगवान आशुतोष के द्वारा स्वप्न में धनुर्यज्ञ करने के लिये मिथिलेश्वर जनक को आदेश प्राप्त होना तथा व तदनन्तर नव योगेश्वरों के आगमन का वर्णन मिलता है ।

सतासीवें व अध्याय में योगेश्वर कवि द्वारा मिथिलेश्वर जनक के प्रश्नोत्तर के उपक्रम में संसार में मोक्षार्थियों के निमित्त सर्वोपास्य, सर्वोपरि

पूज्य एवं परमध्येय तत्व का निरूपण किया गया है और इसी अध्याय में जानकी सहस्त्र नाम स्तोत्र का भी उल्लेख किया गया है ।

अट्ठासीवें अध्याय में जानकी के अष्टोत्तरशत नाम स्तोत्र एवं द्वादश नाम स्तोत्र का वर्णन किया गया है ।

नवासीवें अध्याय में महर्षि विश्वामित्र का अपना यज्ञ निर्विघ्न सम्पन्न करके राम एवं लक्ष्मण के साथ जनकपुर के लिए प्रस्थान, मार्ग में राघवेन्द्र राम द्वारा अहल्योद्धार तदनन्तर उन सबका जनकपुर में प्रवेश एवं कोशलेन्द्र कुमार राम एवं लक्ष्मण का जनक नगर दर्शन क्रमशः वर्णित है ।

नब्बेवें अध्याय में राघवेन्द्र राम का अनुज लक्ष्मण के साथ गुरुवर्य महर्षि विश्वामित्र की समर्चा के निमित्त पुष्प लेने के लिये जनक की पुष्प वाटिका में जाना और वहां पर सर्वेश्वरी किशोरी जानकी के द्वारा पराम्बा गिरिजा की समर्चा करने का क्रमशः वर्णन किया गया है ।

इक्यानुवेवें अध्याय में विश्वामित्र द्वारा लक्ष्मण को पिनाकी धनुष की उत्पत्ति का वर्णन बताया गया है । बान्वेवें में शिव धनुष को तोड़ने वाला सर्वेश्वरी जानकी के साथ विवाह कर सकता है जनक की इस प्रतिज्ञा के विषय में महर्षि विश्वामित्र के द्वारा आशुतोष शिव का लक्ष्मीनारायण के साथ युद्ध तथा तदनन्तर मिथिलेश्वर सीरध्वज को धनुष की प्राप्ति एवं उनकी प्रतिज्ञा का हेतु वर्णित किया गया है ।

तिरान्वेवें अध्याय में अहल्या पुत्र शतानन्द की प्रार्थना से विश्वामित्र का राम-लक्ष्मण सहित मिथिलेश्वर जनक की धनुर्भूमि में आगमन और धनुर्यज्ञ में किसी भी नरेश के द्वारा शिव धनुष को तिल भर भी न उठा पाना तद्जन्य जनक का मानसिक परिताप और सम्पूर्ण वसुन्धरा को वीरों से शून्य कहना, लक्ष्मण का मिथिलेश्वर जनक के कथन पर रोष प्रकट करना आदि वर्णित है ।

चौरान्वे वें अध्याय में धनुर्यज्ञ में सर्वेश्वर महाराघव राम द्वारा धनुर्भंग एवं मिथिलेश राजदारिका सर्वेश्वरी जानकी का अपने कर कमलों से राघवेन्द्र राम को वर माला से अलंकृत करने का अनुपम वर्णन है ।

पंचानवे वें अध्याय में परशुराम एवं लक्ष्मण संवाद परशुराम महाराघव राम का संवाद संरम्भ पूर्वक वर्णित है ।

इसी अध्याय में राम के द्वारा पराजित परशुराम का अपनी पराजय को स्वीकार करके राम के द्वारा चढ़ाये गये बाण को अपने यश: लोक एवं स्वर्ग गमन की शक्ति को नष्ट कर देने का समावेश तथा तदनन्तर पुन: परशुराम का महेन्द्र पर्वत पर तप करने के लिये प्रस्थान आदि का विधिवत उल्लेख किया गया है[1] ।

छियानवे वें अध्याय में महर्षि विश्वामित्र की अनुज्ञा से मिथिलेश्वर जनक का अपने दूतों को अयोध्या नरेश चक्रवर्ती दशरथ को बुलाने के लिये प्रेषित करना एवं तदनन्तर वर-यात्रा की सज्जा करके उनका मिथिला आगमन क्रमश: वर्णित है ।

सत्तानवेवें अध्याय में राघवेन्द्र राम का विवाह मण्डप-प्रस्थान एवं अट्ठानवेवें में रामादि चारों कोशलेन्द्र कुमारों का सर्वेश्वरी जानकी आदि राज-पुत्रियों के साथ परिणय वर्णित किया गया है ।

निन्यानवेवें (९९) अध्याय में कोशलेन्द्र कुमार रामादि चारों का जानकी आदि मिथिलेश राजदारिकाओं के साथ कोहबर लीला का वर्णन किया गया है । कोहबर भवन में ज्ञान तथा अम्बा सुनयना की अनुमति के अनुसार रामादि चारों कुमारों का एक सौ एक वें (१०१) अध्याय में रामादि चारों राजकुमारों का जनवास में जाना तदनन्तर मिथिलेश्वर भवन में उनका आना वर्णित है । एक सौ दो वें (१०२) अध्याय में वर यात्रियों सहित अवधेश्वर दशरथ का मिथिलेश्वर जनक के भवन में भोजनार्थ गमन वर्णित है । एक सौ तीनवें

१- वा० भ०, ९५ ।७७-८२

अध्याय में जानकी राघव विवाह की वैदिक विधि से विधि पूर्ति तथा तदनन्तर रामादि चारों राजकुमारों का माध्यह्निक विश्राम वर्णित है ।

१०४ वें अध्याय में राघवेन्द्र रामादि चारों अवधेश राजदारकों का सीरध्वज जनक के कुश ध्वज आदि सभी अनुजों के भवनों में जाकर उन्हें अपूर्व सुख प्रदान करने का क्रमशः वर्णन किया गया है ।

१०५ वें अध्याय में सर्वेश्वर रामादि चारों राजकुमारों के सहित सर्वेश्वरी जानकी आदि राजदारिकाओं का श्वसुर गृह अयोध्या में प्रवेश का वर्णन है ।

१०६ वें अध्याय में अयोध्या के प्रमोदवन में स्थित कदम्ब वन में यक्ष कुमारियों की विश्वनाट्य लीला का प्रदर्शन वर्णित है ।

१०७ वें अध्याय में यक्ष कुमारियों द्वारा रामलीला प्रदर्शन तथा इसी प्रसंग में राम के अवतार लेने से लेकर लङ्का विजय करके लौटे हुये अयोध्या में उनके राज्याभिषेक तक की कथा का संक्षिप्त उल्लेख किया गया है ।

१०८ वें अध्याय में जानकी चरितामृतम् महाकाव्य के पूर्वोक्त एक सौ सात अध्यायों की संक्षिप्त अनुक्रमणिका प्रस्तुत की गयी है ।

इस प्रकार जानकी चरितामृतम महाकाव्य के अन्तर्गत सर्वेश्वरी अनन्त ब्रह्माण्ड नायिका सीता एवं सर्वेश्वर अनन्त ब्रह्माण्ड नायक राम का जीवों के कल्याणार्थं साकेत धाम से क्रमशः जनक एवं सुनयना तथा दशरथ एवं कौशल्या के यहां जन्म लेने से लेकर उनके पारस्परिक परिणय पर्यन्त तक की कथा ही मुख्य रूप से एक सौ छ अध्यायों में वर्णित की गयी है । और अन्तिम दो अध्यायों में संक्षिप्त रूप में लङ्का विजय के पश्चात् राम के राज्याभिषेक तक की कथावस्तु की चर्चा मात्र की गयी है ।

पात्र विवेचन -

जानकी चरितामृतम महाकाव्य के अन्तर्गत दशरथ, वशिष्ठ, सुमन्त्र, राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, विश्वामित्र, विष्णु, ब्रह्मा, शंकर मारीचि, कश्यप, विवस्वान्, मनु, इक्ष्वाकु, निमि, मिथि, जनक, उदावसु, नन्दिवर्धन, सुकेतु, देवरात, बृहद्रथ, महावीर, सुधृति, धृष्टकेतु, हर्यश्व, मरु, प्रतिन्धक, कीर्तिरथ, देवमीढ, महिध्रक, कीर्तिरात, महारोमा, स्वर्णरोमा, ह्रस्वरोमा, सीरध्वजजनक, कुशध्वज, यशध्वज, वीरध्वज, रिपुतापन, हंसध्वज, केकिध्वज, शत्रुजित्, यश:शाली, तेज: शाली, अरिमर्दन, विजयध्वज, महिमंगल, कलाकर, चन्द्रभानु, लक्ष्मीनिधि, गुणाकर, श्रीनिधि, श्रीनिधानक, धीरकर्ण, राजकुमार आशापाल, वंशप्रवीण, विक्रमानु, हंसरथ, प्रेमनिधि , श्रृंगार निधि, वंशधर, अनुपनिधि, क्षेमनिधि, मंगलानिधि, शीलनिधि, भूरिमेधा, सुमाल, कुण्डल, ज्ञानमेधा, श्रीवीर, श्रीकान्त, श्रीधर, कान्तिधर, यशोधर, वृन्दारक, अर्यमास्वर, कलायक, कौण्डिन्य, शतानन्द, पुलस्त्य, अगस्त्य, धौम्य, मधुचि, प्रमुचि, यवक्रीत, कण्व, गालव, कुत्स, गर्ग, कौत्स, गौतम, जमदग्नि, भरद्वाज, वाल्मीकि, याज्ञवल्क्य, अंगिरा, चन्द्र, भृगु, कवष, भृगु, अत्रि, मेधातिथि, मृकण्डु, लोमश, वकदाल्भ, मारकण्डेय, क्रतु, च्यवन, विभाण्डक, अष्टावक्र, कुरू, पाशु, पिप्पलादि, भास्कर, संवर्त, कपिल, धौम्र, मौद्गल्य, कच, कुशबिन्दु, माण्डव्य, शंख, लिखित, देवल, देवरात, जामदग्नि, पराशर, विश्वदेव, विश्वकर्मा शाकल्य, त्रिशिरा, देवयाति, यावकाग्नि, विश्वमना, मयोभु:, सुमेधा, उशना, वामदेव, परमेष्ठि, प्रजापति, अरुणारि, शुक्र, शंयु, विरूप, बृहस्पति, मधुच्छन्द, सुबन्धु, जय, देवश्रव, देववात, चित्र, श्रुतम्भ, रयिस्व, गौरीवीति, नाभानेदिष्ट, सत्याधिक, श्रुतबन्धु, प्रबन्धु, सिन्धुद्वीप, सोमक, प्रस्कण्व, कुत्स, उत्कील, अत्रि, सोमाहुति, देवश्रवा, त्रिलोक, भार्गव, त्रिशरव, पायु, गृत्समद, कुशिक, दीर्घतमा, शुन:शेप, श्यावाश्व, कक्षीवान, वरुण, तापस, ध्रुव, ऊर्णनाभ, गृत्स, वत्स, कक्षीवन्त, वेतान, व्यास, नाभानेदि, बन्धु, उचथ्य, प्रियमेधा, भिण्डि, कुत्सवैतभकुच्छन्दा, दधिकाव, [illegible] शौनक, नारायण, विभूदा, सप्तवधि, हुत, कुशबिन्दु, कुमार, हारीत, विश्वायु, आश्विन, उद्दालक, सविता, ऋभु, हेमवर्णि, विभूति, कौडिन्य, विभूति, अरुणावसवसु, स्वस्त्यात्रेय, सोभरि, नृमेध, पुरुमेध,

यामायन, लवकादि, प्राड्डरादि, रम्यादी, आश्वतरश्वि, काम, वत्स, विहव्य, कूर्म, कृष्ण, कौत्स, बृहदुक्थ, सुहोम, कुशिक, ऋषिशका, प्रतिच्छात्र, प्रगाथ, दमन, भरद्वाजशिरम्विष्ठ, सांकाश्य, नारद, सनक, सनातन, सनन्दन, सनत्कुमार आदि सभी महर्षि पुरुष पात्रों की कोटि में आये हैं ।

जानकी चरितामृतम के नारी पात्रों में कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी, सुनयाया, सदा, सर्वदा, सुनयना, कान्तिमती, सुदर्शना, सुभद्रा, सुभामा, सुचित्रा, परमा, स्नेहपरा, सुखवर्षिणी, सहजसुन्दरी, रतिमोहिनी, मदनमालती, सुवृत्ता, सुशीला, चन्द्रकान्ता, विहारिणी, माधुर्या, चन्द्रकान्ति, विदग्धा, विशालाक्षी, सुलोचना, उदयप्रभा, अशोका, विनीता, मोदिनी, शोभनाङ्गी, सिद्धि, वाणी, नन्दा, उल्का, जानकी, चन्द्रकला, चारुशीला, लक्ष्मणा, उर्मिला, पद्मगंधा, रामा, हेमा, सुमना, वरारोहा, बीवा, माण्डवी, श्रुतिकीर्ति, प्रसादा, विश्वमोहिनी, योगमुद्रा, चित्रा, पद्मा, ह्लादिनी, पद्मलोचना, गौराङ्गी, रामदासु, कर्पूराङ्गी, विमला, उत्कर्षिणा, भक्ति, क्रिया, ईशाना, ज्ञाना, तत्वा, स्वानन्दा, माधवी, हंसी, प्रहंसी, चारुलोचना, वामीशा, शोभना, रम्भा, विशालाक्षी, हरिप्रिया, सुदर्शिका, चारु हेमाङ्गी, चम्पकाङ्गी, सन्तोषा, मानिनी, रति शान्ता, सुविद्या, विद्या, कांचना, चित्ररेखा, चन्द्रभद्रा, सुधाङ्गी, अतिशीला, लीला, कृष्णा, विशारदा, लक्ष्मी, पार्वती, सरस्वती, अहल्या, सुशीला आदि शताधिक नारियों का नामोल्लेख किया गया है ।

उपर्युक्त पात्रों में पात्र-विभाजन कोटि की दृष्टि से दशरथ, सुमन्त्र, रामादि चारों भाई, कश्यप, विवस्वान्, मनु, इक्ष्वाकु, निमि, मिथि, जनक, उदावसु से लेकर कुशध्वज तक के पुरुषपात्र तथा कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी, सुनयाया, सदा, सर्वदा, सुनयना, जानकी, चन्द्रकला, स्नेहपरा से लेकर विशारदा पर्यन्त स्त्री पात्र राजकीय पात्र हैं ।

वशिष्ठ, शतानन्द, पुलस्त्य, अगस्त्य, धौम्य, सुमति, प्रमुमि,

यवक्रीत, कण्व, गालव, पुल:, गर्ग, गौतम से लेकर सांकाश्य आदि तक के सभी पुरुष पात्र तथा वीणा, सुशीला, अहिल्या आदि स्त्रीपात्र प्रवाहनीय पात्र हैं ।

पुनश्च दिव्य, अदिव्य एवं अदिव्यादिव्य कोटि की दृष्टि से राम, विष्णु, ब्रह्मा, शंकर, नारद, सनकादि, सीता, लक्ष्मी, पार्वती, सरस्वती आदि पूर्णत: दिव्यकोटि के पात्र हैं ।

दशरथ, सुमन्त्र, कश्यप, विवस्वान्, मनु, इक्ष्वाकु, मिथि से लेकर वलोन्नाय तक के पुरुष पात्र तथा कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी से लेकर सुशीला पर्यन्त सभी स्त्री पात्र अदिव्य (मर्त्य) कोटि के पात्र हैं । वसिष्ठ, शतानन्द, पुलस्त्य, अगस्त्य से लेकर संकाश्य आदि सभी महर्षि दिव्यादिव्य (मर्त्यामर्त्य) कोटि के पात्र हैं ।

उक्त सभी पात्रों में सीता, चन्द्रकला, स्नेहपरा, सुनयना, दशरथ, राम, लक्ष्मण, जनक, शतानन्द, वसिष्ठ आदि ऐसे पात्र हैं जिनका महाकाव्य के कथानक-निर्वाह की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान है । अतएव पात्र विवेचन के अग्रिम चरण में इन महत्वपूर्ण पात्रों का चरित्र चित्रण प्रस्तुत किया जा रहा है ।

सीता -

राम स्नेहिदास प्रणीत `श्री जानकी चरितामृतम्` महाकाव्य के अन्तर्गत निरूपित नारी पात्रों में ही नहीं अपितु सभी पात्रों में जानकी न केवल सर्वाधिक महत्वपूर्ण पात्र है बल्कि महाकाव्य के सम्पूर्ण कथानक का मुख्य केन्द्र-बिन्दु भी है । जानकी चरितामृतम महाकाव्य की सम्पूर्ण कथावस्तु जानकी के संकेतों पर ही क्रमश: आगे बढ़ती है । इस महाकाव्य के आदि से लेकर अन्त तक जानकी ही कथावस्तु की नियामिका है । और आद्यन्त उन्हीं के चरित का ही विशेष रूप से वर्णन किया गया है । यही कारण है कि जानकी चरितामृतम महाकाव्य के नायक का भी स्थान सर्वेश्वरी जानकी को ही सहज रूप से उपलब्ध होता हुआ दृष्टिगत होता है ।

श्रीजानकी चरितामृतम् महाकाव्य में जानकी के विविध रूपों की उपस्थापना की गयी है कहीं वह अयोनिजा सीता के रूप में चित्रित की गयी है तो कहीं मिथिलेश्वर सीरध्वज जनक की तप: संचित निधि पुत्री जानकी के रूप में, कहीं वह किशोरावस्था से परिप्लावित लीला की विलास स्थली की नियामिका किशोरी के रूप में तो कहीं उत्तमोत्तम पुरुषोत्तम सर्वेश्वर महाराघव राम की हृदय-वल्लभा के रूप में, तथा च कहीं इन सभी भावभूमियों से ऊपर उठकर अनन्त ब्रह्माण्ड की नायिका के पद का प्रतिनिधित्व करते हुये समस्त जीवों के कल्याणार्थ अनुकम्पा विधायिनी सर्वेश्वरी सीता के रूप में उपन्यस्त की गयी है ।

सीता के अयोनिजा रूप का निदर्शन सप्तम अध्याय में उस समय उपलब्ध होता है जब अपने साकेत धाम में सिंहासनासीन राम से सीता यह कहती है कि हे नाथ जीवों के कल्याणार्थ आप को बिना किसी अपेक्षा के उनपर दया करनी चाहिये अतएव यदि ये मनुष्य स्वयं को यदि आपका न भी कहें तो भी आपको उनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये क्योंकि क्या बच्चे कभी अपने पूज्य पिता श्री से यह कहते हैं कि हम आपके पुत्र हैं और आपको हमपर दया करनी चाहिये[1]। हे नाथ हमारी और आपकी प्राप्ति के लिये जिन्होंने पूर्व जन्म में घोर तपस्या की है उन स्वयंभू मनु और शतरूपा ने दशरथ और कौशल्या के रूप में जन्म लेकर वृद्धावस्था में पदार्पण कर चुके हैं । प्राणेश्वर । उन दोनों को जो हम दोनों ने जो वर दिये हैं क्या आप उसे भूल गये हैं ? उसी वरदान की प्रत्याशा में ब्रह्मा आदि सभी देवगण हम दोनों के पृथ्वीतल पर आगमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं । अतएव हे नाथ । आप दशरथ और कौशल्या के पुत्र रूप में अयोध्या में अवतार लें, तत्पश्चात् मैं भी मिथिलेश्वर

१- अपेक्षायां दयालुत्वं किं न ते काऽम्बुजाक्षता ।
बालास्तथाऽऽत्मनः क्वापि पितृपादान् वदन्ति किम् ।।

— जा० च०, ७। २६

सीरध्वज जनक की पूर्व जन्म की प्रार्थना के अनुसार उनकी यज्ञ-वेदी से पुत्री के रूप में प्रकट होऊंगी। हे प्राण वल्लभ ! इस प्रकार हम दोनों पृथ्वी पर अवतार लेकर प्राणियों को केवल आनन्द ही आनन्द प्रदान करने वाले चरितों को दिखायें और अपने सौहार्दपूर्ण व्यवहारों से प्रेम की गंगा प्रवाहित कर दें।[1] ब्रह्मादिक देवगण भी जिन सुखों की प्राप्ति के लिये चिरकाल से लालायित हैं उन सुखों की अखण्ड वर्षा मिथिला और अयोध्या की भूमि पर सम्यक् रूपेण करनी चाहिये[2]।

पुन: बत्तीसवें अध्याय में जब सीरध्वज जनक सर्वेश्वरी सीता को पुत्री के रूप में प्राप्त करने के लिये ऋषियों के परामर्शानुसार यज्ञ करना प्रारम्भ करते हैं तो नवें दिन यज्ञ वेदी में एक अद्भुत प्रकाश दृग्गोचर होता है। मिथिलेश्वर जनक और सुनयना को देखते ही देखते यह वेदी का भेदन करके अयोनिजा सीता अपनी सुरेश्वरियों सहित द्वादश वर्षीया के रूप में वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि मंगलवार कर्क लग्न, पुष्य नक्षत्र में स्वाभाविक तेज से मण्डित मध्याह्न में नीरदमाला में विद्युत जैसी प्रकट होती है[3]। ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि समस्त देवों द्वारा स्तूयमान होती हुयी समस्त शृंगाराभरणों से अलंकृत स्मयमान मुखाम्बुजा अयोनिजा सीता का दर्शन करके वहां उपस्थित ऋषि, सिद्ध योगी, तपस्वी आदि सभी हर्षातिरेक पूर्वक एक साथ मिलकर स्तुति करने लगते हैं[4]। अयोनिजा सीता सीरध्वज जनक और सुनयना को सम्बोधित करती हुयी स्पष्ट कहती हैं कि हे अम्ब ! हे तात!

१- बा० च०, ७।४०-४४

२- वही , ७।४५

३- वही, ३२।४२-४६

४- वही, ३२।४९-५२

आप इस यज्ञ के व्याज से ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि त्रिदेवों को भी दुर्लभ मुझे आपने पूर्व तप की उपस्थित साक्षात सिद्धि समझें[1]। मिथिलेश्वर जनक अयोनिजा सीता का वचन सुनकर साश्चर्य कहते हैं कि हे कृपागारे! सदये! यदि आप यह सत्य ही कह रही हैं तो मेरा जीवन सफल हो गया। आपने मुझ अविनीत को भी अनुकम्पित कर दिया। परन्तु हे विश्वेश्वरि! आप अपने इस परात्पर स्वरूप का परित्याग करके शिशु रूप में स्थिर होकर मुझे अभीष्ट सुख प्रदान करने की कृपा करें, क्योंकि जिस रूप के प्रत्येक रोम में अनन्त ब्रह्माण्ड परमाणु के सदृश अत्यन्त सूक्ष्म रूप में दिखायी दे रहे हैं आपका वह ऐश्वर्यमय स्वरूप मेरे द्वारा लालन पालन करने योग्य कैसे हो सकता है[2]। आपसे वात्सल्य सुख हमें कैसे प्राप्त हो सकता है?

सीरध्वज जनक की उक्त प्रार्थना को सुनकर कारुण्यपारावारा अयोनिजा सीता ने शीघ्र स्वाभाविक सुषम तेज से सम्पन्न शिशु रूप को धारण कर लिया। अयोनिजा सीता को शिशुरूप में अवस्थित देखकर मिथिलेश्वर जनक उन्हें उठाकर अपनी गोद में बिठा लेते हैं। उनकी गोद में सीता को शिशु रूप में देखकर देवगण जय घोषा के साथ पुष्प वृष्टि करते हैं। अम्बा सुनयना के स्तनों से अमृत-तुल्य दुग्ध प्रवाहित होने लगता है और वे मिथिलेश्वर की गोद से अयोनिजा सीता को अपनी गोद में ले लेती हैं। सीता भी अम्बा सुनयना का आलिङ्गन जो पूर्व में कभी भी उन्हें प्राप्त नहीं हुआ था पाकर उनकी गोद में अत्यन्त गाढ़ रूप से लिपट गयीं[3]। सुनयना की गोद में अयोनिजा

१- आत्मनस्त्व तप: सिद्धिं विद्धि मां समुपस्थिताम्।
यज्ञव्याजेन निर्भिन्नां ब्रह्मविष्ण्वीशदुर्लभाम् ।।
– भा० च०, ३२। ६५

२- वही, ३२। ६७-७०

३- वही, ३२। ७१-७७

सीता का दर्शन करके समस्त दर्शकों की छः मास की चेतन समाधि लग जाती है । तदनन्तर वे सभी यज्ञ वेदी से मिथिला के राजभवन को प्रस्थान करते हैं ।

इस प्रकार जानकी चरितामृतम् महाकाव्य में सीता का अयोनिजा रूप स्पष्ट हो जाता है । यही नहीं नामकरण के अवसर पर जनक के कुल पुरोहित शतानन्द भी स्पष्ट रूप से सीता के विविध नामों की सार्थकता को स्पष्ट करते हुये कहते हैं कि आपकी पुत्री के रूप में ये चूंकि भूमि से प्रकट हुयी हैं अतः इनका नाम मैं भूमिजा रख रहा हूं, पुनः ये यज्ञवेदी से प्रकट हुई हैं इसलिये इनका नाम यज्ञवेदिप्रभवा है । ये योनि से नहीं प्रकट हुयी हैं अतएव मैं इनका नाम अयोनिजा रख रहा हूं[1] ।

सीता के जानकी अथवा जनक की पुत्री के स्वरूप का निदर्शन तो उसी समय से उपलब्ध होने लगता है जब वे अपने विश्वेश्वरी रूप का परित्याग करके शिशु रूप में जनक के अंक में अविराजती हैं[2] । पुनः सुनयना के अमृतमय दुग्ध का पान करने के लिये उनके स्नेहिल गोद से अतिगाढ़ रूप से लिपट जाती हैं[3] और उन दोनों को अपूर्व वात्सल्य सुख देना प्रारम्भ कर देती हैं ।

यही कारण है कि जनक के कुलगुरु शतानन्द नामकरण के अवसर पर सीता का एक नाम जानकी भी रखते हैं और इसका औचित्य प्रतिपादित

१- भूमितः प्रकटिता यतस्त्वियं भूमिजेति परिकथ्यते ततः ।
यज्ञवेदित इयं विनिर्गता यज्ञवेदिप्रभवाऽत्र उच्यते ॥
योनिजा न च यतस्त्वियं ततोऽयोनिजेति परिगीयते मया ।
त्वन्मनोरथकलाकृतिर्यतो जानकीति तदियं मयोच्यते ॥
— जा० च०, ४१।२६, २७

२- वही, ३२ । ७१-७३

३- वही, ३२ । ७५-७७

करते हुये यह बताते हैं कि यह आप जनक के समस्त मनोरथों को सफल करने वाली हैं, अपूर्व वात्सल्य सुख प्रदान करने वाली हैं उनकी कीर्ति का विस्तार करने वाली हैं । इसी कारण इनका एक नाम 'जानकी' भी रख रहा हूं[1] । पुनः इनका लालन पालन पट्ट महिषी सुनयना द्वारा होगा अतएव इनका दूसरा नाम सुनयना सुता भी रख रहा हूं[2] । इनके द्वारा मिथिवंशीय नरेशों की पावन कीर्ति का परम प्रकाश दिग् दिगन्त तक फैलेगा अतएव इनका एक नाम 'मैथिली' भी रख रहा हूं[3] ।

इस प्रकार जानकी, सुनयना सुता, मैथिली आदि नाम सीता के जनक की पुत्री होने के रूप में कुलगुरु शतानन्द द्वारा रखे गये ।

पुनः ३७ एवं ३८ वें अध्यायों में देवर्षि नारद द्वारा मिथिलेश्वर जनक के यहां जाकर के जानकी के अड़तालिस चरण चिह्न एवं चौंसठ हस्तरेखाओं का फल सुनाकर उन्हें उनकी तपः पुञ्ज की निधात्मिका, अपूर्व सिद्धिदात्री पुत्री-बताना तान्त्रिक वेश में शिव का जनक के यहां जाकर उनकी पुत्री जानकी को रोदन रोग से मुक्त करके पुनः दुग्धपान करने के लिये स्वस्थ कर दुग्धपान कराना[4], सनकादिकों का ब्राह्मण बालक के वेश में जनक की पुत्री जानकी का दर्शन करने के लिए मिथिलेश्वर के भवन में विज्ञवादिनी ब्राह्मणी के माध्यम से पहुंचना, अम्बा

१- स्वमनोरथफलाकृतिर्यतो जानकीति तदियं भविष्यति ।।
— बा० अ०, ४१।१७ उत्तरार्द्ध

२- लालनं च परिपालनं यतोऽस्यामवेदयितया तवाम्बया ।
मङ्गलं सुनयनासुतेत्यतः कीर्त्यते नृवर । नाम ते श्रियोः ।।
— बा० अ०, ४१ । १८

३- वही, ४१ । १९

४- वही, ३९।११ - ४३

सुनयना के आतिथ्य को ग्रहण कर जानकी का दर्शन करना पुन: उन सबका अन्तर्धान होना,[1] रामादि कोशलेन्द्र कुमारों का सेना के आग्रह पर जनक की पुत्री जानकी के दर्शनार्थ मिथिलेश्वर भवन में आना[2]। देवज्ञा के वेश में स्वयं ब्रह्मा तथा ब्राह्मण एवं ब्राह्मणी के वेश में क्रमश: विष्णु और लक्ष्मी का मिथिलेश सीरध्वज जनक के राजप्रासाद में जाकर उनकी पुत्री जानकी का दर्शन करना आदि ऐसे अनेक स्थल हैं जिनमें सीता के केवल जनक की पुत्री होने का वास्तविक निदर्शन सविस्तार उपलब्ध होता है ।

जानकी चरितामृतम् महाकाव्य में सीता के जनक की पुत्री होने के उपरान्त उन्हें और उनके मिथिलावासियों को अपूर्व सुख प्रदान करने के उद्देश्य से उनके जिस स्वरूप की सर्वाधिक हृदयग्राही चित्रण किया गया है वह है उनका 'किशोरी' रूप ।

सीता के किशोरी रूप का निदर्शन उनकी चन्द्रखेलोपकरण लीला, अम्बा सुनयना के द्वारबन्द भवन में आगमन लीला, अनुलेपन लीला, भवन निमिलन लीला, मरकत भवन में भोजन लीला, बसन्त में अपनी सखियों के साथ उन्हें अपूर्व सुख प्रदान करने के निमित्त फाग लीला, चम्पक भवन में सखियों के साथ कन्दु लीला आदि ऐसे अनेक लीला सन्दर्भ हैं जिनमें किशोरी जानकी का अपूर्व रूप देखने को मिलता है ।

चन्द्रखेलोपकरण लीला के सन्दर्भ में अम्बा सुनयना की क्रोड में स्थित किशोरी जानकी की शिशु सुलभ जिज्ञासा कितनी हृदयाकर्षक है । 'किशोरी' अम्बा सुनयना से कहती है कि मां ! मैं सत्य कह रही हूं कि चन्द्र खिलौने को देखकर उससे खेलने की मेरी उत्कट इच्छा हो रही है अतएव उसे ला दें । मां ! बिना चन्द्र खिलौना प्राप्त किये मुझे किसी भी प्रकार का सन्तोष

१- द्रष्टव्य - जा० च०, ४०वां अध्याय

२- ,, - वही , ४२वां अध्याय

नहीं है । अतएव चन्द्र खिलौना मेरे लिये शीघ्र मंगवा दें । मां । यह चन्द्र खिलौना जब तक मुझे नहीं मिलेगा तब तक निश्चित रूप से मैं तुम्हारा स्तनपान भी नहीं करूंगी । अम्बा सुनयना सीता का हठ देखकर उनके सामने दर्पण रख करके उसमें प्रतिबिम्बित उनके ही मुखचन्द्र को चन्द्रमा बताकर कहती हैं कि लो यह चन्द्र खिलौना देख लो और हंस के लो[1] । चन्द्रमा को उस रूप में पाकर किशोरी जानकी की प्रसन्नता की सीमा नहीं रहती और वे अपना शिशु सुलभ हृदयोद्गार व्यक्त करने लगती हैं ।

किशोरी जानकी कहती हैं कि हे चन्द्र तुम्हारा व्रत बड़ा अच्छा है तुम बड़ी ही सुन्दर एवं दर्शनीय हो, तुम्हारा दर्शन करके मेरा हृदय निश्चय ही बड़ा प्रसन्न हो रहा है अब तुम मेरे साथ अनेक प्रकार के खेलों को[2] खेलते हुये मेरे पास सुखपूर्वक रहो, मैं तुम्हारा कभी भी निरादर नहीं करूंगी । हे कमल नयन मैं तेरे समान किसी को भी सुन्दर नहीं देखती । अतएव जिन्हें तुम्हारा दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त है वे धन्य हैं । अच्छा, अब भय और संकोच छोड़कर तुम सच सच बताओ कि तुम्हें मेरी बात स्वीकार है या नहीं । हे आनन्द मंदिर चन्द्र मैं तुमसे कितने आदरपूर्वक पूंछती हूं पर तू उत्तर देते से हुये प्रतीत होने पर भी क्यों स्पष्ट रूप से कुछ उत्तर नहीं दे रही हो । हे चन्द्र । तुम्हारी उपमा के लिये तीनों लोकों में कोई नहीं है तुम्हे देखकर मैं आश्चर्यचकित हूं । तुम आह्लाद के स्वरूप हो मुक्त होने पर भी मन को

१- बा० च०, ५३ । ६-१५

२- अहो परमरम्योऽसि दर्शनीयोऽसि सुव्रत ।
त्वां दृष्ट्वा खलु शीतांशो । हृदयं मे प्रसीदति ।।

क्रीडन्नत्र मया सार्कं क्रीडा बहुविधा: सुखम् ।
निरादरं त्वं मया जातु न भविष्यस्यनाकुल: ।।

— बा० च०, ५३ । २२, २४

हरण करने में समर्थ हो[१]।

इस प्रकार किशोरी जानकी को विविध विध संलाप करते हुये देखकर अम्बा,सुनयना पुन: कहती हैं कि बेटी तुम्हारा कल्याण हो, अब यन्त्र खिलौना मुझे दे दो । मैं इसे यत्नपूर्वक मंजूषा में रख देती हूं । पुन: जब तुम्हारी खेलने की इच्छा हो तो इसे ले लेना । लाओ अब इसे रख दें नहीं तो यह स्वभाव से भागने वाला है अतएव भाग जायेगा[२]।

इस प्रकार प्रिय वचन कहकर सुनयना किशोरी के हांथ से दर्पण को लेकर उसे श्रृंगार मंजूषा में रख देती हैं और चुम्बन पूर्वक किशोरी को बार-बार दुलारती हुयी दुग्धपान कराने लगती हैं ।

अम्बा सुकृता के द्वार बन्द भवन में किशोरी सीता के आगमन लीला कुछ कम कुतूहलवर्धक नहीं है । सुकृता अपने द्वारबन्द भवन में देवताओं,ज्योतिषियों, ऋषियों आदि द्वारा किशोरी जानकी को समस्त प्राणियों को सुख प्रदान करने वाली लोकोत्तर शक्तियों से सम्पन्न भगवती का अवतार सुनकर भक्ति पूर्वक बार-बार यह हार्दिक इच्छा व्यक्त कर रही थी कि किशोरी जानकी उनके इस एकान्त भवन में अपनी महिमा से स्वयं पधार कर उन्हें दर्शन दें और अपूर्व सुख प्रदान करें । यदि ऐसा हुआ तो उनका जीवन धन्य है अन्यथा सर्वथा व्यर्थ । सुकृता के भवन का प्रवेश द्वार सर्वथा बन्द था ऐसी स्थिति में उस बन्द द्वार भवन में किसी का भी प्रवेश सर्वथा असम्भव था । परन्तु अम्बा सुकृता की हार्दिक इच्छा का अभिज्ञान करके भगवती किशोरी अपनी महिमा से उनके उस बन्द द्वार भवन में सहसा उपस्थित होकर उन्हें अपने दर्शन से कृतार्थ करती हैं

ज्ञातव्य है कि अम्बा सुकृता के बन्द द्वारा भवन में किशोरी अपनी

१- बा० च०, पृ । २५-२७

२- वही, पृ । २८-३०

महिमा द्वारा कहां से कैसे उस एकान्त में अम्बा सुकृता के अङ्क में विराजमान होकर किशोरी जानकी ने जो अपूर्व सुख दिया वह उनकी कुछ अपूर्व ही लीला है[1]।

धनुर्लेपन लीला के सन्दर्भ में किशोरी जानकी की लीला कुछ कम आश्चर्यजनक नहीं है । भोजनालय में अति व्यस्त अम्बा सुनयना ने जब शिव धनुष की पूजा करने के लिये सखियों के सहित किशोरी जानकी को भेजा तो वे शिव धनुष के भवन में जाकर अत्यन्त श्रद्धा के साथ धनुष की भूमि को स्वच्छ करके उसे लीपती हैं और उसी अनुक्रम में एक हाथ से धनुष को भी उठा लेती हैं[2]। धनुष उठाकर लीपने की लीला को देखकर उर्मिला, माण्डवी श्रुति कीर्ति आदि सभी राजकुमारियां उन्हें साश्चर्य देखने लगती हैं । देव गण जयघोष के साथ दुन्दुभिनाद पूर्वक कल्पवृक्ष के पुष्पों की वर्षा करने लगते हैं[3]। किशोरी जानकी क्षणमात्र में धनुर्भूमि को लीप करके धनुष को सीधा रखकर के अपनी सखियों सहित वहां से चलकर भोजन करके खेलने के लिये प्रस्ताव रखती हैं । कहती हैं बहनों ! चल अम्बा सुनयना से उनकी आज्ञा पालन करने की अर्थात् धनुर्भूमि को लीपकर उसकी पूजा आदि करने की सूचना देकर तथा भोजनादि करके हम सभी आनन्दपूर्वक अपने भवन में खेलने के लिए शीघ्र चलें, यही मेरी उत्कट अभिलाषा है । अवधेय है कि जिस शिव धनुष को रावण जैसे कालजयी योद्धा भी दोनों हाथों से उठाने में सर्वथा असमर्थ रहे उसी पिनाक को किशोरी जानकी का एक ही हाथ से लीलापूर्वक सहज: ही बिना किसी आयास के उठाना और भूमि को लीपकर पुन: उसे ज्यों-का-त्यों रखना उनकी किसी लोकोत्तर लीला का निदर्शन है ।

१- जा० च०, पू६। ६,१२, १३

२- संमार्जनीभाजिनीर्विलय शुचि: संल्याप्य कलया परेश्वरी ।
उत्थाप्य सव्येन करोपशाखिना हृत्केषवक्षनुषोऽथ उर्वीम् ।।

- जा० च०, ६६ । २३

३- वही, ६६ । २४,२५

नयननिमीलन लीला के सन्दर्भ में जानकी की लीला कुतूहल गर्भ निर्भर ही है । जिस समय किशोरी जानकी अपनी सखियों के साथ आंख मिचौनी लीला कर रही थी उस समय कोई एक सखी आंख मुंद करके बैठ जाती थी और सभी सखियां यत्र-तत्र छिप जाती थी । आंख मुंद कर बैठने वाली सखी तदुपरान्त उठ करके पूर्वानुमानित स्थानों सखी को खोजने का यत्न करती, और उसे छूती है । यदि ऐसा करने में वह सफल हो जाती है तो जिसे उसने खोज करके छुआ है तो वह स्वयं आंख मुंद कर बैठती है और अन्य सखियां पूर्ववत छिपने आदि का यत्न करती हैं । नेत्र निमीलन लीला की इसी नियम के क्रमानुसार श्रुतिकीर्ति ने चन्द्रकला को चन्द्रकला ने उर्मिला को, उर्मिला ने हेमा को, हेमा ने माण्डवी को, माण्डवी ने प्रसादा को, प्रसादा ने पद्मगन्धा को, पद्मगन्धा ने सुभगा को, सुभगा ने लक्ष्मणा को और लक्ष्मणा ने चन्द्रकला को छुआ । अन्त में चन्द्रकला ने किशोरी जानकी से छिपने का प्रस्ताव किया कि हे सखि आप किसी भवन में जाकर छिपिये और मैं आपको खोजूं[१] । चन्द्रकला की प्रार्थना को सुनकर किशोरी जानकी उनसे तथास्तु कहकर एक अन्धकार युक्त भवन में प्रवेश की छिपने के लिये । परन्तु किशोरी जानकी के प्रवेश करते ही उस अन्धकार युक्त भवन में प्रकाश हो गया अतएव वे छिपने के लिये पुन: दूसरे अन्धकारमय गृह में प्रवेश कीं, किन्तु वहां भी पूर्ववत उनके प्रकाश से सारा भवन जगमगा उठा । चन्द्रकला आदि सभी सखियां आश्चर्य हंस पड़ी और कहीं कि आप छिपने का यत्न छोड़ दें, क्योंकि आपका प्रकाशमय यह रूप आपको स्वयं खोज करा देगा । भला कहीं अन्धकार में सूर्य छिप सकता है । सखियों द्वारा पराजित किशोरी जानकी उनके विनोदार्थ पुन: छिपने का वचन देकर चन्द्रकला आदि सखियों से बोली कि हे सखि चन्द्रकले । अब मय आप सबकी प्रसन्नता के लिए जो उचित है उसे करती हूं । आप अपनी आंखें मींचे, मैं कहीं छिपती हूं, खोजिये । ऐसा कहकर चन्द्रकला को आंख मींचते देखकर किशोरी जानकी कहीं खेल पूर्वक अन्तर्धान हो गयीं[२] । तदुपरान्त न केवल चन्द्रकला ही अपितु सभी सखियां उन्हें खोजने का

१- जा० च०, ६०। १६-१७

२- वही, ६०। ३१५ २१

अनेकश: यत्न की । सभी सम्भावित स्थानों पर खोजने पर भी जब उन्हें नहीं पा सकीं तो निराश होकर उनके लोकोत्तर गुणों की चर्चा करती हुयी सभी सखियां फूट फूट कर रोने लगी[1]। अपने विरह में प्रिय सखियों का सब आर्त विलाप सुनकर किशोरी जानकी प्रकट होती हैं[2] और अपने विरह जन्य उनके दु:ख का शमन कर उन्हें पूर्ववत् अनुपम सुख प्रदान करती हैं ।

मरकत भवन में किशोरी जानकी की भोजनलीला उनकी सखियों को अपूर्व सुख प्रदान करने वाली है । मरकत भवन में जब सभी सखियों को समस्त भोज्य सामग्री यथोचित रूप से वितरित कर दी जाती है और चन्द्रकला आदि सभी यूथेश्वरी सखियों के द्वारा प्रार्थना करने पर स्वयं किशोरी जानकी भी उनसे सेवित होती हुयी स्वयं भोजन पीठिका पर बैठ जाती हैं तो सभी सखियां उनके साथ भोजन करना प्रारम्भ कर देती हैं । सखियों को अपूर्व सुख प्रदान करने के उद्देश्य से किशोरी अपनी उन सखियों के भोजन पात्रों में अपने भोजन-थाल से विभिन्न व्यंजनों को वितरित करने लगती हैं जो उनके उच्छिष्ट भोजन पर अपनी जीविका चलाया करती हैं । उनके उच्छिष्ट व्यंजनों को बारम्बार चखती हुयी सखियां पुलकित होने लगीं और जयघोष के शब्दों के साथ कहने लगीं कि हे भुवनविमोहिनि ! किशोरी जानकी आपकी जय हो । इसी प्रकार वे सभी सखियां बारम्बार हृदयोद्गार व्यक्त करती हुयी परमानन्द का अनुभव करने लगी । भोजनोपरान्त चन्द्रकला आदि सभी सखियां किशोरी जानकी द्वारा छोड़े गये अन्न प्रसाद को परस्पर वितरित करके पुन: भोजन करने लगी, और उनके द्वारा छोड़े गये उच्छिष्ट जल को पीकर अपूर्व रसास्वाद का अनुभव कीं ।

१- जा० च०, पृ० १२२,२३

२- आविरभूत् तदा सकाऽवनिजा निमिवंशविभूषणाकीर्ति:
स्मेरसुधांशुनिभाननोरसात्मजी शुभाभाससुधि: ।
सुकमनीयकपोलयुगा सुरुचि: सुपदी शुभपरिभूष ! तासां
वीक्ष्य विनोदसुवेदनया परिवर्जितशोकपङ्क विमनसीनाम् ।।
- जा० च०, पृ० ३१

तत्पश्चात् उनका चरण स्पर्श कर चन्द्रकला, हेमा, उर्मिला, माण्डवी, क्षेमा, चारुशीला, लक्ष्मणा, सुभगा, श्रुतिकीर्ति आदि सभी पूर्ववत् उनकी सेवा में तत्पर हो गयीं[1] । इस प्रकार उनकी मोजन लीला भी कुछ कम आनन्दवर्धक नहीं ।

फाग लीला के सन्दर्भ में जब उससे सम्बन्धित अबीर गुलाल आदि सभी सामग्रियां सभी सखियों एवं लक्ष्मीनिधि आदि भ्राताओं को उपलब्ध हो गयीं तो चन्द्रकला आदि सभी बहने और लक्ष्मीनिधि आदि सभी सहोदय किशोरी जानकी की अध्यक्षता में फागलीला करना प्रारम्भ की । अनुजों एवं अनुजाओं को सुख प्रदान करने के लिए स्वयं किशोरी जानकी सबके साथ फाग खेलने लगी और बहुत देर तक सबको खेलाती और स्वयं खेलती रहीं । इस फाग लीला ने मिथिलेश राजकुमारी जानकी की दृष्टिमात्र से ही दसों दिशायें अबीर, गुलाल आदि से रंगबिरंगी होकर एक अपूर्व शोभा को बिखेरने लगी । उस समय बारम्बार हृदयगत उत्साह का वर्धन करती हुयी पुष्प वर्षा सहित देवताओं की जयकार की शब्द ध्वनि सुनायी पड़ने लगी । किशोरी जानकी के सहित सभी बहनें और भाई फाग लीला के अपूर्व सुख से अत्यधिक प्रसन्न दिखाई दे रहे हैं इसी बीच में अम्बा सुनयना के आदेश को सन्देश वाहिका सखी से सुनकर किशोरी जानकी सभी बहनों और भाइयों के साथ फाग लीला को विराम देकर विश्राम भवन में चली जाती हैं[2] ।

मिथिला के चम्पक भवन में किशोरी जानकी की कन्दुक लीला भी उनके विविध लीला प्रसंगों में मुख्य स्थान रखती है । चम्पक वन में जब सभी राजकुमारियां एवं राजकुमार किशोरी जानकी से सुखदायिका कोई अपूर्व लीला करने का निवेदन करते हैं तो वे कन्दुक लीला का प्रस्ताव रखती हुयी स्पष्ट कहती हैं कि हे मेरे भाइयों एवं बहनों यदि आप सब मेरी इच्छा को ही प्रधान

१- जा० म०, ७७ । २९-४५

२- वही, ७८ । ३०-३७

मानते हैं और मेरी सम्मति से कोई लीलोत्सव करना चाहते हैं तो इस समय इस चम्पक वन में हम सब मिलकर कन्दुकलीलोत्सव का ही आयोजन करें[१]। जानकी के प्रस्ताव को सुनकर निमिवंशीय चन्द्रकला आदि सभी राजकुमारियां तथा लक्ष्मीनिधि आदि सभी राजकुमार कन्दुकों को लेकर स्फटिक मणि के चबूतरे पर चढ़ गये और वहां उस क्रीडास्थल पर उनके दो दल बन गये। एक ओर तो उनकी सभी बहनें और दूसरी ओर उनके सभी भाई हो गये। किशोरी जानकी की आज्ञा से कन्दुक-लीला प्रारम्भ हुयी। संयोगवश लक्ष्मी निधि आदि सभी भाई पराजित हो गये। चन्द्रकला आदि सभी बहनें जीत गयीं और वे भाइयों का उपहास करने लगीं। इस पर लक्ष्मीनिधि ने जोकि अपने दल के प्रतिनिधि हैं, किशोरी जानकी से निवेदन किया कि हे कृपाशीले! अपने इन बहनों ने उपहासपूर्वक कन्दुलीला द्वारा हम सभी भाइयों को जीत लिया है। अपनी पराजय और उनकी विजय को देखकर मुझे सुख नहीं है अतएव आज आप हमारे दल में सम्मिलित होकर बहनों को पराजित करके हम लोगों को विजयी बनाकर हमारे मनोरथ को पूर्ण कीजिये[२]। अनुज लक्ष्मीनिधि के निवेदन को सुनकर उनके मनोरथ को पूर्ण करने के उद्देश्य से किशोरी जानकी ने पूर्ण आश्वासन देते हुये उनसे कहा कि हे अनुज! धैर्य रखिये तुम जैसा चाहते हो मैं वैसा ही करूंगी। जैसे इस समय जीतने के कारण ये बहनें तुम लोगों की हंसी उड़ा रही हैं उसी प्रकार इन्हें हरा देने पर तुम सब इनकी हंसी उड़ा लेना। तत्पश्चात् किशोरी जानकी स्वयं भाइयों के दल में सम्मिलित होकर उनके सन्तोष के लिये कन्दुलीला करना प्रारम्भ किया और अन्ततः चन्द्रकला आदि सभी बहनों को पराजित करवा दिया। बहनों को जीतकर लक्ष्मीनिधि आदि सभी भाई तालियां बजाते हुये बहनों की हंसी उड़ाने लगे और पुनः समूची सृष्टि को मोहित करने

१- अनुज संकल्पेतदा प्रातरवधानुज्ञा च इदं मम शोभनं वाञ्छितमेवहु।
कुरुत संमिल्य साम्प्रतंकन्दुकलीलोत्सवमोषम् मतं यदि रोचते वो महोदयाः।

- बा० च०, अ० १२४

२- वही, अ० १२५, २०

वाली मुरली को बजाती हुयी किशोरी जानकी के साथ सभी माई बहन नृत्य करने लगे ।[१]

इस प्रकार किशोरी जानकी की कन्दुक लीला देखकर आकाश में स्थित सभी देवांगनायें अपने को धिक्कारती हुयी निमिवंशीय राजकुमारियों की प्रशंसा करने लगीं ।

सर्वेश्वरी सीता के विविध रूपों में उनका राम वल्लभा रूप रामकथा के मर्मज्ञ किसी भी मनीषी से छिपा नहीं है । सर्वेश्वरी सीता और सर्वेश्वर राम एक ही प्रत्यक् चेतना के दो साकार विग्रह मात्र हैं । एक ही दीप की जाज्वल्यमान दो प्रकाश शिखायें हैं । एक शक्ति है तो दूसरा उसका आधारभूत शक्तिमान । यदि शक्ति स्वरूपा सर्वेश्वरी सीता के बिना राघव सर्वथा शक्ति-हीन कहे जा सकते हैं तो दूसरी ओर आधार भूत राघव के बिना स्वयं जानकी भी निराधार है । आधार और आधेय के परस्पर सामन्जस्य के औचित्य के रूप में इनकी समष्टि का समग्र अभिधान है `सीताराम` ।

जानकी चरितामृतम महाकाव्य के अन्तर्गत सर्वेश्वरी सीता का राम की दयिता होने का स्वरूप यों तो साकेत धाम से ही अविच्छिन्न रूप में उपलब्ध होने लगता है किन्तु भूतल पर व्यावहारिक रूप से इनके इस स्वरूप की अवधारणा मिथिलेश्वर सीरध्वज जनक के यहां अवतार लेने के पश्चात् प्रत्यक्षत: दृष्टिगोचर होना प्रारम्भ होता है ।

जानकी चरितामृतम् महाकाव्य में ऐसे अनेक स्थल भरे पड़े हैं जहां जानकी और महाराघव राम के हृदय संवाद के चरमतम रूप अपनी चरम सीमा में उपलब्ध होते हैं । जानकी का सर्वेश्वर राम के साथ जो जन्मान्तरागत शाश्वत प्रेमानुबन्धन है वह उनकी प्रत्येक लीला में किसी न किसी रूप में अभि-व्यंजित होता हुआ सहृदयों के हृदय में व्यन्जना व्यापार के माध्यम से अनुभूत होता रहता है ।

१- जा० च०, ८० । ३२-३८

जानकी चरितामृतम् के ऐसे विविध सन्दर्भों में सर्वेश्वरी जानकी का जो रामवल्लभा रूप प्रत्यक्षतया उभर कर आया है उनमें कुछ ऐसे महत्वपूर्ण सन्दर्भ हैं जो सहृदयों के हृदय को सहजत: आकृष्ट करने में सर्वथा समर्थ है । ५६ वें अध्याय में विवाह के पूर्व अयोध्या से राम को मिथिला के कंचन भवन में लाने के लिये चन्द्रकला से जानकी का निवेदन तथा चन्द्रकला के द्वारा तदर्थ अपनी सखियों को आदेश, ५६ वें अध्याय में सखियों द्वारा गुप्त रूप से सोते हुये महाराघव राम को मिथिला के कंचन भवन में लाया जाना, ६२ वें अध्याय में रसिक शेखर राघवेन्द्र रामभद्र और जानकी की जलविहार लीला एवं नवका-विहार लीला, ६३ वें अध्याय में चन्द्रकला आदि सभी सखियों को सौख्य प्रदान करने हेतु रामवल्लभा जानकी की रसिकेश्वर राम से प्रार्थना, ६१ वें अध्याय में गुरुवर्य्य वसिष्ठ के पूजा के निमित्त पुष्पचयनार्थ अनुज लक्ष्मण के साथ राघव राम का जनक की पुष्पवाटिका में जाना, ६४-वें में धनुर्भंग और तदनन्तर सर्वेश्वर रसिकेश्वर राम को गले में जनकात्मजा जानकी द्वारा वरमाला समर्पण, ६८ वें अध्याय में सीताराम विवाह, ६६ वें अध्याय में कोहवर (कुहवर) लीला, १००वें अध्याय में कोहवर में विलास आदि ऐसे अनेक सन्दर्भ हैं जहां जानकी के रामवल्लभा रूप का निदर्शन हृदयावर्जक रूप में उपन्यस्त किया गया है ।

सीता के उपर्युक्त सभी रूपों को व्याप्त करके उभर उठा हुआ जो सर्वोपरि रूप है वह है उनका सर्वेश्वरी रूप । उनके इस रूप की उपस्थापना जानकी चरितामृतम् के विविध सन्दर्भों में उपलब्ध होती है । चौथे अध्याय में श्रीसीतामंत्रराज का अर्थ वर्णन, पांचवें अध्याय में मुक्त जीवों की सेवा का वर्णन, सातवें अध्याय में जीवों के कल्याणार्थ साकेत धाम में सीता एवं राम का संवाद, २३ वें अध्याय में जीवा सखी का-उद्धार, २६वें अध्याय में स्नेहधरा का अपने भवन में अप्रत्याशित रूप से सीता और राम की झांकी का दर्शन, ३७ तथा ३८ वें अध्याय में देवर्षि नारद द्वारा किशोरी जानकी के चरण चिह्नों एवं हस्त चिह्नों का वर्णन तथा सर्वेश्वरी रूप में उनकी स्तुति, ३६ वें अध्याय में सर्वेश्वरी जानकी के दर्शन के निमित्त महादेव आशुतोष का तान्त्रिक के वेश में महाराज जनक के राजप्रासाद में आगमन एवं जानकी का दर्शन कर

सर्वेश्वरी के रूप में स्तवन, ४० वें अध्याय में ब्रह्मपुत्र सनकादिकों का, ५२ वें अध्याय में ब्राह्मण और ब्राह्मणी के वेश में विष्णु और लक्ष्मी का, ५४ वें अध्याय में नायिका के रूप में वीणावादिनी भगवती सरस्वती का, ५५ वें अध्याय में स्वर्णकारिणी के वेश में भगवती पार्वती का क्रमशः किशोरी जानकी के दर्शन के लिये विविध व्याज से आगमन और सर्वेश्वरी के रूप में दर्शनोपरान्त उनकी स्तुति करना, पुनः ५७ वें अध्याय में ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि सभी देवों द्वारा समवेत स्वर में सर्वेश्वरी किशोरी की स्तुति करना, ६६ वें अध्याय में जानकी के भूमि लेपन लीला के प्रसंग में शिव-कोदण्ड को लीलापूर्वक उठा लेना, नेत्र निमीलन लीला के सन्दर्भ में किशोरी जानकी के अन्तर्धान लीला, और सखियों के आर्त विलाप पर उनका पुनः प्राकट्य, ८० वें अध्याय में मुरलीवादन लीला के प्रसंग में मुरली सरोवर की उत्पत्ति, ८१ वें अध्याय में इन्द्राणी शची का किशोरी जानकी के दर्शनार्थ आगमन आदि ऐसे अनेक स्थल हैं जिनमें किशोरी जानकी का सर्वेश्वरी रूप पदे-पदे पाठक को परिलक्षित होता है ।

निष्कर्षतः जानकी चरितामृतम् महाकाव्य में जानकी के अयोनिजा, जानकी, किशोरी, रामवल्लभा, सर्वेश्वरी आदि विविध स्वरूपों की विविध रूपों की हृदयग्राही उपस्थापना चरम रूप में करायी गयी है जो अन्य किसी भी रामकथाश्रित महाकाव्य में सर्वथा दुर्लभ है । पुनश्च इस महाकाव्य में अनन्त ब्रह्माण्ड नियामिका नायिका जानकी के जिस सर्वेश्वरी रूप की स्थापना की गयी है वह किसी भक्तप्रवर कवि की हृदयभूमि के उर्वर धरातल पर उगे भक्ति रसप्लावित भावों के माध्यम से ही सम्भव हो सकती है । इस दृष्टि से भक्त महाकवि राम स्नेहिदास निश्चित रूप से वधाईन के पात्र हैं ।

चन्द्रकला -

जानकी चरितामृतम के नारी पात्रों में चन्द्रकला का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। चन्द्रकला सीरध्वज जनक के अनुज चन्द्रभानु की दुहिता है, साथ ही साथ सर्वेश्वरी किशोरी जानकी की अनुजा भी। परन्तु आगे चलकर यही चन्द्रकला किशोरी जानकी के भगिनी होने के साथ ही साथ उनकी प्रधान यूथेश्वरी बन जाती है। जानकी चरितामृतम् में चन्द्रकला कहीं आदर्श यूथेश्वरी के रूप में ~~चन्द्रकला कहीं आदर्श यूथेश्वरी के रूप में~~ तो कहीं सहजन्मा भगिनी के साथ-साथ आदर्श सखी के रूप में, कहीं सम्भाषण कला चतुर वाक्पटु ~~के रूप में~~ - आदि विभिन्न रूपों में अपनी भूमिका का निर्वाह करती हुयी परिलक्षित होती हैं।

किशोरी जानकी की ये सभी अनुजायें जो निमिवंश में उत्पन्न हुयी हैं, प्रारम्भ में उनकी भगिनी के रूप में चित्रित की गयी हैं। परन्तु अवस्था के विकास के क्रम में जब ये शनैः शनैः यौवन में पदार्पण करने लगती हैं तो भगिनी के साथ-साथ सखी-रूप में भी भूमिका का निर्वाह करने लगती हैं और पुनः उन्हीं में से कुछ ऐसी प्रसिद्ध श्रेष्ठ सखियां यूथेश्वरी का भी पद प्राप्तकर लेती हैं। किशोरी जानकी की कुल आठ यूथेश्वरियां हैं, जिनमें चन्द्रकला प्रधान यूथेश्वरी है। इसके पश्चात् चारुशीला का स्थान आता है। अन्य यूथेश्वरियों में लक्ष्मणा, हेमा, क्षेमा, वरारोहा, पद्मगंधा और सुभगा है।

महाकाव्य के ३६ वें अध्याय में चन्द्रकला के आदर्श यूथेश्वरी रूप से परितुष्ट होकर सर्वेश्वरी सीता एवं सर्वेश्वर राम ने उन्हें सर्वेश्वरी पद भी प्रदान किया है। चन्द्रकला को सर्वेश्वरी पद प्राप्त करने के सन्दर्भ में एक अन्य उपाख्यान भी इसी अध्याय में उपलब्ध होता है जिसमें यह बताया गया है कि जैसे भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न तीनों भ्राताओं से युक्त सर्वेश्वर राम पूर्ण परात्पर ब्रह्म कहलाते हैं वैसे ही चन्द्रकला, लक्ष्मणा एवं सुभगा तीनों अनुजाओं से युक्त सर्वेश्वरी जानकी पूर्णपरात्पर ब्रह्म कहलाती हैं[१]। सीता एवं राम का सम्मिलित स्वरूप ही पूर्ण

१- यथा भरतशत्रुघ्नलक्ष्मणैर्भ्रातृभिस्त्रिभिः।
पूर्णं परात्परं ब्रह्म श्रीरामः कथ्यते बुधैः॥
लक्ष्मणासुभगाचन्द्रकलाभिः स्वसृभिस्त्रिभिः।
पूर्णं परात्परं ब्रह्म श्रीसीताऽपि तथोच्यते॥- जा० च०, ३६[illegible]

परात्पर ब्रह्म है । उक्त विशेषणों से युक्त सीताराम युगल गुणातीत, निराकार निरीह, सच्चिदात्मक, अखण्ड नित्य, चैतन्य स्वरूप, निराधार, निरंजनपूर्ण परात्पर ब्रह्म है[1]। साकेत धाम में सीताराम के युगल मंगलमय विग्रहवान ब्रह्म ने अपने आश्रितों को आनन्द की सिद्धि प्रदान करने के निमित्त एक दिव्य स्वरूपा सर्वांग सुन्दरी सखी को उत्पन्न किया[2]। पुन: उस सनातन परब्रह्म ने अपने दोनों रूपों के द्वारा उसका नामकरण करना प्रारम्भ किया । उस दशा में पूर्ण परात्पर ब्रह्म रामचन्द्र ने अपने नाम का अन्तिम पद चन्द्र का उच्चारण किया और किशोरी सीता ने उसे अपनी कला स्वरूपा मानकर द्वितीय पद 'कला' का उच्चारण किया । पुन: उस सखी में, किशोरी सीता ने अपनी शक्ति रूपा कला को निवेशित किया और सर्वेश्वर राम ने अपने आह्लाद संज्ञक गुण को[3]। तदनन्तर वे दोनों यह सखी हमारी है, नहीं यह तो हमारी है, इस प्रकार चन्द्रकला के सम्बन्ध में कहने लगे । इस पर चन्द्रकला ने निष्पक्ष रूप में निवेदन किया कि हे युगलेश्वर मैं तो निष्पक्षत: आप दोनों की ही आज्ञानुवर्तिनी, सेवापरायणा सखी हूं[4], दासी हूं, किंकरी हूं । क्योंकि मैं आप दोनों के ही अंश से उत्पन्न हुयी हूं ।

१- बा० च०, ३६।१०,११

२- स्वाश्रितानन्दसिद्ध्यर्थं विशेषेण निजांशत: ।
दिव्यरूपां सखीमेकां जनयामास सुन्दरीम् ॥
- बा० च०, ३६।१२

३- आदौ श्रीरामचन्द्रोऽसौ स्वनाम्नोऽन्त्यं पदं जगौ ।
द्वितीयं मैथिली प्राह कलेति पदमुत्तमम् ॥
पुनर्निवेशयामास स्वकलां शक्तिरूपिणीम् ।
तस्यामेवरूपायां रामो ह्लादगुणं च स: ॥
- वही, ३६।१४, १५

४- वही, ३६, १७, १८

इसके पश्चात् चन्द्रकला ने सीता एवं राम के परितोष के लिये लक्ष्मणा और सुभगा नामक दो अन्य सखियों को अपनी महिमा से उत्पन्न किया[1]। पुन: लक्ष्मणा ने चारुशीला को उत्पन्न किया और सुभगा ने उर्मिला को। और इसी परम्परा में एक-एक से कोटिश: सखियां उत्पन्न हुयीं[2]। चन्द्रकला की महिमा एवं भक्ति से परितुष्ट होकर सीता एवं राम दोनों ने उसे दिव्य वरदान प्रदान किया कि हे चन्द्रकले, चन्द्रा, चन्द्रकला, ज्येष्ठा, पूज्या, श्रेया इष्टदा, वरा, सर्वेश्वरी, ध्यानगम्या, आचार्या और देशिका तुम्हारे इन द्वादश नामों को जो नित्य त्रिकालिक संध्याओं में अथवा एक संध्या में पढ़ेंगे वे परमपद को प्राप्त होंगे[3]। यही नहीं हम दोनों आज से तुम्हें समस्त सखियों का सर्वेश्वरी पद प्रदान करते हैं, कृपया इसे स्वीकार करें। क्योंकि तुम्हीं समस्त सखियों का मूल कारण हो अतएव हम दोनों द्वारा प्रदत्त सर्वेश्वरी पद को अवश्य स्वीकार करो[4]।

चन्द्रकला के आदर्श सखी रूप का निदर्शन महाकाव्य में सर्वत्र मिलता है। उदाहरणार्थ पूर्व अध्याय में सखियों के साथ रासलीला करती हुयी किशोरी जानकी-जब सर्वेश्वर राम के बिना अपनी रास लीला को अधूरी मानकर

१- तयोर्वदनसम्भूता लक्ष्मणेति प्रभाषिता ।
वामांगात्सुसम्भूता सुभगेति प्रकीर्तिता ॥
- जा० च०, ३६।२१

२- तस्यास्त्वेकैकशोत्पन्ना वयस्यानां तदा तयो: ।
चारुशीलोर्मिलादीनां भाविनीनां च कोटिश: ॥
- वही, ३६।२२

३- चन्द्रा चन्द्रकला ज्येष्ठा पूज्या श्रेयेष्टदा वरा ।
सर्वेश्वरी ध्यानगम्या आचार्या च देशिका ॥
द्वादशैतानि नामानि तव नित्यं पठन्ति ये ।
त्रिसन्ध्यमेकसन्ध्यं वा यान्ति ते परमं पदम् ॥ - जा०च०, ३६।२४,२५

४- सखीनामपि सर्वासां प्रधानाङ्गीकुरु ।
आवयोरादिदानीं मुदा सर्वेश्वरीपदम् ॥
अतस्त्वमेव सर्वासां कारणं प्रथमं स्मृता ।
अङ्गीकुरुष्वावयोर्दत्तं सर्वेश्वरीपदम् ॥ - जा० च०, ३६।२७,२८

चिंतित हो जाती हैं तो उस समय चन्द्रकला जानकी की चिन्ता का रहस्य समझने के लिये स्पष्टत: निवेदन करती हैं कि हे सर्वेश्वरी ! आप क्या सोच रही हैं ? किसलिये चिंतित एवं खिन्न हैं । आप बतावें तो । आपको निश्चिन्त करने के लिये जो कार्य दु:साध्य होगा उसे भी आपकी कृपा से मैं अवश्य करूंगी । आप नि:संकोच अपनी चिन्ता का कारण मुझसे स्पष्ट बतावें तो सही । इसके लिये आपको मेरे प्राणों की शपथ है[1] ।

पुन: जब उसे यह समझ में आ जाता है कि सर्वेश्वरी जानकी की चिन्ता का कारण सर्वेश्वर श्रीमन्त राम की अनुपस्थिति ही है तो चन्द्रकला उन्हें आश्वासन देते हुये यह कहती है कि हे सर्वेश्वर! आपके चरण कमलों की सौगन्ध है मैं आपके हृदयवल्लभ को किसी न किसी प्रकार अवश्य लाऊंगी[2] ।

इस प्रकार किशोरी जानकी को आश्वासन देकर चन्द्रकला अपनी सखियों को अयोध्या से राम को गुप्त रूप से लाने के लिये शीघ्र आदेश देती हैं और कहती हैं कि वे जहां[3] कहीं भी, जिस किसी स्थिति में हों उसी अवस्था में उन्हें अतिशीघ्र ले आओ ।

१- किं शोचसि कुतश्च त्वं कथं च विमना ह्यसि ।
असाध्यमपि यत्कार्यं करिष्ये त्वत्प्रसादत: ।।
ब्रूहि मे कृपया सर्वं यथा ते शोकसङ्गम: ।
शापिताऽसि मम प्राणैराह्लादिनि ! प्रेमवारिधे ! ।।
- जा० च०, पृ० । २६, २७

२- वही, पृ० । ३२

३- वही, पृ० । ३४, ३५

चन्द्रकला के आदेशानुसार सभी सखियां अयोध्या जाती हैं और वहां प्रमोद वन में सोते हुये राम को प्रमोद वन सहित अपनी महिमा से मिथिला में ले आती हैं ।

चन्द्रकला सखियों द्वारा राम के आने की सूचना पाकर प्रसन्नमना किशोरी जानकी के पास जाकर उनके हृदय वल्लभ राम के आगमन की शुभ सूचना निवेदित करती है और उन दोनों का परस्पर मिलन करा देती है । और इसी सन्दर्भ में किशोरी जानकी चन्द्रकला के आदर्श सखीत्व की प्रशंसा करती हैं । उन्हें दिव्य वरदान प्रदान करती है और कहती हैं कि हे शोभने सखि चन्द्रकले मैं तुम्हें यह वरदान देती हूं कि तुम स्वभावत: सदैव प्रीतिकरा रहोगी । मेरी जितनी सखियां हैं उन सभी पर मेरे ही समान तुम्हारा भी पूर्ण अधिकार रहेगा । जिस पर तुम्हारी कृपा होगी वही जीव मेरे साकेत धाम को प्राप्त होगा चाहे वह योगी हो अथवा अयोगी[1] ।

चन्द्रकला की वाक्पटुता का निदर्शन तो ४० वें अध्याय में उस समय देखने को मिलता है जब रामचन्द्र और चन्द्रकला का प्रमोदवन में आश्चर्यमय निर्भर संवाद होता है । अयोध्या से प्रमोदवन सहित मिथिला में लाये गये सर्वेश्वर महाराघव राम को अभी यह ज्ञात नहीं हो पाया कि चन्द्र कला ने उन्हें अपने सखियों के माध्यम से छल पूर्वक मिथिला में लाने का षड्यन्त्र किया है । इसीलिये जब वह राम के पास पहुंचती है तो राम उसका परिचय पूंछते हैं कि तुम कौन हो[2] ? प्रति प्रश्न में चन्द्रकला भी जानती हुयी पूंछती है कि आप कौन हैं कहां से आये हैं इत्यादि । प्रिय सहेला, आप तो राजकुमार जैसे प्रतीत हो रहे हैं परन्तु दूसरे राष्ट्र मिथिला के विहार वन में आप बिना अनुचरों के कैसे चले आये[3] । इस पर राम साश्चर्य जब उसे अपने अयोध्यापुरी में स्थित प्रमोद वन बताते हैं और कहते हैं कि सुन्दरि ! तुम कैसे इसे मिथिला कह रही हो और यदि दूसरे राजा के विहार वन में पदार्पण करने के मिथ्या रोष को जताने वाली आप

१- चा० च०, पृ० ।१९-२१

२- काऽसि त्वं स्वाकृत बाले कस्मात्कुलनिवासिनी ।
कुत्रत्या कस्मात् हि रस्वीयाभिसारिका ॥ -चा०च०, ४०। ६,१०

३- वही, ४० ।११

कौन हैं ?[1] इस पर चन्द्रकला उत्तर देती है कि श्रीमन् मैं तो मिथिलापुर निवासिनी हूं । राम पुन: प्रश्न करते हैं कि फिर यहां क्यों आयी हो ? चन्द्रकला उत्तर देती है अपने कंचन वन को देखने के लिये । पुन: प्रश्न करती है कि आप कौन हैं । इस पर राम अपने को दाशरथी राम बताते हैं । चन्द्रकला पुन: पूंछती है कि फिर आप इस समय[2] कहां पर हैं । राम उत्त र देते हैं कि अपनी अयोध्या में स्थित प्रमोदवन में । राम पुन: पूंछते हैं कि सखि तुम इस समय कहां विराजमान हो । उत्तर में चन्द्रकला कहती है अपने कंचन वन में । राम साश्चर्य पुन: पूंछते हैं कि फिर यह नगर किसका है इसका नाम क्या है ? चन्द्रकला उत्तर देती है कि यह नगर मेरे पिता[3] जनक का है और मिथिला इसका नाम है, आप सम्प्रति मिथिला में अवस्थित हैं । रामचन्द्रकला[4] को मिथ्यावादिनी कहकर उससे कहते हैं कि तुम मेरे प्रमोदवन से निकल जाओ । राम के आक्रोशपूर्ण वचनों को सुनकर चन्द्रकला मृदुपरिहास पूर्वक उनसे कहती है कि हे नवल लाल चोर के समान हमारे विहार वन में आकर ऐंठ तो आप खोल रहे हैं फिर अपनी प्रभुता भी दिखा[5] रहे हैं । यदि ऐसा करेंगे तो उपहास के अतिरिक्त आपको कुछ मिलेगा नहीं । कौशलेन्द्र कुमार राम चन्द्रकला के चोर पद के [illegible] को सुनकर

१- सुमुखि ! मे किमिदं परिकल्प्यते वत समुन्मदयैव भवत्स्वया ।
क्व इयं हि पुरी मम क्वापि वनमिदं च प्रमोदयुतं मम ।।

— चा० च०, ६०।१३

२- त्वमसि का ? मिथिलापुरवासिनी सखि ! किमर्थमिहास्य विहरागता ।
त्वमसि क: ? प्रिय ! पङ्क्तिरथात्मज: क्व नु ? प्रमोदवने निज आस्थित: ।।

— वही, ६०।१४

३- त्वमसि कुत्र ? वने कनकाह्वये नगरमस्ति नु कस्य ? पितुर्मम ।
नगरनाम च किं मिथिलाभिधं तदहमस्मि च कुत्र ? पुरे मम ।।

— वही, ६० ।१५

४- अयि सुमुखि ! त्वमसत्यमसीदृशं वदसि हन्त समेत्य पुरं मम ।
व्रजसि नापरधाममिवानृतं व्रज यथेष्टमितो विपिनान्मम ।। -वही, ६०।१६

५- नवललाल ! मुधा त्वमसीदृशं मनासि चौरवदेत्य वनं मम ।
तदुचितं न करोषि नृपात्मज ! प्रभुतया परिहासमवाप्स्यसि ।।-वही,६०।१७

तिलमिला उठते हैं और कहते हैं कि तुमने मुझे चोर कहने की धृष्टता की है। तुम यहां से शीघ्र चली जाओ अन्यथा तुम्हें दण्ड मिलेगा।[1]

चन्द्रकला राम के प्रश्नों का उत्तर देती हुयी कहती है कि दण्ड देने का अधिकार केवल राजा को ही होता है तो क्या आप मेरे राजा हैं और मैं आपके अध्योध्यापुरी में स्थित प्रमोदवन में हूं। यदि ऐसा है तो आप शीघ्र अपनी अयोध्या का दर्शन कराइये, किन्तु हे प्यारे ध्यान रखिये यदि यह आपकी पुरी अयोध्या सिद्ध हुयी तो मैं आजीवन आपकी दासी रहूंगी अन्यथा आपको आजीवन मेरे अधीन रहना पड़ेगा।[2]

इस परम्परा में अन्तिम विजय यथार्थ रूप में चन्द्रकला की हो जाती है और राम लज्जित होकर चन्द्रकला की अधीनता स्वीकार करते हैं। पुन: जब चन्द्रकला उन्हें सारा रहस्य बताती है तो राम, चन्द्रकला की वाक्पटुता से परितुष्ट होकर उसे अनेक वरदान देते हैं।

और इसी क्रम में वे स्वयं को सदैव चन्द्रकला की भक्ति के अधीन रहने

१- मुमुक्षि चोरपदेन तु मां कथं त्वमभिभूतयसि तदनर्थकृत्।
ब्रज मया न तु वे परिखण्डयसे इयविनयं न सहे तवत: परम्॥
- जा० च०, ६० । ६८

२- त्वमसि किं मम देवनराधिपो ह्यनुचितं कथितं प्रिय ! मन्यसे।
यदि वनं खलु वास्ति तवैव तन्निजपुरीमनुदर्शय मे द्रुतम्॥
अपि तवैव पुरी प्रिय ! चेद्भवेदनुचरामि सदा तव दास्यताम्।
मम पुरी नृपमन्यत ! चेत्सदा मम वशे भवितव्यमिह त्वया॥
- वही, ६६, ७०

का वचन भी देते हैं[1]।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जानकी चारितामृतम् की चन्द्रकला में आदर्श यूथेश्वरी, आदर्श सखी, आदर्श भगिनी, सम्भाषण कला दक्षा सहचरी आदि अनेक रूपों का एकत्र अद्भुत संगम है जो उसके व्यक्तित्व को महिमान्वित करने में अपूर्व योगदान करते हैं ।

--

१- जा० च०, ६० । ३२-३५

स्नेहधरा -

जानकी चरितामृतम् की नारी पात्रों में स्नेहधरा भी एक महत्वपूर्ण पात्र है । इस महाकाव्य में स्नेहधरा के व्यक्तित्व को उभारने के लिये महाकवि ने उसे दो ही रूपों में चित्रित करने का प्रयत्न किया है । जिनमें प्रथम रूप उसका प्रेमिका का है और दूसरा भक्ता का । स्नेहधरा किशोरी जानकी के पितृव्य यशोध्वज की कन्या है । इसी कारण वह जानकी की अनुजा भी है । राम जानकी परिणय के पश्चात् जब सभी सखियाँ अयोध्या में आ जाती है तो उस समय स्नेहधरा की राम के प्रति अन्तरंग आसक्ति हो जाती है और वह उसी आसक्त दृष्टि से राम की सेवा, वन्दना आदि करती है और उनके वियोग के अनुताप का भी सहन करती है ।

इन सभी तथ्यों का सम्यक् विवेचन दसवें अध्याय में सविस्तर किया गया है ।

पुनश्च जब सुरेश्वरी पद्मगंधा को स्नेहधरा की आसक्ति का अनुमान होता है तो वह स्नेहधरा को उपदेश देती है और इसी सन्दर्भ में यह बताती है कि तुम्हारी यह आसक्ति सर्वेश्वरी जानकी के लिये अहितकर है । तुम सर्वेश्वर राम और जानकी को सामान्य नर-नारी न समझकर पूर्ण परात्पर ब्रह्म का अवतार ही समझो और तद्वत भक्तिपूर्वक उनकी परिचर्या करो । इससे तुम्हें अपूर्व शान्ति उपलब्ध होगी । इन सभी तथ्यों का वर्णन महाकाव्य के दसवें तथा ग्यारहवें अध्याय में किया गया है । पुनश्च इसी अध्याय में यह भी बताया गया है कि पद्मगंधा के उपदेश से स्नेहधरा की आसक्ति परिवर्तित होकर माधुर्य कोटि की भक्ति में आ जाती है ।

स्नेहधरा पद्मगंधा से राम एवं सीता दोनों को अपने भवन में बुलाने का उपाय पूछती है । पद्मगन्धा इस सन्दर्भ में उसे चन्द्रकला के पास भेजती है । चन्द्रकला उसकी भक्ति को देखकर उसे सर्वेश्वरी जानकी तथा सर्वेश्वर राम को अपने घर ले जाने का उपाय बताती है और साथ ही साथ यह भी निर्देश देती है कि किशोरी जानकी और सर्वेश्वर राम अपने सखियों एवं परिजनों के साथ तुम्हारे

यहां आयेंगे अत: इनके यथोचित स्वागत की व्यवस्था भी कर लेनी चाहिये ।

स्नेहपरा प्रधान यूथेश्वरी चन्द्रकला के कथानुसार सम्पूर्ण व्यवस्था करके पद्मगन्धा और चन्द्रकला को दिखाती है, दोनों उसकी व्यवस्था से सन्तुष्ट होकर उसे सफल मनोरथ होने का पूर्ण आश्वासन देती है जिससे स्नेहपरा को अपूर्व आनन्द की अनुभूति होती है और इसी क्रम में उसे परात्पर ब्रह्म सीताराम की कृपा का अनुभव भी होता है । इन सभी तथ्यों का वर्णन १२ वे अध्याय में स्पष्टत: किया गया है ।

१३वें अध्याय में स्नेहपरा की स्तुति से परितुष्ट होकर जानकी और राम दोनों उसके भवन में पदार्पण करने का वचन देते हैं । वे १४ वें एवं १५ वें अध्याय में स्नेहपरा के ऐसे अपूर्व प्रेमालाप का वर्णन मिलता है जिसमें वह सीताराम को अपने भवन में पदार्पण करने की प्रसन्नता में प्रेमोन्माद के चरम शिखर पर पहुंच जाती है ।

१६वें एवं १७वें अध्यायों में स्नेहपरा के भवन में राम और सीता के आगमन, उनके षोडशोपचार पूजन, भोजन पुन: स्नेहपरा द्वारा अपनी व त्रुटियों के लिये क्षमायाचना का सविस्तार वर्णन किया गया है ।

१८ वें अध्याय में पर्यङ्क शयन की झांकी तथा स्नेहपरा द्वारा उनका पुष्प शृङ्गार करना आदि वर्णित किया गया है । इसी अध्याय में जानकी एवं राम दोनों ने उसे उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर उसे अनन्य साहचर्य का वर भी प्रदान किया है ।

इस प्रकार स्नेहपरा की प्रारम्भिक आसक्ति अन्तत: माधुर्य भक्ति में परिणत होकर उसके व्यक्तित्व को अलौकिक दीप्ति की महिमा से मण्डित कर देती है जिसके फलस्वरूप वह सर्वेश्वरी जानकी एवं सर्वेश्वर राम की परम सखी बन जाती है और परमपद की अधिकारिणी हो जाती है ।

—

सुनयना -

जानकी चरितामृतम् के नारी पात्रों में मिथिलेश्वर राजमहिषी सुनयना का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है । जानकी चरितामृतम् महाकाव्य में सुनयना के व्यक्तित्व को उभारने में जिन अनेक विशेषताओं का योगदान रहा है उनमें उनका आदर्श पत्नीत्व, आदर्श मातृत्व, वात्सल्य, देवपरायणत्वादि के विशेष स्थान हैं ।

राजमहिषी सुनयना मिथिलेश, सीरध्वज जनक की धर्मपत्नी के रूप में इस महाकाव्य के अन्तर्गत आद्यन्त उपस्थित होती हुयी परिलक्षित होती हैं । इनके आदर्श पत्नीत्व की झलक यों तो सम्पूर्ण महाकाव्य में बिखरी पड़ी है किन्तु फिर उनमें कुछ ऐसे स्थल हैं जो विशेष रूप से उनके आदर्श पत्नीत्व का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं । उदाहरणार्थ - ३२ वें अध्याय में जब मिथिलेश्वर सीरध्वज जनक भगवान आशुतोष के स्वप्नादेशानुपालन में पुत्रिष्ट यज्ञ प्रारम्भ करने के उपक्रम में समस्त ऋषियों का आवाहन के पश्चात् जब यज्ञ दिक्षा में दीक्षित होने का प्रश्न उठता है उस समय राजमहिषी सुनयना भी सीरध्वज जनक के साथ सन्नान्त तथा चलने वाले पुत्रिष्ट यज्ञ में एक साथ दीक्षा ग्रहण करती हैं[1]। कुलगुरु शतानन्द जनक और सुनयना को एक साथ यज्ञ दीक्षा में दीक्षित करते हुये उन्हें यजमान के आसन पर आहुति करने के निमित्त आसन ग्रहण कराते हैं ।

राजमहिषी सुनयना प्रतिदिन यज्ञोचित नियमानुसार दैनिक कृत्यों को पूर्ण करके मिथिलेश्वर जनक के साथ नित्य नियमित रूप से यज्ञवेदी पर बैठती थीं और श्री सीतामन्त्रराज का मानसिक जाप करती हुयीं आहुति में जनक का यथोचित साथ देती थीं । सम्वत्सर पर्यन्त चलने वाले पुत्रिष्ट यज्ञ में प्रसन्नतापूर्वक आदर्श पत्नी के धर्म का निर्वाह करती है[2]।

१- जा० च०, ३२। ८-१०

२- वही , ३२।२६-३१

महाकाव्य के ७२ वें अध्याय में किशोरी जानकी के द्वारा धनुर्भूमि-लेपन और उसके उत्थापन के पश्चात् जब मिथिलेश्वर जनक धनुर्भवन में जाकर उसे अस्तव्यस्त देखते हैं तो उस समय चिन्ताकुलित होकर पुन: सुनयना के पास वे लौट आते हैं । राजमहिषी सुनयना सीरध्वज जनक को चिन्तित देखकर आदर्शपत्नी का प्रतिनिधित्व करती हुयी स्वयं उठ करके उनके पास जाकर करबद्ध पूर्वक उनसे प्रार्थना करती हैं कि देव ! आप क्यों इतने चिन्ताकुल दिखायी पड़ रहे हैं । इस समय तो आप प्रात: कालिक पूजा आदि दैनिक कृत्यों को सम्पादित कर आ रहे हैं इस समय तो आपको प्रसन्न रहना चाहिये । क्या पूजाविधि से अपरिचित किशोरी जानकी से धनुष पूजा में कोई त्रुटि हो गयी है । नाथ ! मेरी दृष्टि में तो आपकी चिन्ता का कारण यही लग रहा है कि धनुष पूजा में होने वाली त्रुटि से ही आप चिन्तित हैं । यदि ऐसा है तो हे नाथ ! किशोरी जानकी से जो कुछ त्रुटि हुयी है उसे आप[1] मेरा ही अपराध समझें क्योंकि धनुष पूजनार्थ तो उन्हें मैंने ही भेजा था । किन्तु हे देव ! आप तो तत्वज्ञ हैं । आप यह निश्चय समझें कि किशोरी जानकी की त्रुटि भी अमंगलकारिणी नहीं हो सकती क्योंकि विधिपूर्वक अर्पण किये गये पदार्थों को जो देवगण हाथ फैलाकर ग्रहण नहीं करते वे ही किशोरी जानकी द्वारा अविधिपूर्वक अर्पित उन्हीं पदार्थों को स्वमेव हाथ फैलाकर उसे ग्रहण कर लेते हैं, जिन्हें अपने शरीर, प्राण आदि में भी कोई आसक्ति नहीं है जो मनोनिग्रह में समर्थ ही नहीं अपितु सर्वोपरि हैं, परब्रह्म चिन्तनपरायण हैं, निष्काम कर्मयोगी हैं ऐसे वे ऋषि, महर्षि, देवगण आदि किशोरी जानकी के दर्शनार्थ यहां स्वयं आते हैं । हे उदार चेता ! प्राण नाथ ! किशोरी जानकी के अतुलनीय प्रभाव को महामुनि अगस्त्य आदि कथन करते हुये अघाते नहीं अतएव किशोरी जानकी के द्वारा हुयी त्रुटि भी अनिष्टकारी नहीं हो सकती[2] ।

इस प्रकार राजमहिषी सुनयना ऐसे ही अनेक मोड़ों पर मिथिलेश्वर जनक का साथ एक आदर्श धर्मपत्नी के रूप में देती हुयी महाकाव्य के विभिन्न

१- जा० च०, ७२ । ६-१२

२- वही , ७२। १९-२४

स्थलों में दृष्टिगत होती है ।

जानकी चरितामृतम् की सुनयना में जिस गुण का सर्वाधिक प्राधान्य परिलक्षित होता है वह है उनका स्नेहरसमेदुर आदर्शमातृत्व । राजमहिषी सुनयना मातृत्व की साकार विग्रह हैं । उनके हृदय का एक-एक कोना मातृत्व के रस से सराबोर है जिसकी बाह्य अभिव्यक्ति इस महाकाव्य के विविध स्थलों में अविराम रूप में उपलब्ध होती है । इनके मातृत्व का महासागर लक्ष्मी निधि, उर्मिला आदि अपनी औरस सन्तानों के लिये ही नहीं अपितु अनौरस सन्तानों के लिये भी निरन्तर लहराया करता है, उदाहरणार्थ - किशोरी जानकी के प्रति उनके मातृत्व की अपूर्व आसक्ति देखी जाती है । किशोरी जानकी की प्राप्ति के लिये वह सम्वत्सर पर्यन्त चलने वाले पुत्रेष्टि यज्ञ में स्वयं दीक्षा ग्रहण करती हैं । यज्ञ के अन्त में यज्ञ वेदी से सीता के प्राकट्य के समय आनन्दाश्रु से सराबोर हो जाती हैं तथा व किशोरी भाव में परिणत होने पर जब वही सीता मिथिलेश्वर जनक की क्रोड में विराजती हैं तो उनके स्तनों से स्वयं दुग्ध धारा फूट पड़ती है और वे स्वयं सीरध्वज जनक की गोद से उन्हें अपनी गोद में ले लेती हैं, प्राणाधिक स्नेह प्रदान करती हैं[1] । इनके मातृत्व की परीक्षा के लिये जिस समय भगवती सरस्वती गायिका के रूप में इनके पास आती हैं और अपने को गायिका बताकर अपने गान द्वारा इन्हें परम सन्तुष्ट कर देती हैं, उस समय राजमहिषी सुनयना गायिका को अभिप्सित वस्तु मांगने के लिये स्वयं आग्रह करती हैं । गायिका के रूप में प्रस्तुत सरस्वती सुनयना के मातृत्व-परीक्षा के लिये किसी अपूर्व रत्न को मांगने के उपक्रम में कहती हैं कि हे राजमहिषि । यदि मेरे अभिप्सित सर्वोत्तम रत्न को देने का वचन दें और साथ ही यह भी वचन दें कि हमें प्रदान किये बिना उस सम्बन्ध में आप किसी से कहें नहीं तो फिर मैं याचना करूं ।

इस पर सुनयना प्रतिज्ञापूर्वक कहती हैं कि आप जिस रत्न को चाहती

१- स्तनाभ्यां तदाभ्यासात् प्रसुस्रावामृतं पय: ।
तस्मादपेक्षमाणाय सुताङ्कात्स्वाङ्कमादधे ।।
- जा० च०, ३२।७५

हैं उसे निःसन्देह मैं देने का वचन देती हूं और उसे मैं तुम्हें बिना दिये उसकी किसी से चर्चा नहीं करूंगी।

इस प्रकार जब भगवती सरस्वती को सुनयना आश्वस्त कर देती हैं तो वे सुनयना से अपने क्रोड के श्रृंगार के लिये स्वयं किशोरी जानकी को ही मांगने लगती हैं और कहती हैं कि यदि आप निश्चित रूप से कोई रत्न देना चाहती हैं तो मुझ अभागिनी की उत्संग श्रृंगार हेतु अपनी जानकी रूपी रत्न को अविलम्ब मुझे प्रदान कर दीजिये[१]। वाग्देवी के दारुण याचना वचन को सुनकर सुनयना की चरणों के तले की धरती खिसक गयी। वे उत्साह हीन होकर अत्यन्त दुःख के साथ विलाप करने लगीं और कहने लगीं कि हे विधातः! बुद्धि में सर्वथा अबोध बनकर तुमने यह क्या कर डाला जो इस दयाशून्य धूर्त नायिका ने हमें ठग लिया। मिथिलेश्वर (जनक) ने ऐसा कौन सा अशोभन कर्म किया था जो इतने कष्टों के पश्चात् प्राप्त पुत्री। किशोरी जानकी को अपने मनोरथों के सिद्ध किये बिना ही, इस धूर्ता के द्वारा मुझे वंचित जानकर अपना शरीर त्यागकर देंगे। किशोरी जानकी-बिना वे कैसे जीवित रह सकेंगे। जानकी के अन्य भाई, सहेलियां निमि वंश के अन्य सभी लोग यह सुनते ही प्राण परित्याग कर देंगे। पुरवासी, परिजन, प्रजा आदि की क्या दशा होगी। मिथिलापुरी तो श्रीविहीन हो जायेगी और इस वर्ग कथा के गान से मुग्ध बिना कुछ सोचे विचारे दान की प्रतिज्ञा करने वाली मैंने क्या कर डाला। अब तो मेरा जीवन सर्वथा व्यर्थ ही है। ऐसे दारुण दुःखों से भरे मुझे जीवन धारण की अपेक्षा मरण ही श्रेयस्कर है। हे परमपूज्य त्रिदेवों तैंतीस कोटि देवताओं अट्ठासी हजार महर्षियों मैं आप लोगों को शिरसा प्रणाम करती हूं और आर्त निवेदन करती हूं कि इस असह्य भारी आपत्ति से मिथिलावासियों की रक्षा कीजिये आसन्न आपत्ति को दूर कीजिये। हे मिथिला के प्राणियों, पशु पक्षियों, आप सभी लोगों को दुःख के महासागर में गिराकर मैंने महान

१- जा० च०, १९ । २२

अपराध किया है अतएव अब मैं पलभर भी जीवित नहीं रहना चाहती हूं । मुझ अमंगल स्वरूपा ने कुयोग से सर्वनाशक निन्दित अमंगलमय एवं अविचारित अभिप्सित दान देने की प्रतिज्ञारूपी यह महनीय पाप कर लिया है इसे आप लोग क्षमा करें । इसके लिये मैं बारम्बार आप लोगों को प्रणाम् करती हूं। हे दसों दिशाओं के लोकपालों आप सबको साक्षी मानकर के मैं अपनी धर्म प्रतिज्ञानुसार प्राणातिप्रिय किशोरी जानकी को देने के लिये सर्वथा विवश हूं। अब आप लोग मिथिलावासियों की इस विपत्ति से रक्षा करें यही मेरी प्रार्थना है । हे गायिके ! अब तो तुम्हें यथेप्सित रत्न देने की प्रतिज्ञा कर चुकी हूं अतएव तुम अपने इच्छित रत्न किशोरी जानकी को मेरी गोद से ले सकती हो[1]। किन्तु हे वञ्चते गायिके तुम्हारी याचना के पूर्व मैं यह नहीं जानती थी कि तु सर्वस्व वञ्चका हो इसी कारण हमने शुद्ध हृदय से बिना कुछ सोच विचार किये-ही तुम्हें अभिप्सित रत्न देने की प्रतिज्ञा की थी ।

सुनयना का आर्त विलाप और अनोखा किशोरी जानकी के प्रति अनन्य मातृत्व देखकर भगवती सरस्वती अपने वास्तविक रूप में प्रकट होकर उनके मातृत्व की प्रशंसा करने लगी कि हे मिथिलेश्वर राजमहिषी आपका मातृत्व धन्य है आपके इस अनुपम मातृत्व एवं सौभाग्य की वर्णना में मैं समर्थ नहीं हूं और न ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा षडानन कार्तिकेय भी समर्थ हैं । सहस्रमुखी शेष भी असमर्थ हैं । हे विदेहपुर कीर्ति मण्डने ! मैंने निर्दयतापूर्वक आपके मातृत्व परीक्षा के सन्दर्भ में आपको जो कष्ट दिया है उसे आप कृपया क्षमा करें । जिन किशोरी जानकी का स्पर्श सुख ब्रह्म तत्त्व वेत्ता महर्षियों, मुनियों आदि के मानस राजहंसों को भी नहीं प्राप्त होता, स्वयं सर्वव्यापी आत्मा

१- बा० च०, ५४ ।२३-२५

२- न क्षमा स्मि तव भाग्यवर्णने न क्षमा हरिविरिञ्चिशङ्कराः ।
नो सहस्रवदनः षडाननश्चैवरः क इह वै प्रभुर्भवेत् ॥

— ब० च०, ५५ । ५२

भी जिस सुख से सर्वथा अपरिचित है उस चराचर सृष्टि की जननी भगवती किशोरी सीता को अपनी गोद में लेकर आप यथेच्छ सुख और दर्शन प्राप्त कर रही हैं आप जैसा भाग्यशाली सृष्टि में भला कौन हो सकता है ?

इसके अतिरिक्त ४२ वें अध्याय में रामादि चारों कौशलेन्द्र राजकुमारों को अम्बा सुनयना का अपने भवन में आने के लिये आमंत्रित करना और उनके आने पर अपूर्व मातृत्व के साथ उनका स्वागत करना, ४३ वें अध्याय में रामादि को सुनयना द्वारा कौतुक भवन में ले जाया जाना, ४५ वें अध्याय में रामादि चारों राजकुमारों को विविध वस्त्राभूषणों से अलंकृत करके उन्हें मिथिलेश्वर के राज-भवन में भेजना आदि ऐसे अनेक सन्दर्भ हैं जहां सुनयना के मातृत्व का महासागर व्योमचुम्बी कल्लोल भरता हुआ दृष्टिगत होता है ।

सुनयना के व्यक्तित्व के परिष्कार में उनकी वाक्पटुता का कुछ कम योगदान नहीं है । महाकाव्य के विभिन्न अध्यायों में उनकी वाक्पटुता का प्रमाण मिलता है । उदाहरणार्थ - ४४ वें अध्याय में आठ खण्ड ऊंचे हाटक भवन की छत पर आरूढ़ होकर रामादि चारो कौशलेन्द्र राजकुमारों को नगर के प्रमुख भवनों का वर्णन करना, ४७ वें अध्याय में स्यमन्तक भवन की छत पर विराजमान राम, लक्ष्मण आदि भाइयों के पूंछने पर सुनयना का उन्हें २४ वन एवं पर्वतों सहित राजप्रासाद के चारों आवरणों में से प्रत्येक आवरण के भवनों एवं उनके निवासियों का परिचय कराना आदि ऐसे अनेक सन्दर्भ हैं जो सुनयना के वाक् पटुता का सफल प्रमाण प्रस्तुत करते हैं ।

राज महिषी सुनयना के व्यक्तित्व को दैवीशक्ति से मण्डित करने में उनकी ईश्वरपरायणता का विशेष योगदान है । यों तो जानकी चरितामृतम् महाकाव्य में आद्यन्त उनकी ईश्वरपरायणता का भरपूर निदर्शन उपलब्ध होता है फिर भी ४७ वें अध्याय में भगवान आशुतोष के भजन में विश्वास कर मिथिलेश्वर जनक के साथ पुत्रेष्टि यज्ञ करना, ३७ वें व ३८ वें अध्यायों में देवर्षि नारद के आगमन पर यथोचित स्वागत पूर्वक उनसे जानकी की भाग्य रेखाओं एवं हस्त रेखाओं का फल सुनना तथा अन्त में पुनः समुचित सम्मानपूर्वक उन्हें विसर्जित करना,

३९ वें अध्याय में तांत्रिक के वेश में शिवागमन पर उनका स्वागत करना, ४० वें अध्याय में सनकादिकों के आगमन पर उनका यथोचित सम्मान करके भोजनादि कराना तथा इस सम्बन्ध में मिथिलेश्वर जनक को सूचित करना, और ५२ वें अध्याय में ब्राह्मण-ब्राह्मणी के वेश में विष्णु एवं लक्ष्मी के आगमन पर उनका यथोचित स्वागत सत्कार करना, ५४ वें अध्याय में नायिका के रूप में सरस्वती तथा ५५ वें अध्याय में स्वर्णकारिणी के रूप में पार्वती के आगमन पर दोनों का समुचित समादर कर दोनों को अभीष्ट वस्त्र प्रदान करना आदि ऐसे अनेक बिन्दु हैं जो सुनयना के देवपरायणता की सफलत: पुष्टि करते हैं ।

इस प्रकार निष्कर्षत: श्री जानकी चरितामृतम् महाकाव्य में सुनयना जहां एक ओर आदर्शपत्नी के रूप में चित्रित की गयी हैं वहीं दूसरी ओर आदर्श माता के रूप में भी । यदि उनमें एक ओर वात्सल्यता का अद्भुत समन्वय है तो दूसरी ओर देवपरायणता से सर्वात्मना अभिषिक्त हैं । परन्तु इन समस्त रूपों में उनका आदर्श मातृत्व सर्वोपरि है जिसकी प्रशंसा स्वयं भगवती सरस्वती भी करती हुयी तृप्त नहीं होती हैं ।

—

राम -

जानकी चरितामृतम् महाकाव्य में मर्यादा पुरुषोत्तम महाराघव राम के व्यक्तित्व को उभारने के लिये महाकवि ने यथाशक्ति श्लाघ्य यत्न किया है । इस महाकाव्य के अन्तर्गत महाराघव राम के समग्र जीवन का चित्रण न होकर मात्र उनकी साकेत धाम से धरा धाम पर चक्रवर्ती नरेश महाराज दशरथ के पुत्र रूप में अवतार लेने से लेकर जनक नन्दिनी जानकी के परिणय सूत्र में बंधने एवं तदुपरान्त अयोध्या में आगमन, सौभाग्यरात्रि महोत्सव तक का सविस्तर वर्णन हुआ है । यही कारण है कि राम के सम्पूर्ण जीवन का रूपांकन न होने से उनके समग्र जीवन के समग्र रूप इस महाकाव्य में उपलब्ध नहीं हो पाते हैं । जानकी चारितामृतम् महाकाव्य में राम के मुख्यत: तीन ही स्वरूप प्राप्त होते हैं - दाशरथि राम, जानकीवल्लभ राम तथा सर्वेश्वर राम ।

दाशरथि राम का निदर्शन यों तो सप्तम अध्याय से ही प्रारम्भ हो जाता है जहां अपने साकेत धाम में पूर्ण परात्पर ब्रह्म राम और सीता जीवों के कल्याण हेतु मृत्युलोक में स्वयम्भू मनु एवं शतरूपा के अवतार रूप दशरथ और कौशल्या के यहां पुत्र रूप में अवतार लेने का निर्णय लेते हैं तथा सीता मिथिलेश्वर जनक की पुत्री के रूप में उनकी यज्ञवेदी से प्रकट होने का निश्चय करती हैं[1] । पुन: जानकी चरितामृतम् के २०वें अध्याय में राम अपने अंशों सहित चक्रवर्ती नरेश दशरथ के यहां पुत्र के रूप में जन्म लेते हैं । अयोध्या नरेश दशरथ पुत्रोत्सव मनाने के उपलक्ष्य में समस्त राजाओं एवं महर्षियों को आमंत्रित करते हैं । उसी उत्सव में जनक तथा नारद का भी आगमन होता है । सभी महर्षि एवं नृपति दशरथ को बधाइयां देते हैं कि आपका मानव जन्म सफल हो गया क्योंकि त्रिदेवों के भी द्वारा वन्द्य पूर्ण परात्पर ब्रह्म साकेताधीश्वर राम ने अंशों के सहित आपके यहां पुत्र रूप में जन्म लिया है[2] । महाराज जनक को राम

१- जा० च०, ७।४०-४१

२- जयतोऽद्भुतं मुनिपुङ्गवो नृपतिपुङ्गवमाह यथातथम् ।
जगदुमन्यव आत्मभुवं परं सुतरूपमाप्तमवेहि तमव्ययम् ।।
पुनरसौ भरतं सलक्ष्मणं रिपुनिषूदनमप्युपगुह्य च ।
अवदृतैव मुनिर्ब्रुविदात्मना सुतमवाप भवान्तमनल्पकम् ।। -वही,२०।२८,३१

के बालरूप को देखकर अपनी संज्ञा ही भूल जाते हैं और बड़ी कठिनाई से पुन: चेतना प्राप्त करते हैं । देवर्षि नारद दशरथ की प्रशंसा करते हुये कहते हैं कि हे राजन् आप अत्यन्त ही भाग्यशाली हैं आपके समान कोई तपोधनी नहीं है क्योंकि जो तपोधनों के भी ध्यान में नहीं आते तथा जो परमहंसों के ही विशुद्ध मानस धाम में निवास करते हैं वे ही परात्पर परमेश्वर राम आपके भवन में शिशु रूप में प्रकट हुये हैं[1] ।

पुत्रोत्सव के अन्त में सभी मुनि महर्षि एवं आत्मज्ञानी नृपति भ्राताओं सहित राम का दर्शन कर दशरथ के भाग्य की प्रशंसा करते हुये उनसे विदायी लेते हैं ।

इसके पश्चात् ४२ से ५० अध्यायों में दाशरथि राम के विविध रूपों में वर्णन किया गया है । ४२ वें अध्याय में राजमहिषी अम्बा सुनयना के द्वारा सीता के जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में बुलाये जाने पर भ्राताओं सहित उनके यहां जाना, ४३ वें अध्याय में अम्बा सुनयना द्वारा रामादि चारों दशरथ पुत्रों को कौतुक भवन ले जाना, ४४ वें में रामादि का विहार कुण्ड में नावकायन, ४५ एवं ४६ वें अध्यायों में दाशरथि रामादि का सुनयना द्वारा अलंकृत होकर मिथिलेश्वर की राजसभा में जाना, ४७ वें अध्याय में राम का अम्बा सुनयना से राजप्रासाद के प्रत्येक आवरणों का परिचय प्राप्त करना, ४८ वें में सीरध्वज जनक के साथ दाशरथि राम का प्रीति भोज में सम्मिलित होना, ४९ वें अध्याय में राम के वियोग से अयोध्यावासी प्रजा की अत्यन्त दु:खी होने का समाचार मिलना और ५० वें अध्याय में अयोध्यानरेश दशरथ का मिथिलेश्वर सीरध्वज जनक से विदा लेकर रामादि पुत्रों के साथ अयोध्या वापस जाना आदि ऐसे सन्दर्भ हैं जहां दाशरथि राम के परिवर्त्यमान अनेक रूपों का सविस्तार निदर्शन प्रस्तुत किया गया है ।

जानकी चरितामृतम् महाकाव्य के अन्तर्गत राम के जिस दूसरे रूप की

१- त्वमसि धन्यतमो बहुभाग्यतो न हि समस्तव कोऽपि तपोधन: ।
परमहंसमनोनिलयस्तव प्रकटित: शिशुरूपतयाऽऽलये ।। - जा०च०, २७ ।११

सर्वाधिक उपस्थापना की गयी है वह है उनका जानकी वल्लभ रूप । इस महाकाव्य के ५८ से लेकर ६३ अध्याय तक, ९०,९४, ९७ लेकर १०६ तक के अध्यायों में राम के जानकीवल्लभ स्वरूप का बहु आयामी वर्णन उपलब्ध होता है ।

५८ वें अध्याय में सखियों के साथ रास लीला करती हुयी जब किशोरी जानकी राम के बिना रास लीला को अपूर्ण मानकर खिन्न हो जाती है तो उनकी प्रसन्नता के लिये यूथेश्वरी चन्द्रकला अपनी सखियों को अयोध्या से राम को लाने का शीघ्र आदेश देती है । इसी अध्याय में यह भी वर्णित है कि राम अयोध्या में अपने शयन कक्ष में सोते हुये ऐसा स्वप्न देखते हैं जिसमें उनका प्रणय सम्बन्ध मिथिलेश्वर राजदारिका जानकी से हुआ है[१] । ५९ वें अध्याय में चन्द्रकला की सखियों के द्वारा रामभद्र का मिथिला में लाया जाना, ६०वें अध्याय में रसिकेश्वर राम और सीता की प्रधान यूथेश्वरी चन्द्रकला का सरससंवाद, ६१ वें अध्याय में राम और सीता का सम्मिलन, ६२ वें अध्याय में सखियों के सुख हेतु राघवेन्द्र राम का जानकी के साथ रासलीला, जल विहार लीला एवं नवका विहार लीला, ६३ वें अध्याय में अपनी सखियों को नित्य संयोग सुख प्रदान करने के निमित्त किशोरी जानकी का खुराज श्रीमन्त राम से प्रेममय प्रार्थना, ९० वें अध्याय में राम का गुरुवर्य विश्वामित्र की पूजा के निमित्त पुष्प लेने के व्याज से जानकी की पुष्प वाटिका में जाना और वहां दोनों का परस्पर साक्षात्कार, ९४वें अध्याय में राम का धनुर्भंग तथा तदुपरान्त राम के गले में जानकी द्वारा वरमाला समर्पण, ९७ से १०० वें अध्याय में क्रमशः राम का विवाह मण्डप में प्रवेश,जानकी के साथ उनका परिणय, कोहबर लीला एवं कोहबर में विश्राम आदि ऐसे अनेकों प्रसंग हैं जिनमें जानकी वल्लभ राम के विविध रूपों की उपस्थापना की गयी है ।

जानकी चारितामृतकार ने अपने महाकाव्य में आदि से लेकर अन्त तक विभिन्न स्थलों पर राम के ऐश्वर्य रूप को उभारने का भरपूर प्रयास किया है ।

१- जा० च०, पृ० । ५८-७२

महाकाव्य के विभिन्न अध्यायों में यथा स्थल सर्वेश्वर राम का स्पष्ट निदर्शन उपलब्ध होता है । उदाहरणार्थ महाकाव्य के सप्तम अध्याय में महाकवि ने एक ऐसा उपाख्यान प्रस्तुत किया है, जिसमें यह बताया गया है कि पूर्णपरात्पर ब्रह्म सीता एवं राम ने अपने साकेतधाम में वार्तालाप के सन्दर्भ में उन दोनों में स्वयं ही मर्त्यलोक के प्राणियों को सुख देने के लिये अवतार-लेने का निश्चय किया और उसी निश्चय के फल स्वरूप उन दोनों ने यह भी निर्णय लिया कि स्वयं सर्वेश्वर राम स्वायम्भुव मनु एवं शतरूपा के अवतार रूप में दशरथ एवं कौशल्या के यहां उनके पुत्र-रूप में जन्म लेंगे और सर्वेश्वरी सीता मिथिलेश्वर सीरध्वज जनक के यहां उनकी पुत्री के रूप में प्रकट होंगी[1] । २७ वें अध्याय में दशरथ के पुत्र के रूप में राम के जन्म ग्रहण करने पर जब सभी ऋषि, महर्षि एवं राजा दशरथ के आमंत्रण पर उनके द्वारा आयोजित पुत्र जन्मोत्सव में आते हैं तो उस समय आत्मज्ञान सम्पन्न सभी महर्षि राम को पूर्ण परात्पर ब्रह्म के रूप में ही देखते हैं ।

उदाहरणार्थ नारद महाराज दशरथ से स्पष्ट कहते हैं कि हे रघुकुल नन्दन राजन् आपके भाग्य की प्रशंसा मैं कितनी करूं । और ! आपकी तपस्या का फल देखकर हम सभी मुनिगण आश्चर्य में पड़ गये हैं । राजन् ! जिनके दर्शनों के लिये ही मेरा आपके यहां आना हुआ है तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश भी जिनके शासन में रहते हैं और जिनको परमाराध्य रूप में भजते रहते हैं अपने उन दिव्य रूप परात्पर ब्रह्म श्री राम का दर्शन कराने की कृपा करें और भविष्य में भी कराते रहें[2] । नारद के द्वारा परात्पर ब्रह्म राम का अपने पुत्र के रूप में

१- जा० च०, ७। ३९-४५

२- तमनुदर्शयितुं क्रियतां कृपा निखिलं विधिविष्णुशिवेश्वरम् ।
मम महीप ! यदर्थमिहागतिः क्वचिद् दृष्टुमहं मन आतुरः ।।

– जा० च०, २७ । १६, १७

अवतार सुनकर दशरथ नारद को वचन देते हैं कि हे देवर्षि यदि आप यह सत्य ही कह रहे हैं कि भक्तों के प्रति रहने वाली अपनी सहज असीम करुणा के वशीभूत होकर मायातीत परमेश्वर मंगलमय विग्रह को धारण करके मेरे पुत्र बने हैं तो मैं उनकी पूजा ईश्वर की भावना से ही करूंगा ।[1] निराकार को साकार कहकर उनकी पूजा करना मेरे लिये सहज हो गया है ।

२८ वें अध्याय में सुनबोधी आत्म ज्ञानी मिथिलेश्वर सीरध्वज जनक श्री राम को पूर्ण परात्पर ब्रह्म का ही अवतार मानते हुये कहते हैं कि दशरथ नन्दन श्री राम षडैश्वर्य सम्पन्न साक्षात् साकेत धाम के[2] अधिपति सर्व समर्थ सभी कारणों के कारण परमधाम पूर्ण परात्पर ब्रह्म हैं । ये ही सभी अवतारों के मूल, अन्तर्यामी रूप से सभी कर्मों के साक्षी, निराकार रूप से सर्वव्यापी ब्रह्म हैं । विश्व के अपने ही अनेक आकारों के द्वारा स्वयं अनेक प्रकार का कृत करने वाले और परमार्थ रूप से कराने वाले, भक्तों[3] के वश में रहने वाले हैं । अन्यथा ये मन वाणी से सर्वथा परे रहने वाले हैं । योगियों की परमगति, प्राणिमात्र की रक्षा करने में समर्थ, मुनीश्वरों के भी परमध्येय ये पूर्ण परात्पर ब्रह्म ही हैं, जो दशरथ के पुत्र के रूप में जन्म ग्रहण

१- यदि च सत्यमिदं प्रकृतेः परो मम सुतत्वमुपागत ईश्वरः ।
करुणयाऽऽत्तसुमङ्गलविग्रहः सुतम आत स मे पितुमिच्छते ।।
- बा० ख०, २७ । ६६

२- अयं तु भगवान् साक्षात्साकेताधिपतिः प्रभुः ।
परंब्रह्म परंधाम सर्वकारणकारणम् ।।
- वही, २८ । ४

३- सर्वावतारमूलं च साक्षी सर्वकर्ता महान् ।
कर्ता कारयिता धर्मी, मनोवाचामगोचरः ।।
- वही, २८ । ५

किये हैं[१]।

६५ वें अध्याय में मानकतावतार भगवान परशुराम भी राम को पूर्ण परात्पर ब्रह्म का अवतार ही मानते हैं, और वे राम से कहते हैं कि हे नाथ ! अब मैंने जान लिया कि आप सम्पूर्ण अवतारों को धारण करने वाले अनन्त दिव्य गुणों से युक्त सभी अवतारों के मूल कारण तथा ब्रह्मादि देवों के भी स्वामी हैं[२]। हे नयनाभिराम ! भगवन्त श्री राम आपके दर्शनों की इच्छा से ही लक्ष्मीकान्त भगवान विष्णु के इस धनुष को अब तक ढोता रहा हूं। हे कृपा शील, सौन्दर्य, क्षमा के एक मात्र महासागर प्रभो ! सानुज आपको प्रणाम करता हूं[३]। हे सर्वेश्वर राम ! आपने जो मुझको अपमानित किया उसके लिये आप लज्जित न हों क्योंकि आप केवल रघुपति ही नहीं अपितु त्रिलोकी पति हैं और उस अधिकार से मुझ ब्राह्मण को भी आप दण्ड दे सकते हैं। इसलिये हे सर्वेश्वर जगदेकनाथ राम ! आपको न जानने के कारण जो अपराध किये हैं उसे क्षमा कीजिये और मेरे द्वारा दिये गये इस विष्णु-धनुष

१- पुत्रभावेन सा प्राप्ता योगिनां परमा गतिः ।
शरण्यस्य वरेण्यस्य मुनिवर्याज्ञयाकिल: ।।
अनेन देवदेवेन पुत्रभाव उरीकृतः ।
सर्वे भावा उरीकार्या यथायोगस्य मे प्रभु ।।
- बा० ब०, २८ । ६, ७

२- आकृष्टचापगुणरामशुवाच राम: कम्पायमानसकलावयव: प्रणम्य ।
ज्ञातोऽधुना त्वमसि नाथ ! मया परेश: सर्वावतारभृदनन्तगुणोऽवतारी ।।
- वही, ६५ । ७९

३- त्वां द्रष्टुकाम इह विष्णुशरासनं यं पाणौ वहामि सततं नयनाभिराम !
कारुण्यशीलसुषमाक्षमैकसिन्धो ! तुभ्यं नमोऽस्तु रघुनन्दन ! सानुजाय ।।
- वही, ६५ । ८०

पर आपने जो बाण चढ़ाया है उससे मेरे पुण्य समूह एवं स्वर्ग जाने की शक्ति को नष्ट कर दें[१]। इस प्रकार राम से निवेदन करके प्रणामोपरान्त परशुराम तपस्यार्थ हेतु महेन्द्रगिरि पर चले जाते हैं ।

ऐसे ही महाकाव्य में अनेक स्थल हैं जहां राम के सर्वेश्वर पूर्ण परात्पर ब्रह्म होने का स्पष्ट सविस्तार वर्णन मिलता है ।

अतएव यह कहना न होगा कि जानकी चरितामृतम् के श्री राम जहां एक ओर दाशरथि राम के रूप में वर्णित किये गये हैं वहीं दूसरी ओर अवस्था के विकास-क्रम में सर्वेश्वरी जानकी के हृदयवल्लभ के रूप में चित्रित किये गये हैं । तथा च महाकाव्य के विभिन्न स्थलों में उनके पूर्ण परात्पर ब्रह्म के अवतार होने का भी सफल निदर्शन प्रस्तुत किया गया है ।

१- क्रीडा तवेति भवितुं न हि वार्यतीह ! काकुत्स्थ । हे रघुपते ! रघुनन्दना ! ।
विप्रोऽस्मि भक्ता विमुखीकृतो यल्लोकस्य याचिकिला नृपवंशजः ॥

छिन्ध्यप्रमेयमहिम कमलेक्षणाथ ! बाणेन पुण्यनिकरं मम स्वर्गतिं च ।
संप्राप्य मातुलकैरवपूर्णचन्द्र ! तपसे महेन्द्रमचलं गमिष्यामि ॥

- जा० च०, ६५ । ८१, ८२

दशरथ -

जानकी चरितामृतम् महाकाव्य में कोशलेन्द्र दशरथ का वर्णन यद्यपि स्वतन्त्र रूप से कहीं भी नहीं हुआ है तथापि जो कुछ वर्णन उनसे सम्बद्ध मिलता है उसमें उनके आदर्श प्रजापालक नृपति, आदर्श मित्र एवं आदर्श पिता होने का स्पष्ट संकेत उपलब्ध होता है ।

कोशलेन्द्र दशरथ के आदर्श प्रजापालक नरपति का स्वरूप यूं तो जानकी चरितामृतम् महाकाव्य के विभिन्न अध्यायों में यत्र-तत्र मिलता ही है किन्तु ५९ वें अध्याय में उनका प्रजापालक रूप सर्वथा स्पृहणीय है ।

मिथिलेश सीरध्वज जनक के निमन्त्रण पर जब कोशलेश्वर दशरथ रामादि पुत्रों के सहित उनके पुत्रेष्टि यज्ञ में सम्मिलित होने के लिये मिथिला चले जाते हैं तो कुछ ही दिन बीतने पर अयोध्या की सारी प्रजा अपने नरपति दशरथ एवं रामादि राजकुमारों के वियोग में अत्यन्त व्याकुल हो जाती है । अयोध्या की प्रजा की व्याकुलता देखकर कोशलनरेश के महामात्य सुमन्त प्रजा के समाचार को लेकर स्वयं मिथिला जाते हैं और उसे कोशलेश्वर दशरथ से निवेदन करते हैं कि हे धर्मधुरीण महाराज पुत्रों, रानियों एवं कुल के सहित महा सौभाग्यशाली आपका मंगल हो ज्ञातव्य है कि प्राय: सभी अयोध्या निवासियों को श्रीमन्त राघवेन्द्र राम के दर्शन के बिना कुशल होते हुये भी मैं कुशलता विहीन मृत के समान देखा है । इससे आप अयोध्यावासियों के अपने वियोग जन्य दु:ख का अनुभव आप स्वयं कर सकते हैं और यह भी जान सकते हैं कि इस समय वे किस स्थिति में होंगे । यह सब कुछ जानकर आप जैसा उचित समझें वैसा करें ।[1] सुमन्त्र के द्वारा प्रजा का समाचार सुनकर दशरथ प्रजा के दु:ख से दु:खी होकर आचार्य वशिष्ठ से निवेदन किया कि हे गुरुवर्य । महामात्य सुमन्त्र के द्वारा अयोध्यावासियों का वियोगात्मक समाचार इस समय मुझे भी प्रतिक्षण अत्यधिक दु:ख दे रहा है । गुरुदेव । मैं इस तथ्य को पूर्णत: जानता हूं कि जिस राजा के राज्य में प्रजा को दु:ख होता है वह राजा अवश्य नरक को प्राप्त होता है । अतएव आपसे मेरा विनम्र

१- जा० च०, ५९ ।४,५

निवेदन है कि आप मेरे, इस दु:ख को किसी प्रकार दूर करें[1] ।

गुरुदेव वशिष्ठ दशरथ के आर्तवचन को सुनकर शीघ्र ही सीरध्वज जनक से विदा लेकर दशरथ का अयोध्या जाना उचित समझा । अतएव इसके लिये ब्रह्मर्षि वशिष्ठ स्वयं मिथिलेश्वर जनक के पास जाकर दशरथ के प्रजाजन्य दु:ख को निवेदित करते हैं कि हे योगिराज शार्दूल विदेह ! परसों महामात्य सुमन्त अयोध्या से प्रजा का सन्देश लेकर कोशलेन्द्र दशरथ के पास आये हैं । सुमन्त ने चक्रवर्ती दशरथ के पूंछने पर वहां के समाचार से उन्हें अवगत कराया । उसे सुन करके उन्हें अब बहुत चिन्ता हो रही है[2] । प्रजा के अनिर्वचनीय व्याकुलता को सहन करने में वे सर्वथा असमर्थ हो गये । फलत: प्रजा के राम वियोगरूपी परिताप को दूर करने के लिये आप कोशलेन्द्र दशरथ को राजकुमारों सहित अयोध्या वापस जाने के लिये सहर्ष आज्ञा प्रदान करें[3] । वशिष्ठ की आज्ञा को शिरोधार्य कर सीरध्वज जनक उनके प्रजापालन रूपी धर्म की रक्षा के लिये शीघ्र ही उन्हें विसर्जित करने हेतु अपने अन्त:पुर में जाते हैं और राजमहिषी सुनयना से महाराज दशरथ के प्रजा दु:ख से दु:खी होने का समाचार सुनाते हैं । और शीघ्र ही उन्हें रामादि पुत्रों सहित ससम्मान विदा करते हैं ।

जानकी चरितामृतम महाकाव्य में दशरथ एक आदर्श मित्र के रूप में भी उपलब्ध होते हैं । उनके मित्र रूप का निदर्शन ४६, ५० तथा ६६ अध्यायों में

१- सुमन्त्रेण समाख्यात: समाचार: पुरोकसाम् ।
अतिदु:खप्रदो मह्यं श्रुत्वेह प्रतिदारुणाम् ॥
यस्य राज्ये प्रजादु:खं स याति नरकं ध्रुवम् ।
तद्रहस्यविदो दु:खं कृपया मे पलायताम् ॥
- जा० च० ४६ । ७, ८

२- जा० च०, ४६ । ११, १२

३- वही , ४६ । १५-१६

प्रजा के कष्ट को सुमन्त के द्वारा सुनकर भी कोशलेन्द्र दशरथ मिथिलेश्वर जनक की मैत्री पाश में बंधे होने के कारण यथा-शीघ्र नहीं आ पाते हैं । प्रजा के दु:ख के ताप से सन्तप्त होकर प्रजापालन धर्म का निर्वाह करना और सुहृदवर मित्र की मैत्री का निर्वाह करना एक ही समय में कैसे सम्भव हो सकता है, इसे कोशलेन्द्र दशरथ जानते हैं और तदनुसार निर्वाह भी करते हैं[1] । सुमन्त के द्वारा प्रजा की व्याकुलता को सुनकर कोशलेश दशरथ प्रजा को दु:ख से दु:खी होने का मनोभाव जहां एक और कुलगुरु ब्रह्मर्षि वशिष्ठ निवेदित करते हैं वहीं इस निवेदन के क्रम में वह दो दिन और मिथिलेश्वर के यहां स्वयं उनका मानवर्धन करने हेतु रुकते हैं । जनक के मैत्री-पाश में आबद्ध होने के कारण प्रजा पालन तत्पर दशरथ किंकर्तव्यविमूढ़ होकर निश्चय नहीं कर पा रहे हैं कि वे तत्काल अयोध्या को जायं अथवा जनक की मैत्री का निर्वाह करें । यही कारण है कि ब्रह्मर्षि वशिष्ठ ही दशरथ की विवशता को निवेदित करने के लिये जनक के पास जाते हैं और कहते हैं कि कोशलेश दशरथ प्रजा-पालन में तत्पर होते हुये भी आपके प्रेमपाश में इतने बंधे हैं कि वे अपने करणीय कर्तव्य के विषय में कोई निश्चय नहीं कर पा रहे हैं[2] । जनक दशरथ की मैत्री की प्रशंसा करते हुये स्पष्ट कहते हैं कि प्रभो ! प्रेम-मार्ग जिसके लिये कष्ट साध्य एवं कष्टदायक नहीं होता फिर भी जो अपने हित की हानि देखकर दूसरे के हित साधन में तत्पर नहीं होता उस स्वार्थ लम्पट दुर्बुद्धि व्यक्ति की सज्जन कभी भी प्रशंसा नहीं कर सकते[3] । कोशलेन्द्र दशरथ हमारे मित्र हैं अतएव मेरे लिये कैसे

१- दु:खं हि प्रजादु:खं तव स्नेहोऽपि दुस्त्यजः ।
मैथिलेन्द्रेति जानीहि नृपस्य मम पश्यतः ॥

- जा० च० ५८ । ५६

२- त्वदीयप्रेमबद्धोऽसौ प्रजापालनतत्परः ।
गुरुकृत्य इवाभाति निश्चयं नाधिगच्छति ॥

- वही, ५८ । ६७

३- जा० च०, ५८ । २१,२२

मिथिलावासी प्रजाजन पालनीय हैं वैसे ही अयोध्यावासी प्राणी से भी बढ़कर मेरे लिये पालनीय हैं[1]।

इसके पश्चात् जनक जब दशरथ को विदा करने लगते हैं तो दशरथ उनकी मैत्री की प्रशंसा करते हुये कहते हैं कि हे राजन् ! आपके यहां रहते हुये हमने जो सुख प्राप्त किया है वह इन्द्रलोक में जाकर स्वयं देवराज इन्द्र से भी नहीं मिला है । आपकी मैत्री धन्य है । आप यह भी समझें कि आप जो कुछ मंगल प्राप्त करना चाहते हैं वह सब कुछ आपको अपनी अयोनिजा पुत्री जानकी के लालन-पालन से ही उपलब्ध हो जायेगा[2]। इसके पश्चात् दशरथ जनक द्वारा विदा होकर अपने पुत्रों सहित अयोध्या जाते हैं । ६६ वे अध्याय में जानकी के विवाह के सन्दर्भ में जब जनक अपने दूतों को पत्रिका देकर दशरथ के पास भेजते हैं तो दशरथ उन्हें मित्र जनक का दूत जानकर अतीव सम्मान के साथ अपने सन्निकट बैठाकर प्रेमपूर्वक उनसे मिथिलेश्वर जन का वृत्तान्त पूछते हैं[3]। पुनश्च जब जनक के दूत दशरथ को मिथिलेश्वर द्वारा प्रदत्त पत्र को कोशलेन्द्र दशरथ को प्रदान करते हैं तो उस समय मिथिलेन्द्र जनक के हस्त लिखित पत्र को प्राप्त कर और उसे पढ़कर दशरथ प्रेमाश्रु के सिन्धु में डूब जाते हैं[4]।

१- बा० च०, ४९ । २५

२- सुखं यदाप्तं भवता मयाऽत्र प्राप्तं न तच्चेन्द्रपुरं गतेन ।
अस्त्यद्भुताऽयोनिजया सुपुत्री त्वं ते विवाहस्यत्यपि लाल्यमाना ।।

- बा० च०, ५० ।३६

३- राजा दशरथस्तांस्तु समाहूय च सादरम् ।
प्रीत्या कुशलमप्राक्षीत्पृष्णातान्मित्रदूतान् ।।

- वही, ६६ । १७

४- तावत्तौ मिथिलेन्द्रस्य करकञ्जाक्षराङ्किताम् ।
पत्रिकां वाचयामास पुलकप्रेमाकुलोमन: ।।

- वही, ६६ । १९

इसी प्रकार ऐसे अनेक सन्दर्भ हैं जहां दशरथ आदर्श मित्र की सफल भूमिका का निर्वाह करते हुये देखे जा सकते हैं ।

जानकी चरितामृतकार ने अपने महाकाव्य में चक्रवर्ती दशरथ के जिस रूप की सर्वाधिक उपस्थापना की है वह है उनके आदर्श पिता का रूप ।

जानकी चारितामृतम् के २७, २८, ४६, ५०, ६६, १०२ एवं १०५वें अध्यायों में दशरथ के आदर्श पिता होने के स्वरूप का सफल वर्णन किया गया है ।

जानकी चारितामृतकार के अनुसार दशरथ एवं कौशल्या स्वायम्भुव मनु एवं शतरूपा के ही अवतार हैं[1] । जिन्होंने पूर्व जन्म में घोर तप करके स्वयं परात्पर-ब्रह्म साकेत धाम के अधिपति महाविष्णु राम से यह वर प्राप्त किया था कि अगले जन्म में वे उनके पुत्र बन करके उन्हें दिव्य वात्सल्य सुख प्रदान करेंगे[2] । इसीलिये दशरथ एवं कौशल्या के रूप में इनके जन्म लेने पर स्वयं राम उनके पुत्र के रूप में लक्ष्मण आदि अंशों के सहित अवतार लेते हैं ।

दशरथ के यहां स्वयं पूर्ण परात्पर ब्रह्म राम का अवतार होने पर दशरथ पुत्रोत्सव के उपलक्ष्य में समस्त महर्षियों एवं मित्र राजाओं को आमंत्रित करते हैं । पुत्रोत्सव में आये हुये सभी महर्षि एवं नृपतिगण दशरथ के पितृत्व की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हैं । इसी सन्दर्भ में देवर्षि नारद ने समस्त ऋषियों की ओर से दशरथ को बधाई देते हुये कहते हैं कि हे रघुकुल नन्दन कोशलेन्द्र । आप जैसे परमभाग्यशाली से मैं आज अधिक क्या कहूं । आपका

१- स्वायम्भुवो मनुर्यो भूत्वा दशरथो नृपः ।
येन तप्तं तपो घोरमाभ्यां घोराम्बिकाम्बया ।।
शतरूपा महाराज्ञी कौशल्या नामविश्रुता ।
विभाविता च तेनैव पुत्रत्वं तौ समीयतुः ।। - जा० चा०, ७।५०,५१

२- ताभ्यां दत्तं वरं यत्तत्वं विस्मरसि प्रिय ।
अवाप्य: पूर्तिदान्ते ह्याभ्यां रामभोत्सवम् ।। - वही, ७।५२

तप: फल देखकर सारा मुनि समाज आश्चर्य चकित है । आपके यहां मैं जिन्हें देखने के लिये आया हूं वे तो ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश के भी परमाराध्य परमेश्वर हैं[1]। हे नृपति उत्तम ! आप जिन्हें अपना पुत्र मान रहे हैं वे परम्पुरुष अविनाशीपूर्ण परात्पर ब्रह्म ही हैं,[2] और अहं आपके जो तीन पुत्र हैं वे भी इन्हीं के ऐश्वर्य से युक्त इन्हीं के चरण कमलों के आश्रित हैं और ये भी ब्रह्मा, शिव आदि से स्तूयमान हैं[3]। हे राजन सम्पूर्ण शरीरधारियों को ये सभी अपनी आत्मा से भी अधिक प्रिय लगने वाले हैं किन्तु इनका दर्शन अत्यधिक दुर्लभ है । इसीलिये इनके दर्शनजन्य दुर्लभ सुख के लिये प्रत्येक प्राणी लालायित रहता है । इसके पश्चात् नारद राम, लक्ष्मण, भरत और रिपुसूदन का बारम्बार संस्पर्श एवं आलिंगन जन्य सुख प्राप्त करते हैं[4]। तथा दशरथ पुत्रों की प्रशंसा करते हुये प्रभूत आशीष देते हैं ।

२८ वें अध्याय में मिथिलाधिप सीरध्वज जनक दशरथ के आदर्श पितृत्व की प्रशंसा करते हुये थकते नहीं । वे कहते हैं कि चक्रवर्ती महाभाग नरपति दशरथ ही वास्तव में श्रीमान् हैं, राजा हैं, भाग्यशाली हैं और वे ही निःसन्देह कृतकृत्य हैं[5]। सच पूंछिये तो दशरथ ने ही पूर्व जन्म के तप के प्रभाव से अपना वर्तमान मानव जीवन सफल कर लिया है जो आज सर्वेश्वर परात्पर ब्रह्म श्रीमन्त राम जहाँ लक्षित पुत्र के रूप में उनकी अङ्क शैया में क्रीडा कर रहे हैं[6]।

१- आ० रा०, २७।१६,१७
२- वही , २७।२६
३- वही, २७। ३०
४- वही, २७।३५
५- एष धन्यो महाभागश्चक्रवर्ती नराधिपः ।
 राजा दशरथः श्रीमान् कृतकृत्यो न संशयः ॥
 – आ० रा०, २८।२
६- आ० रा०, २८।३, ४, ७

पुनश्च वे दशरथ के इस आदर्श पितृत्व का सहभागी बनने के उद्देश्य से स्वयं विचार करते हैं और सोचते हैं कि रामादि के पिता तो दशरथ हैं, गुरु ब्रह्मर्षि वशिष्ठ हैं किन्तु उनके श्वसुर का पद तो रिक्त ही है फलत: रामादि के वात्सल्य सुख को प्राप्त करने के लिये यदि मुझे श्वसुर पद मिल जाय तो मेरा भी जीवन सार्थक हो जाय[1]।

६६ वें अध्याय में जिस समय कौशलेन्द्र दशरथ कुलगुरु वशिष्ठ को सीता राम विवाह विज्ञापक जनक के पत्र को पढ़कर सुनाते हैं उस समय वशिष्ठ दशरथ के आदर्श पितृत्व की प्रशंसा करते हुये स्पष्ट कहते हैं कि हे राजन् धर्मात्मा पुरुषों के पास सम्पूर्ण सम्पत्तियां वैसे ही आती हैं जैसे कामनाहीन समुद्र के पास नदियां[2]। हे राजन् सर्वेश्वर परात्पर ब्रह्म प्रभु श्री रामभद्र जिनके पुत्र हैं भला उन आपके समान त्रिलोकी में कौन पुण्यराशि शाली है[3]।

निष्कर्षत: जानकी चरितामृतम् महाकाव्य में कोशलनरेश दशरथ जहां एक ओर आदर्श प्रजापालक नृपति के रूप में वर्णित किये गये हैं वहीं दूसरी ओर वे आदर्श मित्र के रूप में भी उपस्थापित किये गये हैं। पुनश्च उनके आदर्श पितृत्व का अभिराम चित्रण तो सर्वविदित ही है।

१- जा० च०, २८ ।६,१०

२- अनुर्ध्वं सरितो यान्ति यथा सर्वा हि सागरम् ।
आयान्ति धर्मशीलं वै तथैवाशेषसम्पद: ।।
- जा० च०, ६६।६ ३२

३- कस्य लोकत्रये राजन् ! पुण्यपुञ्जो भवादृश: ।
यस्य पुत्रत्वमापन्नो राम: सर्वेश्वर: प्रभु: ।।

- वही, ६६ । ३३

जनक -

जानकी चरितामृतकार ने सीरध्वज जनक को रूपायित करने में अधिक सफलता प्राप्त की है । जानकी चरितामृतम् के जनक अनेक रूपों में उपलब्ध होते हैं कहीं वह परमतत्वद्रष्टा महाज्ञानी के रूप में, कहीं प्रजापालक धर्ममूर्ति नरपति के रूप में, कहीं आदर्श मित्र के रूप में, तो कहीं आदर्श पिता के रूप में ।

जनक के महाज्ञानीत्व का निदर्शन यों तो सर्वत्र ही उपलब्ध होता रहता है किन्तु २८, २९, ३० वें अध्याय में उनके इस रूप की उपस्थापना अधिक स्पष्ट रूप से की गयी है । २८ वें अध्याय में भ्राताओं सहित राम को समस्त ऐश्वर्यों से सम्पन्न साकेत धाम के अधिपत, सर्व समर्थ, सर्व कारण कारण परम् ज्योति स्वरूप, परमधाम सर्वाकार मूर्ति पूर्ण सर्वसाधनि, सर्वान्तर्यामी, कर्ता, कारयिता, अवाङ्• मनसगोचर, योगियों के परमध्येय, सर्वशरण्य सर्वबोध्य, महायोगियों की परमगतिस्वरूप देखना,[1] और उन्हें श्वसुर के सम्बन्ध से प्राप्त करने की इच्छा करना,[2] जनक के परम तत्वद्रष्टा महाज्ञानी होने का सर्वोत्तम निदर्शन है ।

यों ही राजर्षि जनक अपने युग के महर्षियों द्वारा सम्मानित महान राजर्षि हैं । यही कारण है कि समस्त ऋषिगण उन्हें विवेक सिन्धु, योगीन्द्र जनक, आदि विशेषणों से सम्बोधित करते हैं । सर्वेश्वरी सीता को पुत्री के रूप में प्राप्त करने की इच्छा से जब जनक अगस्त्यादि महर्षियों को आमंत्रित करते हैं तो वे सभी उनके आमन्त्रण पर प्रसन्नता पूर्वक आते हैं और उनसे स्पष्ट कहते हैं कि हे राजन् हम महर्षियों के मध्य में जब कभी ज्ञान का प्रसंग छिड़ता है तो समुद्र के समान अथाह ज्ञानयुक्त आपका पुण्यप्रद स्मरण हम महर्षियों के

१- जा० च०, २८ । ४-७

२- वही, २८ । ८-१२

मध्य में जब कभी ज्ञान का प्रसंग छिड़ता है तो समुद्र के समान अथाह ज्ञानयुक्त आपका सुखप्रद स्मरण हम महर्षियों के हृदय में सदैव सहज ढंग से हो जाया करता है[1]। हे योगीन्द्र सत्तम ! आपके ज्ञान की पराकाष्ठा देखकर हम महर्षि-गण आश्चर्य सागर को किसी भी प्रकार पार करने में समर्थ नहीं हो पाते हैं[2]।

इसी प्रकार तीसवें अध्याय में जनक के अष्टवर्षीय घोरतप[3] को देखकर जब स्वयं आशुतोष शंकर प्रकट होते हैं तो उनको अभीष्ट सिद्धि का वरदान देते हुये वे स्पष्ट कहते हैं कि हे विदेहवंश कमलभास्कर ! मेरी कृपा से आप अपने सर्वोत्कृष्ट अभीष्ट को शीघ्र ही प्राप्त करेंगे । आपकी प्रशंसनीय पुण्यमयी कीर्ति महात्माओं के द्वारा चिरकाल तक गाने के योग्य बन जायेगी[4]।

इसी प्रकार इस महाकाव्य में ऐसे अनेक सन्दर्भ मिलते हैं जहां जनक के महाज्ञानी होने का पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध होता है ।

जनक के प्रजापालक धर्मरूप नरपति होने का स्पष्ट संकेत ४६,५० वें अध्यायों में उपलब्ध होता है । ४६ वें अध्याय में जब ब्रह्मर्षि वशिष्ठ दशरथ को

१- राजन् ! विवेकसिन्धोस्ते स्मृतिर्नो हृदि सर्वदा ।
ज्ञानप्रसङ्गसमये समुदेति सुखावहा ॥
- जा० च०, २६ । २६

२- दृष्ट्वा ज्ञानपराकाष्ठां तव योगीन्द्रसत्तम ।
शक्नुमो नैव तरितुं कथञ्चिद्विस्मयोदधिम् ॥
- वही, २६।३०

३- तपस्तेपे ततो घोरमुर्ध्वबाहुरतन्द्रित: ।
अष्टवर्षाणि शुद्धात्मा तदा प्रीतोऽभवद्धर: ॥
- वही, ३०।१५

४- सिद्धिं परामेष्यसि मत्प्रसादादिष्टां विदेहान्वयपद्ममानो !
कीर्तिश्च ते पुण्यमयी प्रशस्या गेया महद्भिर्भविता चिराय ॥
- वही, ३० ।३३

प्रजाविषयक दु:ख को जनक से निवेदित करते हैं तो उस समय जनक स्पष्ट कहते हैं कि हे प्रभो ! आपकी आज्ञा इन्द्र, वरुण, कुबेर आदि लोकपालों के लिये शिरोधार्य है अतएव उसका अनादर करके मैं कभी भी इस लोक में अपना कल्याण नहीं देखता, जिस साधन से प्रजा का परिताप दूर हो मुझे भी वही रुचिकर है। क्योंकि राजा का यह कर्तव्य है कि पुत्रवत् वह अपनी प्रजा का निरन्तर पालन करे और सदैव प्रजा के सुख से ही सुखी एवं दु:ख से दु:खी रहने का अनुभव करे[1]। मनु के द्वारा कहा हुआ लोक में राजाओं के लिये भगवत धर्म से युक्त प्रजापालन रूपी यह धर्म, भोग, मोक्ष दोनों को ही प्रदान करने वाला है[2]। मेरे लिये तो मिथिलावासी प्रजाजन एवं अयोध्यावासी प्रजाजन दोनों ही समान रूप से सर्वात्मना पालनीय हैं, रक्षणीय है[3]।

इसी प्रकार ५० वें अध्याय में जब कोशलेन्द्र दशरथ जनक से विदायी मांगते हैं तो मिथिलेश्वर जनक स्पष्ट कहते हैं कि हे राजन् ! प्रजेश्वरों के धर्म को विचारकर मुझे अब आपको रोकना उचित नहीं लग रहा है क्योंकि आप लोगों के वियोग से अयोध्या की प्रजा शोकाकुल है अतएव यहां निवास करने पर आप एवं आपके प्रजाजनों को जो कष्ट हुआ तदर्थ मैं क्षमा प्रार्थी हूं[4]।

१- पालयेत्सततं प्रजा राजा पुत्रबुद्ध्या निरन्तरम् ।
प्रजासुखेन सुखित: प्रजादु:खेन दु:खित: ।।
- जा० च०, ४६।२३

२- अ००००० प्रजापालनधर्मोऽयं नरेन्द्राणां मनूदित: ।
सर्वसिद्धिकरो लोके भगवद्धर्मसंयुत: ।।
- जा० च०, ४६।२४

३- जा० च०, ४६ । २५

४- प्रजेश्वराणां च विचार्य धर्मं न वारणायाऽस्मि समानमेव: ।
क्षमां प्रजानि तवसु कष्टं यदत्र वासेन सुदुर्लभितस्ते ।।
- वही, ५० । ३५

इन सभी उदाहरणों से सीरध्वज जनक के प्रजापालक धर्मज्ञ नरपति होने का स्पष्ट संकेत मिलता है ।

जनक की आदर्श मित्रता का निदर्शन जानकी चरितामृतम् के ३१, ४९ एवं ५० वें अध्यायों में स्पष्ट रूप से वर्णित है । ३१ वें अध्याय में कुलगुरु शतानन्द के कथनानुसार काशी नरेश, मगध नरेश (रोमपाद), केकय नरेश, कोशल नरेश आदि अनेक राजाओं के साथ सीरध्वज जनक की अभिन्न मैत्री का स्पष्ट उल्लेख मिलता है[१] । परन्तु कोशलेश्वर दशरथ के साथ उनकी मैत्री सर्वोपरि है ।

४९ वें एवं ५० वें अध्याय में कोशलेश्वर दशरथ के साथ जनक की अप्रतिम मैत्री का सविस्तर वर्णन किया गया है । उसी सन्दर्भ में कोशलेश्वर दशरथ जनक की मैत्री की प्रशंसा करते हुये स्पष्ट करते हैं कि हे राजन ! आपके यहां हमें जो सुख मिला वह तो इन्द्रलोक में देवराज इन्द्र के साथ भी नहीं मिला है[२] । इस प्रकार कहकर दशरथ एवं जनक परस्पर आलिंगन बद्ध हो जाते हैं । पुनश्च जनक अपने भाइयों सहित दशरथ को प्रणाम करते हैं तथा रामादि राजकुमारों को प्रेमातुर होकर बार-बार गले से लगाते हैं[३] ।

इन सभी तथ्यों से सीरध्वज जनक के आदर्श मैत्री का स्पष्ट निदर्शन मिलता है ।

१- जा० च०, ३१। २५-३२

२- वही , ५० । ३६

३- इत्येवमुक्तो मिथिलाधिराजः सत्याधिराजेन च सानुरागम् ।
प्रणम्य तं दाशरथीनुपेत्य प्राहेति संश्लिष्य मुहुर्मुहुस्तान् ॥
पुनर्विदेहः सह बन्धुभिः स्वैः श्रीकोशलेन्द्रं प्रणनाम भक्त्या ।
श्रीराघवपुत्रानुरसा निगृह्य प्रेमातुरोऽभूत्पुनरेव राजा ॥

— वही, ५० । ३७, ४९

जानकी चरितामृतकार ने जनक को जिन अनेक रूपों में रूपायित किया है उनमें उनका आदर्श पितृत्व सर्वथा अप्रतिम है । जनक के आदर्श पितृत्व की उपस्थापना महाकाव्य के २८, २९, ३०, ३१, ३२, ४१, ४६, ४८, ५०, ६६ वें आदि अध्यायों में स्पष्टरूप से देखी जा सकता है ।

२८ वें अध्याय में राम को पुत्र रूप में प्राप्त करने के लिये उनके श्वसुर के रूप में अपना पद रिक्त देखना तथा तदर्थ सर्वेश्वरी सीता को पुत्रीरूप में प्राप्त करने की ओर चिन्तित होना, तन्निमित्त २९ वें अध्याय में अगस्त्यादि ऋषियों से अपनी मनोव्यथा निवेदित करना, ३० वें अध्याय में ऋषियों के परामर्शानुसार सर्वेश्वरी सीता को पुत्रि रूप में प्राप्त करने हेतु भगवान आशुतोष की आठ वर्ष तक घोर उपासना कर उनसे अभिष्ट वरदान पाना, ३१ वें तथा ३२ वें अध्यायों में महर्षि शतानन्द से पुत्रेष्टि यज्ञ के सम्बन्ध में परामर्श करके उन्हीं की अध्यक्षता में पुत्रेष्टि यज्ञ करना और यज्ञान्त में अयोनिजा सीता का यज्ञवेदी से आविर्भूत होकर पुनश्च जनक की प्रार्थनानुसार शिशुरूप में सीता की उपस्थिति, तदनन्तर हर्षविह्वल जनक का सीता को अपनी गोद में उठा लेना, ४१ वें अध्याय में सीता आदि के नामकरण के सन्दर्भ में कुलगुरु शतानन्द को बुलाना व उनके द्वारा सीता, उर्मिला, लक्ष्मीनिधि आदि सभी का यथोचित नामकरण किया जाना, ४८ वें अध्याय में रामादि दशरथ कुमारों को अपने साथ भोजन कराना, ५० वें अध्याय में रामादि का बारबार आलिंगन करके उन्हें विदा करना । ६६ वें अध्याय में सीता राम का प्रतिज्ञानुसार विवाह निश्चित करना आदि ऐसे सन्दर्भ हैं जिनमें प्रतिपद क वात्सल्य रस से सराबोर दिखायी देता है ।

निष्कर्षत: जानकी चरितामृतकार ने सीरध्वज जनक को महाज्ञानी प्रजापालक धर्ममूर्ति नरेश, आदर्श मित्र एवं आदर्श पिता के रूप में विशेषत: रूपायित करने का सफल प्रयास किया है जिनमें जनक का आदर्श पितृत्व सर्वथा स्पृहणीय है, परमपावन है ।

शतानन्द -

जानकी चरितामृतम् महाकाव्य में शतानन्द अनेक रूपों में चित्रित किये गये हैं । कहीं वे महायोगी के रूप में उपलब्ध होते हैं तो कहीं वे महाप्राज्ञ के रूप में, और कहीं-कहीं आदर्श राजपुरोहित के रूप में ।

महर्षि शतानन्द महर्षि गौतम एवं अहिल्या के पुत्र के रूप में जानकी चरितामृतम् में अनेकत्र उल्लिखित पाये जाते हैं । शतानन्द को स्वयं राजर्षि सीरध्वज जनक समस्त सिद्धियों को प्रदान करने वाले महायोगी के रूप में स्वीकार किया है । यही कारण है कि ३२ वें अध्याय में पुत्रेष्टि यज्ञ प्रारम्भ करने के पूर्व शतानन्द से स्पष्ट कहते हैं कि हे भगवन् । प्राणियों को किसी भी साधन से न प्राप्त होने योग्य सारी सिद्धियां भी आपकी कृपा दृष्टि से मुक्ति करस्थ सी अत्यन्त सुलभ प्रतीत हो रही है[1]। ३५ वें अध्याय में जब चन्द्रभानु कन्या चन्द्रकला अपनी आँखें नहीं खोल रही थीं तो सीरध्वज जनक के अनुज चन्द्रभानु ने कुलगुरु शतानन्द को बुलाकर जब उनसे चन्द्रकला की स्थिति निवेदित की तो योगी सम्राट् महर्षि शतानन्द ने ध्यान योग के माध्यम से चन्द्रकला के मनोभाव का परीक्षण कर[2] चन्द्रभानु से स्पष्ट कहते हैं कि हे महाभाग । जो सर्वेश्वरी सीता यज्ञवेदी से प्रकट हुयी हैं उन्हीं की प्रधान सखी ये चन्द्रकला आपके यहाँ जन्म ली है[3]। यही कारण है कि ये सर्वप्रथम सर्वेश्वरी सीता का ही दर्शन करना

१- भगवंस्त्वत्कृपादृष्ट्या ह्यसाध्याः सिद्धयो मम ।
अत्यन्तसुलभा भान्ति करस्था इव देहिनाम् ।।
- जा० च०, ३२ ।२

२- स शतानन्दो महात्मा ध्यानयोगेन योगिराट् ।
अनुभूतं तदा भावं चन्द्रकलाया वै शिशोः ।।
- वही, ३५ । ३

३- वही, ३५ । ४

चाहती हैं और उन्हीं का उच्छिष्ट दूध पीना चाहती हैं । इसलिये आप सर्वेश्वरी सीता और उनकी माँ महारानी सुनयना को शीघ्र बुला लीजिये । सर्वेश्वरी सीता के आने पर ही आपकी पुत्री चन्द्रकला आंख खोलेगी और दुग्धपान करेगी[१] ।

यतीन्द्रसत्तम मिथिलेश्वर सीरध्वज जनक का कुलगुरु होना, अनेकत्र शतानन्द के लिये महायोगी, योगीन्द्र योगिराट् जैसे विशेषणों का प्रयोग आदि स्वयं इतने प्रबल तथ्य हैं जो महर्षि शतानन्द के महायोगीत्व का प्रबल प्रमाणन है ।

महर्षि शतानन्द के महाप्राज्ञ रूप का निदर्शन २८, २९, ३१ तथा ३२ वें अध्यायों में सविस्तर उपलब्ध होता है, जहां महामुनि, महाप्राज्ञ महर्षि शतानन्द ने सीरध्वज जनक के पुत्रेष्टि यज्ञ के लिये समस्त दायित्व को अपने ऊपर लेकर आद्यन्त यथोचित निर्वहन किया है ।

२८ वें अध्याय में मिथिलेश्वर जनक का महामुनि शतानन्द को बुलाकर उनसे अगस्त्यादि आहूत मन्त्रियों को सादर अपने राजप्रासाद में, ले आने का निवेदन करना,[२] २९ वें अध्याय में शतानन्द द्वारा अगस्त्य आदि महर्षियों को स्वागत सहित जनक की राजसभा में ले जाना,[३] ३१ वें अध्याय में मिथिलावासियों

१- तदादिदर्शनं तस्या इयं राजंश्चिकीर्षति ।
तदुच्छिष्टपय: पानं हेतुरन्यो न विद्यते ।।
महाराज्ञ्या: समाह्वानमत: कार्यमिह त्वया ।
शोभितायां वरायुश्या सच्चिदानन्दरूपया ।।
- बा० च०, ३५ ।५,६

२- बा० च०, २८ । ७७-८२

३- वही, २९ । १-१७

एवं जनक के द्वारा महामुनि शतानन्द से पुत्रेष्टि यज्ञ शीघ्र सम्पन्न कराने के लिये निवेदन,[1] शतानन्द द्वारा प्रमुख राजाओं एवं महर्षियों को निमन्त्रण देने, एवं तदनुकूल उनकी आवास व्यवस्था करने के साथ-साथ यज्ञार्थ समस्त अपेक्षित उपकरणों के मंगवाने के लिये जनक को आदेश देना,[2] ३२-वें अध्याय में जनक एवं अगस्त्यादि महर्षियों के अनुरोध से शतानन्द द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ की अध्यक्षता स्वीकार कर अत्यन्त भव्य समारोह के साथ जनक एवं सुनयना को यज्ञार्थ दीक्षित करके यज्ञ प्रारम्भ करवाना,[3] और यज्ञान्त में सर्वेश्वरी सीता का प्रादुर्भाव आदि ऐसे तथ्य हैं जिनसे शतानन्द की महाप्राज्ञता की परमपरिपुष्टि होती है।

शतानन्द के आदर्श राजपुरोहित होने का निदर्शन तो सामान्यतः २८ वें अध्याय से लेकर महाकाव्य के अन्तिम अध्याय तक न्यूनाधिक रूप में मिलता ही रहता है। फिर भी २८, २९, ३१, ३२, ३४, ४१, ४२, ५०, ८३, ९३, ९६ आदि अध्यायों में विशिष्ट रूप से वर्णन मिलता है।

निष्कर्षतः जानकी चरितामृतम् में ऋषि शतानन्द को महायोगी, महाप्राज्ञ एवं आदर्श राजपुरोहित के रूप में चित्रित करने का सफल प्रयत्न किया गया है जिसमें उनका आदर्श राजपुरोहितत्व सर्वोपरि है।

१- तच्छ्रुत्वा हर्षिताः सर्वे शतानन्दमथाब्रुवन्।
कारयाशु महायज्ञं सन्मुहूर्ते क्रियार्थं च ॥
– जा० च०, ३१।४

२- वही, ३१। ६-२८

३- अनुमत्या महर्षीणां शतानन्दो महामुनिः।
यज्ञं प्रवर्तयामास- ऋत्विक्कं वेदपारगः ॥

– वही, ३२। १२

वशिष्ठ -

जानकी चारितामृतम् महाकाव्य के अन्तर्गत ब्रह्मर्षि वशिष्ठ विशेष रूप से कौशलेश्वर दशरथ के कुलगुरु के रूप में उपस्थापित कराये गये हैं । मध्ये मध्ये इनकी महाप्राज्ञता, योगीन्द्रसमता, धर्मनियामकता आदि का भी यत्र-तत्र संकेत किया गया है ।

जानकी चरितामृतम के ३१, ४८, ५०, ६६,६८ आदि अध्यायों में पदमनाभपुत्र ब्रह्मर्षि वशिष्ठ का न्यूनाधिक रूप में वर्णन मिलता है । ३१ वें अध्याय में मिथिलेश्वर जनक के पुत्रेष्टि यज्ञ के निमन्त्रण पर कौशलेश्वर दशरथ सहित वशिष्ठ का मिथिला आना, राजर्षि जनक के निवेदन पर उनकी यज्ञ भूमि का निरीक्षण करना, ४८ वें अध्याय में दशरथ का सुमन्त्र के द्वारा प्रजा के समाचार को सुनकर रामादि के वियोग में प्रजाजनों के दु:खी होने से स्वयं दु:खी होना और उसे कुलगुरु वशिष्ठ को सूचित करना, पुन: वशिष्ठ का दशरथ को आश्वासन देने के उपरान्त मिथिलेश्वर जनक से दशरथ के प्रजा परिताप को निवेदित करके उनसे दशरथ की विदाई के लिये कहना, ५० वें अध्याय में वशिष्ठ द्वारा शतानन्द को दशरथ के वियोगजन्य दु:ख से जनक का परिताप दूर करने के लिये अनुरोध करना तथा शतानन्द द्वारा उनकी आज्ञा को शिरोधार्य कर उनकी अनुकम्पा की याचना करना, ६६ वें अध्याय में दशरथ द्वारा सीता-राम-विवाह सम्बन्धी जनक की पत्रिका को कुलगुरु वशिष्ठ को समर्पित करना और वशिष्ठ का तदर्थ उन्हें हार्दिक बधाइयाँ देकर विवाहार्थ तैयारी-करने का आदेश देना तथा पुन: शुभ मुहूर्त में-बरातियों के सहित मिथिला के लिये प्रस्थान करना, ६८ वें अध्याय में सीता-राम,उर्मिला-लक्ष्मण, माण्डवी-भरत एवं श्रुतिकीर्ति-शत्रुघ्न का सविधि विवाह सम्पन्न कराना, १०५ वें अध्याय में जनक,शतानन्द आदि से विदा होकर पुन: वर-वधुओं सहित बरातों एवं दशरथ को लेकर अयोध्या वापस आना आदि विभिन्न प्रसंगों में ब्रह्मर्षि वशिष्ठ के बहुआयामी व्यक्तित्व को न्यूनाधिक रूप में चित्रित करने का महाकवि ने प्रयास किया है किन्तु फिर भी इनमें उनका आदर्श कुलगुरुत्व सर्वाधिक स्पृहणीय है ।

—

काव्य-सौन्दर्य -विवेचन :

सामान्यत: विशुद्ध काव्यशास्त्रीय दृष्टिकोण से तात्पर्य उसके अलंकार से माना जाता रहा है जैसा कि आचार्य कुन्तक ने 'सौन्दर्यमलंकार:' कहकर काव्य के सौन्दर्य मात्र को अलंकार की ही परिधि में आपातत: रखा । परन्तु यह दृष्टि क्षोदक्षम-दृष्टि नहीं, क्योंकि अलंकार यदि स्वयं में सौन्दर्य ही है तो वह सौन्दर्य का उत्कर्ष वर्धक हेतु कैसे हो सकता है ?

एक ही पदार्थ का स्वयं का जनक होना और उसका उत्कर्षक हेतु होना कारण कार्य सिद्धान्त के द्वारा कथमपि सम्भव नहीं हो सकता । दूसरे सभी काव्यशास्त्रीय एक स्वर से अलंकार को काव्य के सौन्दर्य का उत्कर्षक हेतु ही मानते हैं । यही नहीं, स्वयं आचार्य कुन्तक ने भी अन्यत्र अलंकार को मूलत: सौन्दर्य का उत्कर्षक हेतु स्वीकार किया है । यही कारण है कि आधुनिक समालोचकों ने अलंकार को काव्य-सौन्दर्य न मानकर इसे काव्य-सौन्दर्य का उत्कर्षक हेतु ही स्वीकार किया है । ऐसी स्थिति में काव्य-सौन्दर्य और अलंकार का भेद स्वत: स्पष्ट हो जाता है ।

आधुनिक समालोचकों के मत में काव्य-सौन्दर्य से अभिप्राय किसी काव्य में वर्णित उसके विविध वर्ण्य-विषय और उनके प्रस्तुतीकरण की शैली से है तथा अलंकार से तात्पर्य इस काव्य-सौन्दर्य को उत्कर्ष की चरम सीमा पर पहुंचाने वाले हेतु से है ।

काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से जानकी चरितामृतम् महाकाव्य नि:सन्देह एक सफल महाकाव्य कहा जा सकता है, क्योंकि किसी भी महाकाव्य के बहुआयामी वर्ण्य-विषय को चारुतम रूप में उपन्यस्त करने की जितनी सफलता की अपेक्षा की जाती है जानकी चरितामृत कार उससे कुछ अधिक ही सफल है । जानकी चरितामृतम् के काव्य-सौन्दर्य के प्रमुख मानक बिन्दुओं में ईश्वरावतारवाद, ज्ञान-भक्ति, वर्णव्यवस्था, आश्रम व्यवस्था, संस्कार, तप, व्रत, प्रकृति-चित्रण, बालक्रीडा, प्रेमचित्रण, चिरवनाट्य क्रीडा, रासक्रीडा,

राजवंशावलि, ज्योतिष आदि विविध शास्त्रीय चिन्तन इत्यादि विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिनकी संक्षिप्त विवेचना क्रमशः प्रस्तुत की जा रही है ।

जानकी चरितामृतम् महाकाव्य में ईश्वरावतारवाद का उल्लेख सामान्यतः तो आद्यन्त उपलब्ध होता है फिर भी इसका विशेष वर्णन ७, २७, २८,३२ आदि अध्यायों में देखा जा सकता है । सप्तम् अध्याय में जीवों के कल्याणार्थ साकेत धाम में राम एवं सीता का परस्पर वार्तालाप, बिना किसी अपेक्षा के अपनी अहैतुकी कृपा से जीवों को दिव्य सुख प्रदान करने के निमित्त सर्वेश्वर राम का मनु एवं शतरूपा के अवतार कोशलेश दशरथ एवं साम्राज्ञी कौशल्या के पुत्र-रूप में अंशों सहित अवतार लेने का निर्णय, तथा सर्वेश्वरी सीता का सीरध्वज जनक की यज्ञवेदी से उनकी पुत्री के रूप में अवतार लेने का निर्णय,[1] २७ वें अध्याय में लक्ष्मण आदि अंशों सहित सर्वेश्वर राम का दशरथ के यहां पुत्र के रूप में अवतार लेना, देवर्षि नारद का महाभाग दशरथ से स्पष्टतः यह निवेदित करना कि जिस राम को आप अपना पुत्र समझ रहे हैं वे ब्रह्मादि त्रिदेवों के द्वारा भी वन्दनीय अनन्त ब्रह्माण्ड नायक पूर्ण परात्पर ब्रह्म ही हैं तथा लक्ष्मण आदि शेष इनके तीनों अनुज इन्हीं के अंश से आविर्भूत इन्हीं के आश्रित रहने वाले हैं और ये सब भी त्रिदेवों द्वारा[2] वन्दनीय हैं । अतएव आप इन सबकी सेवा-शुश्रूषा ईश्वरीय भावना से ही करें । २८ वें अध्याय में महाज्ञानी राजर्षि जनक का राम को पूर्णपरात्पर ब्रह्म का अवतार मानना, उन्हें श्वसुर के सम्बन्ध से प्राप्त करने की इच्छा करना तथा[3] तदर्थ सर्वेश्वर किशोरी सीता को पुत्री-रूप में प्राप्त करने के लिये यत्न करना, ३२ वें अध्याय में सीरध्वज जनक का कुलगुरु शतानन्द की अध्यक्षता में पुत्रेष्टि यज्ञ प्रारम्भ करना तथा यज्ञ-वेदी से सर्वेश्वरी सीता का सहचरियों सहित प्रकट होना,[4]

१- जा० च०, ७।३८, ४५

२- वही, २७।१७, १८,२९,३०,३१, ३५

३- वही, २८।५-१२

४- वही, ३२। ४२-४६

राजर्षियों, ब्रह्मर्षियों एवं देवताओं द्वारा निखिल ब्रह्माण्ड नायिका सर्वेश्वरी सीता-का स्तवन[1] आदि ऐसे स्थल हैं जहां ईश्वरावतारवाद की चरमपरिपुष्टि देखी जा सकती है ।

जानकी चरितामृतम् महाकाव्य में ज्ञानभक्ति एवं कर्म की तापमय निवारिणी त्रिवेणी का पावन दर्शन किया जा सकता है । यूं तो जानकी चारितामृतम् महाकाव्य में ज्ञान-चर्चा अनेकत्र बिखरी पड़ी है किन्तु फिर भी प्रथम, द्वितीय, सप्तम् आदि ऐसे अध्याय हैं जिनमें मर्त्यलोक के प्राणियों के लिए जीवनोपयोगी सांसारिक दु:खों से मुक्ति पाने के लिए ज्ञान साधना की चर्चा अधिक स्पष्ट रूप से की गयी है । जानकी चारितामृतम् महाकाव्य के प्रथम अध्याय में जब कात्यायनी ब्रह्मर्षि याज्ञवल्क्य से यह पूंछती है कि प्रभो ! जब यह जीव स्वयं सच्चिदानन्द परब्रह्म का अंश ही है और शास्त्र भी उसे स्वरूपक ज्ञान तथा कर्तव्य ज्ञान कराते रहते हैं तो फिर वह कौन सा कारण है जिससे जीवन जन्म एवं मृत्यु से निरन्तर पीड़ित रहता है ?[2] पुनश्च जीव को जन्म-मरण से किस प्रकार मुक्ति मिल सकती है ?[3] कात्यायनी के उक्त प्रश्नों के उत्तर में महर्षि याज्ञवल्क्य ने जो ज्ञान मीमांसा प्रस्तुत की है वह सर्वथा स्मरणीय है । याज्ञवल्क्य कहते हैं[4] कि जीव के नाना योनियों में जन्म-मरण का मुख्य कारण उसका मोह ही है । माता-पिता, बन्धु-बान्धव,पुत्र-कलत्र

१- जा० च०, ३२ । ४७-५६

२- परब्रह्मांशभूतो पि जीवो यं केन हेतुना ।
पीड्यते जन्ममृत्युभ्यां बोध्यमानो पि शास्त्रै: ।।
- वही, १। २०

३- वही, १।२१

४- नाना योनिषु जीवस्य जन्ममृत्योश्च कारणम् ।
मोह एव परो ह्येतत्स्फुटं निबोध मे ।।
- वही, १। २४

मित्रादि जो कल्पना मात्र से सम्बन्धी के रूप में स्वीकार कर लिये हैं उनमें आसक्त होना और जो पारमार्थिक रूप से माता-पिता बन्धु-मित्र आदि सब कुछ हैं उस सर्वेश्वर, सर्वशक्तिमान्, अघटित घटना पटीयान्, सर्वगत, सर्वव्यापी, परात्पर परमेश्वर से अपने सम्बन्ध का ज्ञान न होना ही मोह[1] का स्वरूप है और इस मोह की उत्पत्ति का कारण त्रिगुणात्मिका माया ही है । इसलिये त्रिगुणात्मिका माया से मुक्त होने के लिये जीव[2] को मायापति सर्वेश्वर परात्पर ब्रह्म सीताराम की शरण में जाना चाहिये ।

अनेक जन्मों के शुभ[3] संस्कारों से सन्तों के सत्संग और शास्त्रों के श्रवण से ज्ञान प्राप्त होता है, उस ज्ञान के माध्यम से अविद्याजन्[4] भौतिक सुख को परिणामदुःखद जानकर जीव को उससे विरक्त रहना चाहिये, तदनन्तर सीताराम की मुद्राओं से युक्त उर्ध्वपुण्ड्र से शोभित मस्तक युगल तुलसी की कण्ठी से सुशोभित कण्ठ सीताराम के रहस्य को जानने वाला जीव समस्त छल प्रपंचों से दूर होकर अष्टयाम सेवापरायण होकर कल्याणार्थी अपने गुरु से लोकोत्तर

१- असत्सम्बन्धसम्बन्धः सत्सम्बन्धानभिज्ञता ।
गुणत्रयात्मिका माया तद्बीजमवधार्यताम् ॥
— बा० व०, १।२५

२- तस्या निवृत्तिकामस्तु मायेशौ शरणं व्रजेत् ।
मायेश्वरौ विजानीहि सीतारामौ परात्परौ ॥
— वही, १।२६

३- अनेकजन्मसंस्कारैः सतां सत्सङ्गतस्तथा ।
शास्त्राणां श्रवणाच्चापि प्राकृतं ज्ञानमाप्यते ॥
— वही, १।२७

४- अप्यविद्यामयं तेन सुखं यद् दृश्यते भुवि ।
केवलं दुःखरूपं तन्मन्तव्येह निवृत्तये ॥
— वही, १।२८

ज्ञान प्राप्त करें।[1] उस अलौकिक ज्ञानप्राप्ति के उपरान्त अपने स्वरूप और परात्पर परमेश्वर के सीताराम के स्वरूप का अनुभव और उसकी प्राप्ति के लिये सम्यक् उत्कण्ठा, वैराग्य प्रेमादि उदात्त गुणों का निरन्तर विकास करें,[2] और उसके माध्यम से जन्ममरण निवारक विशुद्ध वैराग्य प्राप्त करके लोकोत्तर ज्ञान की कक्षा में रहने का अभ्यास करे। ऐसे ही अलौकिक ज्ञान से सम्पन्न ज्ञानी के हृदय में उसके परमाराध्य परमेश्वर व्यक्त रूप से साक्षात् अनुभव का विषय बनते हैं।[3] उस समय लोकोत्तर ज्ञान सम्पन्न साधक को चाहिये कि वह ऐसा चिन्तन करे कि मैं देह, प्राण, मन,इन्द्रिय आदि सभी से परे हूं, न मेरा कोई वर्ण है, न मनुष्य हूं और न ही देवता। मैं तो उपाधि रहित परब्रह्म का एक अंश मात्र हूं।[4] उस सच्चिदानन्द घन का अंश होने के कारण मैं भी त्रिगुणातीत, मायातीत, सच्चिदानन्द स्वरूप तुरीयावस्था से युक्त महा-कारण शरीर (वासनातीत) में समाया हुआ हूं।[5] ऐसी भावना रखने वाला

१- बा० ब०, १। २६-३२

२- भवत्यत्यन्तवैराग्यं विशुद्धं भव-बाधकम् ।
विज्ञानस्यदशायाश्च परीक्षेयं मयोदिता ।।
- वही, १।३३-३५

३- ततो विज्ञानिनस्तस्य निर्मले हृदि शोभने ।
श्रीसीतारामसम्बन्धाविकारो भासते ध्रुव: ।।
- वही, १। ३६

४- चेतसा चिन्तयेदित्थं नित्यसम्बन्धमात्मन: ।
नाहं देहो न मे प्राणा न मनोऽहं न चेन्द्रियम् ।।
न वर्णी नाश्रमी चाहं नो मनुष्यो न देवता ।
निरुपाधिकतत्त्वस्याशीयोऽस्मीति केवलम् ।।
- वही, २।१-२

५- विशुद्धसच्चिदानन्दस्वरूपो गतमायक: ।
तुरीयावस्थया युक्तो महाकारणविग्रह: ।।
- वही, २।३

ज्ञानी साधक शनै: शनै: आराध्यमय होता हुआ आराध्य से नित्य सम्बन्ध स्थापित करता हुआ यावज्जीवन जीवनमुक्त की अवस्था में रहता है, तदुपरान्त विदेह मुक्ति के साथ आराध्य परात्पर परमेश्वर के परमधाम को प्राप्त कर सदैव के लिये जन्ममरण के बन्ध से मुक्त हो जाता है[1]।

इसी प्रकार ज्ञान से सम्बन्धित चर्चायें महाकाव्य के विविध अध्यायों में देखी जा सकती हैं।

जानकी चरितामृतम् महाकाव्य में भक्ति सिद्धान्त की विशेष रूप से उपस्थापना की गयी है। यही कारण है कि यह महाकाव्य भक्तिप्रधान महाकाव्य है। महा काव्यकार ने अपने इस महाकाव्य में भक्त का भगवान के अथवा आराधक का अपने आराध्य के साथ जो सम्बन्ध भक्ति की भूमिका में सम्भाव्य है उन सभी सम्भाव्य सम्बन्धों की न केवल स्पष्ट सविस्तर चर्चा क ही की है प्रत्युत उसके व्यावहारिक पक्ष पर भी विशेष रूप से प्रकाश डालने का सफल प्रयास किया है।

जानकी चरितामृतम् के द्वितीय अध्याय में भक्त का अपने भगवान अथवा आराध्य का अपने आराधक के प्रति होने वाले सम्बन्ध की स्पष्ट रूप से दास्य, सख्य, वात्सल्य, एवं शृङ्गारिक (माधुर्य) चार भेद करके इसी के माध्यम से भक्ति के भी चार भेद निरूपित किये गये हैं[2]।

दास्य भक्ति उसे बताया गया है जहाँ आराधक अपने को अपने

१- यथा बद्धो भवेन्मुक्तो नित्यसम्बन्धबन्धनै: ।
तथा मुक्तो भवेद्धीमान् नित्यसम्बन्धसाधनै: ।।
- जा० च०, २।५

२- स दास्य-सख्य-वात्सल्य शृङ्गारैर्वर्णितो बुधै ।
विभक्तो विविधाचार: सम्बन्धो नित्यधामद: ।।
- वही, २।७

आराध्य का दास मानकर तदनुकूल परमाराध्य भगवान की परिचर्या में अहर्निशि तत्पर रहता है । जानकी चरितामृत कार ने दास्य भक्ति की कोटि में आने वाले भक्तों के अधिकार भेद से दो भेद स्वीकार किये हैं - सर्व सेवाधिकारी भक्त एवं बाह्य सेवाधिकारी भक्त[१]। सर्व सेवा-अधिकारी भक्त उन्हें कहा गया है जिन्हें अपने आराध्य भगवान की सभी प्रकार की सेवा का अधिकार प्राप्त है और जो आराध्य की जन्मभूमि में ही जन्म लेकर उनके अत्यन्त निकटस्थ हैं । बाह्य सेवाधिकारी भक्त वे हैं जो आराध्य की जन्म-भूमि में जन्म न लेकर अन्यत्र जन्म लिये हैं और जिन्हें केवल बाह्य परिचर्या का ही अधिकार प्राप्त है । उदाहरणार्थ - परात्पर परमेश्वर सीताराम को जो अपना आराध्य भगवान मानते हैं तथा जो मिथिला एवं अयोध्या में जन्म लेकर लौकिक सम्बन्ध से भी इनसे जुड़े हुये हैं और जिन्हें जन्मना इनकी सब प्रकार की सेवा करने का अधिकार प्राप्त है वे इनके सर्वाधिकारी भक्त कहलायेंगे[२]। परन्तु जो भक्त सीताराम को अपना परमाराध्य तो समझते हैं किन्तु जिन्हें न तो सब प्रकार की सेवा करने का अधिकार प्राप्त है और न ही मिथिला एवं अयोध्या में जन्म लेकर अन्यत्र जन्म लिये हैं और तदनुसार भौतिक सम्बन्धों में भी इनसे अधिक दूर हैं । फलत: जिन्हें जन्मना इनकी सर्वविधि सेवा का अधिकार भी नहीं मिला है ।

सख्य-भक्ति उसे कहा गया है जहां आराधक अपने आराध्य से सख्य सम्बन्ध स्थापित कर उसकी सदैव मित्र-रूप में आराधना एवं परिचर्या करता है । अवस्था एवं स्थान भेद से इसके भी अनेक भेद किये जा सकते हैं[३]।

१- मिथिलासम्भवा दासा: सर्वसेवाधिकारिण: ।
अपरे च तथा ज्ञेया बाह्यसेवाधिकारिण: ।।
- जा० च०, २।६-१०

२- वही, २। ११-१४

३- वही, २। २४-२५

उदाहरणार्थ - सीता की सखियां एवं सेवकरियां तथा राम के लक्ष्मण आदि अनुज, मिथिला एवं अयोध्या के अन्य राजकुमार एवं मन्त्रि-पुत्र आदि जो सीता राम से सख्य सम्बन्ध स्वीकार किये हैं वे सभी सख्य कोटि के भक्त कहलायेंगे ।

वात्सल्य-भक्ति उसे कहा गया है जहां आराधक अपने आराध्य को सन्तान के रूप में प्राप्त कर ईश्वरीय भावना से उसकी सेवा-शुश्रूषा करता है अथवा आराध्य के बाल-स्वरूप की ही उपासना करता है । उदाहरणार्थ-दशरथ एवं जनक का राम और सीता के प्रति होने वाली भक्ति वात्सल्य कोटि की भक्ति कही जायेगी[१] ।

आराध्य के प्रति आराधक का कान्तासक्तिकोटि की भक्ति शृङ्गारिक अथवा माधुर्य कोटि की भक्ति कही गयी है । इस कोटि की भक्ति में आराधक आराध्य को ही अपना सर्वस्व मानकर उसकी अन्तरंग प्रीति प्राप्त करने के लिये मानसिक, वाचिक, कायिक आदि सब प्रकार से आत्म-समर्पण कर देता है[२] । उदाहरणार्थ - सीता की स्नेहपरा, चन्द्रकला आदि सभी सखियों की राम के प्रति होने वाली भक्ति शृङ्गारिक कोटि की भक्ति है ।

१- पितरं मिथिलेन्द्रस्य साकेताधिपतेश्च वा ।
वात्सल्य-भावसम्पन्नाः स्वात्मानं भावयन्ति हि ।।
कुर्वन्ति [illegible] नित्यं मनोवाग्बुद्धिकर्मभिः ।
कार्यं तथाऽऽत्मनो यावद्धितस्ते रामसीतयोः ।।

- बा० च०, २। २८, २९

२- शृङ्गारभावसम्पन्नाः कुमार्यो निर्मिताशयाः ।
सर्वेषामधिकारिण्यो मुख्याः सख्य उदाहृताः ।।

- वही, २। ३०

श्री जानकी चरितामृतम् महाकाव्य में वर्णाश्रम व्यवस्था के सम्बन्ध में भी पर्याप्त निदर्शन प्रस्तुत किया गया है । इस महाकाव्य के ५७ वे अध्याय में सीरध्वज जनक के-सप्तावरण से युक्त राजप्रासाद में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र चारों वर्णों के पृथक्-पृथक् रूप से निवास करने का स्पष्ट उल्लेख मिलता है । यहाँ यह स्पष्ट रूप से बताया गया है कि जनक के सप्तावरण युक्त राजप्रासाद में शूद्र प्रथम आवरण में, वैश्य द्वितीय, क्षत्रिय तृतीय एवं ब्राह्मण चतुर्थ आवरण में निवास करते थे । इसके अतिरिक्त पंचम आवरण में अभ्यागत राजर्षि, ब्रह्मर्षि आदि, षष्ठ में मंत्रिगण, निकटस्थ कर्मचारी आदि और सप्तम आवरण में स्वयं अनुजों सहित सीरध्वज जनक निवास करते थे[१]। इसी प्रकार अन्यत्र भी वर्ण-व्यवस्था के सम्बन्ध में न्यूनाधिक रूप में उल्लेख मिलता है ।

जानकी चरितामृतम् में आश्रम-व्यवस्था का भी पर्याप्त वर्णन है । राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न आदि रघुवंशी राजकुमार, लक्ष्मीनिधि, गुणाकर आदि निमिवंशीय राजकुमार एवं सीता, चन्द्रकला, हेमा, क्षेमा आदि सभी निमिवंशीय राजकुमारियां जहां एक ओर ब्रह्मचर्याश्रम का प्रतिनिधित्व करते हैं वहीं दूसरी ओर दशरथ, जनक, कौशल्या, सुनयना आदि समस्त गृहस्थ नरपति गृहस्थाश्रम का प्रतिनिधित्व करते हैं । इसके अतिरिक्त वशिष्ठ, शतानन्द आदि राजपुरोहित वानप्रस्थ आश्रम का एवं अगस्त्य, विश्वामित्र, गौतम आदि संन्यास आश्रम का प्रतिनिधित्व करते हैं ।

इस प्रकार जानकी चरितामृतम् महाकाव्य में वर्णाश्रम व्यवस्था की स्वीकृति एवं उसकी यथावसर यथोचित विवेचना विभिन्न अध्यायों में देखी जा सकती है ।

जानकी चरितामृतकार ने अपने महाकाव्य के विभिन्न अध्यायों में यथावसर धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष चारों पुरुषार्थों का सम्यक् विवेचन किया

१- जा० च०, ५७ । ११-३७

है । वशिष्ठ, शतानन्द जैसे राजकुल गुरु ब्राह्मण जहां एक ओर धर्म के नियामक के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं वहीं वैश्यों सहित दशरथ जैसे राजा अर्थ एवं काम की युगपद नियामक के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं । पुनश्च रामादि चारों भाइयों का सीता, उर्मिला, माण्डवी एवं श्रुतिकीर्ति बहनों के साथ विवाह, रासलीला, जानकी का चन्द्रकला आदि अपनी सहचरियों के साथ राम को लेकर जलविहार, नवका विहार, रासलीला आदि ऐसे अनेक सन्दर्भ हैं जो स्पष्टत: काम पुरुषार्थ का निदर्शन प्रस्तुत करते हैं । इसके अतिरिक्त-महाकाव्य के काव्य-सौन्दर्य के प्रसंग में ही विवेचित ज्ञान एवं भक्ति का सिद्धान्त तथा व स्नेहपरा की राम के प्रति माधुर्य कोटि की भक्ति, सीता सखी का उद्धार, दशरथ, जनक, सुनयना, नारदादि देवर्षियों का राम को पूर्ण परात्पर ब्रह्म का अवतार मानकर उनकी उसी रूप में उपासना आदि मोक्ष नामक परम्पुरुषार्थ के परिचायक हैं ।

जानकी चारितामृतम् महाकाव्य में भारतीय संस्कारों की भी यथावसर विवेचना देखी जा सकती है । इस महाकाव्य में जन्म, नामकरण, अन्नप्राशन, विद्यारम्भ, विवाहादि विविध संस्कारों की विविध अध्यायों में अपेक्षित विवेचना की गयी है ।

२७वें, ३२ वें, ३५ वें आदि अध्यायों में जन्म संस्कार (जातक संस्कार) का स्पष्ट विवेचन किया गया है । २७ वें अध्याय में जहां राम, लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न के जन्मसंस्कार की चर्चा है वहीं ३२ वें अध्याय में सर्वेश्वरी सीता तथा ३५ वें अध्याय में चन्द्रकला, चारुशीला, लक्ष्मणा, हेमा, क्षेमा, वरारोहा, पद्मगन्धा, सुभगा, माण्डवी, श्रुतिकीर्ति, लक्ष्मीनिधि गुणाकर आदि मिथि वंशीय राजकुमार एवं राजकुमारियों के जातक संस्कार का स्पष्ट वर्णन किया गया है ।

४१ वें अध्याय में नामकरण संस्कार का भी स्पष्ट उल्लेख मिलता है[१] । जहां सीता, उर्मिला, लक्ष्मीनिधि, श्री निधि गुणाकर आदि मिथिवंशीय राज-

---

१- जा० च०, ४१।१३-२२

कुमारियों एवं राजकुमारों का कुलगुरु शतानन्द द्वारा शास्त्रानुकूल यथोचित नामकरण किया गया है ।

३१ वें अध्याय में किशोरी जानकी और ३५ वें अध्याय में चन्द्रकला, ७० वें अध्याय में भोजनलीला आदि प्रसंगों में अन्नप्राशन संस्कार की भी झलक द्रष्टव्य है ।

५१ वें अध्याय में तो इस तथ्य का स्पष्टतः उल्लेख किया गया है कि जानकी का अन्न प्राशन संस्कार पंचम मास में हुआ था[1] ।

८१ वें अध्याय में कुलगुरु शतानन्द के निर्देशन में सर्वेश्वरी सीता का विद्यारम्भ एवं स्वल्प समय में ही समस्त शास्त्रों का ज्ञान अर्जित कर लेना तथा तदुपलक्ष्य में सीरध्वज जनक का कुलगुरु शतानन्द सहित समस्त आचार्यों, ब्राह्मणों तथा अन्य दानीय पात्रों को प्रचुर दान देकर सन्तुष्ट करना आदि ऐसे सन्दर्भ हैं जिनमें विद्यारम्भ संस्कार का स्वरूप स्पष्टतः देखा जा सकता है[2] ।

जानकी चरितामृतम् के ६४ से लेकर १०५ अध्यायों तक में राम, लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न का क्रमशः सीता, उर्मिला, माण्डवी एवं श्रुतिकीर्ति के साथ विवाह संस्कार स्पष्ट रूप से शास्त्रोल्लास पूर्वक सम्पन्न हुआ है । ६४ वें अध्याय में जहां एक ओर राम द्वारा धनुर्भंग तथा तदुपरान्त सीता द्वारा उनके कण्ठ में वरमाला समर्पण वर्णित है वहीं ६५ वें अध्याय में परशुराम-लक्ष्मण संवाद । ६६ वें अध्याय में मिथिलेश्वर जनक का दशरथ को बुलाने के लिये अपनी पत्रिका के साथ सन्देश वाहक दूत को भेजना, दशरथ का बरातियों सहित मिथिला गमन, ६७ वें अध्याय में रामादि का विवाह मण्डप-प्रवेश, ६८ वें में रामादि

१- पञ्चमे मासि संप्राप्ते तदन्नप्राशनोत्सवः ।
विहितः सर्वलोकानां परमानन्ददायकः ।।
- जा० च०, ५१ । ३

२- जा० च०, ८१ । ९-११

चारों भ्राताओं का सीता आदि चारों बहनों के साथ विवाह, ९९ वें अध्याय में उनकी कोहबर लीला, १०० वें में उनका कोहबर विश्राम, १०१ वें अध्याय में रामादि का जनवास में जाकर पुनः मिथिलेश भवन में पदार्पण, १०२ में वर-यात्रियों सहित भोजन, १०३ वें अध्याय में रामादि चारों-वरों का कोहबर गृह में विविध वैवाहिक कृत्यों को पूर्ण करना, १०४ वें अध्याय में जनकपुर के विभिन्न राजवंशीय अनुरागियों के भवन में रामादि भाइयों का विविध विधि आतिथ्य सत्कार और १०५ वें अध्याय में मिथिला से विदा होकर अयोध्या में रामादि सहित सीता आदि वधुओं का अयोध्या में प्रवेश एवं सौभाग्य रात्रि महोत्सव आदि का सविस्तर वर्णन किया गया है ।

जानकी चरितामृतम् के अन्तर्गत तपश्चर्या एवं यज्ञ संविधान का भी यथेष्ट वर्णन उपलब्ध होता है । ३० वें अध्याय में अगस्त्यादि ऋषियों के परामर्शानुसार सर्वेश्वरी सीता को पुत्री के रूप में प्राप्त करने के लिये मिथिलेश सीरध्वज जनक का देवाधिदेव महादेव भगवान आशुतोष शिव को प्रसन्न करने के निमित्त आठ वर्ष तक कठिनतम तप करना,[1] उनके एकनिष्ठ तप से प्रसन्न होकर आशुतोष शंकर का प्रकट होना, तथा जनक को सर्वेश्वरी सीता को पुत्री के रूप में प्राप्त करने[2] का अभीष्ट वरदान देना तथा स तदर्थ उन्हें पुत्रेष्टि यज्ञ करने का आदेश देना आदि जहाँ एक ओर भारतीय संस्कृति के अनुरूप आदर्श तपस्या का निदर्शन है वहीं दूसरी ओर इस महाकाव्य के ३१ वें और ३२ वें अध्याय में क्रमशः पुत्रेष्टि यज्ञ की तैयारी करके कुलगुरु शतानन्द की अध्यक्षता में विशाल महर्षि-संघ के साथ जनक का पुत्रेष्टि यज्ञ करना, तथा यज्ञान्त में यज्ञवेदी से सर्वेश्वरी सीता का सहचरियों सहित प्रकट होना सनातन धर्मानुकूल

१- तपस्तेपे ततो धीरध्वजो बाहुसमन्वितः ।
अष्टवर्षाणि युक्तात्मा तदा प्रीतो महेश्वरः ॥
— जा० च०, ३० । १६

२- वही, ३० । १६-२१

यज्ञ संविधान का साक्षात् निदर्शन है ।

यही नहीं ८९ वें अध्याय में विवेचित मिथिलेश्वर जनक का पुत्रयज्ञ भी यज्ञ संविधान का ही पूरक कहा जा सकता है ।

जानकी चरितामृतकार ने अपने महाकाव्य में यथावसर प्रकृति का भी मनोरम वर्णन किया है । इस महाकाव्य के ९९ वें अध्याय में दोला विहार के प्रसंग में वर्षाकालीन प्रकृति का हृदयग्राही चित्रण प्रस्तुत किया गया है । आकाश को मेघाच्छन्न देखकर सर्वेश्वरी सीता की प्रधान यूथेश्वरी चन्द्रकला, सर्वेश्वरी सीता एवं सर्वेश्वर राम को दोला विहार का आमन्त्रण देती हुयी कहती है कि हे सर्वेश्वरि ! रासेश्वरि ! इस समय आकाश मेघों से चतुर्दिक आच्छन्न है वे नन्हीं-नन्हीं बूंदों से अमृततुल्य जल की वर्षा कर रहे हैं, सुखप्रद शीतल-मन्द-सुगन्ध त्रिविध पवन भी चल रहा है । शस्यश्यामला, वसुन्धरा भी हरिताम्बरा सी लग रही है[1]। विभिन्न वर्णों के शुक, सारिका, आनन्दचित्त से कलनाद कर रहे हैं और अपने-अपने यूथों के साथ नृत्य कर रहे हैं[2]। कोयलें भी हर्षातिरेक में उछल कूद रही हैं । हे चन्द्रानने आर्ये ! देखो, उन्मत्त भौंरे भी विविध रंग के स्वतः पुष्पित कुञ्जों पर गुञ्जायमान हैं[3]। तथा व कमल पुष्प के मकरन्द-पान करने के लिये तत्पर हैं । लता पुष्पों एवं फलों से सुशोभित

१- आच्छादितं साम्प्रतमम्बरतलं वर्षन्ति ते मन्दतरं सुधाजलम् ।
त्रिधा निलो वाति सुखप्रदः प्रिये ! विभाति पृथ्वी हरिदम्बरावृता ।।
- जा० च०, ९९।२

२- वने मयूराः शुकसारिकाश्च विचित्रवर्णाः स्वनयन्ति हृष्टाः ।
नृत्यन्ति केचित्स्वगणैः समेता इतस्ततो धावति कोकिलश्च ।।
- वही, ९९।३

३- भृङ्गा प्रमत्ताः प्रविशन्ति कामं सरोरुहाणां मकरन्दमाये !
गुञ्जन्ति धावन्ति सुपुष्पितेषु नवकुंजेषु प्रिये ! चन्द्रमुखि ! ।।
- वही, ९९।४

होकर मन को हरण करने में पूर्ण समर्थ दिखायी दे रहे हैं और यह कलकल-निनादिनी वशिष्ठ पुत्री सरयू दसों दिशाओं में ध्वनि का विस्तार करती हुयी निर्बाध गति से विविध पुष्पों को अपने में समेटे हुये उन्मत्त होकर बहती जा रही है[1] ।

इसी प्रकार २१ वें एवं ५७ वें अध्याय में भी न्यूनाधिक रूप में प्रकृति वर्णन से सम्बद्ध अनेक हृदयावर्जक दृश्य देखे जा सकते हैं[2] ।

जानकी चरितामृतकार ने अपने महाकाव्य के विभिन्न अध्यायों में विविध विधि बाल-लीलाओं का भी सफल वर्णन किया है । ५३ वें अध्याय में किशोरी जानकी की शिशु सुलभ चन्द्रोपकरण लीला, ६६ वें अध्याय में जानकी की पिनाकोत्थापन लीला, ६७ वें अध्याय में जानकी की अपनी चन्द्रकला आदि सखियों सहित नयननिमीलन लीला, ७७ वें अध्याय में किशोरी जानकी के द्वारा अपनी सखियों के सहित की जाने वाली भोजन लीला, ७८ वें अध्याय में चन्द्रकला आदि सखियों सहित जानकी की स्नान लीला, ८० वें अध्याय में चन्द्रकला आदि सखियों, लक्ष्मीनिधि, गुणाकर आदि राजकुमारों सहित किशोरी जानकी की कन्दुक लीला आदि ऐसे स्थल हैं जहां महाकवि ने बाल लीला के सरस वर्णन में विशेष रुचि दिखायी है ।

यही कारण है कि बाल लीला के वर्णन में महाकवि को सम्पूर्ण में विशेष रूप से सफल कहा जा सकता है ।

प्रेमचित्रण के सन्दर्भ में जानकी चरितामृतकार को निःसन्देह अद्भुत सफलता मिली है । यों तो इस महाकाव्य में अनेक प्रणय सम्बन्धों का संकेत है किन्तु उनमें सर्वेश्वर राम एवं सर्वेश्वरी सीता का प्रणय सम्बन्ध सर्वोपरि है ।

१- महीरुहा: पुष्पफलै: समन्विता: कुलद्रुमा दृष्टिमतां मनोहरा: ।
विभाति दृष्टा नवचित्रपङ्क्तया प्रवाहवर्धनेन दिशो ध्वनन्ती ॥
— जा० च०, ५८ ।६

२- वही, २१ ।६-१०, ५७ ।७-१९

इस महाकाव्य के २५ वें अध्याय में अयोध्या में सर्वेश्वर राम एवं सर्वेश्वरी सीता का सखियों सहित रासलीला, पुनश्च ५८ वें एवं ६२ वें अध्याय में क्रमश: सर्वेश्वरी सीता का मिथिला में अपनी सखियों के साथ रासलीला और उसमें रासेश्वर राम की अनुपस्थिति से जानकी का खिन्न मना होकर रासलीला को अपूर्ण समझना, जानकी की मन:स्थिति से अवगत होकर प्रधान यूथेश्वरी चन्द्रकला द्वारा राम को अयोध्या से शीघ्र ही छलपूर्वक लाने के लिये आदेश देना, ५६ वें अध्याय में चन्द्रकला की सखियों द्वारा राम को गुप्त रूप से षड्यन्त्रपूर्वक मिथिला में राम का लाया जाना, ६० वें अध्याय में रसिकेश्वर राम और चन्द्रकला का संवाद, ६१ वें अध्याय में चन्द्रकला द्वारा राम और सीता का परस्पर सम्मिलन, ६२ वें अध्याय में राम और जानकी का चन्द्रकला आदि सखियों के साथ जल विहार लीला, नौका विहार लीला आदि ऐसे अनेक सरस लीला सन्दर्भ हैं जिनमें हृदया-कर्षक प्रेम चित्रण का बहुआयामी रूप सहृदयों द्वारा देखा जा सकता है ।

जानकी चरितामृतम् के १०६ वें अध्याय में विश्वनाट्यलीला का भी कन्या कुमारियों के माध्यम से महाकवि ने सफल मंचन कराया है । लीला सन्दर्भ के दृष्टिकोण से महाकवि के द्वारा उपस्थापित यह विश्व नाट्य लीला उसकी अपूर्व प्रतिभा का अपूर्व परिचायक कहा जा सकता है । इस विश्वनाट्यलीला के माध्यम से महाकवि ने उस दार्शनिक तथ्य का भी संकेत करना चाहा है जो मर्त्यलोक में जागत साधक जीवों की अन्तरंग साधना से सम्बद्ध है । १०७ वें अध्याय में उन्हीं कन्या कुमारियों के माध्यम से संक्षिप्त रामलीला का भी मंचन कराया गया है जिसमें दुराचारियों के पाप-भार से आक्रान्त वसुधा के गोरूप धारण करने से लेकर ब्रह्मादि देवों सहित उसका भार दूर करने के लिये विष्णु से निवेदन एवं तदुपरान्त उन महाविष्णु के दशरथ के यहां राम के रूप में अवतार लेने से लेकर लङ्का विजय करके अग्नि परीक्षिता जानकी सहित पुष्पक विमान के द्वारा अयोध्या वापस आने एवं राज्याभिषेक पर्यन्त की कथा का क्रमश: सफल प्रदर्शन करवाया गया है । ध्यातव्य है कि महाकवि द्वारा महाकाव्य के अन्त में रामलीला का प्रदर्शन भी एक अपेक्षित औचित्य की दृष्टि से ही करवाया गया है वह यह कि इसके माध्यम से प्रबुद्ध अथवा

सामान्य दोनों ही कोटि के पाठक राम कथा के स्वरूप से सुपरिचित हो सकें ।

जानकी चरितामृतम् के आठवें एवं नवें अध्यायों में निमिवंश वर्णन के माध्यम से रामवंशावलि का भी स्पष्ट रूप से निदर्शन प्रस्तुत किया गया है । आठवें अध्याय में विष्णु से पद्मनाभ ब्रह्मा, ब्रह्मा से मारीच, मारीच से कश्यप, कश्यप से विवस्वान्, विवस्वान् से मनु, मनु से इक्ष्वाकु, इक्ष्वाकु से निमि, निमि से मिथि की उत्पत्ति क्रमशः बतायी गयी है । पुनश्च इसी निमि वंश की परम्परा में निमि पुत्र मिथि से जनक, जनक से उदावसु, उदावसु से नन्दिवर्धन, नन्दिवर्धन से सुकेतु, सुकेतु से देवरात, देवरात से बृहद्रथ, बृहद्रथ से महावीर, महावीर से सुधृति, सुधृति से धृष्टकेतु, धृष्टकेतु से हर्यश्व, हर्यश्व से मरु, मरु से प्रतीन्धक, प्रतीन्धक से कीर्तिरथ, कीर्तिरथ से महीध्रक, महीध्रक से कीर्तिरात, कीर्तिरात से महारोमा, महारोमा से स्वर्णरोमा, स्वर्णरोमा से ह्रस्वरोमा, ह्रस्वरोमा से नृदेव, नृदेव से सीरध्वज, कुशध्वज, यशोध्वज, वीरध्वज, रिपुतापन, हंसध्वज, केकिध्वज, शुचित, यशःशाली, तेजः शाली, अरिमर्दन, विजयध्वज, महीमंगल, महाकर आदि की उत्पत्ति बताकर सीरध्वज जनक एवं उनके कुशध्वज आदि अनुजों तक की निमिवंशावली प्रस्तुत की गयी है । ९ वें अध्याय में मिथिलेश्वर सीरध्वज जनक के मातामह आदि सम्बन्धियों का परिचय दिया गया है ।

इस प्रकार इस महाकाव्य में रामवंशावली का भी दृष्टान्त रूप में वर्णन किया गया है ।

जानकी चरितामृतम् महाकाव्य में ज्योतिष, तन्त्र, संगीत, सामुद्रिकशास्त्र, वास्तुकला शास्त्र आदि अन्य विभिन्न शास्त्रों का भी न्यूनाधिक रूप में यथा स्थल निरूपण देखा जा सकता है ।

महाकाव्य के २७ वें एवं २८ वें अध्याय में देवर्षि नारद द्वारा जानकी के ३८ चरण चिह्नों एवं ४५ हस्तरेखा के चिह्नों का फल सहित वर्णन[1]

१- जा० च०, २७ । ४२-६०, २८ ।३-२४

तथा ५१ वें अध्याय में स्वयं देवता के वेश में ब्रह्मा का आगमन और उनके द्वारा भी जानकी के चरण-चिह्नों एवं हस्त रेखाओं का फल बताया जाना आदि ऐसे स्थल हैं जहां स्पष्ट रूप से ज्योतिष शास्त्र का वर्णन सविस्तार उपलब्ध होता है । ३६ वें अध्याय में जहां स्वयं आशुतोष शंकर तान्त्रिक के वेश में किशोरी जानकी के दर्शनार्थ आते हैं और अम्बा सुनयना के निवेदन पर दुग्धपान विमुख रोदन रोगग्रस्त किशोरी जानकी को तान्त्रिक वेशधारी शिव अपने तान्त्रिक उपचार से स्वस्थ करके उन्हें पुन: दुग्धपान कराते हैं । ऐसे स्थल पर स्पष्ट रूप से महाकवि ने तांत्रिक शिव के माध्यम से तन्त्र विद्या के लोकव्यापी प्रभाव को दिखाने का सफल यत्न किया है ।

५४ वें अध्याय में जहां स्वयं भगवती सरस्वती गायिका के रूप में जनक के राजप्रसाद में पहुंचकर राजमहिषी सुनयना के समक्ष अपना संगीत ज्ञान प्रकट कर अभीप्सित वर प्राप्त करती है । पुनश्च उसके माध्यम से अम्बा सुनयना की किशोरी के प्रति वास्तविक वात्सल्यता की परीक्षा करके किशोरी जानकी की स्तुति में हृदयावर्जक गेय स्तोत्र प्रस्तुत करती है[१] । ऐसे स्थल पर संगीतशास्त्र सम्बन्धी कतिपय तथ्यों का स्पष्ट उल्लेख देखा जा सकता है ।

१६वें एवं ५५ वें अध्याय में विविध प्रकार के आभूषणों का भी उल्लेख इस महाकाव्य में मिलता है । १६ वें अध्याय में जब स्नेहधरा सर्वेश्वर राम और सर्वेश्वरी सीता का अलंकरण करती हैं तो उस सन्दर्भ में वह उन्हें विविध आभूषणों से विभूषित करने का सोल्लास यत्न करती हैं । इसी सन्दर्भ में विविधविध वस्त्राभूषणों के सहित चूड़ामणि, कर्णावतंस कुण्डल, चन्द्रिका, तिलक, ग्रैवेयक, गोप, केयूर, वलय, कंकण, पादांगद, किंकिणी, २,४, ८, १६, ३२,६४,३६,५६ सौ लड़ी वाले विविध प्रकार के हार, कौस्तुभ मणि, नूपुर, अंगुलीयक आदि विविध प्रकार के बाहुज आभूषणों का स्पष्टत: उल्लेख मिलता है[२] ।

१- जा० च०, ५४ । ५६-७१

२- वही, १६ । ३५-४०

५५ वें अध्याय में जब स्वर्णकारिणी के वेश में स्वयं पार्वती किशोरी जानकी का अलंकरण करने के लिये सुनयना के पास पहुंचती है तो उस समय सुनयना के पूछने पर स्वर्णकारिणी के रूप में उपस्थित पार्वती उन्हें विविध प्रकार के आभूषणों को दिखाती हैं, इसी प्रसंग में महाकवि ने शिरोरत्न, कर्णिका (बाली) पत्रपाश्या, ग्रैवेयक, काञ्ची मेखला, कलापारसना, ऊर्मिका, किरीट, नासामणि आदि अनेक प्रकार के आभूषणों का उल्लेख किया है[१]।

इस प्रकार जानकी चरितामृतम् महाकाव्य में ईश्वरावतारवाद, ज्ञान, भक्ति, वर्णाश्रम व्यवस्था, पुरुषार्थ, संस्कार, तप, यज्ञ, प्रकृति-चित्रण, बाल लीला, प्रणय चित्रण, विश्वनवाट्यलीला, रासलीला, रामवंशावली, ज्योतिष, तन्त्र, संगीत आदि विविध शास्त्रों का यथावसर हृदयावर्जक वर्णन उसके काव्य-सौन्दर्य को एक नयी दीप्ति से मण्डित कर देता है जिसे यदि इन्द्रधनुषी दीप्ति कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी।

—

१- जा० च०, ५५ । ९७-२१

<u>रसविवेचन :</u>

भारतीय साहित्य शास्त्र में काव्यात्म मीमांसा के प्रश्न को लेकर जिन अनेक सम्प्रदायों का उल्लेख हुआ है उनमें रस सम्प्रदाय की महत्ता सर्वात्मना सदैव सर्वोपरि रही है । सभी काव्यशास्त्रकारों ने काव्यात्मभूत रस के महत्व को मुक्त-कण्ठ से स्वीकार किया है । काव्य में रस का वही स्थान एवं महत्व है जो समस्त प्राणियों के शरीर में चेतनधर्मा आत्मा का। जैसे आत्मा के अभाव में प्राणियों की शरीर-शव हो जाती है वैसे ही रस विहीन कविता या काव्य काव्य न होकर वार्ता मात्र हो जाता है । तथा च जैसे स्वस्थ शरीर में आत्मा की उपस्थिति में, उसकी जीवन्तता को सिद्ध करती रहती है साथ ही साथ आभूषण आदि किसी अन्य अलंकारों के अभाव में शरीर के सहज दीप्ति में कोई अन्तर नहीं आता ठीक उसी प्रकार जो काव्य रस से सर्वात्मना सराबोर हो उसके पोर पोर से रसधारा उच्छलित हो रही हो तो फिर-उसे अपने जीवन्तता का प्रमाण प्रस्तुत करने के लिये अलंकारादि किसी बहिरंग काव्य धर्म की कोई अपेक्षा नहीं । जिस कृती कवि की कविता ऋषिकन्या तन्वी शकुन्तला-के सदृश स्वच्छन्दता से रमणीय हो और आभीर युवती के सदृश रस की अक्षत दीप्ति से सम्वलित रस से सर्वात्मना परिप्लावित हो तो फिर उसे अपने काव्यत्व के प्रमाण के लिये किसी अन्य तत्व की कोई अपेक्षा नहीं होती ।

रस को काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकार किया गया है । आचार्य विश्वनाथ ने अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में काव्य की परिभाषा करते हुये जो यह कहा है कि 'रसात्मक वाक्य ही काव्य होता है'। (वाक्यं रसात्मकम् काव्यम्) । इससे रस की काव्यात्मकता तो स्पष्ट हो है साथ ही साथ रस का काव्य से उसके जन्म से लेकर के अन्तिम क्षण तक का जीवन पार्थक्य भी स्पष्ट है । जहाँ तक रस के स्वरूप का प्रश्न है तो वह भी बहुत कुछ स्पष्ट ही है ।

'रस' की निरुक्ति 'रस्यते इति रस:' की जाती है । जिसका अर्थ है कि जिसका आस्वादन किया जाय उसे 'रस' कहते हैं । काव्य शास्त्रीय

दृष्टिकोण से 'रस' का स्वरूप एवं आस्वादन भी बहुत कुछ स्पष्ट सा है। विभाव, अनुभाव एवं संचारि भाव से व्यञ्जनावृत्ति के माध्यम से अभिव्यक्त स सहृदयों के हृदय में विद्यमान रति आदि स्थायी भाव रस के स्वरूप में परिणत होता है। और इसका आस्वादन स्वयं सहृदय ही करता है। आचार्य विश्वनाथ रस के आस्वादन प्रकार पर विचार करते हुये स्पष्ट करते हैं कि सत्व गुण के आधिक्य से अखण्ड स्वतः प्रकाशमान, आनन्दमय, चिन्मय, वेद्यान्तर स्पर्श शून्य ब्रह्मसाक्षात्कार सदृश, अलौकिक चमत्कारकारी प्राणवाला रस सहृदय प्रमाताओं द्वारा अपने ही आकार से सर्वथा अभिन्न रूप में आस्वादन किया जाता है।

जहां तक विभावादि के स्वरूप का प्रश्न है तो वह भी सर्वथा स्पष्ट ही है। लोक में जो रति आदि का उद्बोधक भाव है वे ही काव्य में विभाव कहे जाते हैं। ये विभाव आलम्बन और उद्दीपन के भेद से दो प्रकार के होते हैं।

आलम्बन उसे कहते हैं जो अभिव्यज्यमान शृंगार आदि रस का मूलाधार होता है। तथा उद्दीपन उसे कहते हैं जो रति आदि उद्बुद्ध स्थायी भाव को उद्दीप्त करके रस दशा की ओर ले जाता है। अनुभाव उसे कहते हैं जो अपने-अपने कारणों से उत्पन्न रति आदि स्थायीभाव को बाह्य जगत में प्रकाशित करता हुआ स्वयं में कार्य रूप है। संचारी भाव उसे कहते हैं जो विशेष रूप से आभिमुख्यतः संचरण करने के कारण तथा रति आदि स्थायी भावों में कभी प्रकट और कभी तिरोहित होते रहते हैं। इन संचारी भावों की संख्या सामान्यतः निर्वेद, ग्लानि, दैन्य, श्रम, मद, जड़ता आदि मिलाकर ३३ मानी गयी है।

यह भी ध्यातव्य है कि संचारी भाव को संचारिभाव इसलिये कहते हैं कि ये रति आदि स्थायी भावों के अनुकूल उनमें संचरण करते हुये उन्हें रस दशा की ओर ले जाते हैं। संचारी भाव को व्यभिचारी भाव इसलिये कहते हैं कि इनमें यह निश्चित नहीं किया जा सकता कि अमुक अमुक संचारी भाव सदैव के लिये अमुक अमुक रसों से सम्बद्ध रहेंगे।

अनुकूल या प्रतिकूल भाव जिसे तिरोहित करने में असमर्थ रहते हैं तथा जो उन अनुकूल या प्रतिकूल भावों को अपने साथ रखता हुआ भी स्वयं सबसे अधिक स्थायी होता है और विभावादि से परिपुष्ट होकर रस दशा की ओर जाता है उसे स्थायी भाव कहते हैं । इन स्थायी भावों की कुल संख्या सम्प्रति ग्यारह स्वीकार की गयी है -- रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय, शम, स्नेह, देवविषयक रति और इन्हीं के आधार पर क्रमशः शृङ्गार, हास्य, करुणा, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत, शान्त, वात्सल्य एवं भक्ति रस की स्पष्टतः सत्ता स्वीकार की गयी है ।

जहां तक जानकी चरितामृतम् महाकाव्य में रस विवेचन का प्रश्न है तो यह प्रश्न भी बहुत कुछ सुलझा हुआ है । जानकी चारितामृतम् महाकाव्य का अंगी रस भक्ति रस है जिसका निरूपण इस महाकाव्य में सविस्तर अनेक अध्यायों में उपलब्ध होता है । जानकी चरितामृतम् के अंगीरस के रूप में भक्ति की स्वीकृति के साथ-साथ शृङ्गार, हास्य, रौद्र, अद्भुत, शान्त, वात्सल्य आदि को भी अंग रस के रूप में स्वीकार करके इनका भी यथावसर निरूपण किया गया है । अंगभूत रसों में शृङ्गार, हास्य, शान्त, भक्ति एवं वात्सल्य का विशेष स्थान है । इस प्रकार इस महाकाव्य में अंगीरस भक्ति के अतिरिक्त शृङ्गार आदि अंगभूत रसों का सफल परिपाक हुआ है ।

जानकी चरितामृतम् महाकाव्य में निरूपित इन रसों का उपेक्षित उदाहरण भी निम्नवत प्रस्तुत है ।

भक्ति रस -

त्वं हि स्वामिनि ! मे पिता च जननी विद्या तथा सेव्यदा
बन्धुर्दीनशरण्यका सुमतिदा ह्याक्ययशोदा परा ।
आधारो परमा हिता शरणदा दौर्गुण्यविध्वंसिनी
सर्वस्वं च हितैषिणी सुखनिधिर्नान्यापि न त्वां विना ॥

— जा० च०, २२ । २००

यहां वीणा सखी का सर्वेश्वरी सीता विषयक इष्ट देवानुराग 'भक्ति' का स्थायी भाव है । सर्वेश्वरी सीता आलम्बन विभाव है । स्वयं वीणा सखी आश्रय है । सर्वेश्वरी सीता की महिमा-चर्चा, साधु संग आदि उद्दीपन विभाव ।

वीणा सखी का सर्वेश्वरी सीता को माता-पिता, आचार्य सर्व-सौख्यदात्री, हितैषिणी किं वा अपना सर्वस्व समझना अनुभाव है । हर्ष, गर्व आदि संचारी भाव हैं ।

इस प्रकार इन उक्त स्थायी भाव, आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव एवं हर्षादि संचारी भावों से परिपुष्ट सर्वेश्वरी सीता-विषयक इष्ट देवानुराग भक्ति रस की चरम दशा में पहुंच चुका है ।

इसी प्रकार जानकी चारितामृतम् महाकाव्य के दसवें, ग्यारहवें, बारहवें, तेरहवें, इक्कीसवें, छब्बीसवें, उन्नतीसवें, बत्तीसवें आदि विभिन्न अध्यायों में भक्ति रस के अनेक उदाहरण अविराम रूप से देखे जा सकते हैं ।

<u>शृङ्गार रस -</u>

> आयान्तं दूरतो दृष्ट्वा मैथिली रघुनन्दनम् ।
> प्रत्युज्जगाम सा प्रेम्णा सेव्यमाना सखीजनैः ।।
>
> परस्परं तौ च निधाय कण्ठे भुजं तदा रेजतुरालिबन्धे ।
> सिंहासनस्थौ चपलाघनाभौ निरीक्ष्य सख्यो मुदितास्तदासुः ।।

<u>स्पष्टीकरण -</u> यहां राम एवं सीता के हृदय में उद्बुद्ध 'रति' शृङ्गार का स्थायी भाव है । राम और सीता परस्पर एक दूसरे के लिये आलम्बन विभाव हैं । एकान्त कंचन वन में स्थित राजनिकुञ्ज च उद्दीपन विभाव । पुलक, रोमाञ्च, आलिंगन आदि अनुभाव है । हर्ष, उत्सुकता आदि संचारी भाव ।

इस प्रकार यहां उपर्युक्त आलम्बनोद्दीपन विभाव, रोमाञ्च आदि अनुभावों, हर्षादि संचारी भावों से परिपुष्ट राम एवं सीता विषयक रति

संयोग शृङ्गार रस के रूप में पूर्णत: अभिव्यंजित हो रहा है ।

इसी प्रकार वियोग शृङ्गार का भी उदाहरण प्रस्तुत है ।

कण्ठप्रवेशाविनिवारितुकण्ठं न रत्नहारं व्यदधात्स को माम् ।
न चाङ्गरागं हि चकार वेधा यतोऽङ्गसङ्गाद्युतशातमीयाम् ।।

अहं सदा प्राणपरप्रियाया: श्रीयोगिराजेन्द्रविदेहपुत्र्या: ।
अहो न चोढाऽभवमाहि । चास्या उर: समालिङ्गनलोलचित्त: ।।

- जा० च०, ५७। ५६,६०

यहां राम की हृदयस्थ रति स्थायी भाव, सीता आलम्बन विभाव तथा राम आश्रय हैं । स्नेहपरा द्वारा जानकी के रमणीय शृङ्गारिक चरित का कथन, जानकी के विविध आभूषण तथा उनके साथ राम का जल विहार आदि का स्मरण उद्दीपन विभाव हैं । कम्प, पुलक, रोमांच, आलिंगन की व्याकुलता आदि अनुभाव हैं । स्मृति, व्यग्रता आदि संचारी भाव हैं ।

इस प्रकार यहां उपर्युक्त आलम्बन, उद्दीपन, पुलक आदि अनुभाव, स्मृत्यादि संचारी भावों से परिपुष्ट राम के हृदयस्थ 'रति' वियोग शृङ्गार के रूप में परिणित हो चुकी है ।

इसी प्रकार १६ वें, २० वें, २१ वें, २५ वें, ५८ वें, ५६ वें, ६० वें आदि अध्यायों में शृङ्गार रस के उभयपक्षों का यथावश्यक सविस्तार सफल परिपाक देखा जा सकता है ।

हास्य रस -

रामो यज्ञस्यान्तमुपुत्रकोऽध्वरायमाण घटं प्रेक्षितम् ।
कस्मैकपदस्यन्नवदारितेभ्यो द्वयोः पयशाणमुनं गिरीन्द्रजे । ।।
उवाचरन्यारास्तव वेत्ति प्रिये । देवीति वक्त्री: परिवेष्ट्य मुनेः ।
उपानही मे न भयं प्रयाये पुरोक्तमाहीति कथेरा गिरवय: ।।

स्पष्टीकरण -

यहां रामाश्रित हास्य स्थायीभाव नवीन वस्त्रों में लपेटी हुयी राम की कृतियों को सिद्धिदात्री देवी बताना आलम्बन विभाव, कोहबर में स्थित स्त्रियों की विविध चेष्टायें एवं उनका हास्यास्पद वार्तालाप उद्दीपन विभाव, कोहबर की स्त्रियों का व्यंग्य पूर्ण वार्तालाप, मुस्कराना, राम का उन्हें कुतौक कहना आदि अनुभाव है । चपलता, हर्ष आदि संचारी भाव है ।

इस प्रकार यहां उपर्युक्त आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव एवं संचारि भावों से परिपुष्ट हास स्थायी-भाव हास्य रस के रूप में पूर्णत: अभिव्यक्त हो रहा है ।

इसी प्रकार महाकाव्य के १७ वें अध्याय में भी हास्य रस के अनेक स्थल देखे जा सकते हैं ।

वात्सल्य रस -

हे वत्से । दीयतां चन्द्र इत्यामीं भद्रमस्तु ते ।
न शुश्रूषायां प्रयत्नेन स्वापयिष्याम्यहन्तु तु ॥

एवमुक्त्वा तु कैकेयीं सुनयना स्निग्धया गिरा ।
वादयंस्तत्कराम्भोजाच्चाकृष्य न्यस्त: स्वपुत्रके ॥

-जा० म०, ५३ ।२९-३१

स्पष्टीकरण -

यहां सुनयना का किशोरी जानकी के प्रति स्नेह स्थायी भाव है । किशोरी जानकी आलम्बन विभाव । दर्पण मत अपने पुत्र को वास्तविक चन्द्र समझ कर किशोरी जानकी के द्वारा की जाने वाली विविध बाल सुलभ चेष्टायें उद्दीपन विभाव हैं । सुनयना का किशोरी जानकी को पुकारना, मुख चुम्बन करना, तथा उन्हें दुग्ध पान कराना आदि अनुभाव हैं । हर्ष, आवेग, औत्सुक्यादि संचारी भाव हैं ।

इस प्रकार यहां उपर्युक्त, आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव एवं हर्ष

आदि संचारी भावों से परिपुष्ट स्नेह स्थायी भाव, वात्सल्य रस के रूप में अभिव्यंजित हो रहा है ।

शान्त रस -

चेतसा चिन्तयेदित्थं नित्यसम्बन्धमात्मनः ।
नाहं देहो न च प्राणा न मनोऽहं न चेन्द्रियम् ।।
चिद्घनश्चिदानन्दस्वरूपो गतमायकः ।
तुरीयावस्थया युक्तो महाकारणदेहकः ।।

- वा० च०, २।९-३

स्पष्टीकरण -

मुमुक्षु साधक का हृदयगत शम अथवा निर्वेद स्थायी भाव है । सच्चिदानन्दघन परमात्मा का स्वरूप आलम्बन विभाव, एकान्त पवित्राश्रम सत्संग शास्त्र चर्चा आदि उद्दीपन विभाव । आत्मस्वरूप मीमांसा, परमानन्द की अवस्था आदि अनुभाव हैं । मति, धृति आदि संचारी भाव हैं ।

इस प्रकार यहां उपर्युक्त आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव एवं मति आदि संचारी भावों से परिपुष्ट शम स्थायी भाव शान्त रस की पराकाष्ठा में पहुंच चुका है ।

इसी प्रकार पचके, इक्कीसवें, बयालीसवें, एक सौ छ वें, एक सौ सातवें एवं एक सौ आठवें अध्यायों में शान्तरस का सम्यक् परिपाक देखा जा सकता है ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वाल्मीकि चरितामृतम् महाकाव्य का अंगीरस भक्ति रस है तथा अंगभूत रसों में श्रृंगार, वात्सल्य, हास्य एवं शान्त मुख्य हैं । तथा च इन सभी रसों का यथास्थल सम्यक् परिपाक भी हुआ है ।

--

अलंकार विवेचन -

जहां तक जानकी चरितामृतम् महाकाव्य में अलंकार विवेचन का प्रश्न है तो इस दृष्टि से भी इसका अलंकार संविधान सर्वथा हृदयावर्जक है । अलंकार संविधान की दृष्टि से जानकी चरितामृतम् महाकाव्य में कुछ ऐसे प्रमुख अलंकार हैं जिनका प्रयोग यथास्थल सर्वाधिक देखा जा सकता है । ऐसे अलंकारों में अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, विशेषोक्ति, विभावना, अतिशयोक्ति आदि विवेचनीय हैं ।

अनुप्रास अलंकार -

वर्णसाम्यमनुप्रास: । काव्यप्रकाश ।

अनुप्रास: शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत् । साहित्यदर्पण

उदाहरण -

मधुरं मधुरं चरितं मधुरं मधुरं मधुरं भणितं मधुरम् ।
मधुरं मधुरं मिलनं मधुरं मिथिलेशसुतावचनं मधुरम् ।।

-जा० च०, ५४ ।६७

स्पष्ट है कि यहां म्, ध्, र् तथा र ण् की आवृत्ति बारबार हुयी है अतएव यहां अनुप्रास अलंकार की स्थिति स्वत: सिद्ध है ।

यह भी ध्यातव्य है कि यहां चरणान्त में `मधुरम्` पद की निरन्तर आवृत्ति हुयी है फलत: यहां अन्त्यानुप्रास की स्थिति भी स्पष्ट है ।

इसी प्रकार महाकाव्य के विभिन्न स्थलों में अनुप्रास के विविध रूपों का स्वरूप देखा जा सकता है ।

उपमा अलंकार :

साधर्म्यमुपमा भेदे ।। काव्यप्रकाश

साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्यउपमा द्वयो: । साहित्यदर्पण ।

वाक्यैक्ये द्वयो: (पदार्थयो:)अवैधर्म्यं वाच्यसाम्यम् उपमा (भवति)

उदाहरण -

मेघामगात्रांसकृतेकहस्ता रासेश्वरी ध्येयसरोजपादा ।
लावण्यवारांनिधिरप्रमेया श्रीस्वामिनी मे शरणं ममास्तु ।।

- जा० च०, २२ ।५८

स्पष्ट है कि इस श्लोक में मेघामगात्रा, ध्येयसरोजपादा, आदि में लुप्तोपमा की स्थिति स्वत: सिद्ध है । यहां जानकी का गात्र एवं पाद उपमेय है, तथा मेघ एवं सरोज उपमान है । श्यामा तथा कोमलता साधारण धर्म है । तथा व वाचक पद का लोप है । इस प्रकार यहां लुप्तोपमा की स्थिति पूर्णत: स्पष्ट है ।

ऐसे ही उपमा के और भी अनेकों उदाहरण इस महाकाव्य में यथा स्थल बिखरे पड़े हैं ।

रूपक अलंकार :

रूपकं रूपितारोपो विषये निरपह्नवे।।(साहित्यदर्पण)

तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययो: ।। (काव्यप्रकाश)

उदाहरण -

हे समस्तमिथिलापुरीजनो मानवावलिकर्णगोचर: ।
यो निपात्य मुहु:संसारे शीघ्रं न च पदं मोक्ष्यते ।।

- जा० च०, ५४ ।३१

उक्त श्लोक में 'दुःख सागरे' पद में रूपक अलंकार है । क्योंकि यहां दुःख पर सागर का आरोप किया गया है ।

ऐसे ही जानकी चरितामृतम् महाकाव्य में अनेक ऐसे स्थल हैं जहां रूपक के विविध भेदों के पर्याप्त उदाहरण उपलब्ध होते हैं ।

उत्प्रेक्षा अलंकार :

भवेत् सम्भावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना ।। (साहित्यदर्पण)

सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत् ।। (काव्यप्रकाश)

उदाहरण -

वाणी श्रुता श्रवणमूलसमीपगेव स्वाश्चर्यमुक्तमनया ऽऽलि ! निबोध सत्यम्।
नूनं हि श्रेयमुना सुरकर्मवाणी तोषाय मे दयितयोः कृपया प्रवृत्ता ।।
-- जा० च०, २६ ।१७

अर्थात् स्नेहपरा अपनी सखी से कहती है कि ओ सखि ! यह वाणी मुझेन ऐसी सुनायी पड़ी है कि मानो कोई मेरे कान के मूल में ही कह रहा हो । इसलिये निश्चय ही मेरे सन्तोष के लिये जानकी एवं राघव की कृपा से ही यह आकाशवाणी प्रकट हुयी है । स्पष्ट है कि यहां 'श्रवणमूलसमीपगेव' पद में उपमा गर्भित उत्प्रेक्षा है ।

उत्प्रेक्षा के अन्य अनेकों उदाहरण महाकाव्य के विविध अध्यायों में यथास्थल प्रचुर मात्रा में सविस्तर द्रष्टव्य हैं ।

व्यतिरेक अलंकार :

आधिक्यमुपमेयस्योपमानान्न्यूनताथवा । व्यतिरेकः ।। (साहित्यदर्पण)

उपमानादन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः ।। (काव्यप्रकाश)

उदाहरण :-

स जानकीश: स्वगिरा पिकादीन् गानेन गन्धर्वसुताश्च रासे ।
व्यलज्जयत्कोटिमनोभवं स रूपेण गुर्वीं सुषमां प्रपन्न: ॥
- जा० च०, २५ ।५३

अर्थात् रास-लीला में रसिकेश्वर राम और रासिकेश्वरी जानकी ने अपनी वाणी से कोयल आदि को तथा अपनी गान विद्या से गन्धर्व कन्याओं को तुच्छ करते हुये निरतिशय शोभा को प्राप्त उन दोनों ने अपने रूप से भी करोड़ों कामदेवों को भी लज्जित कर दिया ।

स्पष्ट है कि यहां राघव एवं जानकी की वाणी, गानविद्या, रूपश्री (सुषमा) आदि उपमेयों का पिक, गन्धर्वसुता, मनोभव आदि उपमानों की अपेक्षा आधिक्यवर्णन किया गया है । अतएव यहां व्यतिरेक अलंकार की स्थिति पूर्णत: स्पष्ट है ।

ऐसे ही व्यतिरेक के अनेकों प्रशस्त उदाहरण इस महाकाव्य में बहुश: प्रयुक्त देखे जा सकते हैं ।

विशेषोक्ति अलंकार :-

सति हेतौ फलाभावे विशेषोक्तिस्तथा द्विधा ॥ (साहित्यदर्पण)

विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावच: ॥ (काव्यप्रकाश)

उदाहरण :-

नि:शङ्कोऽस्मदुदाराधारत्नमतय: प्रादुर्भवं पुष्कलं
यल्लब्ध्वा निजपालका: समभवन्निर्धने कुबेराधिका: ।
किन्तु प्रेष्ठ ! न कस्यचिद्गणनिधिर्जाता त्रुटिं कामपि
न दृष्टं वेत्ति कुत्रचित् हि परमं सर्वेऽस्तदासीं मम ॥
-जा० च०, ३३ ।१०

अर्थात् स्नेहपरा महाराघव राम से कहती है कि सर्वेश्वरी जानकी के जन्म-महोत्सव में मेरे पिता मिथिलेश्वर के उदार मन्त्रियों ने नि:संकोच आशातीत दान करवाया जिसको पाकर सभी दैनिक भिक्षाटन करने वाले दरिद्र प्राणी भी धन में कुबेर से अधिक सम्पन्न हो गये । परन्तु किसी भी कोषाध्यक्ष के कोष में किसी भी प्रकार का कोई अभाव नहीं हुआ । सम्पूर्ण कोष यथावत् सुरक्षित रहा ।

उपर्युक्त श्लोक में आशातीत, यथेच्छ, दान करना कारण के होते हुये भी कोष का क्षय होना रूप कार्य के न होने का वर्णन किया गया है । अतएव यहां विशेषोक्ति अलंकार स्पष्ट है ।

विशेषोक्ति के ऐसे ही अनेकों मानक उदाहरण महाकाव्य में सर्वत्र यथा-स्थल देखे जा सकते हैं ।

विभावना अलंकार :-

विभावना विना हेतुं कार्योत्पत्तिर्यदुच्यते ।
उक्तानुक्तनिमित्तत्वाद् द्विधा सा परिकीर्तिता ।। (साहित्यदर्पण)
क्रियायाः प्रतिषेधे ऽपि फलव्यक्तिर्विभावना ।। (काव्यप्रकाश)

उदाहरण :-

सा च करं लघुकोमलपाणौ न्यस्तवती भुवनत्रयभारम् ।
इतरकरेण भुमार्ज्यं सलीलं स्थापितवत्युत तन्नु यथेच्छम् ।।
- जा० च०, ७२ ।१०

अर्थात् किशोरी जानकी ने अपने नन्हें बायें हाथ से तीनों लोकों के भार-स्वरूप शिव धनुष को हाथ में लेकर दाहिने हाथ से धनुर्भूमि का लेपन कर पुनः उसे रख दिया ।

यहां किशोरी जानकी का लघु-कोमलपाणि से भुवनत्रय भार स्वरूप शिव-धनुष को उठाना बताया गया है ।

इस प्रकार लघु कोमल पाणि रूप असमर्थ कारण के होने पर भी भुवनत्रय भार रूप शिव-धनुष का उठाया जाना कार्य का निष्पादन होने से यहां विभावना अलंकार स्वतः सिद्ध है ।

निष्कर्षतः अलंकार-योजना की दृष्टि से जानकी चरितामृतम् महाकाव्य एक सफल महाकाव्य कहा जा सकता है । जिसमें अनुप्रास, उपमादि विविध अलंकारों का यथा स्थल स मुल प्रयोग कुशलतापूर्वक रूप में किया गया है ।

-0-

छन्दोविवेचन -

जहां तक जानकी चारितामृतम् महाकाव्य में छन्दों के प्रयोग का प्रश्न है तो इस सन्दर्भ में भी इसे विविध छन्दों के प्रयोग से सम्वलित एक आकार महाकाव्य कहा जा सकता है । इस महाकाव्य में कुल १०८ अध्याय हैं जिसके विभिन्न अध्यायों में विविध छन्दों का प्रयोग किया गया है ।

जानकी चारितामृतम् के प्रथम अध्याय में कुल ३६ श्लोक हैं जिसके प्रथम ८ श्लोकों में वसन्ततिलका, तथा शेष (९-३६) में अनुष्टुप छन्द का प्रयोग किया गया है । द्वितीय अध्याय में कुल ७२ श्लोक हैं जिसके प्रथम ७१ में ‘अनुष्टुप’ तथा अन्तिम श्लोक में ‘उपजाति’ छन्द है । तृतीय अध्याय में ८७ श्लोक हैं जिसके प्रथम तीन श्लोकों में वसन्ततिलका ४-८६ श्लोकों में ‘अनुष्टुप’ और ८७ वे श्लोक में ‘उपजाति’ का प्रयोग किया गया है । चतुर्थ अध्याय में ३६ श्लोक हैं जिसके प्रथम श्लोक में ‘शार्दूलविक्रीडित’, २-३५ में ‘अनुष्टुप’ तथा ३६ वें में ‘पुष्पिताग्रा’ छन्द का प्रयोग है । पंचम अध्याय में २८ श्लोक हैं जिसके प्रथम ६ श्लोकों में ‘स्रग्धरा’ शेष (७-२८) में ‘उपजाति’ प्रयुक्त है । छठें अध्याय में ५६ श्लोक हैं जिसके प्रथम ५३ श्लोकों में ‘अनुष्टुप’ ५४, ५५ वें श्लोक में शार्दूलविक्रीडित तथा अन्तिम श्लोक में ‘अनुष्टुप’ छन्द है । सप्तम अध्याय में ५४ श्लोक हैं । इसके प्रथम श्लोक में मालिनी २-४ श्लोकों में अनुष्टुप, ५-७ श्लोकों में ‘शिखरिणी’, ८-५१ तक के श्लोकों में ‘अनुष्टुप’ तथा ५२-५४ तक के श्लोकों में ‘मालिनी’ । अष्टम् अध्याय में ३३ श्लोक हैं । इसके प्रथम पन्द्रह श्लोकों में अनुष्टुप, १६ वें में वसन्ततिलका, १७ वें में ‘इन्द्रवंशा’, १८ वें में इन्द्रवज्रा का प्रयोग किया गया है । शेष श्लोकों में अनुष्टुप छन्द का प्रयोग है । नवम अध्याय में २६ श्लोक हैं जिनमें ‘अनुष्टुप’ छन्द प्रयुक्त है । दशम अध्याय में कुल २५ श्लोक हैं जिसके प्रथम १४ श्लोकों में ‘अनुष्टुप’, १५ वें में ‘उपजाति’, १६ वें में ‘इन्द्रवज्रा, १७-१९ तक ‘उपजाति’, २० वें में इन्द्रवज्रा २१-२३ में पुनः उपजाति, २४, २५ वें श्लोक में मालिनी छन्द का प्रयोग हुआ है ।

ग्यारहवें अध्याय में २१ श्लोक हैं जिसके प्रथम १५ श्लोकों में ‘अनुष्टुप’

१६,१७ वें शार्दूलविक्रीडित और शेष (१८-२१) में अनुष्टुप छन्द का प्रयोग किया गया है। १२ वें अध्याय में ४१ श्लोक हैं। जिसके प्रथम दो श्लोकों में अनुष्टुप, ३,४, में शार्दूल विक्रीडित, शेष सभी श्लोकों में अनुष्टुप का प्रयोग हुआ है। १३ वें अध्याय में २६ श्लोक हैं। प्रथम तीन श्लोकों में अनुष्टुप, ४-११ तक में `पंच चामर`, १२-२३ में अनुष्टुप, २४-२५ में बसन्त तिलका तथा अन्तिम श्लोक में पुष्पिताग्रा छन्द प्रयुक्त है। १४ वें अध्याय में १६ श्लोक हैं जिनमें `अनुष्टुप` छन्द का प्रयोग हुआ है। १५ वें अध्याय में २२ श्लोक हैं जिसके प्रथम श्लोक में वंशस्थ, दूसरे में इन्द्रवज्रा, ३-७ तक में उपजाति, ८ वें में इन्द्रवज्रा, ९-१३ तक में उपजाति, १४ वें में इन्द्रवज्रा, १५ से १९ तक में उपजाति, २० वें में इन्द्रवज्रा, २१,२२ वें श्लोक में उपजाति छन्द का प्रयोग है। १६ वें अध्याय में कुल ५२ श्लोक हैं जिसके प्रथम दो में इन्द्रवज्रा, ३,४ में उपजाति, ५ वें में इन्द्रवज्रा, ६-११ तक में उपजाति, १२ वें में उपेन्द्रवज्रा, १३-१४ वें उपजाति, १५ वें में उपेन्द्रवज्रा, १६-१८ वें में उपजाति, १९ वें में इन्द्रवज्रा, २०-२१ में उपजाति, २२ वें में उपेन्द्रवज्रा, २३ वें में उपजाति, २४ वें में इन्द्रवज्रा,२५-२९ तक में उपजाति, ३० वें में वंशस्थ, ३१ वें में उपेन्द्रवज्रा, ३२-४४ तक में उपजाति, ४५ वें उपेन्द्रवज्रा, ४६ वें में उपजाति, ४७ वें में उपेन्द्रवज्रा, ४८-४९ में उपजाति, ५० वें में उपेन्द्रवज्रा, ५१,५२ वें के श्लोक में मोटक छन्द का प्रयोग किया गया है। १७ वें अध्याय में ४५ श्लोक हैं। जिसके प्रथम श्लोक में उपजाति, २ में इन्द्रवज्रा, ३-२२ में उपजाति, २३-३० में `नर्दटक`, ३१-४५ तक में `स्रग्विणी` छन्द प्रयुक्त है।

अठारहवें अध्याय में कुल १६ श्लोक हैं जिसके प्रथम श्लोक में अनुष्टुप् २-१२ तक में `तोटक` १३-१६ तक में उपजाति छन्द का प्रयोग किया गया है। १९ वें अध्याय में कुल १८ श्लोक हैं जिसके १-९ तक के श्लोकों में उपजाति, १० वें में उपेन्द्रवज्रा, ११ वें में उपजाति, १२ वें में उपेन्द्रवज्रा तथा शेष में उपजाति छन्द प्रयुक्त है। २० वें अध्याय में कुल ४० श्लोक हैं। इसके प्रथम श्लोक में उपेन्द्रवज्रा, २-४ में उपजाति, पांचवें में उपेन्द्रवज्रा, छठें में उपजाति, सातवें में इन्द्रवज्रा, ८-१० में उपजाति, ११ वें में इन्द्रवज्रा, १२-१३ वें में

उपजाति, १४ वें इन्द्रवज्रा, १५-१९ तक में उपजाति, २० वें में इन्द्रवज्रा, २१-२६ तक में उपजाति, २७ वें में इन्द्रवज्रा, २८-३१ में उपजाति, ३२ वें में उपेन्द्रवज्रा, तथा शेष सभी श्लोकों में उपजाति छन्द प्रयुक्त है । २१ वें अध्याय में ५७ श्लोक हैं । प्रथम में उपजाति, २ में इन्द्रवज्रा, ३-१२ तक में उपजाति, १३-१४ में इन्द्रवज्रा, १५-१६ वें में उपेन्द्रवज्रा, १७-१८ में उपजाति, १९ वें में इन्द्रवज्रा, २०-२९ तक में उपजाति, ३० वें में उपेन्द्रवज्रा, ३१-४६ तक में उपजाति, ४७ में द्रुतविलम्बित, ४८ वें में इन्द्रवज्रा, ४९-५२ तक में उपजाति, ५३ वें में उपेन्द्रवज्रा, शेष सभी में उपजाति छन्द का प्रयोग किया गया है ।

बाइसवें अध्याय में कुल ४४३ श्लोक हैं जिनमें उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, मालिनी, इन्द्रवंशा, इन्द्रवज्रा, पंचचामर, अनुष्टुप, शार्दूलविक्रीडित, वंशस्थ आदि विविध छन्दों का प्रयो किया गया है । २३ वें अध्याय में कुल ३६ श्लोक हैं जिनमें वंशस्थ, उपजाति, इन्द्रवज्रा, वसन्ततिलका एवं स्रग्धरा छन्दों का प्रयोग किया गया है । २४ वें अध्याय में १०२ श्लोक हैं जिनमें इन्द्रवज्रा, नर्दटक, वसन्ततिलका, इन्द्रवंशा एवं वंशस्थ छन्दों का प्रयोग है ।

२५ वें अध्याय में कुल ६० श्लोक हैं जिनमें इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, एवं तोटक छन्द का प्रयोग किया गया है । २६ वें अध्याय में २७ श्लोक हैं जिनमें इन्द्रवज्रा, उपजाति, वसन्ततिलका एवं स्रग्धरा का प्रयोग है ।

२७ वें अध्याय में कुल ३६ श्लोक हैं जिनमें द्रुतविलम्बित एवं शार्दूलविक्रीडित छन्द प्रयुक्त हैं । २८ वें अध्याय में ८० श्लोक हैं जिनमें अनुष्टुप तथा अन्तिम श्लोक में उपेन्द्रवज्रा का प्रयोग है । २९ वें अध्याय में कुल ५८ श्लोक हैं । जिसमें १-५७ तक के श्लोकों में अनुष्टुप एवं ५८ वें में उपजाति छन्द प्रयुक्त हैं । ३० वें अध्याय में ३५ श्लोक हैं । १-३२ श्लोकों में अनुष्टुप, ३३-३४ में उपजाति तथा ३५ वें श्लोक में इन्द्रवज्रा का प्रयोग है । ३१ वें अध्याय में १०१ श्लोक हैं जिनमें १-९९ तक में अनुष्टुप तथा शेष दो श्लोकों में उपजाति छन्द प्रयुक्त है । ३२ वें अध्याय में ८८ श्लोक हैं जिनमें १-५७ तक के श्लोकों में अनुष्टुप, ५८-५९ तक में वसन्ततिलका, ६०-८७ तक अनुष्टुप तथा ८८ वें श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द प्रयुक्त है ।

३३ वें अध्याय में कुल ३० श्लोक हैं - प्रथम २९ श्लोकों में शार्दूल-विक्रीडित तथा ३० वें श्लोक में स्रग्धरा । ३४ वें अध्याय में ५६ श्लोक हैं -१-२५ तक में अनुष्टुप, २६-३२ तक में उपजाति, ३३ वें में अनुष्टुप, ३४ वें में वंशस्थ, ३५-३९ तक में अनुष्टुप, ४०-४१ में उपजाति, ४२ वें में इन्द्रवज्रा, ४३-४४ में उपजाति, ४५ में इन्द्रवंशा, ४६-५६ तक में उपजाति का प्रयोग है । ३५ वें अध्याय में ४७ श्लोक हैं जिसमें १-३७ तक अनुष्टुप, ३८-४० तक में इन्द्रवज्रा, ४१ वें में उपजाति, ४२-४३ वें में इन्द्रवज्रा, ४४ वें में उपजाति, ४५-४६ में अनुष्टुप तथा ४७ वें में उपजाति छन्द का प्रयोग है । ३६ वें अध्याय में ४० श्लोक हैं जिनमें १-३८ तक के श्लोकों में अनुष्टुप तथा शेष दो श्लोकों में उपजाति छन्द का प्रयोग किया गया है । ३७वें अध्याय में ६१ श्लोक हैं । १-१२ तक वसन्ततिलका, १३-६० तक में शार्दूलविक्रीडित और ६१ वें श्लोक में मन्दाक्रान्ता छन्द प्रयुक्त है । ३८ वें अध्याय में ४० श्लोक हैं । १-३६ तक में अनुष्टुप, ३७-४० में वसन्त-तिलका प्रयुक्त है ।

३९ वें अध्याय में ७६ श्लोक हैं । १-४४ तक में अनुष्टुप, ४५-५२ तक में मालिनी, ५३-७० तक में अनुष्टुप तथा शेष ७१-७६ तक में उपजाति छन्द प्रयुक्त है । ४० वें अध्याय में कुल ७४ श्लोक हैं । १-७३ में अनुष्टुप तथा अन्तिम एक श्लोक में उपजाति छन्द प्रयुक्त है ।

४१वें अध्याय में ३८ श्लोक हैं जिसके प्रथम ३७ श्लोकों में रथोद्धता और ३८ वें श्लोक में शार्दूलविक्रीडित । ४२ वें अध्याय में ८८ श्लोक हैं जिनमें अनुष्टुप छन्द प्रयुक्त हैं । ४३ वें अध्याय में कुल ५६ श्लोक हैं । १-५४ तक में अनुष्टुप शेष दो में क्रमशः उपजाति एवं उपेन्द्रवज्रा का प्रयोग किया गया है ।

४४ वें अध्याय में ७० श्लोक हैं । १-६८ तक में अनुष्टुप तथा शेष में उपजाति छन्द प्रयुक्त है । ४५ वें अध्याय में ४३ श्लोक हैं जिनमें अनुष्टुप छन्द प्रयुक्त है । ४६ वें अध्याय में ७६ श्लोक हैं जिनमें १-७५ तक के श्लोकों में अनुष्टुप और अन्तिम श्लोक में इन्द्रवज्रा का प्रयोग किया गया है ।

४७ वें अध्याय में ७८ श्लोक हैं जिनमें आद्यन्त अनुष्टुप छन्द प्रयुक्त है ।

४८ वें अध्याय में ३३ श्लोक हैं जिसके प्रथम ३२ श्लोक में अनुष्टुप तथा ३३ वें में उपजाति छन्द प्रयुक्त है ।

४९ वें अध्याय में ९८ श्लोक हैं । १-९६ तक में अनुष्टुप, ९७ वें में उपजाति और अन्तिम श्लोक ९८ वें में उपेन्द्रवज्रा छन्द प्रयुक्त है । ५० वें अध्याय में कुल ५७ श्लोक हैं । १-२ में उपेन्द्रवज्रा, तीसरे में उपजाति, ४ थे में उपेन्द्रवज्रा, ५-१९ तक में उपजाति, २० वें में उपेन्द्रवज्रा, २१-२२ वें में उपजाति, २३ वें में इन्द्रवज्रा, २४-२५ में उपजाति, २६-२९ में उपजाति, ३०वें में उपेन्द्रवज्रा, ३१-३३ तक उपजाति, ३४-३५ में उपेन्द्रवज्रा, ३६-४० तक में उपजाति, ४१ में इन्द्रवज्रा, ४२ वें में उपजाति, ४३ वें में उपेन्द्रवज्रा, ४४-४८ तक उपजाति, ४९-५० वें में उपेन्द्रवज्रा तथा ५१ वें में उपजाति, ५२-५६ तक में 'नर्दटक' एवं अन्तिम ५७वें श्लोक में मन्दाक्रान्ता छन्द प्रयुक्त है ।

५१ वें अध्याय में कुल ७१ श्लोक हैं, १-७० में अनुष्टुप तथा अन्तिम ७१वें श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग हुआ है । ५२ वें अध्याय में ५० श्लोक हैं - १-२८ में अनुष्टुप । २९-३६ तक में शिखरिणी और शेषा में अनुष्टुप छन्द प्रयुक्त है । ५३ वें अध्याय में ३५ श्लोक हैं । इसमें १-३४ तक में अनुष्टुप और ३५ वें में इन्द्रवंशा छन्द प्रयुक्त है ।

५४ वें अध्याय में ८९ श्लोक है । १-२३ तक में अनुष्टुप, २४-५५ में रथोद्धता, ५६-७१ तक में तोटक, ७२-८९ तक में वसन्ततिलका छन्द प्रयुक्त है । ५५वें अध्याय में कुल ६६ श्लोक हैं जिनमें १-५१ तक में अनुष्टुप, ५२-६४ तक में उपजाति, ६५ वें उपेन्द्रवज्रा तथा ६६ वें में उपजाति छन्द प्रयुक्त है ।

५६ वें अध्याय में ३३ श्लोक हैं जिनमें द्रुतविलम्बित छन्द प्रयुक्त है । ५७ वें अध्याय में ६९ श्लोक हैं जिसके १-१२ तक में स्वागता, १३-२० में शिखरिणी, २४-४७ में उपजाति, ४८वे में वंशस्थ, ४९-६६ तक उपजाति, ६७-६८वें में वियोगिनी तथा ६९ वें श्लोक में उपजाति छन्द प्रयुक्त है । ५८ वें अध्याय में कुल ७२ श्लोक हैं जिसके प्रथम ७१ श्लोकों में अनुष्टुप और अन्तिम ७२ वें श्लोक में उपजाति छन्द प्रयुक्त है । ५९ वें अध्याय में २२ श्लोक है ।

१-१५ तक अनुष्टुप, १६-१७ वें में वंशस्थ, १८-२२ वें तक में उपजाति छन्द का प्रयोग है । ६० वें अध्याय में ३६ श्लोक हैं । १-९ में अनुष्टुप, १०-३४ तक में द्रुतविलम्बित, ३५-३६ वें श्लोक में `मदिरा` छन्द का प्रयोग किया गया है । ६१ वें अध्याय में कुल ४५ श्लोक हैं जिनमें अनुष्टुप छन्द प्रयुक्त है । ६२वें अध्याय में ८१ श्लोक हैं । १-९ तक अनुष्टुप, १० वें में शिखरिणी, ११-१४ में पुन: अनुष्टुप, १५-१७ तक में उपजाति, १८ वें में उपेन्द्रवज्रा, १९-२३ तक में उपजाति, २४-२६ तक में इन्द्रवज्रा, २७वें में उपजाति, २८ वें में इन्द्रवज्रा, तथा शेष में अनुष्टुप छन्द प्रयुक्त है । ६३ वें अध्याय में ६२ श्लोक हैं जिसके प्रथम ६१ श्लोकों में अनुष्टुप और ६२ वें श्लोक में इन्द्रवज्रा छन्द प्रयुक्त है ।

६४ वें अध्याय में कुल २९ श्लोक हैं जिसमें १-२८ तक में `शिखरिणी` तथा २९ में मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग है । ६५ वें अध्याय में ४२ श्लोक हैं जिसमें अनुष्टुप एवं इन्द्रवंशा का सम्यक् प्रयोग किया गया है ।

६६वें अध्याय में कुल ३० श्लोक हैं जिनमें अनुष्टुप, वसन्ततिलका, उपजाति एवं इन्द्रवंशा छन्दों का प्रयोग है । ६७ वें अध्याय में ३३ श्लोक हैं जिनमें शार्दूलविक्रीडित, उपजाति, वंशस्थ, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा का प्रयोग मिलता है । ६८ वें अध्याय में ३४ श्लोक हैं जिनमें रथोद्धता, वसन्ततिलका एवं `मदिरा` छन्द प्रयुक्त है ।

६९ वें में ५४ श्लोक हैं जिनमें अनुष्टुप एवं उपजाति छन्दों का प्रयोग है । ७० वें अध्याय में ५० श्लोक हैं जिनमें पुन: अनुष्टुप एवं उपजाति छन्दों का प्रयोग किया गया है ।

७१ वें अध्याय में २० श्लोक हैं । प्रथम में भुजङ्गप्रयात, २-११ तक में पंचचामर, १२ वें में उपजाति, १३ वें में इन्द्रवज्रा, १४-१७ में उपजाति, १८-१९ में इन्द्रवज्रा और २० वें श्लोक में `मालिनी` छन्द प्रयुक्त है । ७२ वें अध्याय में कुल २४ श्लोक हैं । १-२३ तक में अनुष्टुप और २४ वें श्लोक में वसन्ततिलका छन्द प्रयुक्त है ।

७३वें अध्याय में कुल १२ श्लोक हैं जिनमें `दोधक` छन्द का प्रयोग किया गया है । ७४ वें अध्याय में ५६ श्लोक हैं जिनमें १-३ तक में शालिनी,

शेष ४-४६ तक में अनुष्टुप छन्द प्रयुक्त है । ७५ वें अध्याय में ३८ श्लोक हैं । जिनमें १-३३ तक के श्लोकों में अनुष्टुप, ३४-३७ तक में वसन्ततिलका और ३८ वें में मालती छन्द का प्रयोग किया गया है । ७६ वें अध्याय में कुल ४७ श्लोक हैं जिनमें इन्द्रवंशा, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति एवं वंशस्थ का प्रयोग किया गया है ।

७७ वें अध्याय मे ७५ श्लोक हैं जिनमें उपजाति, वंशस्थ, इन्द्रवंशा, तोटक, रथोद्धता, भुजङ्गप्रयात, शिखरिणी एवं शार्दूलविक्रिडित का प्रयोग किया गया है ।

७८ वें अध्याय में ३७ श्लोक हैं जिनमें अनुष्टुप एवं इन्द्रवज्रा का प्रयोग किया गया है ।

७९ वें अध्याय में ५६ श्लोक हैं जिनमें अनुष्टुप का प्रयोग है ।

८० वें अध्याय में ४० श्लोक हैं - जिनमें पुन: अनुष्टुप का प्रयोग है । ८१ वें अध्याय में कुल ४५ श्लोक हैं जिनमें उपेन्द्र वज्रा, उपजाति, पंचचामर, एवं वंशस्थ छन्दों का प्रयोग किया गया है । ८२ वें अध्याय मे १०३ श्लोक हैं जिनमें अनुष्टुप छन्द प्रयुक्त है ।

८३ वें अध्याय में ७९ श्लोक हैं जिनमें अनुष्टुप, वंशस्थ, उपजाति एवं द्रुतविल छन्द का प्रयोग किया गया है ।

८४ वें अध्याय में ६७ श्लोक हैं जिनमें अनुष्टुप, पंच चामर, उपजाति एवं वंशस्थ का प्रयोग मिलता है ।

८५ वें अध्याय में ३५ श्लोक हैं जिनमें अनुष्टुप एवं तोटक छन्द प्रयुक्त है । ८६ वें में ४२ श्लोक हैं जिनमें अनुष्टुप तथा उपजाति छन्दों को प्रयोग किया गया है । ८७ वें अध्याय में कुल ६८० श्लोक हैं जिनमें शार्दूलविक्रीडित अनुष्टुप, वंशस्थ एवं उपजाति छन्द प्रयुक्त है । ८८ वें अध्याय में ६७ श्लोक हैं जिनमें अनुष्टुप, इन्द्रवंशा एवं उपजाति छन्दों का प्रयोग किया गया है । ८९ वें अध्याय में १२६ श्लोक हैं जिनमें अनुष्टुप तथा मालिनी छन्द प्रयुक्त है ।

९० वें अध्याय में कुल ५६ श्लोक हैं जिनमें उपजाति, वंशस्थ एवं इन्द्रवंशा का प्रयोग किया गया है । ९१ वें अध्याय में ५८ श्लोक हैं जिनमें अनुष्टुप छन्द का प्रयोग किया गया है ।

९२ वें अध्याय में ८२ श्लोक हैं जिनमें अनुष्टुप, इन्द्रवंशा एवं वंशस्थ छन्दों का प्रयोग किया गया है । ९३ वें अध्याय में ३६ श्लोक हैं जिनमें उपजाति, इन्द्रवज्रा, इन्द्रवंशा तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द प्रयुक्त है ।

९४ वें अध्याय में ३० श्लोक हैं जिनमें द्रुतविलम्बित एवं शार्दूलविक्रीडित छन्दों का प्रयोग किया गया है ।

९५वें अध्याय में ८३ श्लोक हैं जिसके प्रथम ९ श्लोकों में `सोमराजी` १०-२० तक में द्रुत विलम्बित, २१-२६ तक शार्दूलविक्रीडित, पुन: ३९ तक के श्लोकों में `सोमराजी`, शेष सभी श्लोकों में वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग किया गया है ।

९६ वें अध्याय में कुल ९० श्लोक हैं जिनमें १-८९ तक में अनुष्टुप और अन्तिम ९० वें श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द प्रयुक्त है । ९७ वें अध्याय में कुल ४८ श्लोक हैं जिनमें उपजाति एवं शार्दूलविक्रीडित छन्दों का प्रयोग किया गया है । ९८ वें अध्याय में ८० श्लोक हैं- जिनमें वसन्ततिलका, उपजाति, इन्द्रवज्रा, अनुष्टुप एवं शिखरिणी का प्रयोग है ।

९९ वें अध्याय में कुल ३८ श्लोक हैं ।जिनमें उपजाति, इन्द्रवज्रा, वंशस्थ एवं इन्द्रवंशा का प्रयोग किया गया है । १०० वें अध्याय में २८ श्लोक हैं जिनमें इन्द्रवंशा एवं शार्दूलविक्रीडित छन्द प्रयुक्त है । १०१ वें अध्याय में कुल ७४ श्लोक हैं जिनमें केवल अनुष्टुप छन्द प्रयुक्त है । १०२ वें अध्याय में ८६ श्लोक हैं जिनमें अनुष्टुप तथा इन्द्रवज्रा का प्रयोग है । १०३ वें अध्याय में ८४ श्लोक हैं जिनमें अनुष्टुप छन्द प्रयुक्त है । १०४ वें अध्याय में ४३ श्लोक हैं जिनमें अनुष्टुप एवं मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग किया गया है । १०५ वें अध्याय में ४३ श्लोक हैं जिनमें प्रथम ५ श्लोकों में अनुष्टुप, ६-२४ तक में शार्दूल विक्रीडित, २५-३० तक में रथोद्धता, ३१-४२ तक में अनुष्टुप तथा ४३ वें

इन्द्रवज्रा छन्द प्रयुक्त है । १०६ वें अध्याय में ६० श्लोक हैं जिनमें अनुष्टुप छन्द प्रयुक्त है ।

१०७ वें अध्याय में ७९ श्लोक है जिनमें १-७७ तक के श्लोकों में अनुष्टुप, ७८ वें श्लोक में मालिनी एवं ७९ वें श्लोक में मन्दाक्रान्ता छन्द प्रयुक्त है ।

१०८ वें अध्याय में १४३ श्लोक हैं जिनमें अनुष्टुप, शिखरिणी, शार्दूलविक्रीडित, उपजाति छन्दों का प्रयोग किया गया है ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जानकीचरितामृतम् महाकाव्य में वसन्ततिलका, स्रग्धरा, उपजाति, शिखरिणी, इन्द्रवंशा, इन्द्रवज्रा, पंचचामर, पुष्पिता, वंशस्थ, उपेन्द्र वज्रा, मोटक, नर्दटक, स्रग्विणी, तोटक, द्रुतविलम्बित, मन्दाक्रान्ता, रथोद्धता, स्वागता, वियोगिनी, मदिरा, भुजंग प्रयात, शशिवदना, मालती, पृथ्वी, सोमराजी जैसे प्रमुख छन्दों का सफल प्रयोग किया गया है ।

-०-

तृतीय अध्याय

-0-

डा० रेवाप्रसाद द्विवेदी एवं उनका 'सीताचरितम्'

रेवाप्रसाद द्विवेदी : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व -

जीवन-वृत्त-

विश्व-विश्रुत संस्कृत साहित्य की देवापगा वैदिक युग से लेकर अद्यावधि निर्विराम गति से प्रवाहित होती रही है तथा भविष्य में भी इसके इसी रूप में प्रवाहित होते रहने की शत-प्रतिशत सम्भावना है। कहना न होगा कि लघ कुछ संस्कृत साहित्य का बहुमुखी विकास जितना वर्तमान शती में हुआ है, सम्भवतः विगत किसी भी शती में नहीं हुआ है। वर्तमान संस्कृत साहित्य का इतिहास इस तथ्य का प्रबल साक्षी है।

महाकाव्य, खण्डकाव्य, गीतिकाव्य, नाटक आदि प्रत्येक विधा पर प्रभूत उच्चकोटि के मानक काव्य ग्रन्थों की सर्जना इस शती की अनुपम देन है।

काव्य विद्या अधिष्ठात्री भगवती भारती ने वर्तमान शती में जिन अनेक स्वनाम धन्य महाकाव्यकारों को जन्म दिया है उन्हीं महाक्रान्तप्रज्ञ मनीषियों की सारस्वत शृङ्खला की एक महत्वपूर्ण कड़ी है भारतीय सांस्कृतिक मनीषा के पक्षधर संस्कृत काव्यमनीषा के जीवन्त प्रतिमान मनीरार्थवदा सरस्वती के सफल उपासक सीताचरितकार डा० रेवाप्रसाद द्विवेदी।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से प्राचीन संस्कृत काव्यकारों का जीवन-वृत्त जितना ही विवादास्पद रहा है सौभाग्य से वर्तमान संस्कृत काव्यकारों का जीवन-वृत्त ऐतिहासिक दृष्टिकोण के निकष पर उतना ही सरकंडन-सा अविराम रूप में स्पष्टतः उपलब्ध है। सीताचरितकार डा० रेवाप्रसाद द्विवेदी का जन्म भारत वसुन्धरा के कटि प्रदेश प्रतिष्ठित मध्य प्रदेश के रेवा नदी के तट पर स्थित गोपाल जनपद के (नादनेर) नामक ग्राम में पं० नर्मदा प्रसाद द्विवेदी एवं सौभाग्यवती लक्ष्मीदेवी के पुत्र रत्न के रूप में २२ सितम्बर १६३५ ई० को हुआ। विधाता की क्रूर नियति के वज्राघात से आहत सीताचरितकार का

शैशव उतना सुखद नहीं रहा जितना की एक विद्या जीवी का होना चाहिए। कारण शैशव में ही प्राण पियूषदात्री जननी तथा अति स्नेह एवं संरक्षण के पाथेय से पोषित करने वाले पितृ चरण का देहावसान हो जाना ही शैशव के वार्धनोचित सुख से वंचित मेधावी द्विवेदी को दसो दिशायें शून्य दिखाई देने लगीं। ऐसी स्थिति में इन्हें अपने मातुल शालिग्राम परशायी का वरद संरक्षण मिला। उन्हीं के संरक्षण में सीताचरितकार की प्रारम्भिक शिक्षा सम्पन्न हुयी, तदनन्तर उच्च शिक्षा का प्रश्न उपस्थित होने पर इन्होंने उसका समाधान स्वयं निकाला, और आ गये काशस्थ विश्वनाथ के अङ्क में स्थित काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से इन्होंने संस्कृत में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त करने के अनन्तर काशी के स्वनाम धन्य सर्वतन्त्र स्वतन्त्र महाचार्य महादेव प्रसाद पाण्डेय से इन्होंने साहित्य-शास्त्र का गम्भीर अध्ययन किया। एतदनन्तर मध्य प्रदेश के शासकीय महाविद्यालय में अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया। सात वर्षों तक निरन्तर प्राध्यापन करने के उपरान्त ये पुन: काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में साहित्य विद्या विभाग में ~~[illegible]~~ प्रोफेसर पद पर नियुक्त होकर उच्च स्तरीय साहित्य सेवा की ओर उन्मुख हुये। तथा च सम्प्रति ये इसी विभाग में अध्यक्ष पद पर कार्यरत हैं, साथ ही ये विश्वविद्यालय के कार्य-परिषद् के सदस्य एवं प्राच्य विद्या संकाय के अधिष्ठाता भी हैं।

१९६५ ई० में 'हेमाद्रे रघुवंश दर्पण:' विषय पर रविशंकर विश्वविद्यालय मध्य प्रदेश से पी० एच० डी० की उपाधि तथा १९७५ ई० में 'आनन्द वर्धन' पर जबलपुर विश्वविद्यालय (रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय) जबलपुर से डी० लिट्० की उपाधि इन्होंने प्राप्त किया। १९८० में इन्हें राष्ट्रपति पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया। यही नहीं बल्कि उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश के राज्य सरकारों एवं संस्कृत अकादमियों ने भी इन्हें अनेक पुरस्कारों से पुरस्कृत किया है।

<u>मौलिक कृतियां</u> -

अद्यावधि प्रकाशित सीताचरितकार डा० रेवाप्रसाद द्विवेदी

'सनातन ' की अधोलिखित मौलिक कृतियां हैं ।

१- सीता चरितम् (महाकाव्य)

२- यूथिका (नाटिका)

३- कांग्रेसपराभवम् (नाटक)

४- शतपत्रम् (फुटकल पद्य संग्रह)

५- काश्यप: (गीति-संग्रह)

६- अलंकारकारिका (काव्यशास्त्र) आदि ।

इसके अतिरिक्त डा० द्विवेदी के द्वारा सम्पादित एवं व्याख्यायित अनेक मानक ग्रन्थ भी उपलब्ध हैं, जैसे कालिदास-ग्रन्थावली, व्यक्ति-विवेक, अलंकारसर्वस्व, अलंकार-विमर्शिनी आदि ।

डा० द्विवेदी ने अनेकों महत्वपूर्ण मानक शोध लेख भी लिखे हैं जो इनकी शोध दृष्टि की तीक्ष्णता को प्रमाणित करते हैं ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि डा० द्विवेदी बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न रचनाकार हैं । इनमें न केवल कल्पना प्रवण उच्चकोटि की हृदयस्पर्शिनी लोकोत्तर वर्णनानिपुण महाकाव्य का सर्जन करने वाली ही प्रतिमा है प्रत्युत दृश्य काव्य से सम्बन्धित सफल नाट्य प्रतिमा के भी ये धनी हैं । यही कारण है कि एक ओर जहां इन्होंने 'सीताचरितम्' जैसे महाकाव्य का प्रणयन किया है वहीं दूसरी ओर 'यूथिका' और 'कांग्रेस पराभवम्' जैसी सफल नाट्य कृतियों की भी सर्जना की है ।

सीताचरितकार अपनी साहित्य साधना के प्रारम्भिक चरण में संस्कृत नवगीति विधा से सर्वात्मना सहमत नहीं रहे किन्तु साहित्य साधना के नये आयाम के विकास के सन्दर्भ से जुड़ने पर इन्होंने नवगीति विधा को भी साहित्य सर्जना की अपेक्षित विकासशील विधा के रूप में न केवल मान्यता ही दी अपितु स्वयं भी 'शतपत्रम्', 'काश्यप: ' जैसे गीति काव्यों की भी सर्जना की । साथ ही साथ इस तथ्य को स्पष्टत: स्वीकार भी किया कि श्रव्य काव्य के काव्यत्व का भी जीवन दायक मूल तत्व वस्तुत: गेयता ही है ।

सीताचरितकार डा० द्विवेदी न केवल सफल कवि, प्रतिभाशाली नाटककार एवं गीतकार ही हैं अपितु ये मानक काव्यशास्त्रकार भी हैं ।कवित्व एवं आचार्यत्व का इनमें मणिकांचन संयोग है जो किसी एक ही व्यक्ति में मिलना अत्यन्त दुर्लभ होता है । डा० द्विवेदी ने `अलंकार कारिका ` जैसे मानक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों का प्रणयन करके आचार्यत्व के क्षेत्र में गौरवशाली स्थान प्राप्त किया है । वर्तमान काव्यशास्त्रकारों की श्रृंखला में ।

`अलंकार कारिका ` में डा० द्विवेदी के उच्च स्तरीय काव्यशास्त्रीय चिन्तन नये आलोक में उपलब्ध होते हैं । काव्य सिद्धान्त सम्बन्धी रस अलंकार आदि प्रत्येक काव्य-तत्त्व के सम्बन्ध में इन्होंने अनेक मौलिक उद्भावनायें प्रस्तुत की हैं जो इनके महनतम स्वतन्त्र काव्यशास्त्रीय चिन्तन के प्रमाण हैं, तथा च जिनका भविष्य में ऐतिहासिक मूल्य होगा ।

इस प्रकार जिस व्यक्ति में महाकाव्य की रचना धर्मिता, नाटकीय सर्जना की सफल प्रतिभा, गीतिकार की विलक्षण प्रतिभा, अध्यवसायी अनुसंधाता की अनुसंधित्सा, महामार्य की काव्यशास्त्रीय नीर-क्षीर विवेकनी प्रज्ञा, सफल वक्तृता आदि का एकत्र समन्वय हो । वर्तमान विद्वत्समाज में जिसकी अंगुलिगण्यमान प्रतिष्ठा हो ।। तो फिर उसकी बहुमुखी प्रतिभा का इससे अधिक और क्या प्रमाण हो सकता है ।।।

सीताचरितम् (कथानक विवेचन)

डा० रेवाप्रसाद द्विवेदी 'सनातन' द्वारा प्रणीत 'सीताचरितम्' का आधुनिक सीता चरिताश्रित महाकाव्यों में महत्वपूर्ण स्थान है जिसमें रावण-वध के अनन्तर दशमुख विलास विराम भगवन श्रीमन्त राम के राज्याभिषेक से लेकर भगवती सीता के समाधि तक की कथा को दश सर्गों (६६४ श्लोकों) में अभिराम रूप में उपन्यस्त किया गया है[१]।

प्रस्तुत महाकाव्य के प्रथम सर्ग में राम के राज्याभिषेक का वर्णन मिलता है। इस महाकाव्य में सीता को अयोनिजा के रूप में कहा गया है और जनक-सुता के रूप में भी मान्यता दी गयी है[२]।

महाराघव राम रावण-वध के अनन्तर अग्नि में विशुद्ध हुई आदर्श प्रिया सीता के सहित अपनी प्यारी अयोध्या में आगमन करते हैं[३]।

जिस समय राम सीता को लेकर अयोध्या में आते हैं उस समय सम्पूर्ण अयोध्या-वासी राम और सीता के आदर्श गुणों का वर्णन करते हैं। इसके साथ ही लक्ष्मण के भी चरित्र की सराहना करते हैं[४]। मां कौशल्या वनवास से आये हुए राम, लक्ष्मण तथा सीता के लिए मंगल-कामना करती हैं और जीवन को धन्य मानती हैं[५]।

उक्त प्रसंग से अवगत होता है कि राम सीतादि के आगमन पर[६] सम्पूर्ण अयोध्यानिवासी आनन्द की लहर में हिलोरे लेने लगते हैं। माता

१- सीताचरितम् १ । १

२- (क) वही, १। २३, (ख) वही, ५ ।१२

३- वही, १। १

४- वही, १। ६

५- वही, १। १२-१५

६- वही, १। १६-२०

कौसल्या का पुत्रों तथा वधू के प्रति स्नेह विशेष रूप से परिलक्षित होता है[1]।

कौसल्या अपनी पुत्र-वधू सीता के आदर्श चरित्र की सराहना करती हुई भरत तथा लक्ष्मण के त्याग और तपस्या की प्रशंसा करती है । अयोध्या आने पर राम का राज्याभिषेक सम्पन्न होता है । राम के आधे सिंहासन पर अधिष्ठित सीता राजरानी के रूप में सुशोभित होती हैं[2]।

महाकाव्य के द्वितीय सर्ग में सीता की लोक-निन्दा की घटनाओं का वर्णन मिलता है । एक बार राम गर्भभारालसा सीता का मन बहलाव कर रहे थे[3]। इसी मध्य राम का एक गुप्तचर आकर राम से सीता के लोकापवाद का वर्णन करता है । जनता द्वारा कहे गये लोकापवाद को बताकर वह मूर्छित हो जाता है[4]। गुप्तचर द्वारा राम भी सीता की लोक-निन्दा को सुनकर मूर्छित हो जाते हैं, किन्तु पुनः स्वस्थ होकर उस (दूत) को विदा करते हैं । वे सीता के सुकर्मों पर विचार करके विदीर्णमना हो जाते हैं और यह कहते हैं कि - रावण के घर में रहने से मैंने उसकी अग्नि परीक्षा ली किन्तु उसमें भी वह खरी उतरी[5]। जिस सीता ने मेरे लिए राजप्रासाद की उपेक्षा कर वनों को ग्रह माना और जिसने चौदह वर्षों की चतुर्दशी फलों तथा उपवासों

१- सीताचरितम्, १। २२

२- वही, १। ६७-६८

३- अर्भकार्यै: कृतदोहदव्यथामुपासमान: स विदेहनन्दिनीम् ।
- वही, २।८

४- वही, २। २०

५- मनोज्ञ: क्वचित् याऽदधै संस्कृतिं सदैव शुद्धां भजते मनस्विनी ।
न कम्पते क्वापि मृत्युतोऽपि या वनी वमेनामपि हा जुगुप्सते ।।
- वही, २ ।२५

को हंसते-हंसते बिताया,[१] परित्याग करने पर भी उसने कभी दुःख के लिए इच्छा नहीं प्रकट की, मेरे शरीर की रक्षा उसने सब प्रकार से तेरह वर्षों तक करती रही, सत्पुरुषों और विद्वान हनुमान ने भी सिंहल में सीता को चरित्रशुद्धि में अविचलित पाया। अहो ! मेरी प्रजा तीनों ही प्रमाणों के विरुद्ध है, कलिकाल की प्रजा के समान।[२]

राम के उक्त कथन से परिलक्षित होता है कि सीता निन्दा के योग्य नहीं थी। उनका आदर्श चरित्र अनुपम एवं विलक्षण था। सीता तो पातिव्रत्य सम्पन्न नारी थी।[३] राम की दृष्टि में सीता विशुद्ध थीं।

राम सीता के चरित्र और उनकी विशुद्धता पर विचार कर कहते हैं कि -- मैं वास्तविक स्थिति का निर्णय नहीं ले पा रहा हूं। क्या करूं ? अपनी चेतना को छोड़ूं या जनता को, आग में कूदूं या समुद्र में। एक ओर राजधर्म का प्रश्न है तो दूसरी ओर[४] मेरे वैयक्तिक अस्तित्व का। इन दोनों में लता को त्यागूं अथवा द्रुम को।

राम के उपर्युक्त कथन में सीता निर्दोष ही सिद्ध होती है। उनमें किसी भी विकार की सम्भावना नहीं होती। सीता परम पवित्र एवं पातिव्रत्य से सम्पन्न प्रतीत होती हैं।

जब राम सीता की लोक-निन्दा को अपने सभी भाइयों और माताओं से कहते हैं तब सभी लोग सीता के चरित्र पर दुःख के सागर में डूब

१- सीताचरितम्, २८, २९

२- वही, ३०

३- ममैव किन्तवत्र परिच्युतात्मनस्त्रुटिर्विदेशा वनतास्त्यशिक्षिता।
पितुः स दोषः शिशुरपि यद् किंच मिथ्यपि वाच्यो यदि वक्ति रुचा॥
हनुमता किं सताऽभिसिद्धं चरित्रशुद्धावचला निरूपिता।
अहो प्रमाणात्रितयेऽपि मे प्रजा विरुद्धबुद्धिः कलिकालजा यथा॥
- वही, २।२९-३०

४- वही, २। ३४।३५

जाते हैं । राम की माताएं सीता की लोक-निन्दा को सुनकर मूर्छित हो जाती हैं और करुणा क्रन्दन करने लगती हैं तथा यह भी कथन करती हैं कि--'यह मेरी बहू, मेरे पुत्र के परिपक्व वंश को धारण किये हुए । विधाता ! तू इस पर वृत्तासुर के समान कलंक के ओले बरसाना चाह रहा है । कहां यह पृथ्वी की बेटी मेरी बहू तथा कहां वह उल्टी कथा (लोकनिन्दा) । यदि यह कलुषित है तो संसार में कौन पतिव्रता हो सकती है ? इस प्रकार माताओं के कथन से भी सीता विशुद्ध चरित्र वाली प्रतीत होती है । उनका हृदय सदा दोष-रहित था । उनमें अवगुणों का स्थान नहीं था । वे अत्यन्त विनम्र पति-स्नेही और सती नारी थीं ।

तृतीय सर्ग में सीता त्याग की घटनाओं का वर्णन किया गया है। राम माताओं और भाइयों को करुणा विलाप करते हुए देखकर अपना निश्चय (सीता-त्याग) व्यक्त नहीं कर पाते । सीता, राम की अन्तर्वेदना से अवगत होकर कहती है कि मनुष्य अपने भीतरी अन्धकार से आवृत्त नेत्रों से दूसरों की बाह्य स्थितियों को तो देखता रहता है किन्तु दूसरे के उत्कृष्ट धर्म और दर्शन को नहीं देख पाता । वह देखता है कि सूर्य बिम्ब से कभी भी शीतलता उत्पन्न नहीं होती और चन्द्र-बिम्ब की हिम शीतलता छूटती नहीं, किन्तु जनता दोष को ही स्वत: प्रमाण मानती है[१] । सीता, राम से यह भी कहती है कि यदि

१- निशाकराकं धारिणी कुलाकेऽर्थपात्मजस्यास्य किमर्थं मे वधू: ।
विधेऽत्र वृत्रासुरवत् कथं तत: कलङ्क-करकोपलमा: विमुञ्चसि ।।
क्व भूतधात्र्या दुहिता स्नुषा च मे, प्रतीपगाथा क्व च तादृशी कथा ।
उपांशु मल्ली न विषं, न चन्द्रिका तमो, न गङ्गा कलुषायितं, भवेत् ।।

- सीताचरितम्, २। ५०-५१

कृतस्यसी चेत् कलुषा तत: शुचिर्वीमत्स्ये का नु पतिव्रता भवेत् ।

- वही, २।५३ श्लोक का उत्तरार्द्ध

आपका अपाय राज्य-सुख-शान्ति के बल से शीतल है तो उसमें तपन पैदा करने वाली मुझ जैसी व्यक्ति का प्रयोजन ही क्या ?[1] मैं कानन अथवा जहां आप चाहें वहां रह सकती हूं केवल विश्व मानव को निष्कंटक रहना चाहिए आपकी कीर्ति के साथ सीता के उक्त कथन में दार्शनिकता की छटा झलकती है । वे स्वतः वन जाने के लिए तैयार हो जाती हैं । उन्हें लेशमात्र भी दुःख नहीं होता। वे पति के सुयश को उजागर करना चाहती हैं । प्रजा को कष्ट नहीं देना चाहती।[2]

इसी समय सीता में वैराग्यभाव उत्पन्न हो जाता है । वे कहती हैं कि जीवन के बाद न प्रजा, न तो बन्धु-बान्धव प्राणी के साथ जाते हैं ।[3] उस समय एक मात्र विशुद्ध एवं निरुपाय चित्त ही साथी का स्थान ग्रहण करता है । सीता राम से कहती हैं कि आर्य ! मनस्विनी नारियों को केवल स्त्री होने के कारण संसार शंका की दृष्टि से देखता है और उनकी निन्दा[4] करता है, किन्तु लोकनायक के विवेक का दीपक उनके लिए नहीं बुझता । इस प्रकार सीता अनेक दार्शनिक तर्कों के माध्यम से अपने को लोकनिन्दा से दूर बतलाती है । कवि ने सीता में वैराग्यता एवं दार्शनिकता का दीपक जलाकर नवीन तथ्यों की उद्भावना की है ।

सीता सब प्रकार के दुःख को अंगीकार कर लेती है किन्तु राम के युगल-चरणों की धूलि की अनुपलब्धि का चिन्तन कर व्याकुल हो जाती है । सीता राम से कहती हैं कि नाथ ! सब कुछ विस्मृत कर देना, किन्तु मुझ प्राण-पिपासिनी को परिचारिका[5] के पद से वंचित न करना । यह कहकर सीता, राम को प्रणाम करती हैं । माताओं की चरणधूलि को अपने आंचल में लेकर

१- सीताचरितम्, ३ ।५ ।६

२- वही,

३- वही, ३ । १२

४- वही, ३ । १०-२१

५- वही, ३। २२-२३

स्वत: लोक-निन्दा-वश वन जाने के लिए आदेश की याचना करती है[1]।

पूर्व महाकाव्यों में (वाल्मीकि रामायणादि) राम सीता को 'दोहद' के व्याज से लक्ष्मण के साथ वन भेजते हैं किन्तु आधुनिक महाकाव्य में सीता स्वत: वन जाने के लिए आदेश मांगती है। यह सीता चरितकार की अभिनव कल्पना प्रतीत होती है। कवि सीता की कारुणिक स्थिति को दूर करके शिक्षित नारी के रूप में उनके आदर्श चरित्र को वर्णित किया है। सीता माताओं से भी अपने वन-गमन की विवेचना करती हैं और अपने को वन जाने के लिए कहती हैं। इसके साथ ही यह भी कहती हैं कि मुझे इसके लिये कोई खेद नहीं है। अपनी कीर्ति रूपी छाया की रक्षा हेतु अच्छे दम्पति और सत्पुरुष मृत्यु से भी नहीं डरते[2]। इसके अनन्तर सीता लक्ष्मण को बुलाकर उपदेश देती हैं कि अपने अग्रज महाराज की सेवा करना[3]। मैं वन जा रही हूं और स्वत: अंजलि बांध कर भरत से अपने वन में पहने हुए वल्कल-वसनों की याचना करती हूं।

उपर्युक्त कथन से विदित होता है कि 'सीताचरितम्' की सीता स्वाभिमानिनी नारी है। उनमें भीरुता का स्थान नहीं। यश के लिए लोक-सुख से भी हाथ धोने के लिए उद्यत हो जाती हैं। 'सीताचरितम्' की सीता लोक-निन्दा से व्यथित नहीं होती, जबकि पूर्व के रामायणादि महाकाव्यों में अत्यन्त विकल प्रतीत होती हैं।

१- सीताचरितम्, ३।२४-२५

२- यामि मातर इत: स्वयस्ततो यामि, यामि विपिनं न मे व्यथा।
कीर्तिकायमविहुं शुभाशुभा मृत्युतोऽपि न हि जातु बिभ्यति ॥
-वही, ३।३१

३- वही, ३।३४

इसके अनन्तर मूर्छित हुई माताएं चेतनावस्था में आने पर आपस में विचार करके यह निर्णय लेती हैं कि सीता को महर्षि वाल्मीकि को सौंप देना चाहिए[1]। राम माताओं के प्रस्ताव को स्वीकार कर लक्ष्मण को इस प्रस्ताव का पालन करने के लिए कहते हैं। पहले लक्ष्मण ऐसा करने को उद्यत नहीं होते किन्तु जब राम लक्ष्मण को समझाने लगते हैं,[2] इसी बीच सीता पुन: दार्शनिकता से युक्त अनेक बातें करने लगती हैं। वे शरीर की नश्वरता पर भी प्रकाश डालती हैं[3]। सीता की दार्शनिक बातों को सुनकर लक्ष्मण सीता के साथ जाने के लिए उद्यत हो जाते हैं। जब सीता लक्ष्मण के साथ प्रस्थान करती हैं उस समय सभी लोग दुख से व्याकुल हो जाते हैं। राम पहले सीता के विरह से आकुल हो जाते हैं किन्तु अन्त में राम ममत्व का बन्धन छोड़कर मूर्तिमान कर्मयोगी से प्रतीत होने लगते हैं[4]।

चतुर्थ सर्ग में सीता के वन गमन के अवसर (सीता-त्याग) पर उर्मिला आदि बहनें उन्हें वन जाने से रोकती हैं। लक्ष्मण सीता के विछोह में शोक-सन्तप्त होते हैं। वे सीता को वनचरी नहीं बनाना चाहते हैं[5]। लेकिन, अग्रज भाई राम की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करना चाहते हैं। वे सीता को अपने प्रासाद में ले जाते हैं। सीता के आने पर उर्मिला उनका

१- सीताचरितम्, ३। ३८

२- वही, ३ ।४४

३- वही, ३।४६, ४६

४- निज-नरपति-धर्म-रक्षणार्थं

हिमगिरि-निश्चलतां वहन् निराशी: ।

कृतवपुरिव कर्मयोग एषा

स्थित-ममत्वतया तदाऽन्वभावि ।।६१।।

- वही, ३।६१,६२

५- वही, ४।१

हार्दिक स्वागत करती है । सीता उर्मिला को अपने हृदय से लगा लेती है । उर्मिला सीता को अन्यमनस्क देखकर उनके शोकसन्तप्तता का कारण पूछती है[1]। जब उर्मिला कहने के लिए बाध्य करती है, तब सीता उर्मिला की शिष्टता, नम्रतादि गुणों की प्रशंसा करती हुई कहती है कि 'बहिन !! अब मैं रघुवंश की परात्पर वधू नहीं रह गयी हूं । आज मैं सम्पूर्ण विश्व की दासी हूं और फिर वनेचरी बन गयी हूं[2]। यह सुनकर उर्मिला शोकाकुल हो जाती है तभी श्रुतिकीर्ति और माण्डवी आकर अपने-अपने प्रिय के मुख से सुनी हुई सीता की लोक-निन्दा को उर्मिला से बताकर उन्हें और भी मूर्छित कर देती हैं[3]। चेतनावस्था आने पर सभी बहनें सीता को वन जाने से रोकती हैं और कहती हैं कि बहिन तुमको लोकापवाद का क्रोध छोड़ देना चाहिए तथा हठ प्रकट करती हैं कि केवल प्रसव तक के लिए आप वन न जायें[4]। सीता अपनी लोक-निन्दा से दुःखित होकर घर नहीं रहना चाहतीं । यद्यपि सभी बहनें उन्हें सब तरह से समझाती हैं किन्तु वे अपने पथ से विचलित नहीं होती बल्कि सीता वन जाने के लिए उद्यत हो जाती हैं ।

कवि ने पंचम सर्ग में कुश एवं लव के जन्म की घटनाओं का वर्णन किया है । जब लक्ष्मण सीता को वन पहुंचाकर राम के पास प्रत्यागमन करते हैं तब सीता गंगा के तट पर राम के लिए चिन्तित होती हैं और सोचती हैं

१- सीताचरितम्, ४।६, १०

२- अहमस्मि न साम्प्रतं स्नुषा रघुवंशस्य वधूः परात्परा ।
अधुनास्मि चराचरचेटिका भुवनस्यास्य पुनर्वनेचरी ।।
- वही, ४। ३०

३- वही, ४ । ३६

४- वही, ४। ४३-४४

कि मैं कहां जाऊं[1] ? सीता वन में प्राकृतिक सौन्दर्य को देखकर मुग्ध हो जाती है और वह परिपक्व गर्भ से अलसायी हुई वनेचरी की भांति घूमती है। वन्य पक्षियों के गीतों को सुनकर और मृग के बच्चों को देखकर आनन्द-विभोर हो जाती है। लता-कुंज की वन-देवियों ने पुष्प की वृष्टि करके सीता के लिए पुष्प शैय्या का निर्माण करती है[2]। वनान्त पवन ने सीता की सेवा किया। इसी समय सीता के गर्भ से दो पुत्रों (कुश-लव) का जन्म होता है और इसी समय वाल्मीकि अपने आश्रम से गंगा के तट की ओर प्रस्थान कर रहे थे[3]। महर्षि व्याकुलता से लड़खड़ाते हुए उस वन के वृक्ष, तृण और लताओं से कुछ प्रश्न पूछते हैं[4]। वे सब मौन भाषा में प्रत्युत्तर देते हैं। सीता के समीप पहुंचकर समाधिस्थ हो जाते हैं और समाधि के द्वारा सीता के विषय में पूर्ण रूप से अवगत हो जाते हैं। समाधि द्वारा अवलोकन करते हैं कि जनक जैसे योगी पुत्री सीता अपवाद के कारण वन आयी हुई है और दो पुत्रों को जन्म दिया है[5]। वाल्मीकि सीता के पास दो नवजात शिशु देखते हैं और सीता को प्रसव काल में भी प्रसन्नचित्त देखते हैं[6]।

महर्षि वाल्मीकि सीता के लिए मधुरवाणी में कह रहे हैं कि 'पुत्रि'। तेरा कल्याण हो। इन दोनों पुत्रों के साथ तेरे चरण हम

१- सीताचरितम्, ५।३-६

२- वही, ५।१५-१६

३- वही, ५। २८

४- वही, ५। ३३-३४

५- वही, ५। ६१

६- वही, ५। ६५-६७

लोगों के स्थान का स्पर्श करें[1]। जानकी मुनि की आज्ञा का पालन कर गंगा को प्रणाम कर उनके आश्रम में चलने के लिए प्रस्थान करती हैं[2]।

प्राचीन महाकाव्यों में सीता वाल्मीकि के आश्रम में पहुंचकर पुत्रों को जन्म देती है किन्तु `सीताचरितम्` महाकाव्य की सीता वन में पुत्रों को जन्म देकर तब वाल्मीकि के आश्रम में आती हैं।

षाष्ठ सर्ग में सीता की मुनिवृत्ति पर प्रकाश डाला गया है। सीता पुत्रों के सहित मुनि के आश्रम में आती हैं जो उनका दूसरा पितृ-गृह ही था[3]। सीता आश्रम में पहुंचकर नारी-जीवन पर क्षोभ व्यक्त करती है[4]। सीता अपने को धन्य मानती हैं जो पुत्र जन्म के उपरान्त ऋषि के आश्रम में आयी हैं[5]। वे आश्रम की जनता के प्रति आभार व्यक्त करती हैं और कहती हैं कि नगर की जनता की भांति इनमें किसी प्रकार का विकार नहीं है। सीता मुनि बालकों और कन्याओं को देखकर कहती हैं कि यहां आश्रम में जितने भी मुनि बालक हैं वे सब सनक-सनातनादि ही हैं तथा कन्यायें सब पार्वती और लक्ष्मी हैं। सभी युवक भरत और भगीरथ हैं। सभी वृद्ध मेरे पिता विदेह राजा जनक हैं। सूर्य, चन्द्र यजमान और पंचमहाभूत, इन आठ मूर्तियों से युक्त भगवान अष्टमूर्ति शिव में ही यहां सदा सभी लोक लीन रहते हैं[6]। सीता आश्रम के धार्मिक अनुष्ठानों से अवगत होने पर वन को मांगलिक

१- सीताचरितम्, ५। ७०

२- वही, ५। ७१

३- वही, ६। १

४- वही, ६। ४

५- वही, ६। १०-१५

६- वही, ६। १९-२१

मानती है । इस प्रकार इस सर्ग में कवि ने सनातन-धर्म को स्थापित करने का यत्न किया है ।

सीता आश्रम के तृण, मृग, फलों, बछड़े और द्विजातीय लोगों के बच्चों से अपने पुत्रों के समान प्रेम करती हैं, मुनि स्त्रियों, गायों और हिरनियों में जिस किसी में भी जब प्रसव होता है, तब सीता उनमें से प्रत्येक की पीड़ा अपने हाथ से संजोयी सामग्री द्वारा दूर करती हैं । आश्रम की मुनि-कन्याओं के हाथों को सीता अपने प्रशिक्षण शिल्प-कलाओं में कुशल बना देती हैं ।[1]

सीता अपने पास के सभी तीर्थों का दर्शन मुनियों के साथ पद-यात्रा द्वारा करती हैं । धान के खेतों को अपने दोनों पुत्रों के साथ स्वयं ही निराती हैं । चटाई, वस्त्र और बर्तन वे स्वयं बना लेती हैं । इसी प्रकार खिलौने का भी निर्माण करती हैं । वे अपने पुत्रों को बचपन से ही सेवा का व्रत सिखाती हैं । सीता सदा अपने हृदय से राम को स्मरण करती हुई दैनिक कार्य में तत्पर रहती हैं ।[2] सीता भूमि पर सोती हैं तथा समाधि को भी साधती हैं तथा व प्रिय का दर्शन करती हैं । सीता दोनों बच्चों को प्रणाम करने की शिक्षा देती हैं । इससे उनकी शिष्टता का पता चलता है ।[3]

सप्तम सर्ग में कुश एवं लव की शिक्षा पर प्रकाश डाला गया है । सीता दोनों बालकों को शिक्षा के लिए वाल्मीकि को समर्पित करती हुई कहती हैं कि इन दोनों को इनके स्वयं के और अपनी जनता के परिष्कार के

१- सीताचरितम्, ६ ।२७-३०

२- वही, ६। ३९-४१

३- वही, ६ । ४२-४३

लिए आपको देती हूं[1]। इस पर वाल्मीकि कहते हैं कि इस संसार में रघु-कुल की सामग्री विदेह की पुत्री और भारतवर्ष के मुनियों के व्रत से बनी तुम जैसी जिसकी माता हो, उनकी शिक्षा के लिए दूसरे गुरु की क्या आवश्यकता ?[2] इसके बाद वाल्मीकि उन दोनों पुत्रों को यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न कराते हैं। उन्हें परा और अपरा दोनों प्राच्य विद्याओं से परिचित कराते हैं। इसके उपरान्त उन्हें अतीव सूक्ष्म और दिव्यास्त्र भी प्रदान करते हैं[3]।

अष्टम सर्ग में कवि ने कुश एवं लव के युद्धों का वर्णन किया है—

अंगों सहित वेदों और शास्त्रों में उन दोनों को कुशल देखकर वाल्मीकि अपना काव्य (रामायण) भी सस्वर पढ़ा देते हैं[4]।

राम सम्पूर्ण दिशाओं में विजय प्राप्त करने के लिए यज्ञ का अश्व छोड़ते हैं[5]। उस अश्व की रक्षा के लिये लक्ष्मण का औरस पुत्र चन्द्रकेतु बहुत बड़ी सेना के साथ वाल्मीकि आश्रम पर पहुंचता है, क्योंकि अश्वमेध यज्ञ के अश्व को सीता के पुत्रों ने पकड़ रखा था[6]। अश्व प्राप्त करने हेतु उन दोनों बालकों से युद्ध छिड़ जाता है। सभी परास्त हो जाते हैं। यहां तक कि राम, लक्ष्मण आदि भी आ जाते हैं, किन्तु विजयी नहीं होते। अन्त में

१- पितरमिव भवन्तमाश्रिताहं भरतमहीकुलकेतुकामिनी द्वौ।
निज-निजवनता-परिष्क्रियार्थे चरणयुगे भवतो निवेदयामि ॥
— सीताचरितम्, ७। ५

२- वही, ७ ।८

३- वही, ७ । १२

४- वही, ८ । ४

५- वही, ८ । १५

६- वही, ८ । १६-२०

बाल्मीकि राम के आने पर युद्ध-विराम के लिए कहते हैं और रामावतार से अवगत होकर उनका स्वागत करते हैं । राम लव एवं कुश को तथा लव एवं कुश राम को स्वरूपत: जानकर भी तत्वत: नहीं जान पाये[१]। बाल्मीकि उन वीर बालकों के साथ राम को अपने आश्रम में ले जाते हैं[२]। सीता यह सब जानकर भी राम से पराङ्गमुख ही रहीं । अन्त में बाल्मीकि अश्व को उन कुमारों से दिला देते हैं[३]।

नवम् सर्ग में कवि ने मातृप्रत्यभिज्ञा पर विवेचना प्रस्तुत किया है । युद्ध के उपरान्त भरत, लक्ष्मण, कुलगुरु वशिष्ठ और राम की सभी माताएं एवं राजर्षि जनक भी बाल्मीकि आश्रम में आते हैं[४]। आश्रम में सबके आने पर सीता मौन रहती हैं ।

बाल्मीकि अपने आश्रम में सभी लोगों को बुलाकर एक विशाल सभा का आयोजन करते हैं । जनक उस सभा के अध्यक्ष बनते हैं[५]। सभा के मध्य एक वेदिका भी निर्मित होती है, जो चारों ओर पुष्प पत्रों से ढकी हुई थी[६]। बाल्मीकि राम के अश्वमेध यज्ञ के विषय में कहते हैं कि बिना पत्नी के यज्ञ निष्फल है, किन्तु राम इसके प्रत्युत्तर में सुवर्ण प्रतिमा रूपी सीता का कथन करते हैं । तब बाल्मीकि कहते हैं कि यदि सीता की सुवर्ण प्रतिमा प्रतिष्ठित कर लिया है तो सीता ने क्या अपराध किया ? सुवर्ण

१- सीताचरितम्, ८ ।६८

२- वही, ८ । ७०

३- वही, ८ । ७१

४- वही, ९ । १

५- वही, ९ । ७

६- वही, ९ । ८-९

उसी का नाम है, जो जलाने पर भी श्याम न पड़े, तो सीता क्या (विभीषणादि) राक्षसों (सुग्रीवादि) वानरों और इन्द्रादि देवताओं के समक्ष अग्नि-परीक्षा में शुद्ध नहीं हुई थीं ? शुद्ध साध्वी सीता को जनापवाद के कारण गर्भावस्था में वनवास देना यह आपने ठीक नहीं किया। अतएव आपके लिए उसकी निर्जीव पुतली बनाने से क्या लाभ ? यदि आप लोगों में सुमति जागी है कि सीता शुद्ध है तो उसी सीता को खोजें, क्योंकि[1] अश्वमेध यज्ञ में जानकी को भी महत्व दिया जाना चाहिए । इसके बाद राम कहते हैं कि मुनिवर आपका दर्शन वृथा नहीं होता । आप सीता का दर्शन कराने की कृपा करें । राम जनता की भावना का आदर कर सीता का परित्याग केवल शरीर मात्र से किया था वैसे वे सीता के प्रति विशेष दु:खी थे[2]।

राम को दु:खी देखकर और उनके कहने पर वाल्मीकि मुनि वन देवियों को संकेत करते हैं । वे वेदिका पर पड़े सुवर्ण-पत्र के आवरण को दूर करती हैं और सीता सभी को स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं तथा वन देवियां सीता का जय-जयकार करने लगती हैं । सीताचरितम्[3] की सीता लघिमा, अणिमा, महिमा, गरिमादि सिद्धियों से युक्त रहीं । सभी लोगों[4] ने सीता को सभक्ति प्रणाम करते हैं । ऐसे अवसर पर जनक प्रसन्न होते हैं । उक्त प्रसंग में सीता के प्रभुत्व की ओर संकेत किया गया है तथा उन्हें आद्याशक्ति के रूप में भी प्रतिपादित किया गया है ।

वाल्मीकि आश्रम में राम, सीता और सम्पूर्ण अयोध्यावासियों

१- सीताचरितम्, ६। २४-२६

२- वही, ६ ।४१-४३

३- वही, ६ ।५३-५४

४- वही, ६ ।५५

का वह समाज देखकर पुन: अपने पुत्री के विवाह की मांगलिक घड़ी स्मरण करने लगते हैं[१]। मां कौशल्या राम एवं सीता को देखकर प्रसन्न होती है, किन्तु राम और सीता जनक को देखकर अश्रु-धारा से सिंचित हो जाते हैं, क्योंकि उस समय उन्हें दशरथ का अभाव स्मरण हो जाता है[२]।

उक्त प्रसंग कवि ने अपनी नयी सूझ-बूझ के द्वारा प्रतिपादित किया है क्योंकि सीताचरिताश्रित अन्य महाकाव्यों में ऐसा प्रसंग नहीं दृष्टिगोचर होता है।

दशम सर्ग में कवि ने समाधिस्थ सीता का वर्णन किया है[३]। वाल्मीकि लव एवं कुश दोनों कुमारों से राम का परिचय कराते हैं[४]। किन्तु ऐसे अवसर पर सीता तटस्थ रहती हैं। वाल्मीकि के कहने पर वशिष्ठ कुश एवं लव को सभी के समक्ष राम को समर्पित करते हैं। राम उन्हें स्वीकार कर प्रसन्न होते हैं[५]। वहां स्थित हुए सभी लोग सीता को बराबर की माता के नाम से सम्बोधित करते हैं[६]। सीता जनता द्वारा अपने प्रशंसा के वचनों को सुनकर पति, पिता आदि-उपस्थित देखकर तपोवन के उत्तम स्थान से अवगत होकर अपने स्थूल देह को अपनी माता (भूमि- भूगर्भ) को समर्पित करने के लिए निश्चित करती हैं[७]। सीता सबको विनम्रतापूर्वक प्रणाम करती हुई

१- सीताचरितम्, ६ । ६४

२- वही, ६ । ६५

३- वही, १० । १५-१७

४- वही, १० । २०

५- वही, १० । २४

६- वही, १० । ५८

७- वही, १० । ६५

आशीर्वादों के साथ लक्ष्मण-पुत्र चन्द्रकेतु के ललाट पर हाथ रखकर सस्मित प्रसन्न मुख के साथ शान्त चित्त हो समाधिस्थ हो जाती हैं । उनकी समाधि फिर कभी नहीं टूटती और आत्मदेव स्वरूप को प्राप्त हो जाती है[1] ।

इसके वाल्मीकि, वशिष्ठ, जनक और अन्य सभी मुनिजनों ने समाधिस्थ सीता को देखकर वास्तविकता से अवगत हो जाते हैं । वे जल मूर्धपत्रों से उनकी समाधि को फिर आरक्षित करा देते हैं । कुछ दिन प्रतीक्षा कर सीता के आतुर सम्बन्धियों को मुनि जन आत्म-तत्व के विषय में उपदेश देकर सभी के दुःख को दूर करते हैं[2]। अन्त में पवित्र गर्त खोदकर सीता के स्थूल शरीर को भू-समाधि दे देते हैं, क्योंकि योगयुक्त प्राणी का शरीर मृत नहीं माना जाता[3]।

यही है सीताचरितम् महाकाव्य की संक्षिप्त कथावस्तु ।

१- सीताचरितम्, १० । ६९-७०

२- वही, १० ।७२-७४

३- गाङ्गैस्तोयैरथ मन्त्रैस्तैर्विविधैः पवित्रं
श्रद्धापुण्यैः कमलकलं जातमेतं विधाय ।
तस्या गात्रं पुनरपि महीमातुरेवाङ्कमध्याऽऽ-
सीनं चक्रुः, न हि मृतवपुर्मन्यते योगयुक्तः ।।

वही, १० ।७५

नेतृ-निर्णय एवं पात्र-विवेचन -

डा० रेवाप्रसाद द्विवेदी 'सनातन' द्वारा प्रणीत 'सीताचरितम्' महाकाव्य के अन्तर्गत राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, वशिष्ठ, कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी, सीता, उर्मिला, माण्डवी, श्रुतकीर्ति, वाल्मीकि, कुश, लव, चन्द्रकेतु, जनक, गुप्तचर (अनाम) आदि पात्रों का न केवल उल्लेख ही मिलता है अपितु न्यूनाधिक रूप में इन सबके चरित्र पर भी प्रसंगतः प्रकाश डाला गया है ।

शास्त्रीय दृष्टि से पात्र विवेचन के परिप्रेक्ष्य में यदि देखा जाय तो उपर्युक्त पात्रों में राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, कुश, लव, चन्द्रकेतु, जनक, गुप्तचर, वाल्मीकि एवं वशिष्ठ पुरुष पात्रों की कोटि में आते हैं, इनमें राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, कुश, लव, चन्द्रकेतु एवं जनक राजकीय पात्र का प्रतिनिधित्व करते हैं । उक्त के अतिरिक्त वशिष्ठ और वाल्मीकि जैसे महाऋषिधर्मा त्रिकालदर्शी मुनि आर्षपात्र का प्रतिनिधित्व करते हैं । अज्ञात नामा गुप्तचर प्रजाकीय पात्र का प्रतिनिधित्व करता है ।

इसी प्रकार स्त्री पात्रों में सीता, उर्मिला, माण्डवी, श्रुतिकीर्ति, कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी राजकीय स्त्री पात्र ही हैं ।

पुनश्च यदि पात्रों की दिव्यता दिव्यादिव्यता एवं अदिव्यता (मर्त्यता) की दृष्टि से विचार किया जाय तो राम एवं सीता पूर्णतः दिव्य कोटि के पात्र हैं । वशिष्ठ एवं वाल्मीकि एवं जनक दिव्यादिव्य कोटि के पात्र हैं । इनके अतिरिक्त शेष सभी अदिव्य (मर्त्य) कोटि के पात्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं ।

इसी प्रसंग में यह भी स्पष्ट कर देना असंगत न होगा कि सीताचरितम् महाकाव्य में नायक का स्थान स्वयं मर्यादापुरुषोत्तम महाराजा राम को न मिलकर भगवती सीता को ही दिया गया है और महाकाव्य की फलश्रुति भी अन्ततोगत्वा अन्तिम रूप से सीता को ही उपलब्ध करायी गयी है । भगवती सीता ही इस महाकाव्य में जहां एक ओर नायिका दायित्व

का निर्वाह करती हैं वहीं दूसरी ओर समूची कथावस्तु का केन्द्र बिन्दु होने के कारण महाकाव्य के नायक पद का भी भार वे ही सम्भालती हैं ।

सीता —

सीताचरितम् महाकाव्य के अन्तर्गत आर्या सीता के जीवन की उत्तरार्ध कथावस्तु (राम के राज्याभिषेक से लेकर सीता के भू समाधि तक की कथावस्तु) का सविस्तर विवेचन हुआ है । सीता ही इस काव्य की सम्पूर्ण कथावस्तु की सूत्रधारिणी है, उन्हीं के संकेतों पर ही महाकाव्य की सम्पूर्ण घटना चक्रावली आगे बढ़ती है । यही कारण है कि आर्य श्रीमन्त राम के होते हुये भी सीताचरितम् महाकाव्य में नायक का स्थान सीता ही ग्रहण करती हैं । सीता इस महाकाव्य की महीयसी नायिका है । सीता-चरितकार ने अपने इस महाकाव्य में सीता को प्रेयसी, पतिव्रता, भगिनी, जननी, आत्मनिर्भर गृहिणी, समाज सेविका, शिक्षिका राष्ट्र-देवी, योगिनी, अध्यात्मविद् आदि विविध रूपों में उपस्थित करने का सफल प्रयत्न किया है, और इसके माध्यम से महाकवि ने सीता के बहुआयामी व्यक्तित्व को उजागर करते हुये प्रकारान्तर से विश्व साहित्य में भारतीय नारी के सर्वतोमुखी व्यक्तित्व को स्थापित करने का प्रयास किया है ।

क्योंकि भगवती सीता सर्वात्मरूप मर्यादा पुरुषोत्तम परात्पर राम की प्राण-वल्लभा क्या हैं, अपितु वे दोनों एक ही चेतना की दो अवस्थायें हैं, जिनमें एक आधार है तो दूसरा आधेय, अथवा वे दोनों एक ही चेतना की दो संज्ञायें है जिनकी सम्पूर्ण संज्ञा है सीताराम । सीता का अखण्ड प्रेम महाराघव को अर्पित है जिसका प्रमाण स्वयं राघव ही देते हैं, सीता नहीं ।

गुप्तचर से सीता के विषय में जनापवाद सुनकर महारामचराम जिस अन्तर्व्यथा से व्यथित होते हैं और चेतना की जिस भूमिका में पहुँच करके सीता के मात्र प्रेम एवं पातिव्रत्य धर्म की चर्चा करते हैं वह सब कुछ अत्यन्त ही हृदयाकर्षक है ।

राम कहते हैं कि कैसी विलक्षण बात है कि रावण के घर रहने का दुर्भाग्य तो स्वतः प्रमाण है किन्तु अग्निशुद्धि नहीं । लगता है शरीर से नष्ट हो जाने पर भी वह असुर रावण अनंग के समान लोगों के मन में अब भी बैठा हुआ है[1] । जिसने मेरे लिए राजप्रासाद की अपेक्षा वनों को भी अधिक प्रिय माना और चौदह वर्षों की चतुर्दशी फलों एवं उपवासों से हंसते हंसते बितायी[2] । चीर धारण करने पर भी जिसने कभी भी दुकूल के लिए इच्छा नहीं प्रकट की, वनवास के १३ वर्षों तक मेरे शरीर की प्रतिदाण रक्षा करती रही[3] । स्वयं हनुमान ने भी लंका में जिसे पूर्णतः शुद्ध बताकर पातिव्रत्य धर्म की प्रतिमूर्ति बताया । कितना आश्चर्य है कि हमारी प्रजा कलियुग के प्रजा के समान इन तीनों ही प्रमाणों के सर्वथा विरुद्ध है[4], ओ विधाता यह कैसा आग्रह कि गंगा एवं अग्नि के समान विशुद्ध केवल मुझ पर ही केन्द्रित चित्त वाली मेरी प्रिया वैदेही को पाप-शङ्का के मनकारों से लता के समान निर्दयतापूर्वक भकझोर रहे हो[5], कैसी विडम्बना है कि मैं कुछ निर्णय नहीं ले पा रहा हूं कि मैं क्या करूं[6], अपनी चेतना को छोड़ूं या जनता को, अग्नि समाधि ले लूं या जल समाधि, एक ओर राजधर्म का प्रश्न

१- कथं नु रक्षो-गृह-वास-दौर्भगं स्वतःप्रमाणं, न च वह्निशोधनम् ।
अवैमि नष्टो वपुषाप्यनङ्गवज्जनान्तरङ्गेऽद्य कृतो स रावणः ।।
-सीताचरितम्, २।२७

२- वही, २।२८

३- वही, २।२६

४- हनूमता किं सता विशिष्टं चरित्रशुद्धात्मना निरूपिता ।
अहो प्रमाणत्रितये ऽपि मे प्रजा विरुद्धबुद्धिः कलिकालजा यथा ।।
-वही, २।३०

५- अहो विधातः कथमीदृशो ग्रहः सुरापगा-पावक-तुल्य-शीलिताम् ।
मदेकचित्तामघ-मारुतैरिमां लतामिवान्दोलयसे मम प्रियाम् ।।
- वही २ ।३२

३- वही, २। ३४

है तो दूसरी ओर हमारे वैयक्तिक अस्तित्व का, इन दोनों में लता का परित्याग करूं या द्रुम को जो परस्पर अत्यन्त अश्लिष्ट है[1]।

यही नहीं कौशल्या माताओं का आत्म कथ्य भी सीता के आदर्श पतिव्रतत्व को ही सर्वात्मना पुष्ट करता है । कौशल्या मातायें जब सीता-विषयक जनापवाद को सुनती हैं तो कांप उठती हैं और कहती हैं कि कहां यह भूत धात्री पृथवी की बेटी और मुझ जैसी की बहू और कहां वह उल्टी बात[2]। यदि सीता कलुषित है तो समूची सृष्टि में कौन-सी पतिव्रता पवित्र होगी[3]।

यही नहीं तृतीय सर्ग के अन्तर्गत राजसभा में उपस्थित सीता और राघव का सम्वाद इस सन्दर्भ में पर्याप्त प्रमाण प्रस्तुत करता है । सीता कहती हैं कि आर्य पुत्र ! मनस्वी नारियों को केवल स्त्री होने के कारण सारा संसार शंका की दृष्टि से देखता है और उनकी निन्दा करता है परन्तु लोक नायक (राजा) के विवेक का दीपक उनके लिये नहीं बुझना चाहिए[4]।

१- समाजधर्म: स्थित एकतोऽन्यतो विभाति वैयक्तिकता च मत्पुर: ।
उदस्यतामत्र लता; द्रुमोऽथवा, परस्पराश्लिष्टतमात्मनोर्द्वयो: ।।
-सीताचरितम्, २।३५

२- क्व भूतधात्र्याद्दुहिता स्नुषा च मे, प्रतीपमावा क्व च तादृशी कथा ।
उपांशु मल्ली न विषं, न चन्द्रिका तमो, न गङ्गा कलुषायितं,भवेत्।।
-वही, २।५१

३- क्वं विमर्दे कलुषावली यथोचरोचरं शौरमभेव में वधु: ।
सुवरत्नसौ चेत् कलुषा तत: शुचिर्भवत्न्ये का नु पतिव्रता भवेत् ।।
- वही, २।५३

४- वही, ३ । १४

आर्य पुत्र ! यद्यपि हमारी पवित्रता बिना साक्षी के सिद्ध नहीं हो पा रही है किन्तु जितेन्द्रिय महात्माओं के पथ पर चलने वाले व्यक्ति के लिए परत: प्रमाण की आवश्यता नहीं होती[1]। देव ! यदि आपका अन्तः राज सुख शान्ति के बल से शीतल है तो उसमें तपन पैदा करने वाली मुझ जैसी निन्द्य नारी कि कोई आवश्यकता नहीं है[2]। मैं तो आपकी आज्ञानुसार वन क्या अपितु आप जहां चाहें वहीं रह सकती हूं, केवल विश्व मानव को आपकी कीर्ति के साथ निष्कंटक रहना चाहिए[3]। आर्य पुत्र ! वनवासिनी होकर भी आपके प्रति मेरा अखण्ड प्रेम स्वर्ण-कंचन सा उत्तरोत्तर कान्तिमान ही होता जायेगा। प्रेम की चिरन्तनता तो ठीक वैसी ही हुआ करती है जैसी सुवर्ण में कान्ति, जिसमें विप्रियता की अग्नि तनिक भी विकार नहीं ला पाती है[4]। आर्य पुत्र ! मुझे वनवास मिलने का दु:ख नहीं है किन्तु आपके चरणों की धूल मेरे लिए कहां सुलभ होगी। नाथ ! मेरा सब कुछ छूट जाय तो छूट जाय किन्तु आप इस प्रणय-भिखारिणी सीता को शरीर-बिन्दु तुल्य अपने उज्ज्वल हृदय की परिचारिका के पद से न

1- आर्य यद्यपि शुचित्वमात्मन: सेद्धुमर्हति न साक्षिणं विना ।
किन्तु वश्यमनसां महात्मनां वर्त्मनि न परत: प्रमाणिता ॥
- सीताचरितम्, ३।२१

2- वही, ३। ८

3- अस्तु मे भवदभीप्सिता गतिर्वन्य कुञ्जवन कानने वने ।
विश्वमानवमहत्यतां व्रजेतु कामभव सह कीर्तिभिस्तव ॥
- वही, ३। ६

4- देव कांचिदपि शाश्वती स्थिति: प्रेम्णा हेम्नि रुचिरा यथा द्युति: ।
विप्रियाग्निभृता न यत्र विक्रिया लेशतोपि लवतोपि जायते ॥
-वही, ३। १९

हटाइयेगा[१] न हटाइयेगा । निर्वासन के इस क्षण में नाथ ! आपके इस पवित्र चरण तीर्थ में आज मैं यह अन्तिम प्रणाम निवेदित कर रही हूं।[२]

इस प्रकार उपर्युक्त सारे तथ्य आर्या सीता के आदर्श प्रेम एवं अखण्ड पातिव्रत्य की परिपुष्टि कितनी सफलता से कर रहे हैं, इसे पुनः स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं ।

सीता के व्यक्तित्व के भगिनी रूप का निदर्शन चतुर्थ सर्ग में उर्मिला, माण्डवी एवं श्रुतिकीर्ति बहनों के साथ वार्तालाप के सन्दर्भ में उपलब्ध होता है । उर्मिला आदि बहनें जब यह निर्णय लेती हैं कि यदि आप साकेत को छोड़करके वन जा रहे हैं तो हम तीनों बहनें भी आपके ही साथ वन चलेंगे ।

यदि मर्यादा को पुरुष अपनी ओर से नष्ट करना चाहता है तो[३] अबला होते हुये भी विश्वकल्याण के लिए नारी को सबला होना ही चाहिए। इसलिए आप निःसंकोच हम तीनों बहनों को वन चलने के लिए अनुमति दें । हम सभी अपने-अपने गर्भस्थ शिशुओं को आपके ही साथ वन में जन्म देंगी और वन में ही विचरण करेंगी[४] । यदि इक्ष्वाकु कुल की अपेक्षा यह ही कहा है तो फिर वैभवों से क्या प्रयोजन । भारत की सारी वसुन्धरा हमारी माता है वह सदा सर्वदा के लिए हमारा घर है । जैसे हम चारों बहनें जनकपुर से साकेत में एक साथ आयी हैं वैसे ही हम सभी एक साथ अब वन में चलकरके रहेंगी[५] । इसके लिए केवल आपकी आज्ञा चाहिए । इस बिन्दु पर कैकेयी

१- हन्त सर्वमपि तावदस्यतां नाथ ते प्रणयमिद्धकीर्तिमाङ्ग ।
   वारिसिन्धुविशदस्य चेतसः पारमेतितमदतो न शक्यसि ।।
   - सीताचरितम्, ३।२३

२- पश्चिमा प्रणतिरङ्घ्रि-पुतीर्थयोर्नाथ तेऽद्य मनसा विधीयते ।
   - वही, ३।२४ पूर्वार्द्ध

३- वही, ४। ५७

४- वही, ४। ५८

५- वही, ४ । ६२

सीता अपनी बहनों को जो उपदेश देती हैं वह उनके आदर्श भगिनीत्व का चरम निदर्शन है । सीता कहती हैं कि बहन ! आप लोगों ने जो विचारा है वह भी यद्यपि मर्यादानुरूप है परन्तु मैं चाहती हूं कि आप लोगों के लिए गृहमेधता (गृहिणी धर्म)[1] ही बड़ी होनी चाहिए और यही करणीय भी है । इस प्रकार वैदेही रघुवंश की सुख सम्पत्ति की समृद्धि के लिये उर्मिला आदि बहनों से घर में ही रहने का अनुरोध करती हैं । वनवास के विपत्ति वज्राघात में नहीं डालना चाहती ।

आर्या सीता में जहां एक ओर प्रेयसी पतिव्रता एवं आदर्श भगिनी का रूप मिलता है वहीं विश्व के महामातृत्व के फलक पर उनका जननी-रूप भी कुछ कम नहीं । इनके जननी रूप का निदर्शन सीताचरितम् के षष्ठ एवं सप्तम् सर्ग में कुश, लव के प्रति जो कि इनकी औरस सन्तानें हैं तथा दशम् सर्ग में लक्ष्मण के पुत्र अनौरस चन्द्रकेतु के प्रति अभिव्यक्त हृदयोद्गारों में मिलता है ।

वाल्मीकि के आश्रम में रहते हुये भी आर्या सीता लव कुश के समुचित विकास पर निरन्तर ध्यान देती रही हैं[2] । सीता अपने दोनों बच्चों के प्रति पूर्णतया सतर्क रहती हैं व पूरी ममता के साथ स्नान आदि[3] दैनिक कृत्य बातों से कुश एवं लव के शरीर को परिपुष्ट बनाती रहती हैं ।

१- परिदेवनाक्लिष्टमनोभिरेव मे प्रियकाङ्क्षिणीभिरपि यद् विचारितम् ।
यदपि स्थितिं तदपि स्वाक्षु स्थितं, गृहमेधिकास्तु परमा परन्तु वः ॥
- सीताचरितम्, ४।६८

२- वही, ६।७८

३- निभि-रवि-कुश-लवयेति यथा तु मुदमुखी विपिने पि रक्षयेव ।
प्रतिनव-परिकर्म-संविधाभिः प्रतिदिनमङ्गमसमृद्धिमाप्यते स्म ॥
- वही, ६।९१

सीता लव कुश के अंगों में हो रही गुणाभिवृद्धि से परम सन्तुष्ट हैं।[१] वह दैनिक कुश-लव को प्रणाम करने की शिक्षा देती है और उसका अभ्यास कराती है महर्षि वाल्मीकि के चरण कमलों में विनयावनतता के द्वारा।[२] व्रत नियमों से कृशकाय होने पर भी सीता धैर्य पूर्वक अत्यन्त परिश्रम से कुश एवं लव का पालन-पोषण करती है। कभी-कभी इनके मन में वत्सलता की एक पवित्र धारा भी उमड़ती है जो उन्हें अति व्यथित कर देती है, वह यह कि काश। राघव भी इन बच्चों को कभी अपनी गोद में लेकर मेरे समक्ष खड़े दिखायी देते और मैं निर्निमेष दृष्टि से देखने का सुख प्राप्त करती। सचमुच जब कोई नारी अपने शिशु को पति की गोद में देखती है, तभी वह अपने मातृत्व भाव से सन्तुष्ट होती है।

१- अवयवपरिवृद्धिरात्मजन्मनोरिव उवाह गुणाभिवृद्धिमनयोः।
इति जनकसुता भृशं तुष्टा, भवति न किं हि विवृद्धिरेव वृद्धिः ॥
- सीताचरितम्, ६। ५३

२- प्रणतिपरतया तयात्मजातावृषिचरणाम्बुरुहे मरालितौ यत्।
भरतभुवन-भारती-प्रयाग-स्नपनविधौ कृतिनौ ततः कृतौ तौ ॥
- वही, ६। ५४

३- नियमकृशतनुर्विदेहपुत्री कृतिगुणेन परिश्रमेण पुत्रौ।
अपुषदपि च लालनं न प्रथमतरं तप आयतायताक्षा ॥
- वही, ६। ५८

४- हृदय उदयमाप राममत्न्या अतितरवत्सलता तथा व्यथापि।
पतिहृदि निजवत्समाप्य नारी भवति हि तृप्ततमा स्वमातृभावे ॥
- वही, ६। ५६

सप्तम् सर्ग में जब सीता महर्षि वाल्मीकि से कुश एवं लव के विद्या गुरु बनने के लिए निवेदन करती हैं तो उनके मातृत्व का पवित्र रूप स्वतः झलकता हुआ दिखाई देता है । सीता वाल्मीकि से निवेदन करती है कि भगवन् । शिशुओं के हृदय में सुषुप्त जो विद्या रूपी अग्नि शिखा है वह जिससे विश्व रूपता को प्राप्त होती है वह अत्यन्त मंगलमय कारण है, किसी कुलपति की विद्या की ख्याति का[1]।

मैं पितृदेव के समान आपके आश्रित रह रही हूं । भारतभूमि के इन दो संस्कारहीन नन्हे से कंकरों को इनके स्वयं के और स्वयं की जनता के परिष्कार के लिये आपके चरणों में अर्पित कर रही हूं[2]।

दशम् सर्ग में जब लक्ष्मण पुत्र चन्द्रकेतु कुश एवं लव के साथ आकर के अपनी बड़ी मां सीता को प्रणाम् करता है तो चन्द्रकेतु में बहन उर्मिला और देवर लक्ष्मण का दाम्पत्य जन्य ऐक्य देखकर मातृत्व के महारस में आकण्ठ निमग्न हो उठती है[3]। चिरप्रसूता गौ के समान उनके स्तनों से दुग्ध की धारा फूट पड़ती है, भला सीता के मातृत्व का इससे बड़ा परिचय और क्या हो सकता है[4], यही कारण है कि उस समय वहां उपस्थित साकेतवासी एवं

१- सीताचरितम्, ७।४

२- पितरमिव भवन्तमाश्रिताहं भरतमहीशिशुकण्टकाविमौ द्वौ ।
   निज-निजजनता-परिष्क्रियायै चरणयुगे भवतो निवेदयामि ।।
   - वही, ७। ५

३- सा चन्द्रकेतौ स्वसुरुर्मिलायाः स्वदेवरस्यापि च लक्ष्मणस्य ।
   दाम्पत्यजन्यैक्यमवेक्ष्य जाता प्रसह्य मातृत्वरसे निमग्ना ।।
   - वही, १० ।४२

४- सा तत्क्षणं वत्सविलीनेव सीता निजाञ्चले क्षीं समुवाह धाराम् ।
   निपीय तां मुग्धमुखैर्निजवक्त्रैः समुत्पुलकयितुं प्रवृत्तः ।।
   - वही, १० ।४३

आश्रमवासी सभी एक स्वर से सीता के उस महा मातृत्व को देखकर बोल उठते हैं कि "माता तु सीतैव चराचरस्य"[1]।

यद्यपि सीताचरितम् में वैदेही के गृहिणी रूप का अविकल चित्रण किसी एक स्थान पर स्पष्टत: नहीं उभर पाता क्योंकि गृहिणी के रूप में साकेत में वह स्थायी रूप से रहने को ही नहीं पाती। विवाहोपरान्त चतुर्दश वर्षों का वनवास, वनवास में उनका हरण, हरण के पश्चात् अयोध्या में उनका प्रत्यागमन और पुन: राज्याभिषेक के तुरन्त बाद लोकापवाद के कारण निर्वासन। यही तो वैदेही का जीवन-वृत्त है। यदि कुछ स्थायित्व इन्हें मिलता है तो वह वाल्मीकि के आश्रम में ही बच्चों के पालन-पोषण के साथ। और वहीं उनके हृदय की उर्वर भूमि में छिपा हुआ वह गृहिणी रूप भी कुछ स्पष्ट परिलक्षित होता है। सीता सद् गृहिणी के समान कुशलवके पालन-पोषण एवं उनकी शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था वाल्मीकि के संरक्षण में कराती हैं। कुशल गृहिणी के समान ही वह चटाई, वस्त्र, खिलौने एवं अन्य गृहोपयोगी वस्तुओं का निर्माण स्वयं करती हैं[2] और अपने पुत्रों को भी स्वयं सेवा का व्रत सिखाती रहती हैं। लव कुश को देखकर वह उनमें राम का साक्षात दर्शन करती हैं, इनके माध्यम से उन्हें राघव का भी अनायास स्मरण आ जाता है किन्तु वह इस विकल अवस्था में भी कभी भी अपने गृहिणी उचित दैनिक कृत्य में आलस्य नहीं करतीं[3]। इन सबसे सीता के अन्तर्गत निहित उनके गृहिणी भाव की मुखर अभिव्यक्ति मिलती है।

आर्या सीता की लोकसेवा भावना का चरम निदर्शन वाल्मीकि के आश्रम में उपलब्ध होता है। वैदेही साकेत निर्वासन के पश्चात् बराबर

१- सीताचरितम्, १० ।५८

२- वही, ६ । ३७-३८

३- वही, ६।४०

जगत की सेवा करना और उस सेवा में सर्वात्म रूप महा राघव राम का सेवा सुख अनुभव करना अपना व्रत मान लेती हैं । यही कारण है कि वाल्मीकि आश्रम में पहुंचते ही वहां के तृण-तरु, मृग, पक्षी, धेनु, बछड़े और अन्य द्विजातीय लोगों के बालकों पर अपने पुत्रों के समान ममता करने लगती हैं,[1] वह अपने अतीव स्नेहपूर्वक उन सबको अपने सेवा रस से परितुष्ट करने के लिए निरन्तर यत्नशील रहती है । वह मृग-शावकों को अपनी गोदी में सुलाती हैं उन्हें कोपलें खिलाती हैं । तथा उनमें मधुवत स्पृहा जगाती रहती हैं ।[2] वाल्मीकि के आश्रम में मुनि-पत्नियों, गायों, हिरणियों में से जिस किसी को भी प्रसव होता सीता उनमें से प्रत्येक की पीड़ा अपने हाथ से सजोयी[3] सामग्री द्वारा दूर किया करती हैं । आश्रम की मुनि कन्याओं को वह शिल्प कला में शिक्षित करके उन्हें कुशल गृहिणी बनाने के लिये उनका मार्ग प्रशस्त करती हैं,[4] यह नहीं वह आश्रम में कुश और लव के साथ धान के खेतों को निराती हुयी पाई जाती हैं[5] । आश्रम के छोटे-छोटे वृक्षों को वह अपने हाथ से सींचती हैं[6] और इन समस्त कृत्यों के माध्यम से आश्रम के मुनियों, मुनि-पत्नियों, बालक-बालिकाओं, समस्त पशु-पक्षी, लता गुल्मादि की सेवा

१- जनकतनयथापि वत्सलान्तःकरणतया श्रुतवन्मुनेः पदस्य ।
तृण-तरु-मृग-पक्षि-धेनु-वत्स-द्विज-तनयेष्वपि मातृभाव आपे ।।
- सीताचरितम्, ६।२७

२- वही, ६।२८

३- प्रसवविकृतिमत्र मानवीनामथच तथैव गवां मृगाङ्गनानाम् ।
इयमतिकरुणा स्वहस्तवद्धैरपकृतिरूपशान्तिमानिनाय ।।
- वही, ६। २९

४- वही, ६। ३०

५- वही, ६। ३६

६- वही, ६। ३३

करके सर्वात्म रूप राम की सेवा का अनुभव करती हैं । इस प्रकार महाराघव की प्रिया वैदेही निर्वासन काल में एक आदर्श समाज-सेविका का प्रतिनिधित्व करती हुयी पायी जाती हैं ।

सीता चरित कार ने आर्या सीता को एक ऐसी सुशिक्षित भारतीय महिला के रूप में चित्रित करने का यत्न किया है जिसमें कर्म की कालिन्दी, भक्ति की गङ्गा, एवं ज्ञान की अन्तर्नीरा सरस्वती का एकत्र संगम है । सीताचरितम् की सीता अपने पूर्व की राम काव्यों में निरूपित अन्य सभी सीताओं से अत्यन्त ही विलक्षण हैं । वह विलक्षणता यह है कि इस महाकाव्य में सीता आत्मबोध सम्पन्न, कुशल उपदेशिका ऋषिका के रूप में पायी जाती हैं । सीताचरितम् के तृतीय सर्ग में वैदेही राघव संवाद[1], वैदेही-कौशल्यादि सम्वाद[2], वैदेही-लक्ष्मण संवाद[3] और सप्तम सर्ग में वैदेही वाल्मीकि संवाद[4] यह सबके सब सीता के आदर्श शिक्षिका के रूप का मूल्यवान प्रमाण प्रस्तुत करते हैं ।

सीता चरितकार ने सीता को भारतीय नारी के चरम उदात्त रूप जिसे देवी कहते हैं से भी ऊपर उठाकर सम्पूर्ण राष्ट्र की देवी 'राष्ट्र देवी' के रूप में स्थापित करने का सफल यत्न किया है । सर्वात्म रूप राम यदि राष्ट्र देव हैं तो फिर उनकी मूल शक्ति वैदेही राष्ट्र देवी क्यों नहीं होगीं। सीता के इस उदात्त रूप का उल्लेख सीताचरितम् के पहले और नवें सर्गों में स्पष्टतया उल्लिखित हैं । प्रथम सर्ग में राम के साकेत प्रत्यागमन पर सम्पूर्ण अयोध्यावासियों में आनन्द की लहर दौड़ जाती है । कौशल्यादि माताओं

१- सीताचरितम्, ३।४-२३ तक ।

२- वही, ३।२४-३१ तक ।

३- वही, ३।३७-५१ तक ।

४- वही, ७।१-८ तक ।

का हर्ष आकाश छूने लगता है । सभी राम को राष्ट्र देवता के रूप में तथा भगवती सीता को राष्ट्र देवी के रूप में अभिनन्दित करते हैं । कौशल्या कहती हैं कि पुत्रि सीते ! तुम्ही सूर्य वंश की कीर्ति पताका पर सम्पूर्ण मानव सृष्टि के लिए धर्म की मुद्रा है आह तू ही है रामायण महाकाव्य रूपी मन्दिर की अधिष्ठात्री देवी[१]। महाराज दशरथ का वह ललाट आज तुमसे ही उन्नत है, तुमसे ही यह सूर्य वंश प्रकाशित है, तुमसे ही यह मानव धरित्री पवित्र है, और तू ही हमारी राष्ट्र देवी अथा समग्र राष्ट्र हो[२] । नवम् सर्ग में जब सम्पूर्ण साकेत वासी भगवती सीता के दर्शन के लिये महर्षि वाल्मीकि से निवेदन करते हैं तो वहां सन्यासिनी सीता की सभी राष्ट्र देवी के रूप में स्तुति करते हुये पाये जाते हैं[३] । इसी प्रकार सीताचरितम् में ऐसे अनेक स्थल हैं जहां सीता के इस रूप के लक्ष्या लक्ष्यतया उल्लेख मिलते हैं ।

सीताचरितम् महाकाव्य में भारतीय नारी का जैसा आध्यात्मिक पक्ष प्रस्तुत किया गया है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है, वह भी मुनि बालिका के माध्यम से नहीं अपितु राजदारिका आर्या सीता के माध्यम से । सीताचरितम्

१- त्वमेव भास्वत्कुल-कीर्ति-केतने वृषाङ्क-मुद्रापि मलोकवन्दिता ।
त्वमेव रामायणनाम्नि मन्दिरे किमापि सर्वप्रमुखेव देवता ॥
- सीताचरितम्, १।१६

२- त्वयोन्नतं दाशरथंशिरोऽद्य तत्, त्वयाप्रकाशोऽन्वय एवं भास्वतः ।
त्वयाऽस्ति पूता ननु मानवी मही त्वया समयै खलु राष्ट्रमस्ति नः ॥
- वही, १।२०

३- सा आपि पत्नी पुरुषोत्तमस्य सा आरात्रिर्वंशजन्वयस्य ।
मूर्ते कुले स्वण्डिलमण्डले सा राष्ट्रस्य देवी च पुनर्व्यलोकि ॥
- वही ६ ।५५

की सीता निर्वासन के पश्चात् जब वाल्मीकि-आश्रम में पहुंचती है तो उनका समग्र जीवन आध्यात्मिक साधना से परिप्लावित हो जाता है, लव-कुश की देख-रेख आश्रम वासियों की सेवा आदि करती हुयी सीता आध्यात्मिकता की ओर निरन्तर अग्रसर होती रहती हैं। अपनी, आध्यात्मिक साधना के इसी काल में ही वैदेही ने राम के उस सर्वात्मरूप का दर्शन किया, जो शाश्वत, चिरन्तन, अविनश्वर एवं परमज्योति स्वरूप है[1]। आर्या सीता वाल्मीकि के आश्रम में पिता जनक के यहां सीखी हुयी अष्टांग योग समाधि का ब्रह्मवेला में दैनिक अभ्यास करती हैं, और समस्त परितापों से दूर समाहित चित्त में ज्योति स्वरूप प्रियतम राघव का दर्शन करती हैं[2]। जेठ के सूर्य की तपन और माघ के चन्द्र की शीत लहरी, वर्षा की बौछार और शरत्कालीन कमल मण्डित जल आदि को सीता अपने योगाभ्यास से सुख पूर्वक शमन कर लेती है[3]। इनका नाड़ी चक्र योग विद्या से नितान्त परिशुद्ध है। आर्या सीता आसन, संयम, नियमादि के द्वारा अपने शरीर पर पूर्णतः स्वामित्व रखती हैं। इस प्रकार सीताचरितम् की सीता वास्तविक अर्थों में योगस्वामिनी है। योगिनी है[4]।

इसी प्रकार सीताचरितम् के सप्तम्, नवम् एवं दशम् सर्ग में सीता के योगिनी रूप का उज्ज्वल वर्णन मिलता है, जहां कमलाक्ष ललना योगिनी

१- हृदयमवित सर्वभूतमूर्त्ती भगवति रामपदाभिधीयमाने ।

- सीताचरितम्, ६।५१ (पूर्वार्द्ध)

२- वही, ६। ५३

३- वही, ६। ५४

४- वही, ६। ५५

सीता की आध्यात्मिक साधना को विभिन्न सोपानों का क्रमशः उल्लेख किया गया है[1]। सीता के उदात्त योगिनी रूप का चरम निदर्शन दशम सर्ग में उस स्थल पर मिलता है जहां सम्पूर्ण साकेत वासी सहित राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, कौशल्यादि मातायें, कुलगुरु वसिष्ठ, राजर्षि जनक, ब्रह्मर्षि वाल्मीकि के ही आश्रम में उपस्थित हैं, भगवती सीता के दर्शन के लिये और उनकी ज्ञान साधना की प्रशंसा करते हुये अघाते नहीं, परन्तु सीता अपनी प्रशंसा के वचनों को सुन करके भी स्थितप्रज्ञ, ब्रह्मविद् वरिष्ठ के समान प्रशंसाकुल, (गर्व निरपेक्ष) रहती है[2]। उस समय तो वह यही सोचती है कि पति, पिता आदि सब उपस्थित हैं, स्थान भी बड़ा ही उत्तम है, वाल्मीकि जी का आश्रम और जीवन का भी कोई कृत्य शेष नहीं रहा है अतएव योग द्वारा हमें अपनी शरीर को मां वसुन्धरा को समर्पित कर देना चाहिए[3]। उसके पश्चात् प्रसन्नमना सीता वहां उपस्थित सभी को साञ्जलि विनम्र प्रणाम निवेदित करती हुयी, मृगासन से सुशोभित पद्मासन लगा लेती हैं। तथा च योग द्वारा आत्म देवस्वरूप ज्योतिष्काय परात्पर राम में विलीन हो जाती हैं, देह का परित्याग कर देती हैं सबके देखते ही देखते[4]। इसके पश्चात् वसिष्ठ, वाल्मीकि, जनक और अन्य सभी मुनिजन एकमत होकर सीता के भौतिक शरीर को भू समाधि दे देते हैं, क्योंकि योग-युक्त प्राणी का शरीर मृत नहीं माना जाता[5]। यह है सीता के योगिनी रूप का चरमोत्कर्ष।

सीताचरितकार ने भगवती सीता को परात्पर ब्रह्मस्वरूप राम की

१- सीताचरितम्, ७। ६१-६३, ८।५१-५४, १०।६९-७१ तक।

२- वही, १०।६४

३- वही, १० । ६५-६६

४- वही, १० । ६९-७१

५- वही, १० । ७७

आद्याशक्ति के रूप में भी चित्रित करने का प्रयास किया है, और इस प्रयास में महाकवि अपनी आत्म भूमिका में पूर्णत: सफल दृष्टिगत होता है। सीताचरितम् में ऐसे अनेक स्थल हैं जहां भगवती सीता के परात्पर रूप (आद्याशक्ति) का मोहक वर्णन मिलता है। सीता चरितकार सीता को सम्पूर्ण सिद्धियों से परिपूर्ण मानते हैं, इनके उल्लेखानुसार सीता के बोध में लघिमा, शरीर में अणिमा, चरित्र में महिमा, अन्त:करण में वशित्व, यश में प्राकाम्य और बुद्धि तत्व में गरिमा विराजमान है[1]। सीताचरितम् की सीता भुवनेश्वरी हैं, साक्षात पीताम्बरा हैं, भगवती त्रिपुरा हैं, और हैं दिव्य तेज से मण्डित साक्षात जगदम्बा पराम्बा। तभी तो वाल्मीकि के आश्रम में भगवती सीता के दर्शन के समय सभी उन्हें भक्ति पूर्वक प्रणाम् करते हैं[2]।

जगन्माता सीता के यशों का गान भला कौन कर सकता है। मानव जन्म में क्रान्तदर्शी आर्ष दृष्टि भला किसने पायी है।। हां, आद्याशक्ति सीता के पुण्यस्मरण की सुधा से कोई भरना चाहे तो विश्वरूपी मरुस्थल में अपनी बुद्धि सरिता को भर ले, पवित्र कर लें[3]।

१- लघुत्वमोजस्यणिमा शरीरे तस्यास्तदानीं महिमा च वृत्ते।
वशित्वमन्त:करणे यश:सु प्राकाम्यमासीद् गरिमा च बुद्धौ।।
- सीताचरितम्, ६।५५

२- तां भ चकास्यां भुवनेश्वरीं वा पीताम्बरां वा त्रिपुरां यथा वा।
दिव्यानुभावां प्रति सर्वलोको भीत्या च भक्त्या च बभूव नम्र:।।
- वही, ६।५६

३- को वा वक्तुं प्रभवतु जगन्मातुरस्या यशांसि
केनावाप्तं मनुजवपुषि क्रान्तिदृग्दुरार्षम्।
आस्या: पुण्यस्मरणसुधया पूरयेत्, पूरितुं चेद्
वाञ्छेद् कश्चित् स्वमतिसरितं विश्वधन्वप्रदेशात्।।
- वही, १० ।८०

इस प्रकार सीता चरितकार ने अयोनिजा सीता के बहुआयामी व्यक्तित्व के विविध रूपों को उभारने का प्रयास अपनी सफल रचनातूलिका के माध्यम से किया है, यदि महाकाव्य कार ने एक ओर सीता के प्रेयसी एवं पतिव्रता रूप का चित्रण किया है तो दूसरी ओर स्पृहणीय भगिनी रूप का, यदि एक ओर वात्सल्य के महारस में डूबी हुयी जननी रूप का निदर्शन प्रस्तुत किया है तो दूसरी ओर मौन मुखर गृहिणी का। यदि एक ओर आत्मनिर्भर समाज सेवा परायणा लोक सेविका का उदात्त रूप दिखाया है, तो दूसरी ओर उसे ज्ञान, भक्ति और कर्म की साक्षात् त्रिपथगा। यदि एक ओर राष्ट्र देवी का सर्वोत्कृष्ट स्वरूप उपस्थापित किया है तो दूसरी ओर परा विद्या की उपासिका, आध्यात्मिक पीठिका की सर्वोच्च भूमिका में स्थित आत्मबोध सम्पन्न योगिनी के स्वरूप का। और इन सारे रूपों को अनुस्यूत करके इन सबसे ऊपर जो रूप होता है और जिसकी शक्ति से ये सारे रूप क्रियाशील होते हैं उस परात्पर आद्या शक्ति के स्वरूप का भी उज्ज्वल निदर्शन प्रस्तुत किया है।

-0-

उर्मिला—

सीताचरितम् के नारी पात्रों में उर्मिला का स्थान अत्यन्त महत्व-पूर्ण है । सीताचरितम् की उर्मिला पूर्ववर्ती राम-काव्यों में वर्णित उर्मिला से कुछ असाधारण सी दीखती है । सीताचरितकार ने उर्मिला के व्यक्तित्व के विकास की दृष्टि से उसके प्रेयसी, पतिव्रता, विदुषी, सौन्दर्य-प्रिया, विनोद-प्रिया, स्वाभिमानिनी, आदर्श भगिनी आदि अनेक रूपों की वर्णना की है ।

सीताचरितम् की उर्मिला का समग्र प्रेम रामानुज लक्ष्मण के लिये अर्पित है । उर्मिला के प्रेम की एक निष्ठता एवं उसका पातिव्रत्य नारी जाति के लिये सृष्टि पर्यन्त आदर्श रहेगा । उर्मिला के व्यक्तित्व में आदर्श प्रेमिका की उदात्त भावना सर्वतोभावेन स्थिर है और उसका पातिव्रत्य लोकविश्रुत है । सीताचरितम् के चतुर्थ सर्ग में वनवास के लिए प्रस्थान करते समय जब सीता उर्मिला से मिलती हैं और उनसे यह कहती हैं कि आर्य प्रिय हृदयरूपी शाखा की ही एक मात्र लते बहन उर्मिले । तेरे लिए मेरा मन सदा चाहता है कि तेरी चेतना सदैव मधु-सी मीठी निधियों को बटोरती रहे[1] । नयी दूर्वा से युक्त भूमि पर कुलाछी करती और सींग से कुरेद कर अपने प्रिय के शरीर को रोमांचित करती, मृगी तुम्हें सदैव अच्छी लगती रहे[2] । आर्य दाक्षिये । तेरी भुज लता तेरे पति के वज्र तुल्य भुजदण्डों को आम बनाती हुयी सदा स्पर्श करती रहें, अपने देश के लिये और अपने वैयक्तिक सुहाग के लिए[3] । तेरी अंग लता तेरे

१- सीताचरितम्, ४। २६

२- वही, ४।२७

३- कुलिशप्रतिमौ भुजौ भुजौ भुजजाते । तव भर्तुरग्निवत् ।
विदधान इव स्पृशेत् सदा निजदेशाय च सौभगाय च ।।

— वही, ४। २८

अच्युत पति रूपी विशाल वृक्ष की भुजा का आश्रय ले, और आत्मज रूपी ऐसा कोई फल दे जो अप्रतिम हो, और हो विश्वमंगल का मूल।[1]

इस प्रकार सीता के सारे कथ्य उर्मिला के आदर्श प्रेयसी होने के साथ-साथ उसके पतिव्रता होने के भी प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। यही नहीं चतुर्थ सर्ग के अन्त में उर्मिला ने जो पुरुष एवं स्त्री के अनिवार्य शाश्वत सम्बन्ध की उपस्थापना की है वह तो उर्मिला के पतिव्रता होने का ताम्र पत्र है।

उर्मिला कहती है कि पुरुष और स्त्री का सम्बन्ध चिरन्तन है, समूची सृष्टि इन दोनों के परस्पर सहयोग से ही गतिमान है। पुरुष पुरुषार्थ के चतुष्पथ पर बने हुये चबूतरे पर चढ़कर मार्ग बनना चाहता है, और नारी गुण, शास्त्र एवं मर्यादानुसार उसका मार्गदर्शन करती है। इस प्रकार दोनों के ही व्रत महान हैं।[2] पुरुष स्त्री को साथ लेकर लोक भ्रान्ति को दूर कर सकता है, अपनी ओर[3] से द्वैत की सीमाओं को काटकर के अथवा लोक की मनोवृत्ति परिवर्तित करके। स्त्री वर्तिका युक्त दीपक पर प्रभा के समान पुरुष पर निर्भर हो जगत के[4] हृदय के कालुष्य की अँधेरी रात काटने में विधिवत समर्थ रहा करती है।

१- तनुतां तनुवल्लरी तवाच्युत-भर्तृद्रुम-बाहुमाश्रिता।
किमपि प्रतिमापरं फलं जगती-मङ्गल-मूल-मात्मजम्॥
-सीताचरितम्, ४।२९

२- पुरुषः पुरुषार्थचत्वरे पदवीं ज्ञातुमितो भिलष्यति।
महिला समयं परीक्ष्य तां दिशतीत्येवमुभौ महाव्रतौ॥
-वही, ४।५४

३- वही, ४। ५५

४- वही, ४। ५६

इस प्रकार उर्मिला का यह कथ्य उसके लोक विश्रुत पतिव्रत को सर्वात्मना परिपुष्ट करता है ।

सीताचरितम् की उर्मिला शास्त्र ज्ञान सम्पन्न लोकानुभव से समृद्ध एक विदुषी महिला है, अतएव सीता के निर्वासन को सुनकर उसने जो प्रतिक्रिया व्यक्त की है उसमें उसके अगाध वैदुष्य का उद्घोष है । उर्मिला कहती है कि स्वच्छन्द पशु समाज में भी निर्दयता उस सीमा तक नहीं पहुंचती जहां तक मनुष्य समाज में, क्या पक्षी अपनी भावी सन्तति का ध्यान नहीं रखते । और घोंसले नहीं बनाते ।[1] आपन्न सत्वा सीता की व्यथाभाषा से क्या राघव अपरिचित है । एक तो अबला, दूसरे सम्बन्ध में परिणीता, आसन्न प्रसवा, तथा च चन्द्र किरणों सी निष्कलंक । ऐसी वैदेही को त्यागा जा रहा है । और विद्वानों द्वारा त्यागा जा रहा है । कितना आश्चर्य है[2] । जनता के मुंह को बन्द करने के लिये भी क्या अपनी सती साध्वी पत्नी का परित्याग कोई औचित्य रखता है[3] ।

यदि विद्वानों को धर्म का निर्णय लोकमत से ही करना है तो कानों को तपाने वाला 'अधर्म' शब्द कोश से निकाल ही दिया जाना चाहिये[4] । एक शक्ति की उपासना में यत्नशील व्यक्ति के समक्ष सैकड़ों

१- सीताचरितम्, ४। ३८

२- वही, ४। ३९

३- वही, ४। ४०

४- यदि लोकमतेन केवलं क्रियतां धर्मविनिर्णयो बुधैः ।
तदधर्म इति प्रशस्तया श्रुतिरेवास्तु निकृष्टनिःसृता ।।

- वही, ४। ४१

असत्यभाषणी भी विपरीत कहें तो वे सूर्य के समक्ष उल्लूक पक्षी ही ठहरते हैं।[1] अरे नियति की कितनी बड़ी और कितना अधिक मंथन करने वाली विडम्बना सौ-सौ चक्रों के साथ मानव देहधारी प्राणियों के सिर पर घूम रही है।[2] समाज की कटु रीतियों से विभूषित साथ ही हार्दिक विभूतियों से विहीन व्यक्ति करे ही क्या। यह समाज विश्वास की भूमिका का समादर नहीं करता।[3] यदि विश्वास भूमिका और उसके ऊपर मानवीय भावना को अपना कर नहीं चला जाता तो वह समाज समाज नहीं अपितु वह एक महान छल है।[4] परम सत्य (परमार्थ) के विचार में महापुरुष यदि सत् और असत् के जल और मल को पृथक करने वाली निर्मली तुल्य बुद्धि अपना ले तो मानवता कृत-कृत्य हो जाय।[5] इस प्रकार उर्मिला का यह कथ्य उसकी विदुषी नारी होने का सबल प्रमाण प्रस्तुत कर देता है।

सीताचरितम् की उर्मिला विदुषी होने के साथ ही साथ सौन्दर्य प्रिय-विनोदप्रिय नारी है। उसकी सौन्दर्य-प्रियता सीताचरितम् के चतुर्थ सर्ग में आद्यन्त दिखायी देती है। आर्य पुत्र लक्ष्मण के साथ अपने प्रासाद में आयी हुयी वैदेही से उनका कुशल क्षेम वह जिस रूप में पूंछना प्रारम्भ करती है सचमुच वह उसकी सौन्दर्य-प्रियता का प्रत्यक्ष प्रमाण है। उर्मिला को केवल मानवीय सौन्दर्य ही प्रिय नहीं है अपितु प्राकृतिक सौन्दर्य भी उसे प्रिय है, कहीं-कहीं

१- सीताचरितम्, ४। ४२

२- वही, ४।४६

३- वही, ४। ४७

४- वही, ४। ४८

५- परमार्थविचारणे न चेत् सदसन्नीररजोविवेचिनीम्।
कतकोपमितां मतिं महान् भवतां, मानवता कृतक्रिया ॥
- वही, ४ ।४९

तो उसकी प्राकृतिक सौन्दर्यप्रियता मानवीय सौन्दर्यप्रियता को भी अभीभूत कर देती है। वनवास के लिये प्रस्थान करती हुयी सीता से जब वह वन के सुखों की चर्चा करती है तो उसकी प्राकृतिक सौन्दर्यप्रियता देखते ही बनती है। उर्मिला कहती है कि देवि! तेरे पैरों के उत्तम तलवे हिरणी अपने जीभ से चाटे और उसके छौने अपने चंचल नेत्रों से उसे निहारें[1]। तेरे लिये वन में भी पक्षियों के चंचल पंखों और वृक्षों की कोपलों से कोमल विस्तर बनता रहे जिस पर फूलों की पाँखें ही बिछी रहें[2]। अतीव कोमल चित्त वाली अटवी मनोव्यथा से जनित तेरे आँसुओं का अनुसार हरित तृणों की नोकों में गुंथे नवीन ओसों के कणों द्वारा करती रहे[3]। तेरे मुख चन्द्र से अमावस भी पूनम बनती रहे, जिससे अंधेरे पाख की रात में भी नीलकमल खिलते रहें[4]। सगे भाइयों जैसे वन्यवृक्षों से फल लेकर और उनसे तेरे चरणों की पूजा कर देवि! हमें भी वनवास करने का अवसर मिल जायेगा[5]।

ऐसे अन्य अनेक सन्दर्भ हैं जो उर्मिला की सौन्दर्य-प्रियता की परिपुष्टि करते हैं।

सीताचरितम् की उर्मिला में एक विनोद प्रिय नारी का भी रूप देखने को मिलता है। घोर विषाद की स्थिति में भी उसकी विनोदशीलता स्पष्ट दिखायी देती है, और इसी के कारण वह विषादजन्य दुःखों को भी हंसते-हंसते सहन कर लेती है।

१- सीताचरितम्, ४। ५९

२- वही, ४। ६०

३- वही, ४। ६१

४- वही, ४। ६३

५- वही, ४। ६५

चतुर्थ सर्ग में उर्मिला अपने कक्ष में आगत सीता से जब यह कहती है कि दीदी ! मेरी इच्छा है कि यह मेरा शुक मणि की कटोरी में रखे अनार के दाने उठाने लग जाय और कलहंस का छौना भी लाल कमल की पंखुड़ी पर पड़े मुक्ते चुंगने लगे तो तुम अपने धवल कपोलों की मसृण और स्निग्ध सिकुड़न के साथ निकली अमृत-तुल्य बोली से मुझे अपना कुशल मंगल सुनाओ[1]। दीदी ! खिले कमल से हंसी को नलिनी की भांति क्या आज मुझे अपनी चमकती आंखों से निहारोगी नहीं[2]। इसी प्रकार ऐसे अनेक स्थल हैं जहां उर्मिला की विनोदप्रियता स्पष्ट दिखायी देती है ।

सीताचरितम् के उर्मिला के व्यक्तित्व में एक स्वाभिमानिनी नारी भी छिपी हुयी है, जो उपयुक्त अवसर आने पर नारी जाति की प्रतिष्ठा के लिए स्वभावत: प्रत्यक्ष हो जाया करती है । सीता निर्वासन के समाचार को सुनकर उर्मिला जो प्रतिक्रिया व्यक्त करती है वह सब उसकी स्वाभिमानिनी नारी होने का स्पष्ट प्रमाण है । पुरुष और स्त्री के चिरन्तन सम्बन्धों की चर्चा करते हुये उर्मिला ने जो यह कहा है कि यदि पुरुष मर्यादा को अपनी ओर से नष्ट करना चाहता हो तो विश्व-कल्याण[3] के लिए अबला होते हुये भी नारी को सबला क्यों नहीं होना चाहिये । यह कथ्य उर्मिला के स्वाभिमानिनी होने का प्रबल प्रमाण है ।

१- शुक एष यथात्र दाडिमं मणिपात्रे निहितं चिखादतु ।
पृथुक: कलहंससंभवो ग्रसि[illegible] कह्लारदलाम्बुविभ्रमम् ।।
अपि चामृतसन्निभेन ते वचसा मामभिलेतारं दिशे: ।
भणितिं ह्रियमाणमामसृणास्निग्धकपोलकुञ्चितै: ।।
-सीताचरितम्, ४। १७-१८

२- वही, ४ । १९

३- पुरुष: स्थितिमीदृशीं यदि प्रतिहन्तुं कुरुते स्वतस्तत: ।
अबला प्रबलात्वमीयुषी किमु न स्याज्जगती-हितेच्छया ।।
- वही, ४।५७

सीताचरितम् की उर्मिला में एक आदर्श भगिनी का भी रूप उपलब्ध होता है । सच तो यह है कि सीताचरितम् की उर्मिला आदर्श भगिनी तो पहले है शेष सब कुछ बाद में । सीता निर्वासन को सुनकर उर्मिला ने दुःख मग्न हृदय से अग्रजा सीता के प्रति जैसा मनोभाव प्रगट किया है वह सब कुछ अनुपम है ।

उर्मिला कहती है कि बांस को छेद डालने वाला भौंरा अपने रस पायी हाथों से कमल-कोश का कोई अपकार नहीं कर सकता, किन्तु मनुष्य होते हुए ऐसा करने में कितना पटु है[१] । दीदी ! यदि आपको निर्वासन मिला है तो हम सब (माण्डवी और श्रुतिकीर्ति) को भी साकेत से चले जाने में कोई रुकावट नहीं है । हम सब आपको छोड़ नहीं सकतीं । निमिवंश की कन्याओं की यह टोली वन में भी आपके साथ-साथ चलेगी जैसे यहां राजभवन में साथ-साथ आयी है[२] । आप हम तीनों बहनों को अपने साथ चलने की आज्ञा दें, बिना किसी संकोच के[३] । आपके साथ वन में रहकर हमें भी आपकी सेवा करने के सुख का अवसर मिलेगा[४] । दीदी ! वन में तुम्हारे इस उपवेदना का ध्यान कर पत्थरों के हृदय भी सौ-सौ करुनाद मिश्रित झरने चारों ओर बहा देंगे[५] ।

इस प्रकार उर्मिला के इन कथनों से उसका आदर्श भगिनी रूप स्वतः प्रमाणित हो जाता है ।

१- सीताचरितम्, ४। ५०

२- वही, ४ । ५२

३- वही, ४ । ५८

४- वही, ४ । ६५

५- वही, ४ । ६६

निष्कर्षत: सीताचरितम् की उर्मिला में जहां एक ओर प्रेयसी एवं पतिव्रता का रूप देखने को मिलता है वहीं दूसरी ओर उसकी अगाध विद्वता का, जहां एक ओर उसके सौन्दर्य-प्रिय एवं विनोदप्रिय रूप का चित्रण है वहीं दूसरी ओर उसके स्वाभिमानिनी एवं आदर्श भगिनी रूप का भी उज्ज्वल निदर्शन किया गया है ।

—

कौशल्या —

सीताचरित के नारी पात्रों में राममाता कौशल्या अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। सीताचरितम् के द्वितीय एवं तृतीय सर्ग में कौशल्या के चरित्र को उजागर करने का यत्न किया गया है। जिसमें उनके पातिव्रत्य, जननीत्व एवं राष्ट्र मातृत्व गुणों की उपस्थापना सर्वोपरि है।

कौशल्या, रामभद्र के पिता दशरथ की धर्म सहचरी, पातिव्रत्य परायणा नारी है। कौशल्या का समग्र पातिव्रत्य विषयक अनुराग रघुवंश विभूषण देवराज इन्द्र के सखा सत्य धर्मा महाराज दशरथ के लिये सर्वतोभावेन अर्पित है। दशरथ के देहावसान होने पर, कौशल्या आदर्श धर्मपत्नी के अनुकूल आचरण करती हैं। साथ ही साथ राजमाता के महत्वपूर्ण पद का भी निर्वाह करती हैं। लंका विजय करके लौटे राम का राज्याभिषेक जब हो जाता है, उसके पश्चात् जनापवाद के कारण जब रामभद्र वैदेही के परित्याग का निश्चय करते हैं, यह सब कुछ सुनकर कौशल्या जो प्रतिक्रिया व्यक्त करती हैं उसमें ऐसे अनेक स्थल हैं जिनसे उनके पातिव्रत धर्म की सर्वात्मना परिपुष्टि होती है।

कौशल्या कहती हैं कि कहां यह वसुन्धरा की बेटी और जनक जैसी की पुत्र-वधू और कहां वह सर्वथा विरुद्ध जनापवाद। एकान्त में लता विष नहीं अपनाती, न तो चन्द्रिका अन्धकार को और न गंगा कालुष्य को[1]। विपत्तियों द्वारा उत्तरोत्तर आहत होने पर भी पुत्र-वधू बकुल माला के समान निरन्तर सुगन्ध ही बिखेरती रही है।

यदि यह कलुषित है तो संसार भर में कौन-सी पतिव्रता पवित्र

१- क्व भूतधात्र्या दुहिता स्नुषा च मे, प्रतीपभावा क्व च तादृशी कथा।+
उपांशु मल्ली न विषं, न चन्द्रिका तमो, न गङ्गा कलुषायितं, भवेत्॥

- सीताचरितम्, २। ५१

हो सकती है[1]। अग्नि में सुवर्ण प्रतिमा के सदृश सती नारी विपत्ति में पड़कर भी कभी कलुषित नहीं होती, फिर जिसका पति चन्द्र कला के लिए शिव जैसा हो, उसके सम्बन्ध में तो कहना ही क्या[2]। यह सभी तथ्य प्रकारान्तर से कौशल्या के पातिव्रत धर्म की ही पुष्टि करते हैं।

सीताचरितम् की कौशल्या अपने जिस रूप के लिए विशेष रूप से उभरी है वह है उनका मातृत्व। सीता चरितम् के प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय सर्गों में अनेक स्थलों पर उनके मातृत्व की जो सरिता बही है वह सचमुच हृदय-स्पर्शिनी है। लंका विजय करके लौटे हुये महाराघव राम, अनुज लक्ष्मण एवं धर्म सहचरी वैदेही के साथ जब कौशल्यादि माताओं से मिलते हैं तो कौशल्या का हृदयोद्गार वात्सल्य के रस से सराबोर दिखायी देता है। कौशल्या कहती है कि मेरे लाल तुम्हें सहस्त्रों आशीष[मेरे दुर्भाग्य से कमल के समान सुकुमार होते हुये भी तू वन-वन भटका, ग्रीष्म में, वर्षा में, शीत में[3]। कहां तो पहले तू जब चलने का कौतुक करना होता था तो फूलों से ढके पथ पर पैर रखा करता था और कहां कुश-कुश की इस वधू वैदेही और अनुज लक्ष्मण के साथ तेरे पैरों में कांटे टूटे[4]।

१- सीताचरितम्, २।५३

२- कृपीट्योनौ प्रतिमेव हैमनी न कृच्छ्रयातापि सती विकृष्यते।
   यथास्ति या वल्लभमीदृशं कला शिवं कलेन्दोरिव तत्र का कथा।।
   - वही, २।५५

३- वही, १।१२

४- वही, १।१३

आज जो संसार भर के लिए वन्दनीय बन गया है, क्योंकि तेरी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक सभी प्रकार के रूप परिष्कृत सिद्ध हुए हैं । तुम्हें जन्म देकर सूर्यवंश के साथ ही साथ मेरा भी जन्म धन्य हो गया है[1] । इसी प्रकार वह सीता के लिए कहती हैं कि पुत्रि विधाता के वाम होने पर भी स्नेहपूर्ण चित्त से तुमने मेरे बेटे के लिये धारण किये व्रत को जो नहीं तोड़ा और दोनों वंशों की मर्यादा (लज्जा[2]) बचा ली, इसलिये मुझ सास के लिये तू बहू ही आज वन्दनीय हो गयी है । तू ही सूर्य वंश की कीर्ति पताका पर समग्र मानव सृष्टि के लिये वन्दनीय[3] धर्म की मुद्रा है और तू ही रामायण मन्दिर की अधिष्ठात्री देवी । इसी प्रकार कौशल्या लक्ष्मण के लिये भी वात्सल्य गर्भ निर्भर उद्गार व्यक्त करती हुयी कहती हैं कि पुत्र रामभद्र और वैदेही भी आज मुझे उतने प्रिय नहीं हैं, जितने[4] कि तुम । जो दूसरों के लिये अपने सुख के परित्याग का व्रत लिये हो ।

सीताचरितम् के दूसरे सर्ग में सीता निर्वासन का समाचार सुनकर

१- त्वमद्य वन्द्योऽजगतां परिष्कृतैः शरीर-धी-चित्त-चिदां पराक्रमैः ।
तव प्रसूत्या मम चापि धन्यतां समं कुलेनैव रवेर्गतं जनुः ॥
- सीताचरितम्, १।१४

२- सुते ! विधौ वामविधायिनि व्रतं सुताय मे स्निग्धमना न या त्यजः ।
कुलद्वयस्यापि सुरक्षितत्रपा त्वमेव वन्द्यासि स्नुषे ! ममाधुना ॥
- वही, १।१६

३- त्वमेव भास्वत्कुल-कीर्ति-केतने कृताङ्क-मुद्रासि नृलोकवन्दिता ।
त्वमेव रामायणनाम्नि मन्दिरे विभासि सर्वप्रमुखैव देवता ॥
- वही, १।१८

४- न रामभद्रोजनकात्मजापि वा तथा च महूयं रुचिरो यथा सुवाम् ।
ययोः परार्थे निजसौख्य-वर्जन-व्रतं समाबद्धमुखमीक्षते ॥
- वही, १।२३

कौशल्या ने विधाता को जो सहज उपालम्भ दिया है, उससे उनके मातृत्व का हृदयद्रावक चित्र उपस्थित होता है । कौशल्या कहती है कि बहू और बेटे के जोड़े निहार करके मेरी यह हृदय मरुस्थली बहुत दिनों के पश्चात् उर्वर हुयी थी । किन्तु हाय रे विधात: ! इसे उजाड़ने के लिये तुमने, कलंक का अकाल उपस्थित कर दिया ![1] यह कौन सा रास्ता है कि अपनी रक्षा में निरत अपने स्वामी को जनता दोषी ठहराये । किन्तु, यदि भगवान अग्नि देव ही यदि यजमान को जलाने दौड़ें तो क्या किया जा सकता है[2] । यही नहीं तृतीय सर्ग में कौशल्यादि माताओं से निर्वासन के लिए प्रस्थानोन्मुख जानकी का यह आत्म-निवेदन भी कौशल्या के मातृत्व का भरत: प्रामाण्य प्रस्तुत करता है । वैदेही कहती है कि हे मां । आपने दूध बहाते हुए आंचल से जिसे पुत्रिका के समान सदा सींचा उसे भी[3] राजधर्म के परिपालन के व्रत को देख, आज छोड़ दीजिये, वन जाने दीजिये । इस प्रकार उक्त कथी तथ्य कौशल्या के जननीत्व का सबल प्रमाण प्रस्तुत करते हैं ।

सीताचरितम् की कौशल्या में जहां एक और पतिव्रता और जननी का स्वरूप देखने को मिलता है वहीं दूसरी ओर उनमें एक आदर्श राष्ट्र माता का भी स्वरूप अभिलक्षित होता है । लंका विजय के अनन्तर साकेत में आये हुये महाराघव, वैदेही और लक्ष्मण का स्वागत राष्ट्र माता कौशल्या के नेतृत्व में ही होता है । राष्ट्र के सजग प्रहरी भरत और राष्ट्र नायक मर्यादा पुरुषोत्तम राम के अंग रक्षक के रूप में तत्पर धनुर्धर लक्ष्मण जैसे राष्ट्र भक्त पुत्रों की प्रशंसा करती हुई कौशल्या ने यह कहा है कि मेरे पुत्रों ।

१- सीताचरितम्, २।५२

२- वही, २। ५७

३- पुत्रिकेव भक्तोभिरञ्चिता या ञ्चलेन सततं पयोमुचा ।
राजधर्मपरिपालनव्रतं वीक्ष्य ज्ञापि परिहीयतान्तमाम् ।।
- वही ३। २७

तुम दोनों की यह चीर और ये जटायें समर्पण बुद्धि और स्वार्थ बुद्धि के समर स्थल इस वसुन्धरा पर युग युगान्तर के लिये हमारे वंश (रघुवंश) एवं हमारे राष्ट्र के प्रतीक चिह्न बन गये है ।[1] इसीलिये आज तुम दोनों राघव एवं वैदेही से भी अधिक प्रिय लग रहे हो ।[2] सचमुच कोई भी व्यक्ति जो आर्य संस्कृति की मर्यादा में दीक्षित हुआ हो वह राक्षस संस्कृति को कभी नहीं अपना सकता ।[3]

सीताचरितम् के तृतीय सर्ग में निर्वासन के लिए उपस्थित सीता का यह आत्म कथ्य भी कौशल्या के राष्ट्र मातृत्व का एक सबल प्रमाण प्रस्तुत करता है । सीता कहती है कि मां ! राष्ट्रमाता का पद अत्यन्त ही महत्व-पूर्ण एवं गरिमामय होता है । आप उसे वात्सल्य के अतिरेक के कारण लांछित न होने दें । क्योंकि राष्ट्रमाता के व्रत का पालन सामान्य नहीं है उसके निर्वाह के लिये यदि प्राणोत्सर्ग भी करना पड़े तो भी इस व्रत का पालन करना चाहिए ।[4]

इस प्रकार उपर्युक्त उद्धरणों से कौशल्या के राष्ट्र मातृत्व के पोषण में पर्याप्त सहायता मिलती है ।

१- सीताचरितम्, १। २२

२- वही, १।२३

३- वही, १।१७

४- राष्ट्रमातृपदवी गरीयसी मातरौ द्युतिमुपेत्य वैतस: ।
प्राणतोऽपि यदि पाल्यते व्रतं तर्हि सा मम कृते न लुप्यताम् ।।

- वही, ३।२८

निष्कर्षतः सीताचरितम् की कौशल्या में जहां एक ओर धर्म-परायणा पतिव्रता का रूप देखने को मिलता है वहीं दूसरी ओर वात्सल्य के रस से भीगी हुयी आदर्श जननी का भी । और आदर्श जननी का ही नहीं अपितु राष्ट्र जननी का रूप-राष्ट्रमाता का रूप, जिस रूप में कौशल्या न केवल रामभद्रादि की माता है अपितु सम्पूर्ण राष्ट्र की । यही तो है नारी जाति के व्यक्तित्व के विकास की पराकाष्ठा । जहां पहुंचकर वह केवल अपने वंशधरों की ही नहीं अपितु सम्पूर्ण सृष्टि की मां बन जाती है ।। जगदम्बा बन जाती है ।।

—

कैकेयी —

सीताचरितम् के नारी पात्रों में यद्यपि कैकेयी का स्थान महत्वपूर्ण तो है परन्तु उनके चरित्र पर सविस्तर प्रकाश नहीं डाला गया है । सीताचरितम् के प्रथम सर्ग के अतिरिक्त कैकेयी जहां भी उपस्थिति होती हैं वहां कौशल्या के स्तित्व में ही विलीन होकर, यही स्थिति सुमित्रा की भी है, किन्तु फिर भी सुमित्रा की अपेक्षा कैकेयी की स्थिति प्रथम सर्ग में कुछ स्वतन्त्र रूप में उपलब्ध होती है, जिसके आधार पर पतिव्रता, जननी एवं दूरदर्शिनी राजनीतिज्ञा- इन तीन रूपों में कैकेयी के चरित्र को उजागर करने का यत्न किया गया है ।

कैकेयी महाराज दशरथ की धर्म-सहचरी प्राण वल्लभा है, दशरथ के देहावसान के पश्चात् कौशल्या और सुमित्रा के समान ही कैकेयी भी पातिव्रत के धर्म का निर्वाह आजीवन करती रहती है । महाराज दशरथ के दिवंगत होने पर साकेत के राजभवन में निवास करती हुयी कैकेयी महाराघव आदि चारों भाइयों को वैसी ही लग रही है जैसी अस्तोदधि में डूब चुके दिवाकर की मध्य रात्रि में अग्नि के भीतर स्फुट प्रभा[1] ।

कैकेयी के पातिव्रत की परिपुष्टि सीताचरितम् के उन स्थलों से भी होती है जहां सीता निर्वासन के समय उपस्थित कौशल्या आदि के साथ समवेत स्वरों में सीता के निर्वासन पर आत्मग्लानि व्यक्त करती हैं ।

सीताचरितम् की कैकेयी मातृत्व के पवित्र रस से स्नात दिखायी देती है । कैकेयी भरत की ही मां नहीं अपितु राम आदि की भी मां है । उनका अखण्ड स्नेह चारों भाइयों पर समान रूप से उपलब्ध होता है । यही कारण है कि रामादि सभी अन्य माताओं से अधिक पूज्य कैकेयी को ही मानते हैं, क्योंकि रामादि का चारित्र्यत्व उनका यश, भागवत्व इत्यादि कैकेयी के कारण

१- सीताचरितम्, १। ३१

मिले वनवास-अवधि में ही निखरा[1]। स्वयं महाराघव ही जिन्हें कैकेयी के कारण चौदह वर्षों का वनवास हुआ था, कैकेयी के मातृत्व की प्रशंसा करते हुए तुष्ट नहीं होते। राम कैकेयी से कहते हैं कि हे मां! निःसन्देह यह आपका ही प्रभाव है कि पितृ श्री महाराज दशरथ सद्गति को प्राप्त हुये और यह पृथ्वी तल भी निष्कंटक हुआ रावण वध के अनन्तर[2]।

सीताचरितम् की कैकेयी में एक दूर दर्शिनी राजनीतिज्ञ का भी स्वरूप दिखाने की चेष्टा की गयी है। वह यह कि कैकेयी ने चौदह वर्षों के वनवास के द्वारा सर्व समर्थ राघव को वनवास भेजकर रघुकुल की कीर्तिपताका को समस्त संसार में फहराने का अवसर दिया। इस तथ्य को स्वयं महाराघव राम ही स्वीकार करते हैं, और अपनी मां कैकेयी से स्पष्ट कहते हैं कि मां आपने संसार को निष्कंटक बनाने के लिए और रघुकुल-कीर्तिपताका को विश्व में फहराने के लिए अपने हृदय को कंटकाकुल बनाया, अतएव राजनीति के[3] दूरदर्शी विद्वानों में निश्चित ही आपका ही प्रथम स्थान है।

हे मां! रावण का वध यदि एक नाटक है तो यह जिसकी प्रतिभा में स्फुरित हुआ वह द्रष्टा ऋषि का और प्रतिभाशाली कवयित्री आप ही है। उसका प्रयोग कराने वाली सूत्रधारिणी[4] भी आप ही हैं, हम तो मूक अभिनय करने वाले केवल पुतले थे।

इस प्रकार सीताचरितम् की कैकेयी में पतिव्रता, जननी एवं एक आदर्श दूर दर्शिनी राजनीतिज्ञा का उज्ज्वल स्वरूप दिखाया है - सीताचरितकार ने।

-

१- सीताचरितम्, ११ ३२

२- वही, ११ ३३

३- वही, ११३४

४- वही, ११ ३५

राम —

सीताचरितम् के प्रमुख पात्रों में मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम का स्थान सर्वोपरि है, किन्तु फिर भी वे इस महाकाव्य के नायकत्व का स्थान न प्राप्त कर सके। अपितु यह स्थान आर्या सीता को ही उपलब्ध हुआ है। सीताचरितम् के राम के व्यक्तित्व के विकास के लिए महाकवि ने कोई ऐसा विशेष प्रयत्न नहीं किया है जिससे राम के व्यक्तित्व की समग्र जीवन से सम्बन्धित विविध रूपों का उपस्थापन हो सके। कारण सीताचरितम् महाकाव्य की कथावस्तु ही राम के उत्तर जीवन (राज्याभिषेक से लेकर सीता की भू समाधि) से ही सम्बद्ध है। परन्तु फिर भी इस महाकाव्य में महाराघव राम के आदर्श पुत्र, आदर्श भ्राता, आदर्श एक पत्नी व्रती, पिता, आदर्श राष्ट्रपति, आदर्श अवतार (मानवरूप) आदि विविध रूपों का उज्ज्वल चित्रण मिलता है।

राम के आदर्श पुत्रत्व का रूप सीताचरितम् में उस स्थल पर दृष्टिगत होता है जहां प्रथम सर्ग के आरम्भ में लंका विजय करके लौटे हुये वे कौशल्या आदि सभी माताओं को सादर प्रणाम निवेदित करते हैं और सुमित्रा आदि सभी मातायें राम को परात्पर प्रभु समझकर प्रणाम करती हैं[1]। पुत्र और माता के बीच कैसा अद्भुत सम्बन्ध है कि पुत्र माताओं को प्रणाम करता और मातायें पुत्र की पुत्रता और उसकी तेजस्विता से अभिभूत होकर स्वयं ही उसे प्रणाम करने लगती हैं। यही तो है राघव के आदर्श पुत्र होने का औदात्य। यही नहीं, जिस कैकेयी के कारण राघव को चतुर्दश वर्षों का वनवास मिला उस मां की प्रशंसा करते हुये राघव तृप्त नहीं होते। उन्हें अन्य सभी माताओं से वे पूज्य मानते हैं। राघव स्वयं कैकेयी से कहते हैं कि हे मां! यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो पितृ चरण को जो कैवल्य धाम प्राप्त हुआ है, और यह समूची वसुन्धरा रावण-वध के अनन्तर जिस स्थिरता को प्राप्त हुयी है

१- सीताचरितम्, १ । ११

इसका सम्पूर्ण श्रेय आपको ही है[१]।

हे मां ! दशानन का वध तो एक नाटक है जो सर्वप्रथम आपकी ही प्रतिमा में स्फुरित हुआ है, इसलिये उसका प्रयोग कराने वाली सूत्र धारिणी आप ही है। हम तो केवल मूक अभिनय करने वाले पुतले रहे हैं[२]।

इस प्रकार विमाता के प्रति भी राम ने एक आदर्श पुत्र के समान व्यवहार किया है। यही नहीं सीताचरितम् के तृतीय सर्ग में सीता निर्वासन के समय जब सभी मातायें समवेत स्वर में राम के समक्ष प्रस्ताव प्रस्तुत करती हैं कि यदि सीतानिर्वासन का निर्णय आपने ले ही लिया है तो कृपा करके सीता को महर्षि वाल्मीकि को सौंप दें, क्योंकि उनके आश्रम में यह सुरक्षित रह सकती है[३]। ऐसी स्थिति में राम एक आदर्श पुत्र के समान माताओं के प्रस्ताव को शिरोधार्य कर तदनुकूल आचरण करते हैं[४]।

इसी प्रकार सीताचरितम् में ऐसे अनेक स्थल उपलब्ध होते हैं जहां राम एक आदर्श पुत्र के धर्म का निर्वाह करते हुये पाये जाते हैं।

सीताचरितम् के राम में आदर्श भ्राता का स्वरूप भी अनेक स्थलों पर देखने को मिलता है। लंका विजय करके लौटे हुये महाराघव राम और भरत का मिलन एक अपूर्व भ्रातृत्व का निदर्शन प्रस्तुत करता है। राघव और भरत का मिलन आदर्श भ्रातृत्व से संवलित एक ऐसे आदर्श चरित्र भूमिका का निर्माण करता है जैसे हिमालय और पूर्वापर पयोनिधि मिलकर भारत-वेदिका का निर्माण करते हैं[५]।

१- सीताचरितम्, १। २३

२- वही, १। २५

३- वही, ३। २७

४- वही, ३। ३८

५- वही, १।२

प्रथम सर्ग में जब राम, लक्ष्मण, भरत एवं सीता के सहित शत्रुघ्न से मिलते हैं तो उस समय एक ओर शत्रुघ्न रामादि अपने अग्रजों को पुष्पनिर्मित मालायें पहनाते हैं तो दूसरी ओर भ्रातृत्व के भावावेग की सर्वोच्च शिखर पर विराजमान राघव आदि उन्हें आलिंगनपूर्वक अश्रु-मुक्ता की मालायें पहनाते हैं[1]। भ्रातृत्व के संगम का यह अद्भुद दृश्य देखकर समस्त राजभवन धन्य हो उठता है। रामादि चारों भाई अन्त:करण और कार्य दोनों से परस्पर समरूप ऐसे लग रहे हैं जैसे परस्पर सापेक्ष चारो पुरुषार्थ अथवा धर्म-प्रदीप[2]।

राघव के आदर्श भ्रातृत्व की भलक द्वितीय सर्ग में उस समय देखने को मिलती है जब राष्ट्रपति राम लक्ष्मणादि तीनों अनुजों को अपने प्रभाव, उत्साह एवं मन्त्र आदि तीनों शक्तियों का साक्षात विग्रह मानते हैं और चारो भाइयों के शरीर को एक शरीर[3]। पुनश्च राम यह भी निवेदन करते हैं कि मेरे भ्राताओं! तुम सब और तुम्हारा यह अग्रज ये जो क्षात्रिय मां के कुक्षि में पले हैं, उन्हें अपनी पूरी बौद्धिक शक्ति से प्रजा का हित सूर्य और चन्द्र के समान एक साथ मिलकर रक्षित रखना है[4]।

इस प्रकार उक्त उद्धरणों से राम के आदर्श भ्रातृत्व की सम्यक परिपुष्टि होती है।

सीताचरितम् के राम के व्यक्तित्व में एक पत्नीव्रती का त्रैलोक्य धन्य आदर्श रूप भी देखने को मिलता है। राघव का अनास्थेय समस्त प्रेम वैदेही को ही सर्वात्मना समर्पित है। यही कारण है कि जब द्वितीय सर्ग में गुप्तचर के मुख से वैदेही विषयक लोकापवाद को राम सुनते हैं तो वे विदीर्ण कण्ठ होकर मूर्छित हो जाते हैं[5]। पुनश्च उपचारों के माध्यम से संज्ञा प्राप्त

१- सीताचरितम्, १ । २६

२- वही, १। ३८

३- वही, २। १

४- वही, २।४१

५- वही, २।२१

करते हैं, तो गुप्तचर को विदा करके स्वयं एकान्त प्रकोष्ठ में जिस मनोव्यथा को व्यक्त करते हैं उससे उनके आदर्श एक पत्नीव्रती होने का स्पष्ट प्रमाण मिलता है[१]।

राम कहते हैं कि वैदेही की लंका में हुयी अग्नि परीक्षा विद्वान हनुमान द्वारा लंका में भी सीता को भी चारित्रिक दृष्टि से अविकल एवं विशुद्ध पाया जाना आदि सब कुछ तो मेरी जनता के लिए कोई प्रमाण नहीं रखता, कितना आश्चर्य है कि मेरी प्रजा कलियुगी प्रजा के समान तीनों ही प्रमाणों से सर्वथा विरुद्ध है[२]। हे विधाता ! यह कैसा उल्कापात है कि गंगा एवं अग्नि के सदृश सर्वथा विशुद्ध केवल मुझ पर ही केन्द्रित चित वाली मेरी प्रिया वैदेही को पाप शंका के झकोरों से लता के समान झकझोर रही हो[३]। मैं क्या करूं, कुछ समझ में नहीं आता। कितनी विषम परिस्थित उपस्थित है, इस समय मैं अपनी चेतना (वैदेही) को छोड़ूं या जनता को, आग में जल मरूं या समुद्र में डूब जाऊं[४]। यही नहीं, राष्ट्रपति होने के कारण प्रजानुरंजन के लिए राजधर्मानुसार व्यक्तिगत सुखों की तिलांजलि देते हुये राम जब सीता निर्वासन का निर्णय ले लेते हैं तो उसे स्पष्टत: माताओं एवं सीता के समक्ष व्यक्त नहीं कर पाते हैं, यदि व्यक्त करते हैं तो केवल अनुज लक्ष्मण से। कारण कि राम यह भलीभांति जानते हैं कि वह प्रजापालक राजा राम होते हुये भी धर्म सहचरी हृदयेश्वरी वैदेही के धर्म पति भी हैं। मर्यादापुरुषोत्तम के साथ-साथ मानव महापुरुष भी हैं। तो फिर ऐसी स्थिति में वह अपने हृदय क्षेत्र में मानव ही होने के कारण सीता निर्वासन

१- सीताचरितम्, २। २२, २३

२- वही, २ । ३०

३- वही, २। ३२

४- वही, २। ३४

ऐसा अनिष्ट निर्णय स्वयं ही वैदेही के समक्ष लेने में कैसे समर्थ हो सकते हैं[1]।
किन्तु फिर भी राजधर्म के कारण विवश होकर राम को अपना निर्णय
कार्यान्वित करना ही है । इस सन्दर्भ में जब वह लक्ष्मण को आदेश देते हैं कि
मेरे इस निर्णय का यथाशीघ्र पालन किया जाय । इस पर लक्ष्मण जब प्रति-
क्रियोन्मुख दिखाई देते हैं तो राम अपनी जिस मनोव्यथा को व्यक्त करते हैं
वह सचमुच हृदय द्रावी है । राम कहते हैं कि लक्ष्मण तुम जानते नहीं हो, वैदेही
को छोड़कर तुम्हारे अग्रज का शिर वैसे ही शतधा[2] किं वा सहस्त्रधा विखण्डित
हो जायेगा जैसे मणि को छोड़कर सर्प का शिर । परन्तु कलियों से अलंकृत
एवं नवीन पत्रों से संवृत मल्लिका को यदि कोई[3] परशु से काट रहा हो तो
उस चर्म मात्र हृदय वाले को क्या कहा जाय । इसलिये मेरे अनुज लक्ष्मण राम
का सुख तो अब आकाश कुसुम हो गया है । उस पर विचार करना ही छोड़
दो । केवल अपना कर्तव्य[4] करो । अपने इस गर्भ भार मंथर भ्रातृजाया वैदेही
को वन छोड़ आओ । अनुचर वनों में विचरण करते हुए तुमने पुत्र भाव से
जिसकी सेवा की है, गर्भ भारालसा तुम्हारी भौजाई आज निर्वासित की जा
रही है यह भी सह लो[5]। सीता निर्वासन के समय राम वैदेही के साथ वे उस

१- सीताचरितम्, ३। ५८

२- वही, ३।४०

३- किन्तु हन्त मुकुलोपस्कृतां नूतनैः किसलयैश्च संवृताम् ।
मल्लिकां परशुना निकृन्तता चर्ममात्रहृदयेन तेन किम् ।।
- वही, ३।४१

४- तेन तां गगनपुष्पितां कथां रामसौख्यमवलम्ब्य तस्थुषीम् ।
मा स्म चिन्तय नियोगमात्मनः पूरय त्वव तव भ्रातृजाम् ।।
- वही, ३।४३

५- पुत्रभावमवलम्ब्य तात यां काननेषु विचरन्नुपाचरः ।
सैव गर्भभरनिर्भरालसाद्यत्र त्यज्यत इदं च मृष्यताम् ।।
- वही, ३।४४

नितान्त दारुण व्यवहार को वे निमिलित नेत्रों से देखते रहे और तद्जन्य विषतुल्य आंसुओं को महाकाल सदृश पीते रहे[1]। सीता निर्वासन की प्रत्यक्ष घटना को देखते ही महाराघव की ठीक वही स्थिति हो गयी जैसी यज्ञ वेदिका से नीचे गिरे परिष्कार शून्य यूप दण्ड की होती है यज्ञ समापन के अवसर पर[2]।

उक्त समस्त उद्धरणों से राम का आदर्श एक पत्नी व्रती होना इतना स्पष्ट हो जाता है कि इस सन्दर्भ में और प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

सीताचरितम् के राम के व्यक्तित्व के विकास के सन्दर्भ में यद्यपि पिता का स्वरूप अति विस्तार से उपलब्ध नहीं होता किन्तु फिर भी जितना कुछ उपलब्ध होता है उससे उनके पितृत्व का अपलाप नहीं किया जा सकता। सीताचरितम् के अष्टम् एवं दशम सर्ग में राम के पितृत्व के सन्दर्भ में एक अपूर्व झांकी देखने को मिलती है। अष्टम् सर्ग में जब राम लव एवं कुश से मिलते हैं[3] तो वे परस्पर एक दूसरे को स्वरूपत: जानकर भी तत्वत: नहीं जान पाते, किन्तु फिर भी वे तीनों परस्पर आत्मैक्य का अबोधपूर्वक स्मरण करते रहते[4] हैं, प्रसन्नता में भी किसी विषाद का स्पर्श लिये हुये। कारण राम तो यह

१- सीताचरितम्, ३।५८

२- स्वस्य जीवनमस्य जीविकां तां विसृज्य सुरभिं रघूद्वह: ।
दृश्यते स्म बत निष्परिष्क्रियो यूपदण्ड इव वेदिकाच्युत: ।।
- वही, ३।६१

३- रामो लवकुशौ, तौ च रामं ज्ञात्वापि रूपत: ।
तत्त्वत: पर्यचिन्वन्न तदानीं कथनीहया ।।
- वही, ८।५८

४- अबोधपूर्वमात्मैक्यं स्मरन्त: सर्व एव ते ।
प्रसादमपि चेत:सु विषादोन्मिश्रमादधु: ।।
- वही, ८ । ६६

जान रहे हैं कि लव एवं कुश मेरे ही औरस पुत्र हैं परन्तु कुश एवं लव को वाल्मीकि ने कभी यह नहीं बताया है कि ये तुम्हारे पिता रामभद्र हैं। दशम् सर्ग में वाल्मीकि आश्रम में सभा के मध्य जब सभी के समक्ष सीता और राम को संकेत करते हुये कुश और लव को सम्बोधित करते हैं कि पुत्रों तुम दोनों ने मेरा जो रामायण नामक महाकाव्य सुना है उसमें जो राम हैं वे ये ही राम हैं और उसमें जो सीता हैं वे ये ही सीता हैं। इनसे भिन्न नहीं।[1]

इस प्रकार कुश एवं लव का जब उनके पिता श्री राम और मां वैदेही से वाल्मीकि परिचय करा देते हैं तो उस समय राम के पितृत्व एवं सीता के मातृत्व का जो पारावार उमड़ता है, आनन्दसागर की लहरें जो हिलोरें लेती हैं उसका अनुभव कौन कर सकता है ?[2]

पिता को जानकर भी कुश एवं लव आंखों में आंसू लेकर प्रीतिमान होने पर राम की ओर नहीं देख पाते अपितु मां की ओर ही देखते हैं ठीक वैसे ही जैसे कृषा[3] सूर्य के प्रति प्रीतिमान होने पर भी अपना सिर पृथ्वी की ओर ही झुकाते हैं।

पुनश्च ऐसी स्थिति में जब वाल्मीकि कुश एवं लव को राम को अर्पित करना चाहते हैं तो उस समय एक आदर्श पिता के समान गुरु वशिष्ठ के रहते हुये अपने पुत्रों का समर्पण लेने में वे स्वयं को योग्य नहीं मानते, क्योंकि

१- पुत्रौ श्रुतं यन्मम रामकाव्यं यस्तत्र रामः स हि राम एषः।
यां तत्र सीता ननु सैव सीता भवत्सविश्री, न तु काचिदन्या ।।
-सीताचरितम्, १०।१६

२- वही, १०।१८

३- ज्ञात्वापि तातं, जननीं निभां तौ विलोकयामासतुरश्रुनताभ्याम्।
रविं प्रति प्रीतिभृतोऽपि कृषाः शिरांसि भूमिं प्रति नामयन्ति ।।
- वही, १०।१९

सत्पुरुष पिता ममत्व की अपेक्षा बच्चों का राष्ट्र के लिये विनियोग अधिक श्रेयस्कर मानते हैं।[1] यही कारण है कि वसिष्ठ ही लव एवं कुश को सर्व प्रथम स्वीकार करते हैं, तदनन्तर स्वयं वसिष्ठ ही उन्हें राष्ट्रपति राम को सौंपते हैं।[2]

इस प्रकार राम अपने उन पुत्रों को वाल्मीकि एवं वसिष्ठ की दृष्टि से सुपरिक्षित होने के पश्चात् ही स्वीकार किया और तभी उनकी उपलब्धि से प्रसन्न हुये, क्योंकि भारत में राजकुमारों के पिण्डमात्र राष्ट्रपति नहीं बनाये जाते।[3] फलत: उक्त तथ्यों से राम के पितृत्व का प्रमाणन स्वत: हो जाता है।

सीताचरितम् के राम के जिस स्वरूप की प्रत्यक्षत: सर्वाधिक उपस्थापना हुयी है वह है आदर्श राष्ट्रपति का स्वरूप। राम के इस स्वरूप का निरूपण सीताचरितम् महाकाव्य के प्रथम, द्वितीय एवं दशम् सर्गों में विशेष रूप से उपलब्ध होता है।

सीताचरितम् का प्रथम सर्ग, जिसमें लंका विजय करके लौटे हुये दशमुख विजय विराम मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम के राज्याभिषेक का वर्णन है, तो राष्ट्रपति निर्वाचन के नाम से ही प्रसिद्ध है। राष्ट्रपति के रूप में

१- रामस्तु मात्मानममंस्त योग्यं गुरौ वसिष्ठे सति पुत्रकार्ये।
   ममत्वतो यद् विनियोग एव राष्ट्राय बालस्य सतां प्रशस्य: ।।
   - सीताचरितम्, १० ।२१

२- वही, १० । २२

३- स चापि वाल्मीकिवसिष्ठदृष्टिपरीक्षितौ प्राप्य सुतावहृष्यत् ।
   न पिण्डमात्रं नृपसन्ततीनां यद् भारते राष्ट्रपतित्वमेति ।।
   - वही, १० ।२४

पुरुषोत्तम राम का चयन न केवल प्रजाजनों ने ही किया अपितु धरती, आकाश आदि पंचतत्व ही क्या सृष्टि के प्रत्येक कण ने अपनी प्रसन्नता की अभिव्यक्ति के माध्यम से प्रजाजनों से पहले ही कर दिया[1]। इस सन्दर्भ का आश्रय लेकरके वर्णन करती हुयी महाकवि की वाणी धन्य हो उठती है। कुल गुरु वसिष्ठ आयोजित लोक सभा के मध्य जब अपना व्याख्यान समाप्त करते हुये यह कहते हैं कि ऋषियों ने मानव जीवन को सुचारु रूप से चलाने के लिये जिस 'नय' की स्थापना की है वह 'नय' बिना किसी नियन्ता के प्रतिष्ठित नहीं हो पाता, जैसे आचार्य के बिना यज्ञ ऋत्विक-परिषदों के समान ही मंत्रिपरिषदें उस नियन्ता की सहायता के लिये होती हैं[2]। अतएव चौदह वर्षों की अवधि तो किसी प्रकार व्यतीत हो चुकी है अब आप प्रजा लोग क्या चाहती हैं, यह तो आप सब देख ही चुके हैं कि कुमार भरत ने अपने अग्रज श्री राम के चरणों में पादुकायें पहना दी हैं[3]। कुलगुरु वसिष्ठ की इस वाणी को सुनकर लक्ष्मणादि सहित प्रजाजनों ने समवेत स्वर में यही उद्घोष किया कि राष्ट्रपति के पद पर अब कुलक्रम से श्री राम ही अभिषिक्त किये जायं[4]।

इस प्रकार भगवान राम अपने त्याग एवं तपस्या के द्वारा जनमानस में जो वास्तविक स्थान प्राप्त किये वही रहा उनका वास्तविक राज्याभिषेक और बाद का जो विविध आर्ष विधियों द्वारा राज्याभिषेक किया गया वह तो केवल उसका अनुवाद रूप लौकिक मंगल रहा[5]। तत्कालीन जनता और राष्ट्रपति

१- सीताचरितम्, ११ ५८-६२

२- वही, ११। ५७

३- वही, ११। ५८

४- वही, ११। ६०

५- वही, ११। ६७

राम के इस प्रकार एक भावानुरूपता और प्रेम को देखकर नर वानर क्या अपितु राक्षसादि सभी की बुद्धि आर्य धर्म को देखकर तर्कहीन अलौकिक चेतना में आ गिरानी आश्चर्य के साथ[1]।

राष्ट्रपति राम के शासनकाल में जहां एक ओर धर्नुधर राम पृथ्वी पर शासन कर रहे थे और देवों को यज्ञों के माध्यम से हवि प्रदान करते रहे तो दूसरी ओर समस्त देवताओं के साथ देवराज इन्द्र भी उनकी सहायता करते रहे, मेघों की वृष्टि से राम के राज्य में वसुधा को अन्नों से समृद्ध बनाते रहे[2]।

राम के शासन काल में सम्पूर्ण प्रजा उसी प्रकार सनातन धर्म का अनुकरण करती हुयी दिखायी[3] देती है जिस प्रकार शुक्ल पक्ष की निशा राकेश के उज्ज्वल प्रकाश का। राम की प्रजा[4] निरन्तर सात्विक वृत्ति प्रधान सत्पथ पर ही अग्रसर होती दृष्टिगत होती है। राम ने अपने धर्म नीति के द्वारा प्रजा को इतना परितुष्ट किया कि उसे न तो यमराज[5] से कोई भय रह गया और न ही कल्पतरु से याचना की कोई आवश्यकता।

समूची वसुन्धरा पर राम ने ऐसा सौराज्य सौख्य उपस्थित कर

१- नरवानरराक्षसास्तदेत्थं बन्धुतया नृपतेश्च भावबन्धम् ।
अभिवीक्ष्य बभूवुरार्यधर्मेऽप्यधिकं बुद्धिविमुग्धयोऽन्तलर्का: ।।
- सीताचरितम्, १। ६६

२- वही, २ । ३

३-४ सनातनं शाश्वतिकं समाश्रिता प्रकाशमिन्दोरिव शुक्लयामिनी ।
विपश्चितस्तस्य न हि प्रजा क्वचित् तम:प्रवृत्तिं भजते स्म सत्पथा ।।
- वही, २। ४

५- वही, २ । ५

किया कि स्वयं देवताओं ने भी उसे अपनी कर्म-भूमि बनाना चाहा[1]। राम ने चारों वर्णों, एवं चारों आश्रमों की व्यवस्था इस प्रकार सुगठित किया कि धर्मादि चारों पुरुषार्थ वर्णाश्रम व्यवस्था के वशवर्ती हो गये[2]।

यही नहीं जब गुप्तचर राम से सीता के जनापवाद विषयक सन्दर्भ को निवेदित करता है तो वह गुप्तचर को विदा करके स्वयं ही एकान्त में इस सन्दर्भ पर विचार करते हैं और कहते हैं कि अहो ! गणनातीत कालुष्यों से भरे हुये मानव जीवन को जिस राष्ट्रपति ने अपने नीति मार्ग से सुधारा नहीं, पद मात्र के लिये लोलुप अतएव घृणित हृदय वाले उस राष्ट्रपति के सत्व को धिक्कार है[3]। यदि सीता के स्वर-कंचन से पवित्र चरित्र और उसकी अलौकिक सिद्धियों से हमारी जनता परिचित नहीं है तो इसका मूल कारण जनता का अशिक्षित होना ही है। तथा च यदि मेरी जनता अशिक्षित है तो इसका अपराधी केवल मैं ही हूं क्योंकि यदि कोई अबोध शिशु विषपान करता है तो यह दोष उसके पिता का ही कहा जायेगा और यदि[4] किसी रोगी का रोग बढ़ता है तो उसका वैद्य ही निन्दनीय होता है। अब मेरे समक्ष एक ओर राजधर्म का प्रश्न है तो दूसरी ओर मेरे वैयक्तिक अस्तित्व का। करूं

१- तथा च सौराज्यसुखं भुवस्तले स भूमिपालः कृतवान्, यथा दिवः ।
अमर्त्यभावात् स्खलिता दिवौकसश्चकांक्षुरेतन्निजकर्मभूमिकाम् ॥
- सीताचरितम्, २।६

२- चतुर्धा वर्णेषु तथाश्रमेषु स स्थितिं व्यधात् किं च तथाविधां प्रभुः ।
यथा स्म कृत्स्नापि वशंवदायितं चकार धर्मादिचतुर्वर्गसंहतिः ॥
- वही, २।७

३- अहो असंख्यैः कलुषैरुपद्रुतं नृजीवनं राष्ट्रपतिर्न यो नयैः ।
व्यशोधयत् तस्य पदोपभोगिनो धिगेव सत्वं विजुगुप्सितात्मनः ॥
- वही, २।२४

४- वही, २।२६

तो क्या करूं ?[1] इसके पश्चात् अन्तत: राम एक आदर्श राष्ट्रपति के अनुसार ही निर्णय लेते हैं। वह यह कि अपने वैयक्तिक सुख को प्रजानुरंजन के लिये त्याग करके सीता निर्वासन का ही निर्णय लेना[2]।

इस प्रकार सीताचरितम् के राम में प्रत्यक्षत: जिस रूप का सर्वाधिक विकास दृष्टिगोचर होता है वह है एक आदर्श राष्ट्रपति का स्वरूप ।

सीताचरितकार ने अपने राम को भागवत अवतार के रूप में भी स्थापित करने का सफल यत्न किया है। राम के भागवत स्वरूप की उपस्थापना सीताचरितम् के अन्तर्गत अनेक स्थलों पर हुआ है। जिनमें प्रथम, द्वितीय, अष्टम् एवं नवम् सर्गों में राम के भागवत रूप का वर्णन मुखर रूप में दिखायी देता है।

सीता चरित कार ने राम के भागवत रूप को स्पष्ट करने के लिये पुरुषोत्तम, ईश्वर, भगवान आदि अनेक अन्वर्थक शब्दों का प्रयोग किया है[3]। राम के भागवत रूप का चरम निदर्शन सीताचरितम् के अष्टम सर्ग में उस समय उपलब्ध होता है जब राम वाल्मीकि के आश्रम में अपने पुष्पक विमान से पहुंचते हैं और इसकी सूचना रामकथा के आदि गायक ब्रह्मर्षि वाल्मीकि को मिलती है तो वह राम को विष्णु का अवतार होता जानकर अपने आश्रम से बाहर निकलते हैं, सरस फलों एवं पुष्पों द्वारा उनका अभिनन्दन करने के लिये[4]।

१- सीताचरितम्, २। ३५

२- वही, २।३७

३- वही, १। १-२, १०, ४५ ; २।१, ५।६, ६।४१, ८।५३, ९।२ आदि

४- तत्रागतां रामस्य विदित्वा स महाकवि: ।

प्रत्युद्ययौ फलै: पुष्पैर्मुख्यच्छिभि: पदाद् बहि: ।।

— वही, ८ । ५३

उस समय राम के भागवत स्वरूप के द्रष्टा वाल्मीकि और भागवत स्वरूप के अवतार राम दोनों की जोड़ी सर्वथा अनुपम दिखायी देती है । राम का प्रणाम और वाल्मीकि का आशीर्वाद जैसी दोनों उपाधियां एक ही रही थीं,[1] वहां दोनों का द्वैत सर्वथा समाप्त हो चुका था । दोनों अकेले अकेले ही थे, दोनों के साथ अन्य कोई नहीं था । दोनों की मनोभूमिका द्वैत-मुक्त होकर अद्वैत में आ-विराजी थीं । माया का प्रतिनिधित्व करने वाली सीता भी वहां उपस्थित नहीं थी।[2] यदि राम का चरित गूढ़ातिगूढ़ था तो ब्रह्मर्षि वाल्मीकि का दर्शन सर्वथा दुर्लभ ।[3] अतएव इन दोनों की यथार्थता कोई तीसरा कैसे जान सकता था । वाल्मीकि ने उसी मनोभूमिका में, उसी कैवल्यधामरूप एकान्त स्थान में अपने काव्य नायक श्री राम को बिम्ब प्रति-बिम्ब के समान अपना 'रामायण' नामक महाकाव्य समर्पित किया ।[4] राम भी वाल्मीकि प्रणीत 'रामायण महाकाव्य' में अपना स्वरूप देखकर चन्द्रकेतु तथा कुश, लव का युद्ध एवं सीताविषयक जनापवाद को अपनी भूला ही माना ।[5]

१- द्रष्टृ-दृश्य-ख्यौ तत्र पारसाम्यं व्यवस्थिता ।
प्रणिपाताशिषां यत्रोपाध्योऽप्येकरूपकाः ।।
- सीताचरितम्, ८। ५४

२- आसीच्च तत्र कैवल्यं द्वयोर्द्वैत-विवर्जितम् ।
अतः सीतापि मायेव तदा लेभे न तत् पदम् ।।
- वही, ८ ।५५

३- एकस्य चरितं गूढं दुर्लभमन्यस्य दर्शनम् ।
याथात्म्यमेतयोः को वा परः स्याद् वेदितुं प्रभुः ।।
- वही, ८ ।५६

४- कैवल्यधाम्नि तस्मिंस्तु काव्यपुंसे कविर्निजम् ।
काव्यं समर्पयामास बिम्बाय प्रतिबिम्बवत् ।।
- वही, ८ । ५७

५- वही, ८ । ५८

परात्पर भूमिका में पहुंचे हुये भगवान राम और राम के भागवत स्वरूप के साक्षात द्रष्टा एवं गायक ऋषि वाल्मीकि इन दोनों महापुरुषों की संविदि जब कृतकृत्य हो गयी तो वे दोनों लोक की अपरा भूमिका पर आ पहुंचे । इसके पश्चात् राम चन्द्रकेतु[1] के दल में चले जाते हैं और वाल्मीकि कुश, लव के दल में सम्मिलित हो जाते हैं ।

इस प्रकार एक ओर कविवर वाल्मीकि खड़े हो गये तो दूसरी ओर उन्हीं का महाकाव्य लेकर राम, वहां कौन पक्ष, कौन विपक्ष, क्या जय और क्या पराजय[2], उस क्षण में भगवान राम ने वाल्मीकि को जो प्रणाम किया[3] वह ऐसे ही लगा जैसे सूर्य अपने प्रकाश के प्रकाशक नेत्र को प्रणाम कर रहा हो । उस क्षण महाकवि वाल्मीकि और काव्य नायक भगवान राम ने कुश एवं लव[4] को रामायण महाकाव्य का महावाक्य अथवा नीति का मन्त्राधार माना । वाल्मीकि और राम को एक होता हुआ देखकर कुश, लव एवं चन्द्रकेतु भी एक हो गये, जैसे दो महासागरों के संगम से उनकी तरंगें भी एक हो जाया करती हैं[5] । इसी प्रकार सीताचरितम् में अनेक स्थलों पर न्यूनाधिक रूप में राम के भागवत रूप का संकेत किया गया है । फलतः सीताचरित कार की दृष्टि

१- सीताचरितम्, ८ । ५८

२- वही, ८ । ६०

३- चक्षुषे कृतवान् सूर्यः प्रणामं हन्त तत्क्षणे ।
स्वप्रकाश-प्रकाशाय रामो यद् कवयेऽनमत् ॥
- वही, ८ । ६२

४- वही, ८ । ६४

५- वही, ८ । ६५

में राम के भागवत स्वरूप के सन्दर्भ में किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए ।

निष्कर्षत: सीताचरितम् के राम के व्यक्तित्व के विकास में जहां एक ओर उनके आदर्श पुत्र - होने का वर्णन है वहीं दूसरी ओर उनके आदर्श भ्राता होने का भी । जहां एक ओर आदर्श एक पत्नीव्रती होने का चारु चित्रण है वहीं राजधर्म के अनुकूल एक आदर्श पिता के स्वरूप का भी । यदि एक ओर उनके आदर्श राष्ट्रपति होने का उज्ज्वल वर्णन है तो दूसरी ओर उक्त सारे रूपों में ही क्या अपितु समस्त सृष्टि में अनुस्यूत उनके लोकोत्तर भागवत अवतार का भी ।

—

लक्ष्मण —

सीताचरितम् के प्रमुख पात्रों में लक्ष्मण का स्थान तो मुख्य है परन्तु इनके व्यक्तित्व के समग्र विकास के लिये यहां पर्याप्त अवसर नहीं है। क्योंकि लक्ष्मण के व्यक्तित्व का समग्र विकास उनके शैशव से लेकर राम के साथ चौदह वर्षों की अवधि में जो कुछ हुआ है उसे लेकरके माना जा सकता है। सीताचरितम् में तो लक्ष्मण के उत्तरार्द्ध जीवन की एक हल्की-सी झांकी प्रस्तुत हुयी है, जिसके आधार पर उनके व्यक्तित्व में पुत्र, भ्राता, एक पत्नीव्रत धर्मा, एवं पिता का आदर्श रूप देखने को मिलता है।

लक्ष्मण के व्यक्तित्व में एक आदर्श पुत्र का स्वरूप स्पष्ट रूप से उपलब्ध होता है। लक्ष्मण जैसे पुत्र की पुत्रता पर किसी भी मां को गर्व होना स्वाभाविक ही है। यही कारण है कि चौदह वर्षों के बाद लंका विजय करके लौटे हुये महाराघव राम एवं वैदेही के साथ जब धनुर्धर लक्ष्मण पर कौशल्या की दृष्टि पड़ती है तो कृतज्ञता से अभिभूत मातृत्व के महासागर में डूबी हुयी वे अपना हृदयोद्गार कथमपि रोक नहीं पाती है। कौशल्या कहती हैं कि पुत्र! तुम्हारी ये चीर और ये जटायें समर्पण बुद्धि एवं स्वार्थ बुद्धि के इस महासमर स्थल इस वसुधा पर युगयुगान्तर के लिए हमारे इस सूर्य वंश और राष्ट्र के लिये उज्ज्वल चिह्न बन गये हैं[1]। पुत्र! आज मुझे राघव और वैदेही भी उतने प्रिय नहीं है जितने कि तुम, जिसने दूसरों के सुख के लिये अपने सुख के परित्याग का व्रत लिया है[2]। इस प्रकार लक्ष्मण की आदर्श पुत्रता परत: प्रमाण से स्वत: पुष्ट है।

सीताचरितम् के लक्ष्मण के व्यक्तित्व में उनका भ्रातृत्व विशेष रूप से उभरा हुआ दिखाई देता है। धनुर्धर लक्ष्मण यों तो सभी भाइयों पर

१- सीताचरितम्, १ । २२

२- वही, १ । २३

भ्रातृ भाव अविरल रूप से रखते हैं परन्तु फिर भी महाराघव के प्रति इनका भ्रातृत्व अपनी पराकाष्ठा पर दिखायी देता है । सीता निर्वासन के सन्दर्भ में जिस समय राम, लक्ष्मण को यह आदेश देते हैं कि वैदेही को वाल्मीकि आश्रम के निकट वन में छोड़ आवें, उस समय उस वज्राघात रूप आदेश को सुनकर लक्ष्मण अपने जीवन में प्रथम बार राघव के सम्मुख प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए उन्मुख दिखायी देते हैं जोकि मर्यादा की दृष्टि से भी उचित है । परन्तु जब लक्ष्मण प्रतिक्रिया की भूमिका में बोलने के लिये उन्मुख होते हैं और कहते हैं कि 'तात ! मानरमहो कथम्' इस अधूरे वाक्य पर[1] ही राम लक्ष्मण को 'कथं मा वदेति' कह कर उन्हें बोलने से रोक देते हैं, क्योंकि वह जानते हैं कि लक्ष्मण जैसा आज्ञाकारी आदर्श अनुज इस धरती पर सर्वथा दुर्लभ है और सीता निर्वासन की व्यथा से पीड़ित होकर इस समय लक्ष्मण जिस भूमिका में पहुंचे हैं और जो प्रतिक्रिया व्यक्त करना चाहते हैं वह भी उचित ही है । इसीलिये राघव केवल लक्ष्मण से ही अपनी परवशतापरक मनोव्यथा व्यक्त करते हैं । लक्ष्मण ! तुम जानते नहीं, जानकी को छोड़कर राम का मस्तक सहस्त्रों टुकड़ों[2] में विभक्त हो जायेगा, जैसे मणि को छोड़कर सर्प का हो जाता है । परन्तु उदात्त मानवीय भावनाओं से शून्य यदि कोई हृदयहीन निष्करुण व्यक्ति पल्लवित-पुष्पित होती हुयी मल्लिका को फरसे से काट रहा हो तो उसे क्या कहा जाय[2] । लक्ष्मण अब तो राम का सुख आकाश कुसुम के समान सर्वथा दुर्लभ ही हो गया है, इसके विषय में विचार ही न करो । अनुजवर ! वनवास काल में तुमने जिसकी पुत्रभाव से सेवा की है आज वही गर्भभार मंथरा तुम्हारी[3] भ्रातृ जाया वैदेही निर्वासित की जा रही है, इस दुःख को भी सहन कर लो ।

१- सीताचरितम्, ३। ३९

२- वही, ३ ।४०

३- वही, ३ ।४१

४- विपदक्रमागी च वधूं कुलम्बुमिभिर्भि: ससंज्ञां च निरीक्ष्य मातर: ।
निशरवक्षुर्दृष्टिमर्गी यथा महीं तरहिन्नतां वीक्ष्य कृपाणकितना: ।।
- वही, ३ ।४२

वैदेही को वन छोड़ आओ । लक्ष्मण ! तुम सब और तुम्हारा यह अग्रज राम जो कि क्षात्रिय जननी के कुक्षा में पले हुये हों उन्हें सूर्य और चन्द्र के समान अपने समग्र बौद्धिक शक्ति से प्रजा का ही हित चिन्तन करना है[1] ।

लक्ष्मण राम का आदेश सुनते हुये भी वैदेही को प्रत्यक्ष देखकर कुछ विमुख चित्त दिखाई देते हैं, कारण लक्ष्मण तो राम के आदेश और वैदेही के निर्वासन जैसे दो निर्णयहीन प्रश्नों के समाधान में लगे हुये हैं । ऐसी स्थिति में वह शरीर से श्री राम के पक्ष में तथा मन से सीता के पक्ष में दिखायी देते हैं । लक्ष्मण सीता को कैसे वनचरी बनायें और अपने अग्रज राम की आज्ञा का उल्लंघन भी कैसे करें[2] । अन्तत: सीता लक्ष्मण को अपने भ्रातृत्व धर्म से जब शिथिल होते हुये देखती है तो उस समय वे उन्हें (लक्ष्मण) को दार्शनिक उद्बोधन देते हुये अपना कर्तव्य पालन करने का संकेत भी प्रदान करती है[3] । जिस पर लक्ष्मण अपनी आंखों में आंसू लिये मौन हृदय से मातृ धर्म का पालन करते हुये वैदेही को रथ पर बैठाकर निर्वासन के लिये प्रस्थान कर देते हैं । इसी बीच में वह व्यथित हृदय से वैदेही को सर्व प्रथम अपनी उर्मिला से मिलाते हैं,तदनन्तर माण्डवी एवं श्रुति-कीर्ति बहनों से भी । और उर्मिला आदि बहनों से विदा लेकर पुन: लक्ष्मण से वन तक पहुंचाने के लिये निवेदन करती हैं, लक्ष्मण तदनुकूल व्यथित हृदय से वैदेही को वन पहुंचाकर साकेत वापस आते हैं ।

इस प्रकार ऐसी विषम परिस्थिति में भी लक्ष्मण एक आदर्श भ्रातृत्व का निर्वाह करते हैं ।

१- सीताचरितम्, ३।४५

२- वही, ४।१

३- वही, ३।४७-५१

लक्ष्मण का एक पत्नी व्रत धर्म होना तो ठीक विश्रुत ही है। कदाचित् इस क्षेत्र में लक्ष्मण यदि महाराघव से आगे नहीं हैं तो कुछ कम भी नहीं। उर्मिला का पातिव्रत्य और लक्ष्मण का एक पत्नी व्रत सदैव के लिए आदर्श ही रहेगा। उर्मिला एवं लक्ष्मण के पारस्परिक एक निष्ठ द्वैत हीन प्रेम को स्वयं महाराघव एवं वैदेही भी जानती हैं। फिर स्वयं वैदेही ही जिसके एक निष्ठ प्रेम एवं एक पत्नी व्रत धर्म की प्रशंसा करें तो उसके सम्बन्ध में कहना ही क्या। सीताचरितम् के चतुर्थ सर्ग में उर्मिला एवं लक्ष्मण के एक निष्ठ प्रेम की प्रशंसा में सीता ने उर्मिला से यह जो कहा है कि हे बहन। तेरी बांह तेरे पति के वज्र तुल्य भुजदण्डों को आग बनाती हुयी सदा झूलती रहे, अपने देश के लिये और अपने वैयक्तिक सुहाग के लिये[1]। तेरी अंग लता तेरे अच्युत पति रूपी विशाल वृक्ष की भुजा का आश्रय ले, (तवाच्युत भर्तृद्रुम बाहुमाश्रिता) और आत्मज रूपी ऐसा फल दे जो सर्वथा अप्रतिम हो और हो विश्वमंगल का मूल[2]।

इस प्रकार अपने देवर लक्ष्मण के लिये वैदेही ने अच्युत भर्ता (अच्युत पति) जैसे शब्दों का प्रयोग करके उनके आदर्श एक पत्नी व्रत धर्मा होने का स्पष्ट प्रमाण दिया है।

सीताचरितम् के लक्ष्मण के व्यक्तित्व में एक पिता का भी स्वरूप

१- कुलिशप्रतिमौ भुजौ भुजौ भुजबाते। तव भर्तुरभिनवत्।
विधवान इव स्वुशेद् सदा निजदेशाय च सौभगाय च ।।
- सीताचरितम्, ४।२८

२- तनुतां तनुवल्लरी तवाच्युत-भर्तृद्रुम-बाहुमाश्रिता।
किमपि प्रतिमापरं फलं जगती-मङ्गल-मूल-मात्मजम् ।।
- वही, ४। २९

दृष्टिगत होता है । इस महाकाव्य के दशम सर्ग में वाल्मीकि के आश्रम में जहाँ कि कुलगुरु वसिष्ठ, रामादि चारों भाई, जनक सम्पूर्ण प्रजा, समस्त सेना, मुनिगण आदि एक साथ सभा में उपस्थित हैं, जब लक्ष्मण का पुत्र चन्द्रकेतु कुश एवं लव के साथ आकर पिता के नामोच्चारण के साथ वसिष्ठ आदि समस्त पूज्य जनों को प्रणाम करता है[१] । और इसी क्रम में अपनी बड़ी माँ वैदेही को भी प्रणाम करता है[२] । तो उस समय वैदेही चन्द्रकेतु में अपनी बहन उर्मिला और देवर लक्ष्मण का दाम्पत्यजन्य एकत्व देखकर मातृत्व के महारश्मि में आकण्ठ मग्न हो जाती हैं[३] । वे प्रिय देवर के पुत्र चन्द्रकेतु का शिर पौत्र के सिर के समान तत्काल सूंघती हैं[४] और पुष्पों के मकरन्द से मिश्रित तपोवन की धूल से चन्द्रकेतु के ललाट पर तिलक लगाती हैं[५], जिसका तात्पर्य भविष्य में उसके पृथ्वीपति (राष्ट्रपति) होने से है । उस समय सभासदों के

१- ननाम सौमित्रिसुतोऽखिलेभ्य: संकीर्त्य नाम स्वपितु:, परन्तु ।
तौ चित्रबोधात् कल मातुरेव नाम्ना प्रणामाय कृताकूताम् ।।
- सीताचरितम्, १० । १३

२- तस्मिन् क्षणे लक्ष्मणसंभवोपि ज्येष्ठां सुवं प्राप तथा शिर: स्वम् ।
ननाम तत्पादकुशेशयाभ्यामभ्यासाद्दृश्यविमाननाभ्याम् ।।
- वही, १० । ३०

३- वही, १० । ४२

४- प्रियस्य पुत्रं निजदेवरस्य सा चापि नप्तारमिवाशु मूर्ध्नि ।
जिघ्रिङ्घ्य, किन्त्वस्य तपोवनीयान्यपाकिकीर्णान्न रजांसि तस्मात् ।।
- वही, १० ।३३

५- कृतियं सा स्वाञ्जलितस्ततश्च प्रसूतपुष्पेष्टिरजोविमिश्रै: ।
रजोभिरस्याखिलभूमिभट्टे तपोवनीयैस्तिलकं विलेभे ।।

- वही, १० । ३४

मध्य विराजमान लक्ष्मण अपने भाग्य को परिमित और अपने पुत्र के भाग्य को अपरिमित मानकर ईर्ष्यालु हो रहे थे और प्रसन्न भी । ईर्ष्यालु इसलिये कि वैदेही ने जो सौभाग्य चन्द्रकेतु को प्रदान किया वह लक्ष्मण को कभी नहीं मिला । प्रसन्न इस लिए हो रहे थे कि चन्द्रकेतु जैसे सौभाग्य के धनी पुत्र के लिये वे वीर पिता थे[१] ।

इस प्रकार स्वयं वैदेही जिसके पितृत्व के फल को तिलक करके पुरस्कृत कर रही हों उसके लिये कहना ही क्या ।

निष्कर्षत: सीता चरितकार ने लक्ष्मण के व्यक्तित्व में आदर्श पुत्र, आदर्श भ्राता, आदर्श एक पत्नी व्रत धर्मी एवं आदर्श पिता का स्वरूप निखारने का सफल आभास किया है ।

—

१- तस्मिन् क्षणे स्वानि मितानि मत्वा भाग्यानि पुत्रस्य तथाऽमितानि ।
स्थितोऽपि तूष्णीं स लक्ष्मणो पि ईर्ष्यु: सहर्षश्च बभूव वीर: ॥

— सीताचरितम्, १० ।३१

जनक —

सीरध्वज जनक महाराज दशरथ के समधी महाराजा राम के श्वसुर तथा जानकी के पिता ऋषि वाल्मीकि के मित्र के रूप में सीताचरितम् महाकाव्य के अन्तर्गत निरूपित किये गये हैं । सीरध्वज जनक का वर्णन सीताचरितम् के नवम एवं दशम सर्ग में मिलता है । परन्तु रामायण कथा के प्रमुख पात्रों में जनक का स्थान जितना महत्वपूर्ण है उसके अनुसार सीताचरितम् में इनका वर्णन सविस्तर उपलब्ध नहीं होता । सीताचरितम् में जनक का जो कुछ वर्णन प्राप्त होता है उससे उनके व्यक्तित्व के दो ही रूप विशेष रूप से उभर कर पाठकों के समक्ष आते हैं । वे दोनों रूप हैं — लोकोत्तर विद्वान का स्वरूप और आदर्श पिता का रूप ।

सीरध्वज जनक के व्यक्तित्व का चरमोत्कर्ष उनकी लोकोत्तर विद्वता में ही सन्निहित है । जनक अपरा और परा दोनों विद्याओं में पारंगत एक आदर्श राजा के रूप में प्रसिद्ध रहे हैं । जनक का आध्यात्मिक ज्ञान तत्वदर्शी ऋषियों के लिये भी स्पृहणीय एवं पथ-प्रदर्शक रहा है । जनक की लोकोत्तर विद्वता के सम्बन्ध में तद्युगीन किसी भी ऋषि को तनिक भी सन्देह नहीं । सीताचरितम् के नवम सर्ग में जब वाल्मीकि चन्द्रकेतु तथा कुश-लव के युद्ध-विराम हो जाने पर सभी सैनिकों एवं राम के जनकादि सभी स्वजनों को बुलाकर एक विशाल जन सभा का समायोजन करते हैं तो उस समय वाल्मीकि के समक्ष सभाध्यक्ष के चयन का प्रश्न उपस्थित होता है । ऋषि वाल्मीकि महामति वशिष्ठ के होते हुये भी सीरध्वज जनक को ही सभाध्यक्ष बनाते हैं और जनक की अध्यक्षता में ही सभा का संचालन होता है । पर और अपर (परा-अपरा) विद्या के विवेक से सम्पन्न जनक ने उस सभा की अध्यक्षता आधन्त सफलतापूर्वक की । सीताचरितकार इस सन्दर्भ में लिखते हैं कि — लोक सभा जैसी उस विशाल जन सभा की अध्यक्षता उन परमज्ञानी जनक ने की जिन्हें पर और अपर का सम्यक विवेक था । इसीलिये वे सभी निश्चय में अत्यन्त कुशल थे । उनके चारों ओर मुनिजन विराजमान थे, उन सबके मध्य वे ऐसे लग रहे थे जैसे भूलोक

में नारद आदि महर्षियों के मध्य ब्रह्म सभा करते हैं[1]।

जिस विशाल जन सभा में ब्रह्मर्षि वसिष्ठ जैसे लोकविश्रुत महाज्ञानी हों, भागवत अवतार के साक्षात रूप स्वयं महाराघव हों, और वाल्मीकि जैसे महामेधा सम्पन्न ज्ञान के साक्षात् अवतार महान कुलपति ने जिसका समायोजन किया हो उसका अध्यक्ष होना ही जनक के लोकोत्तर विद्वान होने का अप्रतिम प्रमाण पत्र है । इस सन्दर्भ में इससे अधिक और प्रमाण देने का कोई औचित्य नहीं है ।

जनक के आदर्श पितृत्व का निदर्शन सीताचरितम् के नवम सर्ग में उस समय देखने को मिलता है जब वाल्मीकि के द्वारा उपस्थापित वैदेही को उनकी अपनी अद्भुत महिमा के कारण मंचस्थ भुवनेश्वरी भगवती त्रिपुरा के समान सभी लोगों ने भक्तिपूर्वक प्रणाम निवेदित किया । तथा च सभी सीता के दर्शन से कृत कृत्य होकर, उनकी दिव्य महिमा से अभिभूत होकर वैदेही की प्रशंसा करते हुये थकते नहीं । उस समय उस सभा के अध्यक्ष जनक जब यह देखते हैं कि सारे सभी लोग वैदेही को अतीव भक्ति-पूर्वक प्रणाम कर रहे हैं तो उनकी हार्दिक प्रसन्नता की कोई सीमा नहीं रह जाती, कारण यह तो सर्वविदित तथ्य है तो कोई भी गृहस्थ जब अपनी बेटियों को प्रभूत सम्मान एवं आदर पाते हुये देखता है तो वह स्वभावत: सहज रूप में अपनी प्रसन्नता की पराकाष्ठा पर पहुंच जाता है[2]। यही कारण है कि जनक प्रसन्न होने के साथ-साथ अपनी उस हार्दिक प्रसन्नता को सम्भाल नहीं पाते और अत्यन्त वात्सल्य के साथ

१- अध्यक्षतां श्रीजनकोऽत्र चक्रे परावरप्रत्यय-निश्चितार्थः ।
स वाग्मासि मुनिभिश्रुतोऽत्र यथात्मयोनिर्दिवि नारदाद्यैः ।।
-सीताचरितम्, ९ ।८

२- तां सर्वजन्यैरभिनन्द्यमानामवेक्ष्य हृष्टः स सभापतिश्च ।
सर्वोऽपि गेही तनयाजनस्य समादरे हृष्यति यत् स्वभावात् ।।
- वही, ९।१०

वैदेही से कह ही बैठते हैं कि मेरी बेटी ! आज तू मेरे इन सफेद बालों की सचमुच कन्या सिद्ध हुयी हो[1] । अर्थात् तुम जैसी त्रैलोक्य वन्द्या बेटी का पिता होकर मैं भी धन्य हो गया हूं ।

इसके पश्चात् सभापति जनक की दृष्टि राघव और सीता दोनों पर एक साथ पड़ती है, अयोध्यावासियों के उस विशाल सभा पर । उस स्थिति में उन्हें वैदेही का वैवाहिक क्षण याद आने लगता है । इस सन्दर्भ में सीताचरितकार लिखते हैं कि जब उस विशाल जन सभा में जनक ने कृशकाय राम,उनसे भी अधिक कृशकाय पुत्री वैदेही, अयोध्यावसियों का वह समाज और वाल्मीकि के आश्रम में वह मांगलिक शोभा देखी तो उन्हें ऐसा लगा कि मानो पुत्री वैदेही के विवाह के मांगलिक घड़ी फिर से आ पहुंची हो[2] ।

यही नहीं कुछ क्षण के बाद जब उसी विशाल सभा में जनक वैदेही के दोनों पुत्रों-- कुश और लव को देखते हैं तो उनके आनन्द की कोई सीमा नहीं रह जाती । उनकी प्रसन्नता अपनी पराकाष्ठा पर जा पहुंची है । इस प्रसंग में सीताचरितकार ने लिखा है कि अपनी पुत्री वैदेही के बिना लव-कुश के मातामह जनक को उन दोनों दौहित्रों की प्राप्ति से जो प्रसन्नता हुयी वह ठीक वैसी ही थी जैसे किसी शास्त्रकार की प्रसन्नता उन शिष्यों की प्राप्ति से हो सकती है जिन्हें उसका वह शास्त्र स्मरण हो । जिसकी पुस्तक ही

१- अथोद्गता तस्य मुखाच्च वाणी पुत्रीं प्रति प्रीतिभृत: प्रसह्य ।
'वत्से मम' त्वं सितता गतानां कन्यासि सिद्धा मम मूर्धजानाम् ॥
-सीताचरितम्, ६।८८

२- रामं कृशं, कृशतरां तनयां, समाजं
तत्राभिवीक्ष्य मुनिवाश्रम मङ्गलां श्रियं च ।
मेने तदा स जनको ऽपि सुताविवाह -
माङ्गल्यकालमिव तं पुनः प्रवृत्तम् ॥
- वही, ६।६४

नष्ट हो गयी हो[१]।

इस प्रकार उपर्युक्त उद्धरणों से सीरध्वज जनक के आदर्श पिता होने का स्पष्ट प्रमाण मिलता है ।

निष्कर्षतः सीताचरितम् के जनक में लोकोत्तर ज्ञान सम्पन्न, एक आदर्श पिता का स्वरूप दिखाने का महाकवि ने सफल यत्न किया है ।

१- मातामहस्यापि विना स्वसुतां दौहित्रयोर्हन्त तयोः प्रसादः ।
बलोऽनवाप्तप्रतिके स्वकाले स्वभ्यस्तयोः शास्त्रकृतः प्रसादः ।।
—सीताचरितम्, १० ।२६

वसिष्ठ -

सीताचरितम् के वसिष्ठ के व्यक्तित्व में लोकोत्तर महापुरुषता, महाप्राज्ञता, धर्मनियन्तृता, राष्ट्रभक्तता आदि का एकत्र उज्ज्वल वर्णन मिलता है ।

कुलर्षि वसिष्ठ को सीताचरितकार ने एक लोकोत्तर महापुरुष के रूप में उपस्थित किया है । महाकवि ने कुलर्षि वसिष्ठ को विधाता का पुत्र बताकर वसुधातल पर उन्हें साक्षात देवगुरु बृहस्पति जैसा बताया है[1] । जिनकी वक्तृता के समक्ष सम्पूर्ण धरातल पर कोई भी महर्षि टिक नहीं सकता । कुलर्षि वसिष्ठ को सीताचरितकार ने समस्त आध्यात्मिक सिद्धियों से सम्पन्न और पूर्णकाम बताकर उनकी लोकोत्तर महापुरुषता की स्पष्ट परिपुष्टि की है[2] ।

सीताचरितम् के वसिष्ठ में एक महाप्राज्ञ का अद्भुत स्वरूप भी देखने को मिलता है । सीताचरितकार ने वसिष्ठ के लिये `विदांवर: `, बृहस्पति:, आदि जैसे विशेषणों का प्रयोग कर इनकी महाप्राज्ञता की ओर स्पष्ट संकेत किया है । यही नहीं अपितु सीताचरितम् के नवम सर्ग में वाल्मीकि के उद्बोधन पर वसिष्ठ के द्वारा जो प्रतिक्रिया व्यक्त करायी है उससे `विद्या ददाति विनयम्` के साक्षात् प्रतिमान दिखायी देते हैं कुलर्षि वसिष्ठ जब वाल्मीकि ने अपने उद्बोधन के उपसंहार में यह कहा कि अब इतने दिनों के पश्चात् आप

१- उदीर्य तर्कोर्जितां सरस्वतीं सभामिमां वाग्गुरु: सुमेधसाम् ।
उपाविशद् सूनृतवाग्, बृहस्पतिर्यथा सुधर्मां त्रिदिवे दिवौकसाम् ।।
- सीताचरितम्, ९ । ६६

२- समां समावर्जित-कर्ण-कुण्डलीं विधाय वोध्येन तत: स्वरेण ताम् ।
स पूर्णकामो भगवान् प्रवर्तयन्निवात्मनोपविवेश साम्प्रतम् ।।
- वही, ९ । ६८

लोगों में यह सुमति जागी है कि `सीता विशुद्ध है` तो आप सब उसे स्वयं ही सोचें, क्योंकि इस देश में कभी सती का विनाश न माना जाता है और न होता ही है[1]। क्या विश्वम्भर यज्ञ की पूर्ति के लिये उसी विश्वम्भरा की पुत्री (सीता) को महत्त्व नहीं दिया जाना चाहिये । आप सब तो विविज्ञ हैं तो भला बताइये कि कामधेनु की यह कैसी पूजा है जिसमें उसी की पुत्री की बलि दी जा रही है[2]।

इस प्रकार वाल्मीकि की यह कारुण्य गर्भ निर्भर वाणी सुनकर वसिष्ठ के नेत्र सजल हो उठते हैं[3]। और वह सानु निवेदन करते हैं कि हे महाकवे ! आपकी आज्ञा हमारे लिये शिरोधार्य है विधाता की आज्ञा के समान[4]। हे विद्वन् ! आप सर्वज्ञ हैं आपका दर्शन निष्फल नहीं है, आपका संकल्प ही हम लोगों के लिये कल्पवृक्ष है अतएव आप अपने इस वाक्य को कृपया सत्य सिद्ध करें कि `इस स्वदेश` (आश्रम अथवा भारत) में सीता सुरक्षित है[5]। हे विद्वन् !

१- सीताचरितम्, ६ ।२८

२- वही, ६ । २९

३- सा वाग् अनुवाग् वसिष्ठनेत्रे द्रुति विदेहात्मजचेतनायाम् ।
रामे विरंजत्वमथापरोक्षा सीतापुन:प्राप्तिकृतेऽतितृष्णा ॥
- वही, ६ । ३१

४- महाकवे । संप्रति ते नियोगं दधामहे मूर्ध्नि यथा विधातु: ।
चराचरं ते प्रतिभेन्दुसूचि: प्रकाशमानस्य यथा व्यनक्ति ॥
- वही, ६ ।३३

५- मृषा न ते दर्शनमस्ति विद्वन् संकल्पमात्रं तव कल्पवृक्ष: ।
सत्यं भवाँस्तद् कुरुतां स्ववाक्यं `सीता स्वदेशेऽत्र सुरक्षितेति' हि ॥
- वही, ६ । ३४

विज्वर । उदात्त चित्त एवं सुधीजन अपनी गति में प्रवाहित लोकप्रवाह को तो नदी प्रवाह के तट पर स्थित वृक्ष के समान स्वयं ही कृपा प्रसून की वर्षा करके सुगन्धित करते रहते हैं[1]। इस प्रकार सांकेतिक भाषा में अपना अभीष्ट (सीता दर्शन) कहकर महामति विद्यांवर वसिष्ठ मौन हो जाते हैं क्योंकि अमित और सारहीन वाणी का प्रयोग करना उसका विग्लापन मात्र है[2]। आदि कवि बाल्मीकि भी अपने रहस्यपूर्ण वक्तव्य के परमार्थ ज्ञान में पटु वसिष्ठ को देखकर हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त करते हैं क्योंकि कवियों की वाणी (ऋषियों के वेदमन्त्र अथवा ध्वनिकाव्य) उसकी ध्वनि (व्यंजना) को पकड़कर चलने वाली स्मृतियाँ (मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्र और सहृदयों की हृदय संवादिनी उपाख्या) के बिना सफल नहीं हो पाती[3]।

इस प्रकार बाल्मीकि के वैदुष्यपूर्ण रहस्य गर्भित व्याख्यान को वसिष्ठ ने स्वयं पूर्णत: समझकर उसकी वैसी प्रतिक्रिया व्यक्त करके बाल्मीकि को भी प्रभावित किया यह सब कुछ महाप्राज्ञ वसिष्ठ के लिये ही सम्भव था। इन सबसे वसिष्ठ की महाप्राज्ञता स्वत: प्रमाणित हो जाती है।

सीताचरितम् के वसिष्ठ सूर्यवंश के कुलगुरु होने के कारण धर्मनियन्ता भी हैं। यह धर्म नियन्ता वसिष्ठ का ही प्रभाव है कि सूर्य वंश की सत्य एवं धर्म से अनुप्राणित कीर्ति पताका समस्त संसार में फहरा रही है। सीताचरितम् में वसिष्ठ का धर्म नियामक स्वरूप उस समय स्पष्ट देखने को मिलता है जब लंका

१- सीताचरितम्, ६ । ३५

२- इत्यैवमामन्त्र्य विद्यांवरोऽसौ वाग्स्वतीं स्वामकरोद्यशब्दाम् ।
मितं न यद् यच्च न यन्त सारं विग्लापनामात्रमिदं स्ववाच: ।।
- वही, ६ । ३६

३- वही, ६ । ३७

विजय करके लौटे हुये राम को स्वयं भरत सादर उनकी चरण पादुका उनके पैरों में पहना देते हैं और राम के राज्याभिषेक के सम्बन्ध में ब्रह्मर्षि वसिष्ठ की अध्यक्षता में एक विशाल जन सभा का आयोजन होता है तो उस जन सभा में धर्माध्यक्ष के रूप में ब्रह्मर्षि वसिष्ठ ने जो लोगों को उद्बोधन दिया है वह सचमुच उनके धर्म-नियन्ता के स्वरूप का साक्षात प्रमाण है । वसिष्ठ जन सभा को सम्बोधित करते हुये कहते हैं कि यह घड़ी कितनी शुभ है और दिन कितना शोभन कि हमारे कठिन तप भी आज सफल हो रहे हैं । आज हम आप सबको शुद्ध चित्त के साथ आर्य धर्म में अवस्थित और मर्यादित देख रहे हैं।[1] मनुष्य जाति को पुरुषार्थों के द्वारा पूर्ण काम बनाने के निमित्त महात्माओं ने जो[2] व्यवस्थायें दी हैं उनके रक्षण के लिए एक सुदृढ़ क्रम अपेक्षित होता है, उसी के लिये 'नय' की योजना की जाती है, पुनश्च उसी[3] के लिये साम, दाम, भेद और दण्ड नीति चतुष्टय को अपनाया जाता है । नय ही वह दीप है जो अन्धकारस्थ व्यक्तियों को प्रकाशमान पथ की ओर ले जाता है । यही वह दीप है जो द्रष्टा ऋषियों का तृतीय नेत्र कहलाता है[4]। यही दुर्बलों का बल है, यही निर्भीक प्रशासक है[5]। मनुष्य के अभ्यन्तर में निहित सद्गुणों का

१- सीताचरितम्, १। ४६

२- वही, १। ५०

३- नयस्तदर्थं किल दान-सामनी समेदवण्डे सकुमास्य योज्यते ।
   यदेषा तेष्वेव हि दुष्टरूपिणी प्रवर्तिता दुरभि: प्रवर्तते ।।
   - वही, १। ५१

४- नय: स दीपस्तमसि स्थिताञ्जनान् प्रकाशमार्गे परिचालयेत य: ।
   तृतीयमुद्भासितलोकमान्तरं स एव नेत्रं कथितं प्रबोधवान् ।।
   - वही, १। ५३

५- वही, १ । ५४

विकासक भी यही है और यही है वह सर्वोत्तम उज्ज्वल सोपान जिसके माध्यम से व्यक्ति मृत्यु जय की पराभूमिका में पहुंच सकता है[1]। परन्तु यह जय बिना किसी नियन्ता के प्रतिष्ठित नहीं होता ठीक वैसे ही जैसे आचार्य के बिना कोई यज्ञ सम्पन्न नहीं हो सकता[2]। इसीलिये जय के नियमन हेतु तथा व समूचे राष्ट्र में सभी प्रजाजनों को जयशील बनाने के लिये राष्ट्रपति की आवश्यकता होती है और यही प्रश्न आज हम लोगों के समक्ष भी उपस्थित है, आप सब जानते ही हैं कि चौदह वर्षों के वनवास के अनन्तर लौटे हुये श्री राम के चरणों में कुमार भरत ने पादुकायें पहना दी हैं तो फिर अब आप लोग क्या चाहते हैं[3]। इस पर ऋषि वशिष्ठ के इस उद्बोधन से प्रभावित लक्ष्मण आदि सभी राजकुमार के साथ-साथ सारी प्रजा भी एक स्वर से श्री राम को राष्ट्रपति बनाये जाने का सहर्ष अनुमोदन करती है[4]।

इस प्रकार यह सब कुछ ऋषि वशिष्ठ के धर्म नियन्ता होने का ही तो प्रभाव है।

सीताचरितम् के वशिष्ठ के व्यक्तित्व में एक राष्ट्रभक्त का भी स्वरूप स्पष्ट दिखायी देता है। ऋषि वशिष्ठ जब राम के अभिनन्दन में समस्तव प्रजा-जनों को प्रीति सिन्धु में एक साथ स्नान करते देखा तो उन्हें ऐसा अपरिमित आह्लाद और परितोष मिला जो कभी ऋचाओं के विनियोग

१- विकासमार्ग: स निसर्गबन्धनानां गुणावलीनां गुहा भासिताल्मनाम् ।
स एव मृत्युञ्जयभूमिकां प्रति प्रधानसोपानपथ: समुज्ज्वल: ॥
- सीताचरितम्, १।५५

२- ऋते नियन्तारमसौ न तत्वतोऽध्वरो यथाचार्यमृते प्रतिष्ठते ।
- वही, १। ५७ पूर्वार्द्ध

३- वही, १।५८

४- वही, १। ६०

से भी नहीं मिला था, कारण उस समय उन्हें समस्त नगरवासियों में मानवीय मर्यादा का स्वरूप अपने उदात्त रूप में दिखाई दे रहा था[1]। राष्ट्र के सुरक्षा के लिए ही वसिष्ठ ने धर्माध्यक्ष का पद स्वीकार कर 'नय' की स्थापना की और उसके नियन्ता (राजा) को प्रतिष्ठित करने के लिये समय-समय पर जन सभा का आयोजन करते रहे[2]। यही नहीं, सीताचरितम् के दशम सर्ग में जब ऋषि वाल्मीकि कुश एवं लव को उनके पिता पुरुषोत्तम राम के लिये अर्पित करना चाहते हैं तो राम कुल गुरु वसिष्ठ के रहते हुये पुत्रों का समर्पण लेने में स्वयं को योग्य नहीं मानते[3]। फलत: वाल्मीकि वसिष्ठ को ही सर्व प्रथम लव, कुश को समर्पित करते हैं। कुल गुरु वसिष्ठ वाल्मीकि के आश्रम रूपी महासागर से कुश एवं लव रूपी दो-दो पारिजात्य को प्राप्त कर धन्य हो उठते हैं और कहते हैं कि भारत माता के मनोरथों के फल अब सम्पूर्ण हो गये[4]। इसके पश्चात वह स्वयं उन्हें (कुश एवं लव) को कर्णाश्रम के गुरु राष्ट्रपति राम को सौंप देते हैं[5]। राम भी वाल्मीकि और वसिष्ठ जैसे दो

१- अवेक्ष्य तां प्रीतिमयीं पुरीकसां प्रवृत्तिमाह्लादितमानसो गुरु: ।
क्षणं विधानादपि यं न लब्धवान्लब्ध तं तोषरसं स्थिते: स्थिते: ।।
- सीताचरितम्, १। ४७

२- वही, १। ५७-५८

३- वही, १० । २१

४- गुरुर्वसिष्ठोपि च पारिजाताविवाश्रमाब्धेरुपलभ्य तौ द्वौ ।
मनोरथान् भारतराष्ट्रमातु: स्वायत्त-संपूर्ण-फलानपश्यत् ।।
- वही, १० ।२२

५- तस्मिन् क्षणे लक्ष्मणाग्रजोपि ज्येष्ठां भुवं प्राप तथा शिर: स्वम् ।
ननाम वत्साकुशलाभ्यामथाप्यहादृश्यविमाननाभ्याम् ।।
- वही, १० ।३०

गुरुजनों के द्वारा सुपरिशिक्षित पुत्रों को प्राप्त कर प्रसन्न होते हैं[१]।

उक्त सन्दर्भों से ब्रह्मर्षि वसिष्ठ का राष्ट्रभक्त होना स्वतः सिद्ध हो जाता है । निष्कर्षतः सीताचरितम् के वसिष्ठ के व्यक्तित्व में यदि एक ओर लोकोत्तर महापुरुषता दिखायी देती है तो दूसरी ओर महाप्राज्ञता, यदि एक ओर धर्म नियन्तृता अपनी पराकाष्ठा पर है तो दूसरी ओर उनकी प्रत्येक शिरा में राष्ट्रभक्ति भी प्रतिष्ठित ।

—

१- सीताचरितम्, १० ।२३

वाल्मीकि —

सीताचरितकार ने वाल्मीकि के व्यक्तित्व के विकास के लिये उनके विविध रूपों का चित्रण अपने महाकाव्य में किया है । यही कारण है कि सीताचरितम् में कहीं ऋषि वाल्मीकि के स्वरूप का वर्णन मिलता है तो कहीं मुनि वाल्मीकि के स्वरूप का । कहीं महाकवि वाल्मीकि के स्वरूप का वर्णन मिलता है तो कहीं कुलपति वाल्मीकि के स्वरूप का, कहीं धर्म नियन्ता वाल्मीकि तो कहीं राष्ट्रभक्त वाल्मीकि ।

सीताचरितम् के वाल्मीकि में ऋषित्व, मुनित्व और कवित्व की त्रिवेणी का ऐसा अद्भुत संगम है कि यदि उन्हें तीर्थराज प्रयाग कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी ।

ऋषि वाल्मीकि के ऋषित्व एवं मुनित्व का समवेत वर्णन सीताचरितम् के पंचम सर्ग में उस समय मिलता है जब रामानुज लक्ष्मण के द्वारा उनके आश्रम के निकटस्थ वनस्थली में छोड़ी गयी वैदेही प्रसव वेदना से व्याकुल होकर एक लता कुंज में बैठी हुयी उससे निवृत्त होने की भूमिका को पार कर रही थी और सीता के दुःख से व्यथित सारी प्रकृति स्वयं समदुःख व्यक्त कर रही थी । उस समय वाल्मीकि अपनी सवन विधि की प्रक्रिया पूरी करने के लिये आश्रम से गंगा की ओर जाने के लिये उन्मुख थे । तब तक उनके ऋषि हृदय में प्रकृति का वह समदुःख रूप प्रतिबिम्बित हो उठता है, फलतः वाल्मीकि उस क्षण में प्रकृति का वह दृश्य जिसमें वृक्ष स्पन्दन हीन हो गये थे पक्षियों ने चहचहाना बन्द कर दिया था, मृगियों के छौने चंचलता को छोड़ कर स्तब्ध हो गये थे देखकर के व्याकुल हो उठते हैं[1] और अपने कुटीर से सवन

१- काठेऽस्मिन्नुज्झितबुभुक्षितैर्विलोक्यमानान्

निःश्वासानुभवपराङ्मुखान् विहङ्गान् ।

सम्पश्यन्नवकुशाकका कृतिस्व

वाल्मीकिः कविरतिविह्वलो बभूव ।।

– सीताचरितम्, ५।२६

के लिये आश्री इन भरे हुये वाल्मीकि प्राकृतिक पदार्थों में किसी अदृश्य रहस्य अथवा यों कहिये कि जिसके कारण प्रकृति में यह निस्तब्धता छा गयी थी उसका अनुसन्धान करने लगते हैं और गंगा की ओर तीव्रगति से चल पड़ते हैं[1]। उस समय वृक्षों, मृगों एवं पक्षियों द्वारा प्रदत्त संकेतों से वाल्मीकि की सहृदयता सहस्त्रों गुना बढ़ जाती है । सचमुच यही सहृदयता ही तो वह रहस्य है जो पशुओं और मनुष्यों पर मानव का साम्राज्य स्थापित करने में समर्थ होता है[2]। विद्वान कवि ज्ञानाग्नि की साक्षात शिखा होता है । उसकी दृष्टि इतनी भावक एवं व्यापक होती है कि वह जड़ और चेतन में कोई भेद नहीं मानता । स्वगत एवं परगत दोनों प्रकार के भावों का वह समान रूप से विवेचना करता है[3]। इसी क्रम में चिन्तन करते हुए वाल्मीकि आश्रम के चतुर्दिक घिरे हुये सारी वनस्थली और उसके सारे दृश्यों को देखते हुए आगे बढ़ते हैं । शनैः शनैः फिर उन्हें प्रकृति का वह परिवर्तनशील रूप भी दिखायी देने लगता है जिसमें वह अपने पहले के विषाद मग्न स्थिति को त्यागकर हर्षोन्मुख होती जा रही है । वृक्ष, लता, मृग, पशुपक्षी आदि सभी पुनः निस्तब्धता को छोड़कर कुछ विकल दिखायी देने लगे थे[4]।

इस प्रकार वनस्थली को हर्ष की भूमिका में पहुंचा देखकर ऋषिवर वाल्मीकि का मन भी सहसा ऐसी लोकोत्तर भूमिका में जा पहुंचा जहां उनकी

१- सीताचरितम्, पृ।२७, २८

२- साम्राज्यं समवसमावनं वशिनी मानुष्यं सहृदयसंज्ञिका प्रवृत्तिः ।
सह-केलिस्तरुनृमृगपक्षिभिः प्रदत्तैः साक्षीमिल्लमत वृत्तिमाविशूरो ।।
— वही, पृ। २९

३- सीताचरितम्, पृ। ३१

४- वही, पृ।३७-३८

पलकें झप गयीं और उन्हें समाधि लग गयी । समाधि की परामूमिका में पहुंचे हुये वाल्मीकि सारी घटना का साक्षात्कार कर लेते हैं । इसीलिए तो कहा जाता है कि योग भूमिका में कुछ भी परोक्ष नहीं हो सकता[1] । उस समय को सब कुछ हस्तामलक का प्रत्यक्ष हो जाता है । यही सब कुछ योगीश्वर वाल्मीकि के साथ भी घटित हुआ । उन्होंने समाधि में प्रत्यक्ष देखा कि जनक जैसे योगीश्वर की पुत्री वैदेही जनापवाद के कारण वन में आयी है और उसने वन में दो यमक (जुड़वा) पुत्रों को जन्म दिया है । उसी क्षुधा पुत्री वैदेही की प्रसव वेदना में यह सारी वनस्थली सम दुःख होकर पहले दुःख व्यक्त कर रही थी और अब उसके प्रसव वेदना मुक्त हो जाने से यह प्रकृति लता, वायु[2], वन देवियाँ आदि के द्वारा उसकी सेवा करती हुयी हर्ष व्यक्त कर रही है । यह कैसा अद्भुत दृश्य है कि जिस परम कारुणिक महामुनि ने एक दिन क्रौंच वध देखा था वही आज वनस्थली में सीता परिरक्षण देख रहे हैं । कहां मनुष्य लुब्धक ने मनुष्येतर क्रौंच को मारा था और कहां आज मनुष्येतर वृक्ष, लता, पक्षी आदि मनुष्य (सीता) की रक्षा कर रहे हैं । इस प्रकार मनुष्य और मनुष्येतर दोनों[3] संसार के मध्य का अन्तराल पहचान करके वाल्मीकि की आँखें सजल हो उठीं । तत्पश्चात् महामति वाल्मीकि तीव्र गति से उस लता कुंज में जा पहुंचते हैं जहां जानकी लव-कुश के साथ विराजमान[4] हैं । वाल्मीकि पुत्रों सहित वैदेही को सकुशल देखकर सन्तोष की सांस लेते हैं और अत्यन्त करुणा-

---

१- सीताचरितम्, ५।६०

२- स खलु विमलमेधाः सूरिराजः समाधौ
जनकदुहितृकारात् काननं सेव्यमानाम् ।
फलितकुसुमां तां जानकीं भारतीभि-
र्ललितललितमरुद्भिः सेव्यमानामपश्यत् ॥
- वही, ५। ६१

३- वही, ५।६२

४- वही, ५। ६६

पूर्वक उदार हृदय से जानकी से निवेदन करते हैं कि बेटी ! तेरा कल्याण हो । इन दोनों पुत्रों के साथ अब तुम मेरे आश्रम को धन्य करो । तुम्हारे चरणों के स्पर्श से मेरा आश्रम भी पवित्र हो जायेगा । फिर हमारे आश्रम तो राष्ट्र की विपत्ति को दूर करने के लिये ही बनाये गये हैं[1] । वाल्मीकि के इस निवेदन को सुनकर वैदेही उनकी आज्ञा को शिरोधार्य कर दोनों पुत्रों के साथ वाल्मीकि के उस आश्रम में पहुंच जाती है जो उनके दूसरे नैहर के समान है[2] ।

इस प्रकार उपर्युक्त सन्दर्भों से वाल्मीकि के ऋषित्व एवं मुनित्व की पर्याप्त परिपुष्टि हो जाती है ।

ऋषि वाल्मीकि के महाकवित्व का निदर्शन यों तो अनेकत्र उपलब्ध होता है किन्तु इसका चरम निदर्शन सीताचरितम् के सप्तम एवं अष्टम सर्गों में विशेषरूप से उपलब्ध होता है । सप्तम सर्ग में वाल्मीकि जब कुश-लव की शिक्षा के सन्दर्भ में शिक्षक के दायित्व की व्याख्या करते हुये जब कवि धर्म की चर्चा करते हैं तो उनके व्यक्तित्व में अन्तर्हित कवि व्यक्तित्व अभिव्यक्त हो उठता है और कहता है कि कविता करने वाले विद्वान कवि का यह व्रत ही नहीं अपितु महाव्रत है कि वह प्रत्येक व्यक्ति के हृदय को प्रकाश राशि की उज्ज्वलता से उज्ज्वल करे और उज्ज्वल करता रहे[3] । वह व्यक्ति बड़ा ही

१- सीताचरितम्, ५ ।७०

२- सुतयुगसहिता विदेहपुत्री प्रवयमिकारथुदस्यत: प्रयाताद् ।
विपिनपरिसरान्मुने: पदं सा पितुरिव धाम परं क्षेरवापद् ।।
- वही, ६।१

३- भवति कवयितुर्विपश्चितोऽदो व्रतमथवात्र महाव्रतं यदेषा: ।
प्रतिजनहृदयं प्रकाशराशिविशदतया विशदीकरोतु कामम् ।।
- वही, ७ । २१

स्वार्थी होता है जो शास्त्रों का परिशीलन करके विरत हो जाता है और प्रतिगामी जनों को रोकने का कुछ भी यत्न नहीं करता।[1] और जिस विद्या से सतियों को संरक्षण नहीं मिलता उससे लाभ ही क्या।[2] फिर यदि कोई यह कहे कि चराचर समस्त विश्व क्षणिक ही है तो उसे यह भी समझना चाहिये कि चंचल तरंगों के मध्य महासागर के समान इसी विश्व में अन्तर्हित एक विश्वमूर्ति भी है जो निश्चित रूप से सर्वाधिक उपास्य है।[3] वही विश्वमूर्ति विश्वात्मा प्रत्येक पुरुष में चेतना रूप में उपस्थित होकर सर्वत्र प्रकाशित हो रहा है।[4]

इसी प्रकार अष्टम सर्ग में वाल्मीकि के महाकवित्व का चरम निदर्शन क्या अपितु उसकी फलश्रुति भी देखने को मिलती है। जहां विश्व मूर्ति के साकार विग्रह के रूप में विश्वात्मा मानवतावतार भगवान राम से उनका हृदय-संवाद होता है और दोनों चेतना की पराभूमिका में पहुंचकर एकमेक हो जाते हैं। द्वैत की सीमाओं को पारकर अद्वैत हो जाते हैं।। द्रष्टा वाल्मीकि और दृश्य रूप भगवान राम की जोड़ी एक दैवी छटा से छविमान हो उठती है।।। राम का महाकवि वाल्मीकि को प्रणाम और महाकवि का आशीर्वाद

१- स हि परमधमो निःस्वार्थदर्शी भवति जनः परिशील्य यस्तु शास्त्रम् ।
विपथगतिजुषां गतीर्निरोद्धुं विरततया यतते न लेशमात्रम् ।।
- सीताचरितम्, ७।३२

२- अयि बत, यदि विद्यया सतीनां न हि परिपालनमस्ति किं तया नः ।

- वही, ७।३६ - पूर्वार्द्ध

३- वही, ६ । ३७

४- वही, ६। ३८

जैसी दोनों ही उपाधियां एक ही लग रही थीं[1]। दोनों दो नहीं अपितु अकेले ही अकेले रहते हैं, दोनों के साथ अन्य कोई भी नहीं रह जाता[2]। दोनों की मनोभूमिका सर्वथा द्वैतमुक्त हो जाती है। उसी द्वैत मुक्त मनोभूमिका में कैवल्य धाम रूप उसी एकान्त आश्रम स्थान में महाकवि वाल्मीकि काव्य नायक श्री राम को बिम्ब के प्रतिबिम्ब के समान अपना `रामायण` नामक महाकाव्य समर्पित करते हैं[3]। काव्य नायक विश्वमूर्ति राम भी रामायण महाकाव्य में अपने स्वरूप का प्रत्यभिज्ञान कर कृत कृत्य हो उठते हैं तथा व सीता के लोकापवाद और चन्द्रकेतु के साथ कुश-लव के युद्ध को अपनी पूजा ही मानते हैं[4]।

इस प्रकार परात्पर भूमिका में पहुंचकर जब महाकवि वाल्मीकि और भागवताकार श्री मन्तराम के दोनों महापुरुषों की संविति कृत कृत्य हो जाती है, दोनों एक दूसरे को स्वरूपत: एवं तत्वत: पहचान कर धन्य हो उठते हैं और वे दोनों लोक की अपरा भूमिका पर उतर आते हैं[5]।

इस प्रकार उपर्युक्त तथ्यों से वाल्मीकि के कवि व्यक्तित्व पर इतना

१- सीताचरितम्, ८। ५४

२- आसीच्च तत्र कैवल्यं द्वयोर्द्वैत-विवर्जितम् ।
अत: सीतापि माधेव तदा लेभे न तत् पदम् ।।
- वही, ८ ।५५

३- वही, ८ । ५७

४- वही, ८ । ५८

५- कृतार्थसंविदौ: पश्चादपरां भूमिमीयुषौ: ।
सुखकाङ्क्षी पदा तयोरास्तां महीयसो: ।।
- वही, ८ । ५९

प्रकाश पड़ जाता है कि अब उस पर अधिक प्रकाश डालने का कोई औचित्य समीचीन नहीं प्रतीत होता ।

सीताचरितम् के वाल्मीकि में एक सफल कुलपति का व्यक्तित्व भी उपलब्ध होता है । सीताचरितम् के सप्तम सर्ग में जब वैदेही अपने कुश-लव-दोनों पुत्रों को शिक्षा देने के लिये महर्षि वाल्मीकि को सौंपने के लिये जाती हैं तो उस समय सीता और वाल्मीकि का जो संवाद होता है उसमें ऐसे अनेक स्थल आये हैं जो वाल्मीकि के महाकुलपतित्व का अविकल प्रमाण प्रस्तुत करते हैं ।

सप्तम सर्ग के प्रारम्भ में जब वैदेही यह कहती है कि भगवन संसार में यह जो चराचरात्मक सृष्टि है इसमें प्रत्यक्ष या परोक्ष कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है जो आपके अनुभव से परे हो[1] । आपके हृदय रूपी प्रयाग में तो ऋषित्व, मुनित्व एवं कवित्व की त्रिपथगा अविराम रूप से प्रवाहित होती रहती है । इसीलिये आपका सम्वेदनशील हृदय विश्व-देवता के वशीकरण के अनुष्ठान में सर्वथा समर्थ है[2] । भगवन जब शिष्यों के हृदय में विद्यमान विद्या की अग्निशिखा विश्वरूपता को प्राप्त होती है तो उससे सुयोग्य कुलपति का सुयश स्वयं ही समस्त संसार में प्रसार पा लेता है । इसीलिये तो किसी सुयोग्य कुलपति की पहचान उसकी विद्या के लोकव्यापी प्रभाव से की जाती है[3] । मैं तो पिता के समान आपके आश्रित रह रही हूं । इसलिये मैं चाहती हूं कि आप जैसे लोक विश्रुत कुलपति के निर्देशन में मेरे इन कुश-लव रूपी अबोध शिशुओं को शिक्षा मिले । आज मैं इनके स्वयं और स्वयं[4] की ममता के परिष्कार के लिये इन्हें आपके चरणों में अर्पित करती हूं ।

१- सीताचरितम्, ७ ।२

२- वही, ७।३

३- वही, ७।४

४- वही, ७।५

इस पर वाल्मीकि अपने आचार्यत्व के अनुरूप एक सारगर्भित व्याख्यान प्रस्तुत करते हुये इसके उपसंहार में जो कुछ कहते हैं वह किसी भी आचार्य अथवा कुलपति के महिमा मण्डित व्यक्तित्व की उपस्थापना ही कही जा सकती है ।

वाल्मीकि कहते है कि भारतीय आर्य तो जन्मकाल से कल्पनाओं के कल्प-वृक्षों में लगे फल खाता है, परम चिन्तन की चिन्तामणियों से वह सदैव खेलता रहता है, उसके पश्चात् आर्य बालक उत्कर्ष की कामनारूपी कामधेनु का दूध पीता है जिससे वह मन, शरीर एवं आयुष्य में त्रिलोकी में दिव्यता और परात्परता प्राप्त कर लेता है[1]। इसीलिए भारतीय आर्य विनम्र होते हुये भी शिक्षा के लिए कभी भी कहीं अपना मस्तक नहीं झुकाता[2]। कुलपति अथवा आचार्य शिष्यों में केवल अपनी संस्कृति की छाप ही छोड़ते हैं जो उसके लिये पुरुषार्थों को फलने हेतु कल्पलता ही बनती जाती है[3]। इसलिये मैं चाहता हूं कि मानवीय विकास कभी प्रतिहत न हो, वह मनोरथ साहस की विद्या पढ़े तथा अपने वंश एवं राष्ट्र को सरस्वती के अमृत रस से सन्तुष्ट करे[4]। पुत्रि ! वैदेही मैं तुम्हारे बच्चों की विद्यातुरता स्वीकार करता हूं और उनकी रुचि के अनुकूल शिक्षारम्भ करते हुये शनैः शनैः इन्हें अध्यात्म, गणित, शिल्प, भूगोल, आदि सभी विद्याओं में परम निष्णात करने का यत्न करूंगा[5]। इसके

१- जन्मसमकः स कल्पनानां तरुषु भवानि समश्नुते फलानि ।
अथ सुपरमचिन्तामणीभिर्भवति च तस्य विनोद-खेलनानि ।।
पिबति तदनु सोऽप्यार्यबालो मधुरसमुत्कृति-कामनागवीनाम् ।
मनसि वपुषि चायुषि त्रिलोक्यां व्रजति परात्परतां यतः स दिव्याम् ।।
- सीताचरितम्, ७।१४, १५

२- वही, ७।२१

३- कुलपतिरथवा महोपदेष्टा शिशुषु परं कुरुतीह संस्कृतिं स्वाम् ।
इयमुपनिनुते लतासमा फलयितुमेव च जन्मनः फलानि ।।
- वही, ७।२२

४- वही, ७। २३

५- वही, ७।२५-२७

साथ ही साथ जनहित-सम्पादक विद्या में भी इन्हें दीक्षित करूंगा, क्योंकि पण्डितों का उच्च अध्ययन भी प्रजा की प्रतिष्ठा रूपी परम लाभ में जब तक सफल नहीं होता तब तक वह व्यर्थ ही माना जाता है।[1]

निष्कर्षत: मैं कुल मिलाकर इतना ही कहना चाहता हूं कि तुम्हारे ये दोनों पुत्र और द्विज कुल के सभी बालक विद्या के उज्ज्वल पथ से समस्त संसार को सर्वतोमुखी विकास की ओर ले जायं।[2]

इस प्रकार उपर्युक्त वक्तव्य से वाल्मीकि के महाकुलपति होने की धारणा का पर्याप्त पोषण हो जाता है। यही नहीं पंचम सर्ग एवं षाष्ठ सर्ग में वाल्मीकि-वैदेही के संवाद अष्टम सर्ग में वाल्मीकि राम संवाद, नवम सर्ग में वाल्मीकि का अपने आश्रम में जनक की अध्यक्षता में विशाल जन सभा को सम्बोधन, और उसी सन्दर्भ में उनका ब्रह्मर्षि वशिष्ठ से हृदय संवाद आदि सारे के सारे संवाद ऋषि वाल्मीकि के महान कुलपति होने का ही प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

सीताचरितम् के नवम सर्ग में जहां जनक की अध्यक्षता में अपने ही आश्रम में आयोजित विशाल जन सभा में महर्षि वाल्मीकि ने सीता निर्वासन के प्रसंग को लेकर जो वक्तव्य दिया है उससे उनके धर्म नियन्ता होने का भी

१- कुण्ठितमपि भूयसा कृतेन द्विजकुलेन भवतीह पण्डितानाम् ।
यदि भवति न तद् प्रजाप्रतिष्ठापरमफलाय निवासिनां समाजे ।।
-सीताचरितम्, ७। २९

२- इदमिह मम वक्ति मनीषा तव तनयावथ तद्वदेव सर्वे ।
द्विजकुलशिशवो जगन्ति विद्याविशदपथेन विशेषतो नयन्तु ।।
- वही, ७।३६

प्रमाण मिलता है । वाल्मीकि कहते हैं कि रयि और प्राण पर आश्रित यज्ञ से सभी पदार्थों के शरीर बने और यदि उसका अनुकरण करते हुये राम मद्र अश्वमेध करने चले हैं तो उसके लिए हम इन पर साधुवाद एवं आशीर्वचनों की वृष्टि करते हैं[1] परन्तु इनका यह अनुष्ठान ठीक से हो रहा है कि नहीं यह सब कुछ जानने के लिये हमारा आप सबसे निवेदन है कि क्या रयि के बिना केवल प्राण मात्र से ही इस चराचर का शरीर बन सका है ।[2] अथवा सोम को छोड़कर केवल अग्नि से ही यह ब्रह्माण्ड तैयार हो सकता है । यदि नहीं, तो यज्ञ कार्य में रयि और सोम का कार्य करती धर्मपत्नी सीता को छोड़कर श्रीराम के अश्वमेध यज्ञ का यह अनुष्ठान कोरी विडम्बना नहीं तो और क्या है ?[3] क्या विभीषणादि राक्षसों, सुग्रीव आदि वानरों, इन्द्र आदि देवताओं के समक्ष की गयी अग्नि परीक्षा में वैदेही शुद्ध नहीं हुयी थी ।[4] जिसे जनापवाद के कारण गर्भावस्था में पुन: निर्वासित किया गया[5]। सीता का निर्वासन

१- सीताचरितम्, ६ । २०-२१

२- वही, ६ ।२२

३- नैवेति वेद् यज्ञविधौ रयित्वं तथा च सोमत्वमुपाश्रयन्तीम् ।
विहाय पत्नीं भवतोऽश्वमेधविडम्बनेयं न विडम्बना किम् ।।
- वही, ६।२४

४- स्वाभावते यन्न कृतेऽपि वह्नि तदेव देवात्र निमग्ने चेत् ।
रक्ष:कपीन्द्रत्रिदिवौकसां किं साक्ष्यत्वमासीदनले न शुद्धा ।।
- वही, ६ ।२५

५- सा चेद् विशुद्धापि जनापवादाद् त्यक्ता त्वयीशा वरणीय सीता ।
देव्य: क्षमा प्रतिमा विनाशनापि दोषिण्यु सज्जनैः ।।
- वही, ६ ।२६

कराने वाले मलिन प्राणी तो वैदेही का चित्र देखने योग्य भी नहीं है,[1] किन्तु फिर भी यदि आप लोगों में आज यह सद्बुद्धि जागी है कि सीता शुद्ध है तो आप सभी स्वयं ही उस सीता को खोजें, क्योंकि इस देश में सतियों का नाश कभी नहीं होता[2] ।

इस प्रकार धर्म-नियन्ता वाल्मीकि की वाणी को सुनकर वसिष्ठ, जनक आदि यदि सजल नेत्र हो उठते हैं तो सारे सभासद वैदेही के दर्शन के लिए उन्मन होकर व्याकुल हो जाते है । और राम भद्र तो मूर्छित हो जाते हैं[3] । उपर्युक्त सभी तथ्य वाल्मीकि के धर्म नियामक होने का इतना सबल प्रमाण प्रस्तुत करते हैं कि इसे और अधिक स्पष्ट करने का कोई औचित्य नहीं है । वाल्मीकि के व्यक्तित्व में राष्ट्रभक्ति की उत्ताल तरंगें आकाश शिखर को छूती हुयी दिखायी देती हैं उनके ऋषित्व, मुनित्व, कवित्व, कुलपतित्व, धर्मनियन्तृत्व आदि सभी रूपों में राष्ट्रभक्ति ही तो अनुस्यूत है । यह कोई आश्चर्य नहीं है क्योंकि ऋषियों, मुनियों एवं विद्या के अखण्ड साधक महा-कवियों, महाचार्यों, कुलपतियों, धर्माचार्यों, सन्तो आदि का सम्पूर्ण जीवन ही परमार्थ परायण होता है । राष्ट्र की सर्वतोमुखी समृद्धि के लिये ही ये सभी वैयक्तिक सुख सुविधाओं का परित्यागकर आरण्यक साधना के माध्यम से लोकमंगल हेतु ही परोपकार का महाव्रत ग्रहण करते हैं, इनके सारे क्रिया-कलापों का चरम लक्ष्य एक मात्र समूचे राष्ट्र का मंगलमय स्वप्न देखना ही रहता है । सीताचरितम् के पंचम सर्ग में लक्ष्मण के द्वारा छोड़ी गयी वैदेही जब अपने कुश-लव जैसे पुत्रों को जन्म देती हैं और वाल्मीकि समाधि के द्वारा सीता

१- अथवा सत्या मलचेतनावा: किं शाकमञ्ज्या अपि संस्पृशेण ।
अशुद्धात्मन मुखं यस्य न चित्रकमपि वीक्षणीयम् ॥
-सीताचरितम्, ६ ।२७

२- वही, ६ ।२८

३- वही, ६ ।३१

निर्वासन के समस्त तथ्यों से अवगत होते हैं तो वह सीता के पास जाकर जब पुत्रों सहित उन्हें सकुशल देखते हैं तो वाल्मीकि को सन्तोष का अनुभव होता है क्योंकि ऋषियों की दृष्टि में अपने राष्ट्र का स्वास्थ्य ही सर्वोपरि होता है[1]। पुनश्च वह स्वयं यह कहते हैं कि बेटी ! तुम्हारा कल्याण हो, अपने पुत्रों सहित, तुम हमारे आश्रम में चलो, क्योंकि हम ऋषियों के आश्रम तो राष्ट्र की आपदा दूर करने के लिये ही बनाये गये हैं[2]। यही नहीं षाष्ठ सर्ग में स्वयं वैदेही भी वाल्मीकि के आश्रम के सम्बन्ध में जो कुछ हृदयोद्गार व्यक्त किये हैं वे सभी तथ्य एक साथ मिलकर वाल्मीकि के राष्ट्र भक्ति का ही पोषण करते हैं।

इस प्रकार सीताचरितम् के वाल्मीकि में, ऋषिता, मुनिता, कविता, आचार्यता, कुलपतिता, धर्मनियन्तृता, राष्ट्रभक्तता आदि समस्त उदात्त मानवीय गुणों का एकत्र ही परम उत्कृष्ट समन्वय मिलता है।

—

१- जनकदुहितुरस्या मङ्गलां कायकान्तिं
प्रवननगमये पि स्कालिकार्यां पुरीव ।
विपिनपरिसरेऽपि प्रेक्ष्य तुष्टः स वाल्मी
भवति हि निजराष्ट्रस्वास्थ्यमेवार्षदृष्टौ ॥
- सीताचरितम्, ५।६६

२- वही, ५।७०

३- वही, ६।१०-२२

काव्य-सौन्दर्य-विवेचन :

जहां तक सीताचरितम् के काव्य सौन्दर्य के विवेचन का प्रश्न है तो इस सन्दर्भ में उसके काव्य सौन्दर्य के प्रमुख बिन्दु वर्णाश्रम व्यवस्था, पुरुषार्थ चतुष्टय, दर्शन, यज्ञ संविधान, तपोवन वर्णन, प्रकृति चित्रण, विश्वबन्धुताभित, राष्ट्रियता, विश्वशांति, शिक्षा नीति, नारीजागरण, दाम्पत्य-प्रेम आदि हैं।

वर्णाश्रम व्यवस्था :

सीताचरितम् में वर्णाश्रम व्यवस्था का सफल चित्रण मिलता है। द्वितीय सर्ग में सीता चरितकार ने यह दिखाया है कि मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने अपने शासनकाल में चारों वर्णों और चारों आश्रमों की व्यवस्था इतने आदर्श रूप से कर रखी थी कि धर्मादि चारों पुरुषार्थ उसके वशवर्ती हो गये[1]। राम के शासनकाल में प्रत्येक व्यक्ति आश्रम एवं अपने वर्ण के अनुरूप ही आचरण करता हुआ अपना दायित्व निर्वहण करता था। वर्णाश्रम संविधान के अनुसार निर्धारित वर्णों की मर्यादा की रक्षा करने के लिये मर्यादापुरुषोत्तम राम मुनिवृत्ति को अपनाकर तपस्या करते हुये शम्बूक के पास पहुंचते हैं और उसे वर्णाश्रम होने के कारण मुनि-वृत्ति से हटाते हैं[2]। यही नहीं बाल्मीकि के

१- चतुर्दा वर्णाश्रा तथाश्रमेष्वा स स्थितिं व्यधात् किं च तथाविधां प्रभुः।
यथाऽस्य कृत्स्नापि वशंवदायितं चचार धर्मादिचतुष्टयसंहतिः ॥

- सीताचरितम्, २।७

२- यथाधिकारमर्यादां वर्णानां संविधानतः।
पालयन्प्रेरितोऽमात्यै राजा शम्बूकमीयिवान् ॥

मुनिवृत्तेरमुं शूद्रं विनिवार्य महामतिः।
उपोद्घातेन तेनैव स्वमभ्यधितात ॥

- वही, ८। ५०-५१

आश्रम में कुलपति वाल्मीकि के द्वारा द्विजातिकुल के सभी बालकों को सामान्य शिक्षा के साथ-साथ उनकी विशेष शिक्षा आश्रम एवं वर्ण के अनुरूप ही दी जाती है । इस सन्दर्भ में कुश एवं लव क्षत्रिय वर्ण के अनुकूल शिक्षा ग्रहण करने में आदर्श शिष्य का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो स्वधर्म के परिपालन द्वारा वर्णाश्रम को अन्वर्थक बनाते हैं[१] ।

इसी प्रकार वसिष्ठ, वाल्मीकि आदि जहां एक ओर ब्राह्मण वर्ण का आदर्श प्रतिनिधित्व करते हैं वहीं दूसरी ओर (रामादि क्षत्रिय वर्ण का) तथा रामराज्य के सभी धनिक वैश्य अपने वर्ण का प्रतिनिधित्व करते हुये पाये जाते हैं ।

इस प्रकार सीताचरितम् में वर्णाश्रम व्यवस्था का सफल वर्णन उपलब्ध होता है, जो आलोचना का विषय होते हुये भी अन्तिम रूप में व्यक्ति, समाज, व राष्ट्र के समुचित विकास के लिये उपयोगी ही है ।

पुरुषार्थ चतुष्टय :-

सीताचरितम् महाकाव्य के अन्तर्गत धर्मादि चारों पुरुषार्थों का पर्याप्त वर्णन मिलता है । पुरुषार्थ मानव जीवन का साध्यभूत परमलक्ष्य है । धर्मादि चारों पुरुषार्थ मानव जीवन के लिये साध्य इसलिये बताये गये हैं क्योंकि मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन चारों पुरुषार्थों पर ही निर्भर करता है । पुरुषार्थों के माध्यम से ही मनुष्य की अन्तश्चेतना का चरम विकास सम्भव है । पुरुषार्थ के द्वारा ही मनुष्य अपना शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक

१- एवं सीता, सुतौ तस्याः, स चापि गुरुरेतयोः ।
अन्वर्थयन् निर्देशैराश्रमाश्रितं निजम् ।।

- सीताचरितम्, ८ । ५

एवं आध्यात्मिक विकास करके मानव जीवन की सार्थकता का सम्बोध प्राप्त कर सकता है । धर्मादि चारों पुरुषार्थों का मनुष्य के अन्तरंग जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है । इनमें धर्म का साक्षात सम्बन्ध मनुष्य की बुद्धि से,अर्थ का शरीर से,काम का मन से और मोक्ष का मनुष्य के प्रत्यक् चैतन्य (आत्मा) से है ।

धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की क्रमिक शृङ्खला की संगणना का अपना एक औचित्य है । कारण मानव जीवन को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए उसे सर्वप्रथम बौद्धिक क्षमता की आवश्यकता होती है । इसके माध्यम से वह अपने तथा अपने समाज एवं राष्ट्र-जीवन की रूपरेखा तैयार करता है इसी बौद्धिक क्षमता की प्राप्ति के लिये धर्म नामक पुरुषार्थ की आवश्यकता होती है । इसके पश्चात् इसे साकार रूप प्रदान करने के लिये उसे सर्वथा स्वस्थ निरोग शरीर की आवश्यकता होती है और शरीर को स्वस्थ रखने के लिये भोजन,वस्त्र, आवास आदि अत्यन्त अनिवार्यभूत प्राथमिक आवश्यकतायें हैं जो मूलत: अर्थ पर ही निर्भर करती है । पुनश्च मानसिक विकास के लिये काम की आवश्यकता होती है जिसके अन्तर्गत न केवल यौन सम्बन्ध सम्बन्धी आवश्यकतायें ही सम्मिलित हैं अपितु सुख-सौविध्यमूलक वे सारी आवश्यकतायें भी इसी की परिधि में आ जाती हैं जिनका साक्षात् सम्बन्ध मनुष्य के शरीर एवं मन से एक साथ है । प्रत्यक् चैतन्य (आत्मा) के स्वरूप बोध के साथ-साथ सुख दु:ख मोहमय जागतिक बन्धों से मुक्त होने के लिये जिस अपन   की कल्पना की गयी है उसके लिये मोक्ष नामक परमपुरुषार्थ की आवश्यकता होती है ।

इस प्रकार धर्म की मर्यादा में रहते हुये अर्थ और काम का उपार्जन कर इनके साथ-साथ अपने शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास के पथ पर अग्रसर होते हुये आत्मबोध पूर्वक प्रत्यक् चैतन्य का साक्षात्कार करना प्रत्येक मनुष्य का अन्तिम लक्ष्य होता है और इन्हीं उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु धर्मादि पुरुषार्थों की संकल्पना की गयी ।

सीताचरितम् के द्वितीय सर्ग में यह बताया गया है कि राष्ट्रपति राम के शासन काल में उनकी प्रजा सनातन धर्म का अनुसरण उसी प्रकार से

करती थी जिस प्रकार शुक्ल पक्ष की रात्रि चन्द्रमा के प्रकाश का। वह कभी भी तामसी प्रवृत्ति की ओर अग्रसर नहीं होती थी, और निरन्तर सन्मार्ग पर अग्रसर रहा करती थी[1]। भागवतावतार राम ने शुद्ध चित्त से धर्म नीति के द्वारा प्रजा को इस प्रकार सन्तुष्ट किया कि उसे यमराज से भी भय नहीं रहा और कल्पवृक्ष से भी याचना की आवश्यकता नहीं रही[2]। राम ने अपने शासन काल में ऐसा सौराज्य सुख उपस्थित कर दिया कि देवता भी मर्त्यलोक को अपनी कर्मभूमि बनाने के लिये लालायित हो उठे[3]। राम के शासन काल में वर्णाश्रम व्यवस्था इतनी अच्छी थी कि मनुष्य को धर्मादि चारों पुरुषार्थ सहज रूप से उपलब्ध हो जाया करते थे[4]।

यही नहीं सीताचरितम् के प्रथम सर्ग में ब्रह्मर्षि वशिष्ठ द्वारा किया गया साकेत वासियों के उद्बोधन[5], चतुर्थ सर्ग में उर्मिला और वैदेही के संवाद के

१- सनातनं शाश्वतिकं समाश्रिता प्रकाशमिन्दोरिव शुक्लयामिनी।
विशिक्षितास्तस्य न हि प्रजा क्वचित् तमःप्रवृत्तिं भजते स्म सत्पथा॥
- सीताचरितम्, २। ४

२- स धर्मनीत्या विशुद्धेन चेतसा प्रजास्तथा तोषयदीश्वरोत्तमः।
यथा यमेऽपि प्रक्षिता अभीततां यथा च कल्पेऽपि गता अयाचिताम्॥
- वही, २।५

३- वही, २। ६

४- चतुर्दा वर्णेषु तथाश्रमेषु च स्थितिं व्यधात् किं च तथाविधां प्रभुः।
यथाऽस्य कृत्स्नापि चतुर्वर्गायितं बभार धर्मादिचतुर्वर्गसंहितः॥

- वही, २। ७

५- वही, १। ५०-५७

प्रसंग में उर्मिला का धर्म के सम्बन्ध में लोकमत को आधार मानकर निर्णय लेने[1] की परम्परा का उपालम्भपूर्वक खण्डन,[2] अष्ठम सर्ग में वाल्मीकि के आश्रम में ऋषियों द्वारा पुरुषार्थ की साधना, तथा दशम सर्ग में वैदेही का योग द्वारा आत्मसाक्षात्कार पूर्वक शरीर का परित्याग[3] आदि सभी स्थल धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के वर्णन का उज्ज्वल निदर्शन प्रस्तुत करते हैं ।

दर्शन —

सीताचरितम् महाकाव्य में भारतीय दर्शन का स्वर विभिन्न स्थलों पर विशेष रूप से मुखरित हुआ है । इसमें कहीं सांख्य का वर्णन है तो कहीं योग का, कहीं मीमांसा (पूर्व मीमांसा) का वर्णन है तो कहीं वेदान्त (उत्तर मीमांसा) कहीं शैव का वर्णन है तो कहीं वैष्णव का, कहीं बौद्धों के शून्यवाद का वर्णन है तो कहीं उसका खण्डन करके वैदिक दर्शन वेदान्त के विश्वमूर्तिवाद का ।

सीताचरितम् के द्वितीय एवं सप्तम् सर्ग में सांख्य दर्शन की झलक मिलती है । वहां यह बताया गया है कि सीता निर्वासन के समय महाराघव राम अपने बन्धुओं के मध्य तटस्थ चित्त होकर ऐसे लग रहे थे जैसे सांख्य दर्शन में महत् तत्त्व आदि से परभूत कोई पुरुष गुणों के बीच लगता है[1] । इसी प्रकार सप्तम सर्ग में महर्षि वाल्मीकि वैदेही को उपदेश देते हुए सांख्य सम्मत सृष्टि की ओर संकेत करते हैं कि मुनि सीते ! जिसका जन्म शुद्ध होता है वह अति महान होता है, उसमें सभी शुक्तियां परिपोष को प्राप्त होती हैं । सूर्य में किरणें अपने आप क्यों प्रस्फुटित होती हैं ? और क्यों प्रस्फुटित होती हैं वे चन्द्र में अपने आप ? इसका कारण स्पष्ट है कि प्रकृति और पुरुष का यह जो ज्ञ

१- तटस्थवृत्तिश्च स तेषु राघवस्तथा बभासे निजबन्धुषु स्थितः ।
यथा स कश्चित् पुरुषः प्रकाशते गुणेषु सांख्ये महदादिभिर्वृतः ।।
— सीताचरितम्, २।४२

संविधान है इसी से यह पूरा का पूरा विश्व मनुष्य शरीर में वैसे ही उपस्थित रहता है जैसे प्रज्वलित अग्नि में अर्चि[1] ।

सीताचरितम् के षष्ठ सर्ग में आश्रम के ऋषियों तथा स्वयं वैदेही का भी अपने पिता योगिराज जनक के यहाँ सीखे गये योग का अभ्यास करना[2] । पुनश्च दशम सर्ग में सीता का योग के द्वारा शरीर का परित्याग करना[3] आदि स्थल योग-दर्शन का प्रतिनिधित्व करते हैं ।

सीताचरितम् महाकाव्य के षष्ठ सर्ग में ऋषियों के कर्म काण्ड पर पूर्व मीमांसा का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है । जहाँ तक वेदान्त दर्शन का प्रश्न है इस सन्दर्भ में यह कहना असंगत न होगा कि सीताचरितम् यदि किसी दर्शन से सर्वाधिक प्रभावित है तो वह है वेदान्त दर्शन । षष्ठ सर्ग के अन्तर्गत वाल्मीकि के आश्रम में ऋषियों द्वारा अष्टांग समाधि व साधना, आत्म तत्व का शोधन एवं साक्षात्कार[4], अष्टम सर्ग में वाल्मीकि-राम संवाद के सन्दर्भ में वाल्मीकि और राम दोनों का परस्पर साक्षात्कार, दोनों का द्वैत विगलित होकर अद्वैत की भूमिका में पहुंचना और उसी भूमिका में स्थित होकर हृदय संवाद करते हुये वाल्मीकि का राम को उसी कैवल्य धाम में (एकान्त मुक्ति स्थान) अपने रामायण नामक महाकाव्य को राम के लिये अर्पित करना, पुन: उन दोनों का पराभूमिका की संवित्ति में पहुंचकर वार्तालाप कर कृत्य कृत्य होकर पुन: लोक की अपराभूमिका पर उतरना[5] आदि स्थल वेदान्त

१- भगवति ! भुवनान्तरालवर्तिन्निखिलमपि ज्वलितेऽनले यथार्चिः ।
प्रकृतिपुरुषात्मकसंविधानात् स्वयमुपतिष्ठति मानुषे निकाये ।।
- सीताचरितम्, ७।१२

२- वही, ६। २१, ४२

३- वही, १०।६६-७२

४- वही, ६।१३-२१

५- वही, ८।१३-१८

दर्शन की स्पष्ट व्याख्या करते हैं । दशम सर्ग में वैदेही का वेदान्त सम्मत आत्मसाक्षात्कार करके ज्योतिस्वरूप किसी लोकोत्तर राम में आत्म लय करना और तत्पश्चात् शरीर का परित्याग करना जैसे स्थल वेदान्त सम्मत विदेहमुक्ति की ओर ही संकेत करते हैं[1] । इसी प्रकार वाल्मीकि के आश्रम में रहने वाले समस्त ऋषियों का जीवन ही वेदान्त सम्मत 'जीवन्मुक्ति' की व्यावहारिक अर्थवत्ता को द्योतित करते हैं[2] ।

सीताचरितम् में वैष्णव और शैव दोनों दर्शन का निदर्शन मिलता है । राम को स्वयं विष्णु का अवतार मानना और भगवान राम के रूप में ही उनकी नर लीला को आधार बनाकर वाल्मीकि रामायण महाकाव्य का प्रणयन करना वैष्णव दर्शन का ही प्रमाण है[3] । इसके षष्ठ सर्ग में शैव दर्शन के सिद्धान्तों का भी स्पष्ट वर्णन मिलता है । वहां यह बताया गया है कि वाल्मीकि के आश्रम में रहने वाले प्रत्येक ऋषि में परम पुरुष नामक परमशिव साक्षात् रूप से विराजमान हैं । यही नहीं वाल्मीकि के आश्रम के सम्बन्ध में यह भी बताया गया है कि यहां प्रत्येक ऋषि सूर्य, चन्द्र, यजमान और पंच भूत इन आठों मूर्तियों से युक्त भगवान अष्ट मूर्ति शिव में अतीव भक्ति रखता है अतएव वहां कुशल शब्द प्रत्येक मन में सदा ही अन्वित रहता है[4] ।

१- सीताचरितम्, १० ।६७-७१

२- मनुजभुवि मुक्ति-मुक्ति-लभ्यौ विमुक्तविभक्ततयापि यत्र युक्तौ ।
 मरतभुवनसंस्कृती स्वमर्थ 'प्रतिजनजीवनमुक्ति'-मर्थयेते ।।
 - वही, ६।१२

३- वही, ८ । ५३, ५४, ५७, ५८

४- इह नियतमिह भक्तिरष्टमूर्तौ रवि-शशि-दीक्षित-पञ्चभूत-मूर्तौ ।
 'कुशल' इति ततश्च यत्र शब्दः प्रतिमुनि मन्त सदान्वितार्थ एव ।।

 - वही, ६।२०

सीताचरितम् के सप्तम सर्ग में बौद्धों के क्षणभंगवाद का खण्डन करते हुए वाल्मीकि के द्वारा वैदिक दर्शन की उपस्थापना करायी गयी है ।

वाल्मीकि वैदेही से कहते हैं कि यदि कोई यह कहे कि यह अचर और चर रूप समस्त विश्व क्षणिक ही है तो इसके लिये अधिक चिन्ता ही क्यों की जाय ? जैसा कि बौद्धों का चिन्तन है) परन्तु इस सन्दर्भ में ऐसे लोगों को वैदिक दर्शन के अनुरूप यह भी ध्यान रखना चाहिये कि चंचल तरंगों के मध्य सागर के समान इसी विश्व में छिपा हुआ एक विश्वमूर्ति भी है जो निश्चित रूप से सर्वाधिक उपास्य है[1] । वह विश्वात्मा ही प्रत्येक पुरुष में चेतना रूप से अवस्थित होकर प्रकाशमान है । यदि वे पुरुष जिनके पास अपौरुषेय वेद राशि भी है किन्तु इसकी पूजा नहीं करते तो उनसे क्या कहा[2] ?

नवम् सर्ग में महर्षि वाल्मीकि द्वारा अपने ही आश्रम में आयोजित विशाल सभा में राम आदि चारों भाइयों, वन जैसे योगी तथा समस्त सैनिकों एवं प्रजाजनों को रयि और प्राण पर आधारित जिस यज्ञ के स्वरूप का बोध कराया गया है वह सब कुछ वैदिक दर्शन पर आधारित है[3] । पुनश्च राम का अश्वमेध यज्ञ तो पूर्णतः वैदिक दर्शन पर आश्रित यज्ञ परम्परा का ही निदर्शन है[4]।

इस प्रकार संक्षेप में यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि सीताचरितम् महाकाव्य में वेदान्त दर्शन का स्वर तो प्रधान है ही किन्तु सांख्य, योग, शैव, वैष्णव, बौद्ध आदि दर्शनों से सम्बन्धित सिद्धान्तों का भी न्यूनाधिक रूप में विवेचना की गयी है ।

१- सीताचरितम्, ७ । १७

२- वही, ७ ।१८

३- वही, ९।१९, २०

४- वही, ९। २१-२४

तपोवन वर्णन—

तपोवन का वर्णन भारतीय साहित्य का अभिन्न अंग है। जिनमें संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत उसकी वर्णना अपने चरम रूप में उपलब्ध होती है। संस्कृत साहित्य में तपोवन का वर्णन कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि संस्कृत साहित्य की साधना स्थली मूलत: तपोवन ही है। जहां रहकर ऋषियों ने संस्कृत वाङ्मय की विविध विधाओं पर मानक ग्रन्थों का प्रणयन किया। चूंकि रचनाकार समाज का सर्वाधिक संवेदनशील प्राणी होता है और वह जिस पृष्ठ-भूमि में रहता है उसका भी निरन्तर अध्ययन करता रहता है, और वह जो कुछ अध्ययन, मनन, चिन्तन, प्रेक्षण आदि करता है उन्हीं सारे तथ्यों को कल्पना का आश्रय लेकर शब्दार्थ के द्वारा उसे काव्य का रूप दे देता है। यह भी सत्य है कि कल्पना प्रवण रचनाकार अपनी परिस्थितियों की उपेक्षा करके कुछ भी नहीं लिख सकता। तो फिर तपोवन में रहकर साहित्य साधना करने वाला संस्कृत का कवि तपोवन की यदि अभिराम वर्णना प्रस्तुत करता है तो कोई आश्चर्य नहीं।

यही कारण है कि संस्कृत साहित्य अपने तपोवन वर्णन के लिये लोकविश्रुत रहा है।

सीताचरितम् का कवि भी तपोवन के प्रति सर्वात्मना आकृष्ट दिखाई देता है। सीताचरितकार तपोवन की महिमा से अभिभूत होकर इसके षष्ठ सर्ग में भगवती सीता के माध्यम से वाल्मीकि के आश्रम के सम्बन्ध में जो कुछ हृदयोद्गार व्यक्त करवाया है वह सब कुछ तपोवन की अद्भुत महिमा का अकृत्रिम प्रमाण पत्र है।

सीता वाल्मीकि के आश्रम में पहुंचकर अपने निर्वासन को वरदान-सा मानती हुयी तपोवन के सम्बन्ध में कहती है कि सचमुच मैं बहुत ही भाग्यशालिनी हूं, जो कुल जन्य से गार्हस्थ्य की चरितार्थता के पश्चात् आदि कवि की कृपा[1] से इस तपोवन (आश्रम) में आ पहुंची हूं, जो देवताओं के लिए स्पृहणीय है।

१- नियतमतितमां भवामि धन्या सुरजनसंस्पृहणीयमाश्रमं या।
कुल-गृह-चरितार्थता प्रसूत्या प्रथमकवे: कृपयास्मि संप्रविष्टा ॥
- सीताचरितम्, ६।२०

यहां जितने घर हैं वे सब कुलवधुओं द्वारा छिड़के जल सीकरों से सिंचित हैं इनमें दही और घी मिश्रित मीठा दूध सुलभ है तथा चिकनी चटाइयाँ और सुखद बिछौने भी उपलब्ध हैं[1]। इस तपोवन की जनता मुनियों की जनता है । यह नगरवासी जनता से कहीं श्रेष्ठ है । यह वृक्ष और मृगों के शावकों से घिरी हुई है । इसके पास सैकड़ों की संख्या में गोधन है । फसलें भी सर्वथा समृद्ध हैं । इतना सब कुछ वैभव होते हुये भी तपोवन की जनता (मुनिगण) में वैभव का विकार नहीं है, जैसा नगरवासियों में होता है[2]। यहां भुक्ति और मुक्ति मानव जीवन में समन्वित है और इसीलिये यहां प्रत्येक व्यक्ति को जीवन और मुक्ति एक साथ उपलब्ध है जो भारतीय संस्कृति की सर्वोच्च विशेषता है[3]। यहां प्रत्येक व्यक्ति को इन्द्रिय समूह रूप शरीर और उसके चैतन्य आत्मतत्व दोनों का सम्यक् ज्ञान है । यहां प्रत्येक व्यक्ति परमपुरुष नामक परमशिव ही है[4]। 'यह ग्राह्य है और यह त्याज्य' इस प्रकार का विवेक इस तपोवन के प्रत्येक व्यक्ति में प्रतिष्ठित है । इसीलिये किसी राजा की भी आवश्यकता यहां नहीं है[5]। यहां छत्रादि का छेदादि पोषण रूप है, यहां वचन, भवन से मिश्रित है । यही कारण है कि राष्ट्र लक्ष्मी यहां स्वयं आती है और

१- सीताचरितम्, ६। ११

२- वही, ६ ।१२

३- मनुजभुवि भुक्ति-मुक्ति-लक्ष्म्यौ विवृतविभक्तितयापि यत्र युक्ते ।
भरतभुवनसंस्कृतौ स्वमर्थं 'प्रतिजनजीवनमुक्ति'-मर्पयेते ॥
– वही, ६।१३

४- वही, ६। १४

५- 'इदमभिमतमेतदस्ति हेयं' मतिरियमत्र जने जनेऽवजाता ।
नरपतिनिरपेक्षमत्र हन्त प्रकृति येन कृतप एव भेद: ॥

– वही, ६। १५

शान्तिप्रद महत्तम फल उपार्जित किया करती है[1]। दो रूपों में विभक्त वह आदि पुरुष यहीं रहता हुआ दिखायी देता है । अनेक प्रकार की प्रजाओं की कामना भी वह यहीं करता है । यहीं ब्राह्मी सृष्टि नियति का लंघन करती हुयी उत्तरोत्तर आगे बढ़ती है, जिससे यहां मृत्यु के लिये कोई अवसर नहीं है[2]। यहां प्रत्येक व्यक्ति नियति का उपासक है । यहां के प्रत्येक व्यक्ति में यह ज्ञान योग पूर्णत: प्रतिष्ठित है कि 'यह सम्पूर्ण विश्व ईश' से आवासित है अतएव इसका त्यागपूर्वक किया गया उपभोग ही श्रेयस्कर है[3]। इस तपोवन के जितने बालक हैं वे सब सनक सनातन हैं यहां की कन्यायें पार्वती और लक्ष्मी हैं सभी युवक भरत और भगीरथ हैं । और सभी वृद्ध मेरे पिता विदेह राज जनक ही हैं । क्या ही सर्वोत्तम स्थिति है इस तपोवन की[4] ? इस तपोवन में प्रत्येक मुनि सूर्य, चन्द्र, यजमान और पंचभूत इन अष्टमूर्तियों से युक्त भगवान अष्टमूर्ति शिव में अविचल भक्ति रखता है[5]। इसीलिये कुशलता तो यहां प्रत्येक मनुष्य की सहचरी है । तमसा और गंगा के मध्य बसे हुये इस तपोवन में रहने वाले सभी मुनियों ने समाधियों के माध्यम से अपनी सभी मनोव्यथाएं

१- भरतमनकमात्मजाद् विधाय प्रतिकलमभ्युदयेऽभिकाङ्क्षिणो द्विजेन्द्राः ।
अधिभुवि दृढसाङ्ग्यप्रतिष्ठा भुवनमिदं स्वमयन्ति यामयोगैः ॥
- सीताचरितम्, ५।१६

२- अनुसारितमात्मतत्त्वमार्गो रविकिरणैरनुसंदधाति सोऽयम् ।
अविरलविमलं तथैव चेतोऽप्यमृतममस्ति-ममास्तिता प्रबुद्धः ॥
- वही, ५।१७

३- इदमिदमस्ति नेदमित्थं स्वयमुपबुद्धविभुत्वदीक्षाः ।
अलमिह रसभिरे समाम्नायात्स्वकलितात्मनुमोदिते विवेकम् ॥
- वही, ५।१८

४- यदिदमखिलं महाविराड्हित-परीमल-दंष्ट्राकालकल्पम् ।
नियतमतमेव नास्ति सत्यमिति च कुटुं मुक्तिमसौ करोति ॥
- वही, ५।१९

५- अविदितकलमाधिरापि सन्ध्यास्वपि च विमलमनोपदेशमाल्यः ।
प्रकृतिमवति वर्त्मनि मुनीनां भवति महाभक्तिः स्वयं द्विजेन्द्रः ॥
- वही, ५।२०

दूर कर रही हैं[१]। इस प्रकार राजरानी वैदेही वाल्मीकि के इस तपोवन की रमणीयता पर मुग्ध हुयी अपने निर्वासन को वरदान मानने लगीं। तथा च राजप्रासादों के विभवाश्रयी जीवन की अपेक्षा तपोवन के जीवन को अधिक सुखद शान्तिप्रद एवं श्रेयस्कर स्वीकार की[२]।

यही नहीं सीताचरितम् के सप्तम, अष्टम, नवम एवं दशम सर्गों में भी वाल्मीकि के आश्रम के वर्णन के माध्यम से यत्र तत्र तपोवन की महिमा का गान कवि ने पूरी सहृदयता से किया है। इस प्रकार सीताचरितम् में तपोवन का वर्णन इसके अधिकांश सर्गों में मिलता है और जो कुछ मिलता है वह सर्वथा अद्वितीय है, स्पृहणीय है।

<u>प्रकृति-चित्रण :—</u>

मानव और प्रकृति का अनादि काल से परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। चराचर सृष्टि में आकर मानव शिशु ने जभी आंखे खोली तबसे ही उसने अपने आपको प्रकृति की गोद में ही पाया। और पाया विविध-विध हास्य करती हुयी प्रकृति की क्रीडा-स्थली के प्रेक्षा गृह में अपने आनन्द के उत्ताल तरंगों को। प्रकृति और मनुष्य का यह साहचर्य आदिकाल से लेकर अब तक चला आ रहा है और भविष्य में भी इसके इसी रूप में चलते रहने की शत प्रतिशत सम्भावना है। मानव जीवन में प्रकृति का ठीक उतना ही योगदान है जितना मनुष्य के आभ्यन्तर प्रकृति (स्वभाव) का मानवीय जीवन यात्रा के विकास में। प्रकृति सदैव उसकी जीवन सहचरी के दायित्व का निर्वाह करती

१- सीताचरितम्, ६।२१

२- इति सुहृदया नृपेन्द्रजाया मुनिवनशोभनमत्र वसा निरीक्ष्य।
प्रभृतमपि पुरौकसां समाजे निजरिपुवासममंस्त दिव्यधाम्नम् ।।

- वही, ६।२२

रही है । यही कारण है कि मानव जीवन का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं जो उसकी प्रकृति सहचरी से सर्वथा निरपेक्ष हो । फिर साहित्य विधा तो मनुष्य के आभ्यन्तर एवं बाह्य दोनों ही संसार के उन सारे क्रिया-कलापों का कल्पना में भावनात्मक चित्रण है जो सत्य एवं शिव से अनुप्राणित होकर सुन्दरम् के महाभिषेक से अभिषिक्त है । मानव जीवन की सहचरी होने के के कारण साहित्यविधा के अन्तर्गत प्रकृति का भी उतना ही स्थान स्वीकार किया गया है जितना कि इसके साहचर्य में निवास करने वाले मानव का ।

यही कारण है कि भारतीय साहित्य में प्रकृति का वर्णन मानव जीवन के वर्णन के साथ-साथ इतना अपरिहार्य रहा है जैसे उसकी प्रकृति का वर्णन । जिससे मुक्त होकर वह कथमपि अपनी पार्थ भौतिक सत्ता को सुरक्षित नहीं रख सकता । भारतीय साहित्य में विशेषत: संस्कृत साहित्य अपने प्रकृति वर्णन के लिये वैदिक काल से लेकर अद्यावधि लोक विश्रुत रहा है । संस्कृत साहित्य में यद्यपि प्रकृति के विविध रूपों का वर्णन हुआ है किन्तु फिर भी उनमें इसका चेतन सत्ता के रूप में वर्णन सर्वोपरि है । वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भारवि, माघ, भवभूति आदि सभी महाकवियों ने प्रकृति के जिस चेतन स्वरूप का साक्षात्कार किया है वैसा विश्व के किसी भी अन्य साहित्य में सर्वथा दुर्लभ है । आंग्ल साहित्य के मर्मज्ञ समालोचक वर्डसवर्थ, शेली,कीट्स, बायरन आदि के सजीव प्रकृति वर्णन की जो दुहाई देते हैं उन्हें भी यह समझना चाहिए कि प्रकृति के जिस चेतन स्वरूप के साक्षात्कार वर्डसवर्थ आदि ने १८वीं शती में किया वह संस्कृत साहित्य के वाल्मीकि, कालिदास, व्यास आदि ने कम से कम ईसा से ६०० ई० पू० पहले ही करके इसका सविस्तर चित्ताकर्षक वर्णन प्रस्तुत कर चुके हैं । अतएव इस सन्दर्भ में भी वाल्मीकि, व्यास आदि विश्व-कविकुलगुरुता का सफल निर्वाह करते रहे हैं ।

सीताचरितम् का कवि अन्तरंग से प्रकृति से जुड़ा हुआ दृष्टिगत होता है । सीताचरितम् काव्य के विविध सर्गों में यद्यपि प्रकृति का वर्णन नहीं हुआ है ऐसा तो नहीं कहा जा सकता परन्तु पंचम सर्ग को छोड़कर शेष सभी सर्गों में प्रकृति वहां भी कवि की वर्णना का विषय बनी है जहां वह

केवल उपमान रूप में आयी है जिससे उसका अंग रूप में वर्णन होना ही परिलक्षित होता है न कि अंगी के रूप में । किन्तु सीताचरितम् के पांचवे सर्ग में कवि ने प्रकृति का चेतन सत्ता के रूप में जैसा सजीव वर्णन किया है वह सब कुछ अत्यन्त ही हृदयावर्जक है ।

जब रामानुज लक्ष्मण, वाल्मीकि के आश्रम के निकटस्थ वनस्थली में निर्वासित सीता को छोड़कर साकेत चले जाते हैं तो उस समय गंगा के तट पर विचरण करती हुयी वैदेही यह विचार करती है कि उन्हें कहां अपनी कुटी बनानी चाहिये । इसी विचार में मग्न गर्भभार मन्थर वैदेही को सामने स्थित एक लता निकुंज दिखायी देता है जो उन्हें अपने आवास के अनुकूल लगता है । प्राण-वल्लभ राघव की स्मृति से विह्वल अश्रुपूरित नेत्रों वाली वैदेही अखण्ड प्रकृति की गोद में स्थित उस लता निकुंज में जाकर जब बैठती हैं तो उस समय वहां की सारी प्रकृति सन्यस्ता वनेचरी सीता के दुःख से विह्वल होकर चेतन धर्मा प्राणी के समान दुःख प्रगट करती हुयी दिखायी देती है । साथ ही साथ सीता का उसी परिस्थिति में स्वागत भी करती है । उस समय का वर्णन करते हुये कवि लिखता है कि जब वनेचरी सन्यस्त सीता ने उस निकुंज को अपना आवास बनाना चाहा तो प्रकृति ने लताओं के द्वारा[1] अपने आप बरसाये गये पुष्पों से उस निकुंज भूमि की कठोरता दूर कर दी । उस कुंज का किसलय कुंज अपनी मनोहरता के कारण निर्वासित[2] वैदेही के लिये विविध रंगों से सुशोभित राजकीय भद्रपीठ सा लगने लगा । वहां लता कुंज की वन-

---

१- तत्रैणा गहनलतास्वमावकीर्णपुष्पोपवापितकठोरतं निकुञ्जम् ।
आवासं मनसि चकार धर्षिता नीतिः स्कन्ताभीता भैशिशुमिस्व हृष्टमावा ।।
-सीताचरितम्, ५।१६

२- तत्रास्या: शुचिसुखमन्दिदिव्यकान्तिकुप्तान्वं किसलयपुञ्जमुत्प्रवालम् ।
सौभाग्यादवहत सप्रसूनजातं केतानीं ललितभद्रपीठशोभाम् ।।
- वही, ५।१७

देवियों ने जब भगवती सीता को गर्भभार मन्थर देखा तो उन्होंने पहले मकरन्द और रेणु से भरे भावपूर्ण अर्घ्य समर्पित किया, पुन: उनके लिये पुष्प शैया भी तैयार कर दी[1]। उस वन प्रदेश की वायु ने लम्बी लताओं के वृन्त से गिरते हुये पुष्पों को बिखेरकर सीता का पर्याप्त स्वागत किया[2]। स्वयं लताओं ने भी हवा के झोंको से परस्पर मिलते पत्र आदि की अञ्जलि-बांध कर वैदेही को विनम्र प्रणाम निवेदित किया है[3]।

रनिर्वासिता सीता प्रकृति का चेतन प्राणी के समान यह व्यवहार देखकर कृतज्ञता से अभिभूत हो उठती हैं तथा उन्हें राघव की विह्वल स्मृतियां आंसुओं से भिगो देती हैं। वैदेही की नील कमल सी आंखों में ओस की बूंद सी शोकाश्रु की बूंदें देखकर आस-पास की लतायें भी शोकमग्न हो जाती हैं, उनके पत्ते भी कांपने लगते हैं और पुष्प गिरने लगते हैं[4]। उसी क्षण सीता की प्रसव वेदना भी अन्तिम रूप से उभर आयी। प्रसव वेदना से पीड़ित वैदेही को देखकर प्रकृति भी समदु:ख व्यक्त करने लगती है। इन क्षणों में वृक्ष कान्तिहीन हो जाते हैं। पक्षी कलरव बन्द कर क्रन्दन करने लगते हैं। हिरणियों के छौने अपनी चंचलता का परित्यागकर स्तब्ध हो जाते हैं[5]। क्रान्तिदर्शी महामुनि

१- यत् तस्या प्रतिवनाविदेवता मिदोहँवं सकुसुमपातमालुलोके ।
तज्जातं च्युतमकरन्दरेणु पूर्वं भावार्घ्यं, तदनु च पुष्पतल्पमस्यै ॥
- सीताचरितम्, ५।१८

२- वही, ५।१९

३- वही, ५।२०

४- वैदेही कुवलयसोदरे दिगुम्भ शोकाश्रुस्तुहिनकणानिव क्षरन्ती ।
पार्श्वस्थितपल्लवल्लरी: प्रसूनं वर्षन्तीरनुशयतापमन्वकार ॥
- वही, ५।२३

५- वही, ५। २६

वाल्मीकि अपने आश्रम में यह सारा दृश्य देखकर व्याकुल हो उठते हैं, अपने कुटीर से सवन विधि सम्पन्न करने के लिये निकलते हुये महर्षि प्रकृति का यह दृश्य देख गंगा के तट की ओर शीघ्रता से चल पड़ते हैं। इस प्रसंग में महर्षि वाल्मीकि को प्रकृति का जो दृश्य देखने को मिलता है वह सब कुछ चेतन प्रकृति के उदात्त रूप से ही सम्बद्ध है और है सर्वथा अनुपम। कवि लिखता है कि उस समय वृक्षों, मृगों, और पक्षियों द्वारा दिये गये संकेतों से आदि कवि वाल्मीकि की सहृदयता सहस्रों गुना बढ़ जाती है[1]। आदि कवि वाल्मीकि उस समय वन के वृक्षों, तृणों और लताओं से कुशल-प्रश्न करते हुये व्याकुलता से लड़खड़ाते हुये आगे बढ़ते जाते हैं[2]। प्रकृति अपनी क्रोड में स्थित वृक्षादि के द्वारा उनके कलरव से मंजुल और चंचल शाखाओं से मुनियों के समान मौन भाषा[3] में प्राकृतिक मर्यादा का निर्वाह करते हुये आदि कवि को संकेत करती जाती है। कवि वाल्मीकि प्रकृति की गोद में स्थित जलाशयों, वनस्पतियों आदि को देखते हुये विश्व मंगला गंगा की ओर बढ़ते जाते हैं। गंगा के निकट पहुंचकर वह जब उसे प्रसन्न सलिला देखते हैं तो उन्हें प्रकृति का कुछ दूसरा ही रूप दिखायी[4] देने लगता है, जिसमें महाकवि को विश्व मंगल का रूप देखने को मिलता है। आदि कवि देखते हैं कि

१- साम्राज्यं समवसमावमं सवित्री मानुष्यं सहृदयसंज्ञिका प्रवृत्तिः ।
सह-केतैस्तरुमृगपक्षिभिः प्रदत्तैः साहस्रीमलभत मुनिर्महादिसूरौ ॥
– सीताचरितम्, ५।२१

२- वही, ५। २२

३- ते व्यस्मे स्वपरविभेदवर्जिताय शाखाभिः कलरवम चुमिश्चलाभिः ।
मर्यादां प्रकृतिकृतां निवाहयन्तः स्वोद्गारान् मुनिवदुदीरयाम्बभूवुः ॥
– वही, ५।२४

४- वही, ५। २५-२६

हड़ियों के बच्चे अपनी मां के चारों ओर उछल कूद रहे हैं[१]। पुण्यतोया गंगा में हंस और बतख क्रीडा कर रहे हैं साथ ही उसमें समीपवर्ती वेतस्कुंजों से निकलकर आगत अन्य पक्षी भी क्रीडा कर रहे हैं[२]। वासयष्टि को छोड़कर मयूर भी भागीरथी के सिकतामय प्रदेश में नर्तन कर रहे हैं[३]। गंगा नदी भी प्रसन्नतोया दिख रही है। वहां की वायु भी बांसों को षट्जमय स्वरों से पूरित कर तथा ताल वृक्षों की ताल बजा बजाकर आदि कवि के आस-पास के वायुमण्डल को संगीतमय बनाने लगा है[४]। वन-देवियों की गीतियों एवं वृक्षों से गिरी पुष्प राशियों से सारी वनस्थली अलंकृत हो रही थी[५]।

आदि कवि सोचते हैं कि - नूतन वस्तु पुरातन रूप में दिखायी दे रही है तथा च पुरातन वस्तु नूतन में तो निश्चय ही यहां प्रच्छन्न रूप में कोई क्रान्ति करवट ले रही है[६]। इस वन में प्रकृति का चेतन के समान यह कैसा परिवर्तन है अभी एक क्षण तो पूर्व जो शोक मग्न दिखायी दे रही थी वह मेरे देखते ही देखते दूसरे क्षण में हर्ष-मग्न होती जा रही है[७]। यह विचारातीत है कि

१- सीताचरितम्, ५। ३७

२- स हंसकारण्डवकेलिनिर्मिरां प्रसन्नतोयां सितशर्करां च ताम् ।
उपान्तवानीरनिकुञ्जनिर्गतैरुपास्यमानां पतगैरवैक्षत ।।
- वही, ५।३८

३- वही, ५। ३६

४- वही, ५। ४१

५- वनस्थलीदेवतगीतिरीतिभिस्तथोच्चवृक्षाच्युतपुष्पराशिभि: ।
दिशां चयं भूमितलं च सर्वत: कवि: स साक्षादकरोत् प्रपूरितम् ।।
- वही, ५।४२

६- व्यथा(?)वस्तु सोऽथ नवं पुरातनं पुरातनं किं च नवं विभाव्यते ।
अवश्यमेवात्र परोक्षविग्रहा प्रवर्तते क्रान्तिरपायसंक्रमा ।।
- वही, ५। ४३

७- वही ५।४४

तरुवल्लरियों और स्थलियों को पिशंग, पीत, और नवीन मेघ जैसे नीले रंगों[1] से किस चितेरे ने इसे चित्रित कर दिया है। और किसके लिये? वन में कान्ति बिखेरते हुये मौलिश्री के वृक्षों में पुष्प रूपी मोतियों[2] द्वारा गंगा-यमुना की संगम छवि दिखायी दे रही है तो यह क्यों? और क्यों वन देवियों के सिर पर सुशोभित कर्णिकार के पुष्पों से मेदुरित यह वनस्थली अपने मकरन्द[3] निर्भर पुष्पों से मेरी दृष्टि को भी भ्रमरावली की सहेली बना रही है। इधर उधर फूले हुये अशोक, पलाश और मल्लिका के पुष्पों के गोंकों से यह वनस्थली प्रमदा जैसी लग रही है[4]। सभी दिशाओं में अपूर्व स्वर की अपूर्व साकुता से मिश्रित कोई मंगल-ध्वनि सुनायी दे रही है सब के सब तृण केसर[5] की कान्ति और कुसुम्भ का सौरभ बड़ी ही प्रसन्नता के साथ बिखेर रहे हैं। पुष्पों के[6] आसव पीकर वनान्त वायु लताओं को नचाता हुआ स्वयं भी नाच रहा है। पलाश के पुष्पों से अलक्त युक्त बाली[7] ये सारी दिशायें दृष्टि की वीणा तन्त्री की मूर्छनावलियों को नचा रही हैं। नवांगनाओं की गीतिधारा सी कोयलों

१- इदं किमारादपि वर्तते परं पटः क एतास्तरुवल्लरीः स्थलीः।
पिशङ्गपीतैर्नवनीलमेदुरैरचित्रयत् कस्य कृते महात्मनः ॥
- सीताचरितम्, ५।४५

२- वही, ५। ४६

३- द्रुमोत्पलैः काननदेवताशिरःसुशोभितैर्मेदुरिता वनस्थली।
कथं नु दृष्टिं भ्रमरावलीसखीं करोत्यकाण्डे मकरन्दनिर्भरैः ॥
- वही, ५। ४७

४- स्थले स्थले शोकपलाशमल्लिकाप्रसूनगुच्छैः सितरक्तपीतकैः।
चतुष्कसंख्या पतितैः कथं स्थली समग्रपङ्क्तिः प्रमदेव रोचते ॥
- वही, ५।४८

५- वही, ५।५०

६- वनान्तवायुर्द्रुमपर्णसंकुलीकिमेव पुष्पासवसेवनोन्मदः।
स्वयं नटत्यार्द्रविशालिनीस्तथा किमित्ययं नाटयते च वल्लरीः ॥
- वही, ५।५१

७- वही, ५। ५२

के सहकार मंजरी से कषायित कण्ठों से निकलती रागिनी सारी वनस्थली को समुच्छ्वसित करती जा रही है[१]। दिशाओं के मृग मद से सुरभित उन्नत कपोल चमक रहे हैं और आकाश रूपी सरोवर लगता है केसर के जल से भर दिया गया है[२]। प्रियंगु और सहकार दोनों में पत्ते और पराग आ चुके हैं। द्विजांगनायें इनका संगम मंगल गीतियों द्वारा अतीव प्रसन्नतापूर्वक करा रही हैं[३]। श्वेत कलिकाओं से उद्भासित अतएव नवोढ़ा नतांगी वधूटी जैसी यह वन मल्लिका दर्शकों की दृष्टि को वशीभूत करती जा रही है[४]। यह मृगी जो कल मेरे हाथ में रखे कुश खींच रही थी आज अपनी चपलता छोड़कर मदातिरेक से उन्मत्त होकर डग भरती दिखायी दे रही है[५]। लताओं की शाखायें पुष्प पराग को आकाश में बिखेर कर इन्द्रधनुष की छवि उभार रही हैं। इससे लगता है कि प्रकृति का चेतन के समान परिवर्त्यमान यह प्रसन्न[६] सुन्दर दृश्य अपने ही अंक में घटित किसी शुभ घटना की ओर संकेत कर रही है।

१- इयं पिकानां सहकारमञ्जरीकषायकण्ठोद्भविनी च किंकृते ।
नवाङ्गनानामिव गीतिपद्धती रणति: समुच्छ्वासयतीव काननम् ।।
- सीताचरितम्, ५।५३

२- कुरङ्गनाभिसुरभीकृतास्तथा दिशां कपोला: क्रमामाश्चकासति ।
विनिर्मितं कस्य कृते च कुङ्कुमद्रवैरिदं व्योमसरो महोत्सव: ।।
- वही, ५।५४

३- प्रियङ्गुरेषा सहकारकस्तथा प्ररूढपत्रौ च परागिणौ च यौ ।
द्विजाङ्गना मङ्गलगीतिभि: कुत: प्रमोदत: संगमयन्ति ताविमौ ।।
- वही, ५।५५

४- इयं च मे वन्धुरिता स्वकुड्मलै: प्रतिप्रतानं वनमल्लिका सित: ।
नवा वधूटीव नताङ्गनोरमा करोति दृष्टिं वशवर्तिनीं कथम् ।।
- वही, ५।५६

५- गतेद्युरेवमहो मृगी कुशं ममैव पाणिस्थितमाजिहीर्षति ।
विहाय तच्चापलमुन्मदां गतिं मदातिरेकेण बिभर्ति साथ किम् ।।
- वही, ५।५७

६- प्रसूनरेणु: किमु कामचापतामवाप्यते व्योम्नि लताप्रतानकै: ।
अवश्यमस्मिन् पटमण्डपे क्वचित् कामपि कदाचिदपि महाभटोऽश्नुते ।।
- वही, ५।५८

इसके पश्चात् आदि कवि अपनी योग मुद्रा के द्वारा देखते हैं कि योगिराज जनक की पुत्री वैदेही राघव के द्वारा निष्कासित होकर उनके आश्रम के निकटस्थ वनस्थली में आयी है और उन्होंने (कुश एवं लव) दो शिशुओं को जन्म दिया है । यही कारण है कि प्रकृति निर्वासिता वैदेही के प्रति समदु:ख होकर जहाँ पहले सीता के प्रति संवेदना प्रकट करती हुयी दु:ख व्यक्त कर रही थी वहीं उनके दोनों शिशुओं को जन्म के पश्चात् हर्ष मग्न होकर अपने कण कण से हर्ष प्रकट कर रही है[1] ।

इस प्रकार सीताचरितम् महाकाव्य के अन्तर्गत प्रकृति के जिस चेतन स्वरूप का उद्दाम चित्रण किया गया है वह सचमुच किसी प्रतिभाशाली कवि की अपूर्व प्रतिभा ही देख सकती है । अतएव यह कहना न होगा कि सीता चरितकार का यह प्रकृति वर्णन उनकी अपूर्व प्रतिभा का परिचायक है ।

विश्वबन्धुत्वाश्रित राष्ट्रीयता और विश्व-शान्ति —

सीताचरितम् के वर्ण्य विषयों में जिन अनेक बिन्दुओं का वर्णन मुख्य रूप से हुआ है उनमें विश्वबन्धुत्वाश्रित राष्ट्रीयता का स्वर भी एक मुख्य बिन्दु है । सीताचरितम् की नायिका सीता और मर्यादापुरुषोत्तम श्री मन्त राम क्रमश: राष्ट्र देवी एवं राष्ट्र देव के रूप में चित्रित किये गये हैं ।

राष्ट्रपति राम एवं राष्ट्र देवी वैदेही का समग्र जीवन ही अपने राष्ट्र के नागरिकों के उन्नत जीवन हेतु ही सर्वात्मना अर्पित है । प्रजाराधन में तत्पर इन दोनों ने अपने वैयक्तिक सुखों को भी तिलांजलि दे रखी है । राष्ट्र के नागरिकों एवं समूचे राष्ट्र के विकास के लिये ही इन दोनों के सम्पूर्ण कृत्य होते हैं । यही कारण है कि राष्ट्र देवी सीता उत्तर जीवन जिसमें वह राष्ट्र-लक्ष्मी के रूप में प्रतिष्ठित होकर प्रजा राधन के लिये निर्वासन को भी सहर्ष स्वीकार करती हैं, को आधार बनाकर प्रणयन किये गये सीताचरितम्

१- सीताचरितम्, पृ। ६०-६२

महाकाव्य के अन्तर्गत विश्वबन्धुत्वाश्रित राष्ट्रीयता का स्वर आद्यन्त परिव्याप्त है ।

सीताचरितम् के प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ, पंचम, षाष्ठ, सप्तम, अष्टम एवं दशम सर्गों में राष्ट्रीय विचारों का विशेष पल्लवन हुआ है ।

प्रथम सर्ग के अन्तर्गत जब कुमार भरत, लक्ष्मण और सीता के साथ लंकाविजय करके लौटे हुये महाराघव राम को राष्ट्र मंगल के लिये चरण पादुका पहना देते हैं तो उस समय एकत्र नगर निवासियों की उमड़ती हुयी राम के प्रति प्रीति को देखकर राष्ट्र गुरु ऋषि वशिष्ठ को विशेष प्रसन्नता होती है और उन्हें ऐसा परितोष उपलब्ध होता है जिसकी कोई उपमा नहीं है । क्योंकि उसमें उन्हें सारे नागरिक मानवीय मर्यादा की भूमिका में खड़े हुये दिखायी दे रहे थे[1]। जिसमें उन्हें राष्ट्रीयता का अखण्ड दृश्य दृग्गोचर हो रहा था । उस समय उन नगर वासियों के मध्य वशिष्ठ ने जिस राष्ट्र नय की व्याख्या प्रस्तुत की वह सचमुच किसी भी राष्ट्र के नागरिक के लिये राष्ट्रप्रेम का पाठ पढ़ाने के लिये पर्याप्त है । ऋषि वशिष्ठ जन-सभा को सम्बोधित करते हुये कहते हैं कि मानवीय मर्यादा से मर्यादित आप लोगों को देखकर आज मुझे विशेष प्रसन्नता हो रही है[2]। मानव जीवन का लक्ष्य यद्यपि पुरुषार्थों की प्राप्ति ही है परन्तु उसके पुरुषार्थों की कर्मभूमि उसका राष्ट्र ही होता है । और राष्ट्र के क्रान्ति दर्शी महर्षियों ने पुरुषार्थों की प्राप्ति के लिये जो व्यवस्थायें दर्शी की हैं उनकी रक्षा करने के लिये एक सुदृढ़ क्रम अपेक्षित होता है[3]। उसी के लिये नय की योजना की जाती है, और उसी के लिये साम, दाम,

---

१- सीताचरितम्, १। ४७

२- वही, १। ४८

३- मनुष्यजातिं पुरुषार्थसाधनैर्विधातुमेतां परिपूर्णकामनाम् ।
व्यवस्थितिर्यास्ति कृता महात्मभिरपेक्ष्यते तामवितुं दृढः क्रमः ।।
- वही, १।५०

भेद और दण्ड जैसी राष्ट्र नीतियों को अपनाया जाता है[1]। नय ही वह दीप है जो अन्धकार में भटकते हुये व्यक्तियों को प्रकाश के पथ की ओर अग्रसर करता है[2]। यही दुर्बलों, सबलों और सभी का समान रूप से प्रबल बल है और निर्भीक प्रशासक भी[3]। मानव व्यक्तित्व में स्वाभाविक रूप से विद्यमान सद्गुणों के[4] विकास का मार्ग भी यही है और यही है अमरता का उज्ज्वल सोपान भी। परन्तु यह नय बिना किसी नियन्ता के प्रतिष्ठित नहीं हो पाता जैसे आचार्य के बिना कोई यज्ञ सम्पन्न नहीं होता। मन्त्रिपरिषदें उस नियन्ता (राष्ट्रपति) की वैसे ही सहायक होती है जैसे ऋत्विजों की परिषदें, ब्रह्मा नामक प्रधान ऋत्विज की[5]। इसके पश्चात् ब्रह्मर्षि वशिष्ठ नागरिकों को पुन: सूचित करते हैं कि आप लोगों के समक्ष अब नय के नियन्ता के चयन का ही प्रश्न उपस्थित है, यही नहीं अपितु आप लोगों ने यह देख[6] भी लिया है कि कुमार भरत ने राम को चरण पादुकायें भी पहना दी हैं।

१- नयस्तववै किल दान-सामनी समेदबण्डे समुपास्य योज्यते ।
पदेषु तेष्वेव हि सृष्टिरूपिणी प्रवृत्तिशीला सुरभि: प्रवर्तते ।।
- सीताचरितम्, १। ५१

२- वही, १। ५३

३- वही, १। ५४

४- वही, १। ५५

५- क्रते नियन्तारमसौ न तत्क्वचो ध्वरो यथाचार्यमृते प्रतिष्ठते ।
समित् तु तस्यैव कृतेऽभिकाङ्क्ष्यतेऽविध्वृतानामिव मन्त्रिणां बुधै: ।।

- वही, १।५७

६- वही, १। ५८

ऋषि वशिष्ठ के राष्ट्र प्रेम से पूरित उद्बोधन को सुनकर सारे नगरवासियों में राष्ट्र प्रेम की लहर दौड़ जाती है। वे सभी एक स्वर से राष्ट्र की एकता, अखण्डता को बनाये रखने के लिये राष्ट्र नायक के रूप में राष्ट्रपति राम का चयन करते हैं[1]। और पूरे हर्षोल्लास से राष्ट्रीय गरिमा के अनुरूप राष्ट्रपति राम एवं राष्ट्र लक्ष्मी सीता का राष्ट्राभिषेक करते हैं[2]।

द्वितीय सर्ग के अन्तर्गत प्रजा अनुरंजन में तत्पर राष्ट्रपति राम के समक्ष जब उनका गुप्तचर वैदेही के जनापवाद विषयक सन्दर्भ को निवेदित करता है तो वे उसे विदा कर अपने कक्ष में स्वयमेव जो विचार मन्थन प्रस्तुत करते हैं वह वर्तमान काल में किसी भी राष्ट्र के राष्ट्रपति के लिये एक आदर्श पाठ हो सकता है। राष्ट्रपति राम कहते हैं कि अहो! गणनातीत-कालुष्यों से उपद्रवग्रस्त मानव जीवन को जिस राष्ट्रपति ने अपने नीति मार्ग से सुधारा नहीं, पद मात्र के लिये लोलुप[3] अत्यन्त जुगुप्सित हृदय वाले उस राष्ट्रपति के अधिकार को धिक्कार है। अग्नि परीक्षा में विशुद्ध वैदेही के खर-कंचन चरित्र से अपरिचित होने के कारण ही मेरी अशिक्षित प्रजा इस प्रकार सीता के विषय में शंका कर रही है। यदि मेरी जनता पूर्णत: शिक्षित होती तो अग्नि परीक्षा में विशुद्ध सीता की ऐसी निन्दा न करती और यदि मेरी जनता अशिक्षित है तो इसका अपराधी मैं हूं। कोई शिशु यदि बिगड़ जाता है तो उसका सारा दोष उसके पिता को है। और यदि किसी रोगी का रोग बढ़ता है तो उसमें उसका चिकित्सक ही निन्दनीय होता है[4]।

१- सीताचरितम्, १। ५९, ६०

२- वही, १। ६१-६८

३- अहो अवंस्थे: कलुषोपप्लुतं नृजीवनं राष्ट्रपतिर्न यो नये: ।
व्यशोधयत् तस्य पदोपलोभिनो धिगेव स्वत्वं विजुगुप्सितात्मन: ।।
- वही, २। २४

४- वही, २। २६

चतुर्थ सर्ग में निर्वासन के लिये उन्मुख वैदेही ने अपनी बहन उर्मिला के लिये जो मंगल कामना व्यक्त की है उसमें भी राष्ट्रियता का स्वर ही प्रधान है। वैदेही कहती हैं कि बहन उर्मिले तेरी बांह अपने पति के वज्रतुल्य भुजदण्डों को अपने देश के लिये और अपने वैयक्तिक सुहाग के लिये नाग बनाती हुयी झूली रहे[1]। तेरी अंग लता अपने अच्युत पति से लिपट करके किसी ऐसे पुत्र रत्न को फले जो विश्वमंगल का मूल हो[2]।

इसी प्रकार पंचम और षष्ठ सर्गों में ऋषियों के आश्रम की विश्व-बन्धुता एवं तदाधारित राष्ट्रियता के औचित्य पर प्रकाश डाला गया है। पंचम सर्ग में वैदेही के निकट पहुंचे हुये महर्षि वाल्मीकि जब लता कुंज में बैठी हुयी सीता के दोनों नवजात शिशुओं को सकुशल देखते हैं तो उन्हें अपरिमित तोष मिलता है। कारण राष्ट्रात्मक ऋषियों की आर्ष दृष्टि में राष्ट्र का स्वास्थ्य ही सर्वोच्च रूप में साध्य हुआ करता है[3]। यही नहीं राष्ट्र कल्याण को दृष्टि में रखकर ही ऋषियों ने अपने आश्रम की स्थापना की है, जैसा कि आदि कवि वाल्मीकि निर्वासिता वैदेही से स्पष्ट करते हैं कि बेटी! तेरा कल्याण हो, इन दोनों पुत्रों के साथ तुम हमारे आश्रम को धन्य करो। हमारे आश्रम तो राष्ट्र की विपदा दूर करने हेतु ही बनाये गये हैं[4]।

१- सीताचरितम्, ४। २८

२- वही, ४। २९

३- जनकदुहितुरस्या मङ्गलां कायकान्तिं
प्रसवसमयेऽपि स्वर्णकान्तां प्रतीव ।
विपिनपरिसरेऽपि प्रैक्ष्य तुष्टः स जातो
जयति हि निजराष्ट्रस्वास्थ्यमेवार्षदृष्टौ ।।
— वही, ५।६६

४- वही, ५।७०

ऐसा कहकर वाल्मीकि विपत्ति में डूबी हुयी राष्ट्र देवी निर्वासिता वैदेही को अपने आश्रम में ले जाते हैं जहां आश्रम की सारी जनता राष्ट्र देवी वैदेही का उनकी प्रतिष्ठा के अनुकूल ही स्वागत करती है। और उन्हें उचित स्थान देती है[१]। वाल्मीकि के आश्रम में रहती हुयी स्वयं वैदेही भी यह अनुभव करती है कि सचमुच ऋषियों के आश्रम जनता को राष्ट्रीयता का पाठ पढ़ाने के लिये ही स्थापित किये गये हैं। स्वयं सीता भी वाल्मीकि के आश्रम में राष्ट्र प्रेम के उन अध्यायों को पढ़ती है जिसको उन्होंने इसके पूर्व नहीं पढ़ा था। यही कारण है कि वह सीता जो कभी राम की अर्धांगिनी के रूप में राजलक्ष्मी का पद अलंकृत करती थीं वही आज वाल्मीकि के आश्रम में स्वयं धान के खेतों में पुत्रों के साथ निराई करती हैं और श्रमजीवी किसानों को भी मात कर देती हैं[२]। वैदेही अपने हाथों से बुने हुये वस्त्र स्वयं पहनती हैं और अपने बच्चों को भी पहनाती है। अपने द्वारा बनाये गये बर्तन, चटाई, खिलौने वस्त्र आदि आश्रमवासियों को स्वयं वितरित कर देती हैं[३]। आश्रम में मुनि-पत्नियों, गायों, हिरनियों आदि में जिस किसी को भी जब प्रसव होता तो वैदेही उनमें से प्रत्येक की पीड़ा अपने हाथों से बनाये गये सामग्रियों से दूर करती है[४]। इस प्रकार राष्ट्र देवी का समग्र जीवन जन सेवा के लिये अर्पित हो गया। यही नहीं वैदेही ने अपने दोनों पुत्रों को भी राष्ट्र प्रेम का आदर्श पाठ पढ़ाती हैं,

---

१- सीताचरितम्, ६। १,८

२- किसलयशिशुसोदरेण सीता कलमभुवः स्वकरेण मृद्नती सा ।
   कठिन-कर-कृतां स्वमुमिसेवां कृषकजनस्य मुहुरमत्यशेत ।।
   - वही, ६। ३६

३- वही, ६। ३७-३८

४- वही, ६। ३९

और उसके लिये उन्हें ब्रह्मर्षि वाल्मीकि के चरणों में प्रतिदिन प्रणाम् करने के बहाने उपस्थित करती रहती है[1]। इस प्रकार राष्ट्र देवी वैदेही ने अपने सेवा व्रत के माध्यम से आश्रम की जनता के समक्ष राष्ट्र प्रेम के आदर्श का जो पाठ प्रस्तुत किया वह आज भी किसी भी राष्ट्रनेता के लिये अनुकरणीय माना जा सकता है।

सप्तम सर्ग के अन्तर्गत जब सीता कुश एवं लव की शिक्षा के लिये उन्हें ब्रह्मर्षि वाल्मीकि को सौंपती हैं तो वहां भी उनकी शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य वह यही मानती हैं कि वह अपनी जनता की सेवा करने के लिये योग्य बन सके[2]। यही नहीं, स्वयं वाल्मीकि भी वैदेही से शिक्षा के सन्दर्भ में जो एक सारगर्भित वार्तालाप करते हैं उसका निष्कर्षितार्थ यही है कि शिक्षा का सबसे बड़ा उद्देश्य व्यक्ति को सर्वांगीण रूप से विकसित करके उसे राष्ट्र सेवा के योग्य बनाना ही है[3]। क्योंकि पण्डितों का उत्तम विद्याध्ययन भी तब तक निरर्थक ही रहता है जब तक वह लोकहित सम्पादक राष्ट्र सेवा से नहीं जुड़ जाता। कारण लोक सेवा से जुड़कर ही किसी व्यक्ति को लोक प्रतिष्ठा रूपी परम लाभ मिल सकता है, जो विद्या का सर्वोत्तम फल माना गया है[4]। यही नहीं वाल्मीकि स्वयं कहते हैं कि शिक्षा के सन्दर्भ में मैं कुल मिलाकर इतना ही कहना चाहता हूं कि तुम्हारे ये दोनों पुत्र और इसी प्रकार ऋषिकुल के ये सभी बालक विद्या के उज्ज्वल पथ से सारे संसार को आगे

१- सीताचरितम्, ६। ५४

२- प्रणयसरसि वल्लभाद्वियेन्द्रादसहमवाप्य करोपमर्दमिष्टा।
वहति कमलिनीव विस्तर्थं स्वं परिणतसौमनमात्मनो हि सर्वम्॥
- वही, ६। ५

३- वही, ७।७-४०

४- वही, ७। ३६

बढ़ाये[1]। और स्वयं विषय रूपी तालाब के जल में कमल पत्रवत निर्लेप रहकर अपने हृदयाकाश को मलीनता के मेघों से मुक्त रखें[2]।

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि के उपदेश के माध्यम से सीताचरितकार ने विद्या की सार्थकता न केवल व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के निर्माण में ही स्वीकार किया है अपितु उसके माध्यम से विश्व परिवार की भी मंगल साधना को आवश्यक बताया है।

अष्टम सर्ग में भी यत्र तत्र राष्ट्रीय भावनाओं से आप्लावित विचार उपलब्ध होते हैं। जैसे - वाल्मीकि के आश्रम में पढ़ते हुये बटुओं के मध्य कुश और लव को देखकर के वाल्मीकि को ऐसा अनुभव होता है कि मानो उनके रूप में वहां राष्ट्र हर्ष से उच्छ्वास ले रहा है। भारतीय संस्कृति प्राणवती होती जा रही है सदाचार और सद् विचार के स्रोत प्रवाहित हो रहे हैं[3]। इसी प्रकार नवम एवं दशम सर्गों में भी राष्ट्रीय विचार उपलब्ध होते हैं। नवम सर्ग के अन्तर्गत जब वाल्मीकि ने लोगों के समक्ष राष्ट्र देवी वैदेही को उपस्थित करवाया तो उस समय समस्त साकेतवासी वैदेही का जिस रूप में अभिनन्दन करते हैं वह सचमुच राष्ट्र देवी का अद्भुत अभिनन्दन है। उस समय ऐसा लग रहा था जैसे केवल नागरिक ही राष्ट्र देवी वैदेही का अभिनन्दन नहीं कर रहे हैं अपितु सृष्टि का कण कण उनका अभिनन्दन कर रहा हो। अभिनन्दन की बेला में जैसे सागर मेखला वसुन्धरा के सभी तृण केसर बन गये हों, हिन्द महासागर का जल गुलाबजल बन गया हो, दशो दिशाओं ने चारों ओर से सुगन्ध ही सुगन्ध बिखेर दी हो,[4]

१- सीताचरितम्, ७।३६

२- वही, ७।४०

३- राष्ट्रमुच्छ्वसितीव स्मात्र प्राणिति स्म च संस्कृतिः ।
सदाचार-विचारौ हि तयोः स्रव आदिमः ॥
- वही, ८।१२

४- तस्मिन् क्षणे सागरमेखलायास्तृणानि काश्मीरमवाप्नुवन् ।
वभूव तथा भारतसिन्धुतोयं सुवासिताङ्गं नवपाटलाम्भः ॥
- वही, ६।६०

असम के पूर्वी क्षेत्र से लेकर कंधार के तटों तक और तिब्बत से लेकर सिंहलद्वीप तक फैली हुयी आर्य भूमि (भारत) अपने अठारहों द्वीपों के साथ उस क्षण पूर्णतः अलंकृत दिखायी दे रही थी[1]।

इस प्रकार राष्ट्र देवी के सम्मान में उपस्थित यह सारा का सारा दृश्य किसी भी राष्ट्र की जनता को राष्ट्र प्रेम का पाठ पढ़ाने में समर्थ है ।

दशम सर्ग में जिस समय वाल्मीकि कुश एवं लव को राष्ट्रपति राम को सौपना चाहते हैं उस समय वे अपने पुत्रों का समर्पण लेने में स्वयं को योग्य नहीं मानते, राष्ट्रगुरु वशिष्ठ के रहते हुये । क्योंकि सत्पुरुष ममत्व की अपेक्षा बच्चों का राष्ट्र के लिये विनियोग अधिक श्रेयस्कर मानते हैं[2]। यही कारण है राम का संकेत देखकर वाल्मीकि कुश एवं लव को सर्वप्रथम राष्ट्र गुरु वशिष्ठ को ही अर्पित करते हैं । राष्ट्र गुरु वशिष्ठ कुश एवं लव को प्राप्तकर भारत माता के मनोरथों के फलों को स्वादयुक्त और सम्पूर्ण मानते हैं[3]।पुनश्च चूंकि राष्ट्र के समस्त आश्रमों एवं वर्णों का अन्तिम गुरु राष्ट्रपति ही होता है इसलिए राष्ट्र गुरु वशिष्ठ भी कुश एवं लव को राष्ट्रपति राम को सौंपते हैं न कि पिता राम को[4]।

१- सीताचरितम्, ६ ।६१

२- रामस्तु नात्मानममंस्त योग्यं गुरौ वसिष्ठे सति पुत्रलब्धे ।
ममत्वतो यद् विनियोग एव राष्ट्राय बालस्य सतां प्रशस्यः ।।
- वही, १० ।२१

३- गुरुर्वसिष्ठोपि च पारिजाताविवाश्रमाद्वैरुपलभ्य तौ द्वौ ।
मनोरथान् भारतराष्ट्रमातुः स्वादय-संपूर्ण-फलानमंस्त ।।
- वही, १० । २२

४- न बालकस्य पारन्तयदुष्टं स्प्रष्टुं कदाचित् नामेते गुरोश्चाः ।
रामाय तद् द्वावपि बालकौ तौ वर्णाश्रमाणां गुरवे दिशत् सः ।।
- वही, १० । २३

राम भी कुश एवं लव को वाल्मीकि एवं वशिष्ठ जैसे दो दो ऋषियों की दृष्टि से सुपरिक्षित होने के पश्चात ही स्वीकार करते हैं और प्रसन्न होते हैं। कारण भारतवर्ष में राजकुमारों के पिण्डमात्र ही राष्ट्रपति नहीं बनाये जाते अपितु एतदर्थ अपेक्षित शिक्षा-दीक्षा से सम्पन्न योग्यता भी अपेक्षित है[1]।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सीताचरितम् महाकाव्य के अन्तर्गत विश्वबन्धुत्व पर आधारित राष्ट्रीय विचारधाराओं का ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है जिस पर कवि की दृष्टि न पड़ी हो और जिसको अपेक्षित वर्णन कवि ने न किया हो।

<u>शिक्षा नीति</u>–

सीताचरितकार ने अपने महाकाव्य के अन्तर्गत शिक्षा नीति पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। शिक्षा का स्वरूप, शिक्षा का क्षेत्र विस्तार, उद्देश्य, कुलपति अथवा आचार्य के लक्षण, मेधावी छात्र के लक्षण, छात्रानुशासन आदि शिक्षा के विविध आयामों पर महाकवि ने स्थिरचित्त से विचार करने का यत्न किया है। सीताचरितम् के सप्तम सर्ग में वैदेही वाल्मीकि संवाद के माध्यम से शिक्षा नीति के उपर्युक्त सभी बिन्दुओं पर क्रान्तिकारी विवेचना की गयी है।

सीताचरितम् के सप्तम सर्ग में जब भगवती सीता अपने कुश एवं लव दोनों पुत्रों को शिक्षा देने के लिये वाल्मीकि से निवेदन करती हैं तब उस सन्दर्भ में वह एक आदर्श कुलपति के विद्या की सार्थकता उसके शिष्य के माध्यम से उसकी विद्या के विश्वव्यापी प्रसार तथा तज्जन्य सुयश में ही मानती है और उसी अर्थ में कुलपति के विश्वविद्यालय की अन्वर्थता भी। वैदेही वाल्मीकि से कहती है कि भगवन्! शिशुओं के हृदय में प्रसुप्त जो विद्या रूपी अग्नि शिखा

१- स चापि वाल्मीकिवशिष्ठदृष्टिपरीक्षितौ प्राप्य सुतावहृष्यत् ।
न पिण्डमात्रं नृपनन्दनानां यद् भारते राष्ट्रपतित्वमेति ।।
– सीताचरितम्, १० ।२४

है वह जिस कारण से विश्व रूपता को प्राप्त करती है वह है आदर्श कुलपति की विद्या का प्रभाव और यही है विश्वविद्यालय का अर्थ[1]। भगवन् ! मैं पितृ-तुल्य आपके आश्रित हूं तथा अपने इन कुश एवं लव दोनों पुत्रों को इनके स्वयं एवं अपनी जनता के परिष्कार के लिये आपके चरणों में समर्पित करती हूं[2]।

सीता के उपर्युक्त कथ्य को सुनकर ब्रह्मर्षि वाल्मीकि ने शिक्षा नीति के सम्बन्ध में एक ऐसा सारगर्भित व्याख्यान प्रस्तुत किया है जो शिक्षा-नीति के लिए पथ-प्रदर्शन का कार्य करता है।

वाल्मीकि कहते हैं कि बेटी ! संसार में वह पुरुष जन्म से ही महान होता है जो सती माताओं की कल्याणी कुक्षि से जन्म लेता है। मणि आदि रत्न इसीलिये बहुमूल्य होते हैं क्योंकि वे रत्न प्रसू भूमि से पैदा होते हैं[3]। इस संसार में रविकुल की राजमहिषी विदेह-पुत्री भारतवर्ष के मुनियों के रक्त से निर्मित तुम जैसी जिसकी माता हो उसकी शिक्षा के लिये किसी गुरु की अपेक्षा ही क्या[4] ! अथवा वह गुरु भी बड़ा ही भाग्यशाली होगा जिसके आश्रम में ऐसी मां के बालक शिक्षा के लिये आवें, संसार में अग्नि इसीलिये तो महान होता है क्योंकि वह मन्त्र पूत और औषधियों से गरिष्ठ हविष्य का वहन करता है[5]।

१- शिशुबुद्धि शयिता च येन विद्याज्वलनशिखा स्फुरतीव विश्वरूपम् ।
   शिवतममिदमस्ति कारणं सत्कुलपति-पावनशारदाऽनुभाव: ।।
   — सीताचरितम्, ७।४

२- वही, ७।५

३- वही, ७।७

४- रविकुलमहिषी विदेहपुत्री भरतमहीमुनिशोणितोद्भवा च ।
   त्वमिव जगति हन्त यस्य माता गुरुरपर: क इवास्य शिक्षणे स्यात् ।।
   — वही, ७।८

५- वही, ७।९

भगवति - सीते ! जिसका जन्म शुद्ध होता है वह मनुष्य स्वभाव से ही सर्वविद होता है[1], अत्यन्त महान् होता है, उसमें सभी श्रुतियां परिपोष को प्राप्त होती हैं[2]। देवि सीते ! प्रकृति और पुरुष का जो यह यज्ञ संविज्ञान है इसके कारण यह सम्पूर्ण विश्व मनुष्य की शरीर में उसी प्रकार उपस्थित रहता है[3] जिस प्रकार प्रज्ज्वलित अग्नि में अर्चि। इसीलिये हे भारत प्रतिष्ठे सीते[4] ! भारतीय व्यक्ति कहीं भी किसी के भी सामने अपना शीश नहीं झुकाता।

आर्य बालक जन्म से ही कल्पनाओं के कल्प वृक्षों में लगे फल को खाता है, परम चिन्तन की चिन्तामणियों की गोलियों से क्रीड़ा करता है उसके पश्चात् उत्कर्ष की कामना रूपी उत्कृष्ट कामधेनु का पयः पान करता है। मन तथा शरीर एवं आयुष्य में वह त्रिलोकों में दिव्यता और परात्परता प्राप्त करता है[5]। भारतवर्ष को 'भारत वंश' देने वाली भरत नामा अग्नि को आत्मसात कर प्रत्येक क्षण अभ्युदय की इच्छा रखने वाले उत्तम द्विज, ग्रीष्म में भी दृढ़ रहने वाले दूर्वादल के समान सुप्रतिष्ठित रहते हैं तथा यज्ञ और यागों से इस सम्पूर्ण विश्व को भरते रहते हैं[6]।

१- भगवति ! विदिताखिलो मनुष्यो भवति निसर्गत एव जन्मशुद्धया ।

- सीताचरितम्, ७।१० पूर्वार्द्ध

२- अतिमहति सुजन्मनि स्वयं हि श्रुतिनिवहोऽप्युपचिन्वते वपूंषि ।

- वही, ७।११ पूर्वार्द्ध

३- वही, ७।१२

४- वही, ७।१३

५- जननसमयतः स कल्पनानां तरुजा भवानि समश्नुते फलानि ।

अथ सुपरमचिन्तनामणीभिर्भवति च तस्य विनोद-खेलनानि ।।

पिबति तदनु सोऽयमार्यबालो मधुरमथोत्कृति-कामनागवीनाम् ।

मनसि वपुषि चायुषि त्रिलोक्यां व्रजति परात्परतां जनः स दिव्याम् ।।

- वही, ७।१५-१६

६- भरतवरमात्मसाद् विधाय प्रतिक्षणमभ्युदयैषिणो द्विजेन्द्राः ।

अपि दूर्वादलप्रतिष्ठा भुवनमिदं स्वमयन्ति यागयोगैः ।।

- वही, ७।१८

भारतीय आचार्य विशुद्ध आत्म तत्व का अनुसन्धान करता है । सूर्य की रश्मियों में याज्ञवल्क्य के समान तथा चन्द्र की रश्मियों में सदा विशद रहने वाले चित्र का अनुसन्धान करता है[1]। विशुद्ध बुद्धि इसमें स्वयं जागती है, यह यह है ` `यह यह नहीं ` इस प्रकार विवेक के दर्शन यह रुचिर[2] एवं अरुचिर दोनों में समान रहने वाली अग्नि शिखाओं में कर लिया करता है, अमावश्यक को यह आर्य बालक यह सम्पूर्ण विश्व महाविराट् की दृढ़ दंष्ट्रा की नोंक[3] पर मुनल रहा है । यह निश्चित ही मिथ्या है, मूंठा है, कथमपि सत्य नहीं है । इस दर्शन का उपदेश करती हुयी सुनता है ।

इस प्रकार दिन में, रात में और इन दोनों की सान्ध्य बेला में उक्त उपदेशों की माला पहने रहने का अभ्यासी द्विजराज श्रुतियों के महापथ पर बिना किसी निर्देश के स्वयं ही यात्रा करता चलता है[4]।

भारतीय आर्य विनीत होते हुये भी शिक्षा के लिये अपना मस्तक कभी भी, कहीं भी नहीं झुकाता[5]। कुलपति या आचार्य छात्रों पर अपनी

१- सीताचरितम्, ७।१७

२- इदमिदमिदमस्ति नेदमित्थं स्वयमुपबुद्धविशुद्धबुद्धिरेषा: ।
अरुचिररुचिरे समानभावास्वनलशिखास्वनुवीक्षते विवेकम् ।।
- वही, ७। १८

३- वही, ७।१९

४- अधिदिवसमथाधिरात्रि सन्ध्यास्वपि च पिनद्धमहोपदेशमाल्य: ।
प्रकृतिमहति वर्त्मनि श्रुतीनां भवति महापथिक: स्वयं द्विजेन्द्र: ।।
- वही, ७।२०

५- पुनरपि भिनदामि तेन नासौ क्वचिदपि मस्तकमात्मनीनमार्य: ।
विनयवरिष्ठतोऽपि शिक्षणाय श्लथयति कुत्रचनापि भारतीय: ।।
- वही, ७।२१

संस्कृति की छाप ही छोड़ते हैं, जो उन्हें पुरुषार्थ प्रदान करने हेतु लता-सी बढ़ती जाती है[1]। मैं चाहता हूं कि मनुष्य की गति प्रतिहत न हो वह भगीरथ-साहस की विद्या पढ़े और अपने वंश तथा अपनी जनता को विभिन्न विद्याओं के अमृत रस से परिपुष्ट करें[2]। अतएव हे वैदेही! तुम्हारे इन दोनों शिशुओं[3] को शिक्षा देने हेतु इनका गुरु बनना मैं सहर्ष स्वीकार करता हूं। शिक्षा के प्रति इनकी रुचि की परीक्षा करके ही इन्हें प्रशिक्षित करूंगा[4]। क्योंकि ऐसा न करने पर आदर्श अध्यापकों का भी प्रयास निष्फल हो जाता है। पहले तो मैं यह देखूंगा कि तुम्हारे इन दोनों बच्चों में पृथ्वी की रक्षा करने में समर्थ क्षात्र शक्ति (क्षात्र शक्ति) है या नहीं, तत्पश्चात् यह देखूंगा कि ये ललित कलाओं, आत्मविद्या, साहित्य, गणित, खनिज, शिल्प, भूगोल, विज्ञान, आदि विद्याओं में इनकी अभिरुचि कैसी है, अन्तः प्रकाश कैसा है[5]। तदुपरान्त इन्हें उस व्यवहार शास्त्र में शिक्षित करूंगा जिसके द्वारा इन्हें समाज में प्रतिष्ठा सम्मान आदि प्राप्त हो सके। व्यवहार शास्त्र का अध्ययन केवल शिक्षार्थियों के लिये ही नहीं अपितु शिक्षकों के लिये भी अत्यन्त आवश्यक होता है, क्योंकि समाज में प्रतिष्ठा दिलाने वाले इस शास्त्र के अध्ययन के बिना श्रेष्ठ विद्वानों का उत्तम

१- कुलपतिरथवा महोपदेष्टा शिशुषा परं सृजतीह संस्कृतिं स्वाम् ।
इयमुपचिनुते लतासधर्मा फलविहुमेव च बन्धन: फलानि ।।
-सीताचरितम्, ७।२२

२- प्रतिहतगतिरस्तु मा मनुष्य: पठतु भगीरथसाहसस्य विद्याम् ।
अभिजन-जनतो सरस्वतीनाममृतसरांसि समपुर्य तोषयेत्तु ।।
- वही, ७।२३

३- वही, ७। २४

४- कुलाभिरुमत: परीक्ष्य शिक्षारुचिमनुकममहं प्रशिक्षयिष्ये ।
व्रजति विफलतां यतो प्रयासो रुचिपयसां शिक्षिकर्मकर्मणेन ।।
- वही, ७।२५

५- तदनु ललितकलाविधानमार्गे ध्वनिमहिते कुलमान्तरात्मविधे ।
गणितखनिजशिल्पभूप्रतिष्ठाभिमतपथेऽप्यनयो: प्रकाशमीक्षे ।।
- वही, ७।२७

विद्याध्ययन भी निरर्थक हो जाता है[1]। वह व्यक्ति बड़ा ही स्वार्थी होता है जो शास्त्रों का अध्ययन कर विरत हो जाता है और विपथगामियों को सत पथ पर चलने हेतु कुछ भी प्रयत्न नहीं करता[2]। इसलिये तुम्हारे जो लव और कुश हैं और जो मनुष्य समाज के भावी नियामक हैं, इनकी जनता के प्रति कैसी आस्था है यह सब कुछ देखना मेरा नैतिक कर्तव्य है[3]। वैदेही ! यदि मेरी ये सभी बातें ठीक न हों तो तुम्हीं बताओ कि वह कौन सा कारण था कि मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने आपका परित्याग किया। मैं तो समझता हूं इसका मुख्य कारण राम की प्रजा का अशिक्षित होना ही है और इसमें जो कारण है वह है विद्वानों सद् पुरुषों और साधुजनों का उदासीन भाव[4]। अरे ! यदि विद्या से सतियों का संरक्षण नहीं होता तो उससे लाभ ही क्या ? कामधेनु भी मिल जाय तो वह किस काम की ? यदि वह अपने दूध से उन व्यक्तियों का पोषण नहीं करती जो दया के पात्र हैं[5]। यदि कोई यह कहे कि यह बराबर विश्व दाक्षिक

१- सुपठितमपि भूयसा वृथैव द्विजकुले भवतीह पण्डितानाम् ।
यदि भवति न तद् प्रजाप्रतिष्ठापरमफलाय निवासिनां समाजे ।।
- सीताचरितम्, ७।२९

२- स हि परमतमो निजार्थदर्शी भवति जनः परिशील्य यस्तु शास्त्रम् ।
विपथमतिजुषां मतीर्निरोद्धुं विरततया यतते न लेशमात्रम् ।।
- वही, ७।३२

३- वही, ७। ३३

४- भगवति ! परमेकमत्र तत्त्वं तव परिदेवनमूलमुन्नयामि ।
रघुपतिजनता न शिक्षितास्ति, भवति च तन्निमित्तः सतां विरक्तिः ।।
- वही, ७।३५

५- अयि बत, यदि विद्यया सतीनां न हि परिपालनमस्ति किं तया नः ।
सुरभिरपि वृथैव या ससर्जेद् यदि न समेधयतेऽत्र निजानां सा ।।
- वही, ७।३६

ही है तो उन्हें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि चंचल तरंगों के मध्य समुद्र के समान इसी विश्व में निहित एक विश्वमूर्ति भी है जो निश्चित रूप से ही सर्वाधिक उपास्य है[1]। वही विश्वात्मा ही प्रत्येक पुरुष में चेतना रूप से अवस्थित होकर प्रकाशित हो रहा है, यदि वे मनुष्य जिनके पास अपौरुषेय[2] वेद राशि भी है इनकी (विश्व मूर्ति) पूजा नहीं करते तो उनसे क्या ?

संक्षेप में मैं इतना ही कहना चाहता हूं कि तुम्हारे ये दोनों पुत्र और इसी प्रकार द्विज कुल के सभी बालक विद्या के उज्ज्वल पथ से सम्पूर्ण विश्व को आगे बढ़ावें और स्वयं विषय रूपी तालाब के जल में कमल पत्र[3] के समान निर्लिप्त रहकर अपने हृदयाकाश को मालिन्य के मेघों से न घिरने दें।

इसके पश्चात् दूसरे दिन वाल्मीकि लवकुश का यज्ञोपवीत संस्कार करके उन्हें स्वल्प समय में ही परा और अपरा दोनों विद्यायें विधिवत् पढ़ा दीं, तथा च उन्हें अतीव सूक्ष्म एवं दिव्यास्त्र विद्या भी प्रदान करदी। ऐसा इसलिये कि हमारा जो कृपाण रूप भगवान[4] धर्म है वह हिंसक तो नहीं है किन्तु सींग नहीं छोड़ता। कुश और लव दोनों बालक बुद्धि के आठों गुणों से युक्त गुरुवर

१- सीताचरितम्, ७। ३७

२- वही, ७। ३८

३- इयमिह मम वर्त्ते मनीषा तव तनयावथ, तद्वदेव सर्वे ।
द्विजकुलशिशवो जगन्ति विद्याविशदपथेन विवेकतो नयन्तु ।।
अप च कमलपत्रतां दधाना विषयसरोऽम्भसि नीरदकलापात् ।
हृदयगगन आविलत्वभावैरनिविलतां समुपार्जयन्तु सर्वे ।।
- वही, ७। ३९,४०

४- तदनु नियमकृतौ तौ परां चापरां च
प्रतिपदमुपदिश्य प्राज्यविद्यां कवीन्द्रः ।
अभवत् पटिष्ठामस्त्रविद्यां च दिव्यां
न हि भवति कृपात्मा धर्म उत्कृष्टकृच्छ्रः ।।
- वही, ७। ४१

बाल्मीकि की आज्ञापालन में दत्तचित्त होकर सभी विद्यायें विधिवत अधिगत कर लीं । यह कोई आश्चर्य नहीं क्योंकि आर्य जाति में तो वेद-बोध गर्भ में ही हो जाता है[१] ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शिक्षा मनुष्य के हृदय में विद्यमान वह अग्निशिखा है जिसके प्रकाश में उसका शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास होता है । इसके साथ-साथ उसमें विद्यमान उन गुणों का भी विकास होता है जिसके माध्यम से समाज में उसकी विशिष्ट पहचान बनती है । इनमें जिस विद्या के माध्यम से शरीर, मन, और बुद्धि का विकास होता है उसे अपरा विद्या कहते हैं । परन्तु जिसके माध्यम से व्यक्ति का आध्यात्मिक विकास होता है उसे परा विद्या (ब्रह्म विद्या) कहते हैं । इन्हीं दोनों विद्याओं में विद्या की सारी कोटियां आ जाती हैं ।

शिक्षा का उद्देश्य आत्मनिर्माण के साथ-साथ राष्ट्र का निर्माण होता है । आत्म निर्माण शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक विकास के रूप में होता है और इस रूप में जब व्यक्ति का निर्माण हो जाता है तो व्यक्ति के समूह रूप राष्ट्र का निर्माण स्वतः सम्भव हो जाता है,क्योंकि जब राष्ट्र की इकाई रूप व्यक्ति का निर्माण हो रहा है तो उसके साथ-साथ राष्ट्र का निर्माण भी स्वतः होता रहता है । इसके पश्चात् शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को पुरुषार्थों की दृष्टि से समर्थ बनाकर और उसे व्यवहार शास्त्र में पारंगत कर समाज में प्रतिष्ठा दिलाना भी है ।

सीताचरितकार के अनुसार किसी भी आचार्य का यह प्रथम लक्षण है कि वह समस्त शास्त्रों का अध्ययन करके अपने को इतना समर्थ बना ले -

---

१- सकलविगुणौ तौ वाचमन्वेश्म गाढे-
गुरुवचनवचनानां पाठने वयसितौ ।
स्मरणमिव सुदृढी सर्ववाङ्मयाष्टौ
भवति निष्कामो कर्म स्वाधीनावौ ।।

- सीताचरितम्, ७। ६०

कि उसकी बुद्धि आत्मानुसंधान में तो सफल हो ही साथ ही साथ विवेक के आलोक में श्रुतियों के महापथ पर आत्मनिर्देश के साथ चलता हुआ अपनी संस्कृति की छाप अपने शिष्यों पर अवश्य छोड़े । इसके पश्चात् शिक्षा के लिये समीप आये हुये शिष्यों को सामान्य रूप से अनिवार्य विषयों की शिक्षा तो दे किन्तु विशेष रूप से उसे उसी विषय में प्रशिक्षित करे जिसमें उसका अभिनिवेश सर्वाधिक हो । आचार्य का एक महत्वपूर्ण लक्षण यह भी है कि वह समाज में कुमार्ग पर चलने वाले व्यक्तियों को भी अपने उपदेशों से सन्मार्ग पर चलने के लिये प्रेरित करे । समाज के प्रति उदासीन रहने वाले अन्य विद्वानों,सत्पुरुषों और साधुजनों को समाज के विकास की ओर ले चलने में प्रेरणा दे । अपने व्याख्यानों एवं उपदेशों से आस्थाहीन, उत्साह विहीन, किंकर्तव्यविमूढ़ लोगों को आस्था, उत्साह, कर्तव्यपरायणता आदि की प्रेरणा दे, और इन सभी रूपों में व्यक्ति निर्माण के साथ-साथ राष्ट्र निर्माण में सहयोग प्रदान करे ।

छात्र लक्षण एवं छात्रानुशासन का निदर्शन तो वाल्मीकि के आश्रम में अध्ययन निरत छात्रों के द्वारा ही जाना जा सकता है जिसका वर्णन सीताचरितम् के अष्टम एवं दशम सर्गों में उपलब्ध होता है । वहां यह बताया गया है कि आदर्श छात्र का प्रतिनिधित्व करने वाले कुश एवं लव ने अल्प समय में ही सांगोपांग वेदों का अध्ययन करके शारीरिक, मानसिक,व बौद्धिक एवं आध्यात्मिक विकास से परिपुष्ट होकर सर्वोत्तम छात्र की सभी वृत्तियों से गुरुवर वाल्मीकि को सर्वात्मना सन्तुष्ट कर दिया [1] । जिसे देखकर अतीव प्रसन्न हुये वाल्मीकि

१- चातुर्विध्ये सप्तमाङ्ग-सत्यनुयामतौ ।
सच्छात्रस्य गुणां वृत्ति तावपि व्यात्पतामलम् ।।
आत्मेन्द्रियमनोबुद्धिविकास-क्रम-विश्रुतौ ।
रक्षितुं क्षमां क्षमामेतौ सिंह-मातङ्ग-गामिनोस्तु: ।।

- सीताचरितम्, ८ । ३, ७

ने उन्हें समावर्तन संस्कार के लिये अपना रामायण नामक महाकाव्य भी सस्वर पढ़ा दिया[१]।

दशम सर्ग में छात्रानुशासन का आदर्श चित्रण मिलता है जहाँ यह बताया गया है कि आचार्य के आदेशानुसार विद्या आश्रम के सभी शिष्य लौकिक सुख-सुविधाओं से विमुख होकर एक निष्ठ मनोभाव से पूरी आस्था के साथ शस्त्र-शास्त्रादि के अध्ययन एवं अभ्यास में लगे रहते हैं। आचार्य की आज्ञा होने पर ही वे सब अध्ययन को विराम देकर अन्य आवश्यक कार्य यथा समय सम्पादित करते हैं। अध्ययन काल में यदि कोई विशिष्ट आदरणीय पुरुष आ जाता है तो आचार्य के आदेशानुसार छात्र अध्ययन को विराम देकर उसका यथोचित स्वागत भी करते हैं।

इस सन्दर्भ में महाकवि ने लिखा है कि जब वाल्मीकि के आश्रम में पहुंचे हुये साकेत के सभी सैनिक, निवासी आदि कुश एवं लव को देखना चाहते हैं तो उस समय वे दोनों चन्द्रकेतु के साथ शस्त्र और शास्त्र के अध्ययन और अभ्यास में लगे हुये थे[२]। उस समय अध्ययन निरत स्नातकों से युक्त वाल्मीकि का वह आश्रम ऐसा लग रहा था जैसे किसान का खलिहान धान्य राशि से भरा हुआ हो[३]। वाल्मीकि साकेत वासियों को लव कुश के दर्शन के लिये उत्सुक देखकर छात्रों में अनध्ययन की घोषणा कर देते हैं। क्योंकि विद्या शास्त्र में तो केवल पद रूप या वाक्य रूप से रहती है अर्थ रूप से तो वह शिष्टों के आचरण में ही दिखायी देती है, अर्थात्

१- साङ्गवेदं सर्वशास्त्रेषु भाविनौ वीक्ष्य तौ कविः।
समावर्तनसंस्कारमिव काव्यं निजं जगौ ॥

- सीताचरितम्, ८।४

२- वही, १०।६, ७

३- वही, १०।८

विद्या की सार्थकता उसके अध्येता के आचरण में ही होती है[1]।

आचार्य की आज्ञा पाकर सभी अध्ययन निरत बालक अध्ययन को विराम दे देते है, किन्तु स्वतः प्रवृत्ति से नहीं अपितु गुरु का आदेश होने के कारण[2]।

इस प्रकार सीताचरितम् 'महाकाव्य' में शिक्षा का स्वरूप, शिक्षा का क्षेत्र, शिक्षा का उद्देश्य, आचार्य-लक्षण, छात्र लक्षण, छात्रानुशासन आदि शिक्षा नीति से सम्बद्ध प्रत्येक बिन्दुओं पर समुचित प्रकाश डाला है ।

नारी जागरण -

सीताचरितम् में नारी जागरण का अत्यन्त ही सफल चित्रण किया गया है । सच तो यह है कि सीताचरितम् आद्यन्त नारी जाति के जागरण उत्कर्ष एवं महात्म्य से ही आप्लावित है । इसके प्रथम सर्ग में कौशल्या का रामादि के साथ संवाद, तृतीय सर्ग में वैदेही राघव संवाद, वैदेही कौशल्या संवाद, वैदेही लक्ष्मण संवाद, चतुर्थ सर्ग में उर्मिला वैदेही संवाद, सप्तम सर्ग में वैदेही वाल्मीकि संवाद आदि सभी संवाद नारी जागरण का ही चरम निदर्शन प्रस्तुत करते है ।

इनमें वैदेही राघव संवाद, वैदेही लक्ष्मण संवाद और उर्मिला वैदेही

१- वाल्मीकिरुद्वीक्ष्य सभान्तरङ्गं चकार शिष्टामनाक्काशम् ।
शास्त्रेषु विद्या यथावाक्यरूपा शिष्टेषु शोभाधिकया चकास्ति ।।
— सीताचरितम्, १०।६

२- गुरोर्नियोगाद् वटवो विरेमुः स्वाध्यायतो नैव निजप्रवृत्त्या ।
माध्वीकतः किं मधुकृत्समूहः स्वयंप्रवृत्त्या चलति, प्रयाति ।।
— वही, १० ।१०

संवाद क तो आधुनिक युग के महिला जागरण आन्दोलन से कुछ भी कम नहीं है ।

वैदेही,राघव संवाद के अन्तर्गत सीता मर्यादा पुरुषोत्तम राम से स्पष्ट कहती हैं कि आर्य ! मनुष्य अपने आभ्यन्तर अन्धकार से आवृत नेत्रों से दूसरों की बाह्य परिस्थितियों को देखता रहता है परन्तु उसके (दूसरे के) उत्कृष्ट धर्म और दर्शन को नहीं देख पाता[1]। जनता दोष को ही स्वतः प्रमाण मानती है, उसकी दृष्टि में कमल एक मात्र पंकज ही रहता है जबकि सत्य यह है कि वह जल से उत्पन्न होता है और सूर्य के प्रकाश से पोषित होता है[2]। कोई विश्वास करे या नहीं विद्वान को कोई भय नहीं होता, कर्तव्य दर्शन में अपनी आत्मा को प्रमाण मानकर चलने वाले उत्तम व्यक्ति के लिये किसी अन्य के निर्देशन में चलना सम्भव नहीं होता[3]। हे देव ! यदि आपका अपार राज्य सुख-शान्ति के जल से शीतल है[4] तो उसमें परिताप उत्पन्न करने वाली मुझ जैसी महिला की क्या आवश्यकता ! आर्य ! संसार स्त्रियों को केवल स्त्री होने के कारण शंका की दृष्टि से देखता है और उनकी अवमानना

१- साऽब्रवीत्-प्रतिहतेन चक्षुषा सर्वथा तमसाऽत्र मानुषः ।
वीक्षते परपरिस्थितिं परं, वीक्षते न पर-धर्म-दर्शने ॥
- सीताचरितम्, ३।४

२- किन्तु विश्वसिति दूषणं प्रमाणमेव जनता स्वतः सदा ।
तोयजं भवति पंकजं हि तन्मानसे भवदपि प्रभां रवेः ॥
- वही, ३।६

३- विश्वसेज्जन न नैव विश्वसेत्कोऽपि, नास्ति विदुषो ततो भयम् ।
स्वं प्रमाणयति कृत्यदर्शी सम्भवेन्न भुवनेऽन्यनेतृता ॥
- वही, ३।७

४- वही, ३।८

करता है, किन्तु आप जैसे लोकनायक के विवेक का दीपक उनके लिये बुझना नहीं चाहिये[१]। यद्यपि प्रतीकार करने पर भी मनुष्य विधाता के लेख को मिटा नहीं पाता, परन्तु यदि वह अन्त:करण की साक्षिता पर अपनी ओर से सन्मार्ग की दिशा में अग्रसर रहता है तो अवश्य ही वह तज्जन्य तोष का अनुभव करता रहता है[२]।

इसी प्रकार सीता लक्ष्मण संवाद के सन्दर्भ में वैदेही ने जब लक्ष्मण को अपने निर्वासन से दु:खित हृदय देखा तो उन्हें अपने कर्तव्य का बोध कराती हुयी उनसे स्पष्ट कहती हैं कि तात। शरीरी को चाहिये कि वह शरीर को अधिक मान्यता न दें, इसी शरीर में[३] आत्मा नामक चेतना वैसे ही छिपी हुयी है जैसे मेघों में विद्युत छिपी रहती है। उस चेतना में कल्प लता जैसी सौमनस्य की आकाश गंगा बह रही है या नहीं। तथा वह आकाशगंगा परिस्थिति और औचित्य के दोनों उभ कूलों से हारकर अनन्तता को प्राप्त हो रही है या

१- आर्य। यद्यपि मनस्विजन: स्वीति विश्ववन्दनीयतास्पदम्।
लोकनायकविवेकदीपकस्तत्कृते न परिहीयते परम्॥
- सीताचरितम्, ३।१४

२- यद्यपि प्रतिविधित्सुरप्यसौ मानवो न विधिलेखमुत्सनेत्।
चित्तसाक्षिकमथापि तुष्यति स्वेन शुद्धिमनुवर्तते स चेत्॥
- वही, ३। १५

३- मात्र कापि महती शरीरिणो मान्यता भवतु तत्कलेवरे।
तत्र गूढवसतिरस्त्यवस्थिता तोयदेषु चपलेव चेतना॥
- वही, ३।४७

नहीं ![1] तात । प्रिय और प्रिया रूपी जीवन रथ के दोनों चक्रों के मध्य केवल यही देखा जाता है, यदि व्यक्ति में दम्पती रूप, तेजस्वी तत्व के दर्शन की इच्छा हो[2]। नारी को चाहिये कि वह चिति रूपी गङ्गा को गर्व रूपी पर्वत के शिखर से उतारे और समरस वसुन्धरा से होकर उसे समुद्र तक पहुंचाये[3]। पुरुषार्थ विधायक स्नेह-सिन्धु को प्रकर्ष के उच्चतम शिखर तक पहुंचाये तभी वह अपने आपका नारी होना सफल समझे[4]।

इस प्रकार सीता का उद्बोधन सुनकर राघव ही नहीं अपितु लक्ष्मण की भी आंखें खुल जाती हैं[5]।

उर्मिला वैदेही सम्वाद के अन्तर्गत वैदेही के निर्वासन को सुनकर उर्मिला ने जो कुछ स्वच्छन्द मानव समाज को इंगित करके कहा है उसे सचमुच नारी जागरण का सिंहनाद कहा जा सकता है। उर्मिला कहती है कि स्वच्छन्द पशु समाज में निर्दयता उस सीमा तक नहीं पहुंचती जिस सीमा तक मनुष्य समाज में। पशु भी अपने भावी सन्तति का ध्यान रखते हैं और

१- तत्र कल्पलतिकेव सौमनस्याम्रसिन्धुरूपगूंहते न वा ।
 सा परिस्थिति-समोचिती-सटद्वन्द्वतो निरवधि गता न वा ।।
 -सीताचरितम्, ३।४८

२- वही, ३। ४६

३- मानवी निज-चिति-त्रिमार्गगां गर्वशैलशिखरान्निपातयेत् ।
 किं च तां समरसाद् वसुन्धरापृष्ठतोऽम्बुधिमनन्तमाप्नुयेत् ।।
 - वही, ३।५०

४- वही, ३। ५१

५- वही, ३।५२

घोंसले भी बनाते हैं[1]। परन्तु मानव समाज में गर्भभार मंथरा नारी को निर्वासित दिया जा रहा है, एक तो अबला, फिर सम्बन्ध में परिणीता, फिर परिपक्वगर्भा तथा च चन्द्रकिरणों जैसी निष्कलंक सीता को छोड़ा जा रहा है और विद्वानों द्वारा छोड़ा जा रहा है, कितना आश्चर्य है[2]।

जनता के मुख को बन्द[3] करने के लिये क्या अपनी सती पत्नी का त्याग उचित कहा जा सकता है। अरे। यदि विद्वानों को धर्म का निर्णय लोकमत से ही करना है तो फिर शब्द कोश से अधर्म शब्द को निकाल ही देना चाहिये[4]। सत्य की उपासना में यत्नशील एक यशस्वी व्यक्ति के समक्ष सैकड़ों असत्यभाषी भी यदि कुछ विपरीत कहें तो वे उदीयमान सूर्य के समक्ष उलूक पक्षी के समान ही होते हैं[5]। समाज की विश्वासक रीतियों से विनिर्मित हृदय की विभूतियों से शून्य दरिद्र व्यक्ति करे ही तो क्या करे[6]; यदि मानव समाज विश्वास भूमिका का समादर नहीं कर सकता तथा च यदि विश्वास भूमिका और उसके ऊपर मनुष्य भावना को स्वीकार[7] करके चला नहीं जाता तो वह समाज समाज नहीं है अपितु एक महा छलना है। बांस को छेदने में समर्थ

१- सीताचरितम्, ४।३८

२- वही, ४।३६

३- अपि मुद्रयितुं जनाननं स्वसती-त्यागविधिः किमौचिती।

- वही, ४।४० पूर्वार्द्ध

४- यदि लोकमतेन केवलं क्रियतां धर्मविनिर्णयो बुधैः।
अधर्म इति मत्स्तया श्रुतिरेवास्तु निघण्टनिःसृता ॥

- वही, ४। ४२

५- वही, ४।४२

६- वही, ४।४७

७- यदि विश्वासस्य भूमिकामुपरिष्टाच्च मनुष्यभावनाम्।
अधिकृत्य न संप्रवर्तते न समाजः स, महद्धि तच्छलम् ॥

- वही, ४।४८

भ्रमर अपने रसपायी हाथों से भोग्य कमल कोश का कोई अपकार नहीं करता । किन्तु मनुष्य सृष्टि का सर्वोच्च प्राणी होते हुये भी ऐसा करने में तनिक भी संकोच नहीं करता[1] । किन्तु यदि मनुष्य ही मर्यादा को नष्ट करना चाहता हो तो अबला होते हुये भी नारी को विश्वमंगल के लिये प्रबला क्यों नहीं हो जाना चाहिए[2] ।

इस प्रकार सीताचरितम् के स्त्री पात्रों में कौशल्या, सीता, उर्मिला आदि सभी ने नारी जागरण के आन्दोलन को सफलतम रूप देने का श्लाघ्य यत्न किया है जो वर्तमान महिला जागरण आन्दोलन का पथ-प्रदर्शक हो सकता है ।

दाम्पत्य प्रेम--

सीताचरितम् महाकाव्य के अन्तर्गत दाम्पत्य प्रेम का सफलतम परिपाक हुआ है । इसके द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ एवं पंचम सर्गों में बहती हुयी दाम्पत्य प्रेम की पुण्य सरिता अनेक मोड़ों से होकर आगे बढ़ती है । द्वितीय सर्ग में राष्ट्रपति राम जब गुप्तचर के मुख से वैदेही विषयक जनापवाद को सुनते हैं तो सहसा कांप उठते हैं और वे जिस मनोव्यथा को व्यक्त करते हैं, उससे उनके वैदेही विषयक प्रेम की एक निष्ठता का सहज ही अनुभव किया जा सकता है ।

१- सुमनस्सु न पंकजारणी भ्रमरः पङ्कजकोशामिच्छति ।
रसपायिभिरात्मनः करैरपकर्तुं, मनुज मानवः ॥
- सीताचरितम्, ४।५०

२- पुरुषाः स्थितिभीरुर्नो यदि प्रतिहन्तुं क्रमते स्वतस्ततः ।
अबला प्रबलात्वभीरुणी किमु न स्याज्जगती-शिवंकरा ॥
- वही, ४। ५७

राम कहते हैं कि जिसने मेरे लिए राज भवनों की अपेक्षा वनों को ही अधिक प्रिय माना और चौदह वर्षों को फलों और उपवासों द्वारा हंसते हंसते व्यतीत किया,[1] चीरधारण करने पर भी जिसने कभी दुकूल की इच्छा नहीं की, और तेरह वर्षों तक मेरे शरीर की सर्वविधि रक्षा करती रही।[2] हे विधाता ! यह कैसा ताण्डव है कि गंगा और अग्नि सदृश विशुद्ध केवल मुझ पर ही केन्द्रित चित्त[3] वाली मेरी प्रिया वैदेही को पाप शंका के झकोरों से झकझोर रहे हो। कैसी विषम परिस्थिति है कि मैं करुं तो क्या करुं ? मैं अपनी वैदेही को छोड़ूं या जनता को, आग में जल मरुं, या समुद्र में डूब जाउं।[4] यदि एक ओर समाज धर्म का प्रश्न है तो दूसरी ओर मेरे व्यक्तिगत अस्तित्व का।[5]

इस प्रकार उक्त कथनों से राम की वैदेही विषयक उदात्त प्रेम की स्थिति का बोध पाठक को सहज में ही हो सकता है।

इसी प्रकार तृतीय सर्ग में वैदेही राघव संवाद के अन्तर्गत वैदेही ने राघव से प्रेम के सम्बन्ध में जो आत्म निवेदन प्रस्तुत किया है उससे वैदेही और राघव के दाम्पत्य प्रेम की चरम उदारता का परिचय प्राप्त होता है। वैदेही

१- सीताचरितम्, २।२८

२- वही, २।२९

३- अहो विधात: कथमीदृशो ग्रह: सुरापगा-पावक-तुल्य-जीविताम् ।
मदेकचित्ताम्ब-मारुतैरिमां लतामिवान्दोलयसे मम प्रियाम् ॥
- वही, २।३२

४- किमत्र कार्यं विपरीतताकटु: स्थिति: समक्षं मम संप्रति स्थिता ।
परित्यजामि स्वमितिं, जनान्नु, ज्वलामि वह्नौ यदि वाथ वारिधौ ॥
- वही, २।३४

५- समाजधर्म: स्थित एकतोऽन्यतो बिभार्ति वैयक्तिकता च मत्पुर: ।
उपस्थिताम्न छला, दुर्गोऽथवा, परस्पराश्लिष्टसमात्मनोर्द्वयो: ॥
- वही, २।३५

राघव से कहती है कि आर्य ! आज तक हमारे मन की स्निग्ध भूमि पर[1] टिकी हुयी जो लता पुष्पित होती रही वही अब काटी जा रही है परन्तु ध्यान रहे कि हम दोनों को पहले के ही समान इसे अलंकृत ही करते रहना है और सौमनस्य की वृष्टि से इसमें मधु की मिठास भी अर्हित करते चलना है[2]। हमारे हृदय रूपी वारि सिन्धु द्वारा उत्थापित अनुराग का यह पयोधर इन दुर्दिनों[3] में भी विश्व के सन्ताप को चिरकाल के लिए दूर करने में समर्थ ही रहेगा। प्रेम की चिरन्तनता तो ठीक वैसी ही हुआ करती है जैसी कंचन में[4] कान्ति, जिसमें विप्रियता की अग्नि तनिक भर भी विकार नहीं ला पाती। नाथ ! मैं वन, कानन अथवा आप जहां जायें वहां रह सकती[5] हूं किन्तु आपकी कीर्ति के साथ विश्व मानव को निष्कलंक रहना चाहिये। परन्तु हे नाथ ! मेरा एक निवेदन है कि मेरा सब कुछ छूट जाय तो छूट जाय किन्तु अपनी इस प्रणाय भिक्षुणी सीता को अपने वारिरवागर सदृश उज्ज्वल हृदय[6] की निकटस्थ परिचारिका के पद से आप न हटाइयेगा, न हटाइयेगा। नाथ ! निर्वासन के इस अन्तिम क्षण में मैं आज आपकी चरण तीर्थ में अपना[7] यह अन्तिम प्रणाम निवेदित करती हूं। कृपया इसे स्वीकार कीजिये। राघव वैदेही

१- अथ यावदियमावयोर्मन: स्निग्धभूमिविहृता प्रतानिनी ।
   पुष्यति स्म सुगन्धमं·गलं सुमं, साथ यद्यपि विशस्यतेतमाम् ।।
   - सीताचरितम्, ३।१६

२- वही, ३।१७

३- आवयोर्हृदयसिन्धुवारिसिन्धुनोत्थापितोऽयमनुरागनीरद: ।
   दुर्दिनेष्वपि चिराय जगतो विश्वतापकरणाय जायताम् ।।
   - वही, ३।१८

४- वही, ३।१९

५- अस्तु मे भवदभीप्सिता गतिर्यत्र कुत्रचन कानने वने ।
   विश्वमानवमकल्मषतां व्रजेत् कामयम सह कीर्तिभिस्तव ।। -वही, ३।९

६- हन्त सर्वमपि यावदस्यतां नाथ ते प्रणायभिक्षुकीमिमाम् ।
   वारिरसिन्धुविमलस्य चेतस: पारचिंदुतिपदतो न हास्यसि ।।
   - वही, ३।२३

७- वही, ३।२४

के साथ भी उस नितान्त अमानवीय व्यवहार को अर्द्ध निमिलित नेत्रों से चुपचाप वैसे ही पी लेते हैं[1] जैसे नीलकंठ आशुतोष सागर मन्थन से प्राप्त हलाहल को लोकमंगल के लिये । पुन: वैदेही के वन प्रस्थान करने के पश्चात् राम की ठीक वही स्थिति हो जाती है जो यज्ञ की पूर्णाहुति होने[2] के पश्चात् यज्ञ वेदिका से नीचे गिरे हुये परिष्कार शून्य यूपदण्ड की होती है ।

चतुर्थ सर्ग में उर्मिला और लक्ष्मण के दाम्पत्य प्रेम के सम्बन्ध में वैदेही ने जो शुभाशंसा व्यक्त की है वह भी कुछ कम हृदयावर्जक नहीं । वैदेही उर्मिला से कहती हैं कि[3] बहन ! उर्मिले ! तेरी चेतना मधु से भी मधुकर निधियों को एकत्र करती रहे । हरित दूर्वा से संकुल भूमि पर जुगाली करती तथा सींग से कुरेद कर प्रिय के शरीर को रोमांचित करती मृगी तुम्हें सदैव अच्छी लगती रहे[4] । तेरी बांह अपने देश के लिये और अपने व्यक्तिगत सुहाग के लिये पति (लक्ष्मण) के वज्र सदृश भुजदण्डों को स्पर्श करती हुयी उसे आग बनाती रहे[5] । तेरी अंग

१- सीताचरितम्, ३ ।५८

२- स्वस्य जीवनमतस्य जीवितं तां विसृज्य सुरभिं सुहृद्वह: ।
दश्यते स्म बत निष्परिष्क्रियो यूपदण्ड इव वेदिकाच्युत: ।।
- वही, ३।६१

३- वही, ४।२६

४- नवशाद्वलकोमलदिता तव रोमन्थमुखी नवा मृगी ।
रुचये भवताद्दुदञ्चितुं प्रियगात्रं निबद्ध्य शृङ्गिणी ।।
-वही, ४।२७

५- कुलिशप्रतिमो भुजौ भुजो भुजबाते । तव भर्तुरग्निवत् ।
विदधान इव स्पृशेद् यदा निजदेशाय च सौमनाय च ।।
- वही, ४।२८

लता तेरे अच्युत पति से लिपट कर आत्मज रूपी ऐसा कोई अप्रतिम फल दे जो लोकमंगल का साधक हो[1]।

यही नहीं स्वयं उर्मिला ने भी नर नारी के शाश्वत सम्बन्धों पर प्रकाश डालते हुये दाम्पत्य प्रेम के सम्बन्ध में जो निष्कर्ष प्रस्तुत किया है वह उदात्त दाम्पत्य प्रेम का जीवाधार ही है । सीताचरितम् की उर्मिला कहती है कि नर और नारी का सम्बन्ध सनातन है, ये दोनों सृष्टि के जीवन रथ के दो चक्र हैं जो परस्पर एक दूसरे पर आश्रित हैं । मनुष्य जब पुरुषार्थ के चौराहे पर बने हुये चबूतरे पर चढ़कर अपनी यात्रा का मार्ग जानना चाहता है तो उस समय नारी ही शास्त्र, मर्यादा और युग धर्म के अनुसार उसका मार्ग दर्शन करती है, इस रूप में नर और नारी दोनों के ही व्रत महान हैं[2] । पुरुष स्त्री को अपने साथ लेकर ही जन मानस में व्याप्त भ्रान्ति को दूर कर सकता है । स्त्री और पुरुष के मध्य व्याप्त द्वैत की सीमाओं को काट करके अथवा लोगों की मनोवृत्ति को परिवर्तित करके[3] इसी प्रकार स्त्री भी वर्तिका युक्त दीपक पर आश्रित प्रभा के समान पुरुष पर निर्भर रहकर लोक हृदय के कालुष्य को मिटाने में पूर्णतः समर्थ हो सकती है[4] । इस प्रकार स्त्री और पुरुष दम्पति के रूप में एक दूसरे के साथ रहकर एक दूसरे का अस्तित्व सुरक्षित रख

१- तकुतां तनुवल्लरी तवाच्युत-भर्तृद्रुम-बाहुमाश्रिता ।
किमपि प्रतिमापरं फलं जनती-मङ्गल-मूल-मात्मजम् ॥
- सीताचरितम्, ४।२६

२- पुरुषः पुरुषार्थचत्वरे पदवीं ज्ञातुमितोऽभिलष्यति ।
महिला समयं परीक्ष्य तां दिशतीत्येवमुभौ महाव्रतौ ॥
- वही, ४।५४

३- द्वयतापरिधेर्विमोचनादथवा लोकविपर्ययादपि ।
पुरुषः प्रभवाक्षः रामो जनताध्वान्तमपोहितुं स्वयः ॥
- वही, ४।५५

४- प्रभवाम्यथ मानवं श्रिता ज्वदशं दीपमिव प्रभा तमः ।
परिवर्तयितुं प्रकल्पते जनतीमानसकल्मषं ध्रुवम् ॥
- वही, ४।५६

रस सकते हैं और विकास के चरम शिखर पर पहुंच सकते हैं ।

उपर्युक्त सन्दर्भों से यह तथ्य पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाता है कि सीताचरितम् महाकाव्य के अन्तर्गत दाम्पत्य प्रेम की धारा निर्बाध रूप से बहती है जिसमें अवगाहनकर पाठक उदात्त मानवीय दाम्पत्य प्रेम की पवित्र दीक्षा लेकर जीवन यात्रा कर सकते हैं ।

--

रस-विवेचन—

सीताचरितम् महाकाव्य के अन्तर्गत काव्यादि स्थानीय रस का सफल परिपाक हुआ है । इसके विविध सर्गों में विविध रसों का उद्दाम प्रवाह देखने को मिलता है । कहीं जड़ चेतन में परिव्याप्त रसराज शृङ्गार की मर्यादित जलमाला बह रही है तो कहीं प्रस्तरों के हृदय को भी शतधा विदीर्ण करके कलनाद मिश्रित सैकड़ों निर्झरों की कल कल ध्वनि श्रुति पथ में प्रविष्ट हो रही है । कहीं प्रतिक्रिया मूलक क्रोध की अभिव्यक्ति के लिये तत् स्थायीभाव मूलक रौद्र रस का प्रसार है तो कहीं विजयाभिलाषी सैनिकों के शस्त्रास्त्रों की झनझनाहट से परिपूर्ण वीर रस की रोमांचक धारा का अबाध प्रवाह है । कहीं मानवीय प्रीति-परिणति से संवलित वात्सल्य रस की कलहास मिश्रित दुग्धोज्ज्वल गंगोत्री फूटती हुयी दिखाई देती है, तो कहीं जीवन के पर्यवसायी रस 'शान्त रस' की समस्त अन्तर्द्वन्द्वों को बहा ले जाने वाली आत्मदेवस्वरूप परमात्मानन्द की अलौकिक कक्षा में विहार कराने वाली अमन्द मन्दाकिनी की शान्त धारा का सृष्टि-व्यापी प्रसार है जिसमें ऋषियों, मुनियों क्रान्तदर्शी कवियों ने आत्मारामी बनकर चिन्मयानन्द का साक्षात् अनुभव करते रहे हैं ।

इस प्रकार सीताचरितम् महाकाव्य में शृङ्गार, करुण, रौद्र, वीर, शान्त, वात्सल्य आदि विविध रसों का यथास्थल सफल निर्वाह हुआ है, किन्तु फिर भी इनमें अंगिरस का स्थान शृङ्गार, वीर या करुण को न मिलकर शान्त रस को ही प्राप्त हुआ है । सीताचरितम् के विभिन्न सर्गों में भिन्न-भिन्न रसों का जहां एक ओर परिपाक हुआ है वहीं शान्त रस का प्राय: सभी सर्गों में न्यूनाधिक रूप में परिपाक हुआ है । इसके अतिरिक्त सीताचरितम् के पंचम, षष्ठ, सप्तम, नवम, एवं दशम सर्गों में कतिपय नगण्य स्थलों को छोड़कर एकछत्र शान्त रस का ही साम्राज्य है ।

यही नहीं सीताचरितम् के अन्य सर्गों में भी कहीं-कहीं शान्त रस की धारा इतनी मुखर होती दिखायी देती है कि ऐसा लगता है कि कवि ने

शान्त रस को ही मुख्य रूप से निर्विहित करने के लिये महाकाव्य का प्रणयन किया है । इस दृष्टि से प्रथम सर्ग में कुलगुरु वशिष्ठ का समस्त साकेतवासियों को जन सभा के आयोजन के माध्यम से उद्बोधित करना,[1] द्वितीय सर्ग में राष्ट्रपति राम के शान्त पूर्ण शासन का वर्णन,[2] सीतापरित्याग के समय अपने अनुजों, परिषदों, माताओं आदि के बीच तटस्थ चित्त राम का चित्रांकन,[3] तृतीय सर्ग में वैदेही का राजमाता कौशल्यादि से वनवास गमन हेतु सहर्ष आज्ञा की याचना करना,[4] हृदयद्रुति के कारण दुःखी लक्ष्मण को वैदेही द्वारा उपदेश दिया जाना,[5] चतुर्थ सर्ग में उर्मिला वैदेही संवाद के विविध स्थल,[6] अष्टम सर्ग में वैदेही का अपने कुश लव दोनों पुत्रों को वाल्मीकि के निर्देशन में शिक्षा के लिये सौंपकर परम सन्तोष की सांस लेना,[7] वाल्मीकि के आश्रम में द्विजाति कुल के बालकों का शास्त्रों के अध्ययन में निरत रहना, भागवतावतार राम और वाल्मीकि का परस्पर सम्मिलन[8] आदि ऐसे अनेक स्थल हैं जो शान्त रस की अंगिता को सिद्ध करने के लिये सर्वात्मना कटिबद्ध हैं ।

जहां तक सीताचरितम् महाकाव्य के परिप्रेक्ष्य में शान्त आदि रसों

१- सीताचरितम्, १, ५८, ५९

२- वही, २।१-७

३- वही, २। ४२-४४

४- वही, ३। २८-३३

५- वही, ३।४६-५२

६- वही, ४। ३०-४१-५३

७- वही, ८।१-१४

८- वही, ८।५३-६३

की सोदाहरण व्याख्या का प्रश्न है तो इसका भी अपेक्षित विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है ।

शान्त रस —

कविमतिरिव साध्वी दर्शने सत्पदस्य
नियतिरिव च धीरा कर्मयोगेऽपि सापि ।
अलभत सति चित्ते स्वेऽक्षरं ज्योतिरेकं
प्रियविरहपतङ्गो यत्र शान्तिं प्रयातः ।।

स्तनयुगपरिवेषो कुङ्कुमश्रीविभूत्या,
करयुगमणिबन्धे कौतुकश्रीः कुशेन ।
वपुषि सितदुकूलश्रीः भिया वल्कलानां
विनिमयमिव लब्ध्वा चक्रुरस्यां तपांसि ।।

– सीताचरितम् ७।६१-६२

यहां सीता का हृदयस्थ निर्वेद स्थायि भाव है । वाल्मीकि आदि आश्रम के मुनियों का सत्संग, संसार की नश्वरता का ज्ञान, आलम्बन विभाव है । वाल्मीकि का शान्ति पूर्ण पवित्राश्रम, निर्वासित वन्य संकटादि उद्दीपन विभाव है । सीता के समाहित चित्त ने अक्षर ज्योति स्वरूप परमानन्द की प्राप्ति, शरीर में भस्मालेप, मणिबन्ध के कौतुकश्री के स्थान पर कुश, दुकूल के स्थान पर वल्कल, धारण करना साधुवृत्ति आदि अनुभाव, निर्वेद, हर्ष आदि संचारिभाव हैं ।

इस प्रकार विभाव, अनुभाव, संचारिभाव से पुष्ट होता हुआ सीता का हृदयस्थभाव शान्तरस की सृष्टि कर रहा है ।

इसी प्रकार सीताचरितम् में ऐसे अनेक स्थल हैं जहां शान्त रस की अजस्र धारा पूरे उल्लास के साथ बह रही है जैसे – सीताचरितम् के अन्तिम सर्ग के अन्तिम चरण में ।

इत्थं सैषा जनकतनया स्वात्मदेवस्वरूपं
ज्योतिष्कायं कमपि मुदिता राममासाद्य जाता ।
का भीरस्मिन् विरहजनिता, का च लोकप्रसूता +
सत्त्वासत्त्वप्रथितिरकला, का च कालव्यपेक्षा ।।

स्थितावस्यामेषा स्थितिमक्रमतोत्थानरहितां
यतो युक्तो योगी व्युपरतसमाधिच्युतिरभूत् ।
अगात् साधारण्यं तदनु तिसृणां व्यक्तिषु परं,
नरो नारी क्लीबं क्व नु भवति भेदं रसलये ।।

सीताचरितम्, १० ।७०-७१

यहां सीता का हृदयस्थ निर्वेद या शम का स्थायी भाव है, आत्म देवस्वरूप (परमात्म स्वरूप) आलम्बन विभाव है, वाल्मीकि का शान्त पवित्राश्रम, निर्वासनजन्य अपमान राम, जनक, कौशल्यादि माताओं की उपस्थिति उद्दीपन विभाव है । सीता के रोमांच उनके परमानन्द की अवस्था अनुभाव है । निर्वेद हर्षादि संचारी भाव है । इस प्रकार आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव, संचारिभाव आदि से परिपुष्ट सीता का हृदयस्थ निर्वेद शान्त रस की पराकाष्ठा पर पहुंच चुका है ।

शृङ्गार रस —

तनयवदनमुक्तिकन्दमुक्ता-छविहृतचित्तचका विदेहजा सा ।
निरवदहनशोषितां स्वदेहे पु-कन्टक-भरतां पराजुवाह ।।

हृदयमपि वशीकृतमुर्वी भगवति रामपदाभिधीयमाने ।
मधुरस मनोभवेन सौम्या वरणिसुता वरणी ममारणी च ।।

सीताचरितम्, ६।३९-४१

यहां सीता की राम के प्रति हृदयस्थ रति स्थायी भाव है । राम

आलम्बन विभाव है । वाल्मीकि का एकान्ताश्रम, कुश एवं लव में उनके पिता राम की आकृति और कान्ति को देखना उद्दीपन विभाव है । सीता का राम के ध्यान में रह रह कर मग्न होना, भूमिशयन करना आदि अनुभाव हैं । स्मृति, विषाद, उत्सुकता आदि संचारी भाव हैं । इस प्रकार आलम्बन, उद्दीपन , अनुभाव एवं संचारिभावों से राम के प्रति सीता की हृदयस्थ रति परिपुष्ट होती हुयी विप्रलम्भ शृङ्गार रस की पराकाष्ठा में पहुंच चुकी है ।

कहना न होगा कि इसी प्रकार सीताचरितम् के विविध सर्गों में ऐसे अनेक स्थल हैं जहां विप्रलम्भ शृङ्गार की धारा मानवीय संवेदना को स्पर्श करती हुयी प्रवाहित हो रही है ।[1]

करुण रस—

> रामचापमवनस्य वेदलीमुद्गताम् कुशरीक्षमाणाया ।
> सीतया प्रियमवीक्ष्य सा पुरी सुविकेव नयने व्यमाच्यत ।।
>
> स्वस्य जीवनमहस्य जीवितं तां विसृज्य पुरमि रघूद्वहः ।
> दृश्यते स्म बत निष्परिच्छदो यूपखण्ड इव वेदिकाच्युतः ।।

सीताचरितम्, ३।५८-६१

यहां राम एवं सीता का हृदयस्थ शोक करुण का स्थायी भाव है, शोचनीय सीता राम के लिये आलम्बन विभाव है । शोचनीय सीता की हृदयविदारक रोदन आदि दारुण अवस्था तथा इस अवस्था में उनका निर्वासन आदि उद्दीपन विभाव राम और सीता दोनों का रोदन, दोनों की विवर्णता,

---

१- सीताचरितम्, ३। २७-३६
,, ३। १-२०
,, ६, आदि

राम का भूमि का आश्रय लेना आदि अनुभाव है । निर्वेद, ग्लानि, विषाद, चिन्ता, जड़ता आदि संचारि भाव है ।

इस प्रकार यहां उपर्युक्त आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव, संचारिभावों से परिपुष्ट होता हुआ राम और सीता का हृदयस्थ शोक अथवा पर्यवसायी रूप से राम का शोक करुण रस की पराभूमि में पहुंच चुका है ।

कहना न होगा सीताचरितम् के प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम आदि सर्गों में ऐसे अनेक स्थल हैं जहां पत्थर को भी पिघला देने वाले करुणाद, मिश्रित सैकड़ों भरने यहां वहां बह रहे हैं[1] ।

रौद्र रस —

अपि मुद्रयितुं जनाननं स्वसती-त्यागविधि: किमौचिती ।
नियतं विधुमुर्विमप्यसावकृताङ्कां न कदापि सेवताम् ।।

यदि लोकमतेन केवलं क्रियतां धर्मविनिर्णयो बुधै: ।
तदधर्म इति भवत्तपा श्रुतिरेवास्तु निष्टनि:कृता ।।

-सीताचरितम्, ४।४०,४१

यहां उर्मिला का हृदयस्थ क्रोध रौद्र का स्थायी भाव है । राष्ट्रपति राम उनके परिषद् के सदस्य तथा उनकी प्रजा आलम्बन विभाव है । आसन्न प्रसवा सीता का निर्वासन रूप धर्म विरुद्ध आचरण आदि उद्दीपन विभाव है,

---

१- सीताचरितम्, १।२६, ३।२२-२७, ३४-३७, ४०-४५, ५३-६३ ४।१-८, २३-३०, ५६-७१, ५ । २१-२४ आदि ।

उर्मिला का राष्ट्रपति राम आदि को लक्ष्य करके उनकी भर्त्सना करना आदि अनुभाव है । उर्मिला की उग्रता, आवेगादि संचारिभाव है ।

इस प्रकार उपर्युक्त रूप में उर्मिला का हृदयस्थ क्रोध स्थायी भाव, आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव एवं संचारि भावों से परिपुष्ट होता हुआ रसवत्ता की पराकाष्ठा में पहुंचकर रौद्ररस में परिणत हो चुका है ।

यही नहीं सीताचरितम् के नवम् सर्ग में जहां वाल्मीकि सीता - निर्वासन से क्षुब्ध होकर राम, जनक आदि सभी के समक्ष क्रोध युक्त उपालम्भ व्यक्त करते हैं, वहां भी रौद्र रस देखा जा सकता है[1]।

वीर रस—

> क्व रथा: क्व च मतंगा: क्व हया: क्व च पत्तय: ।
> इति यत्र न योद्धारोऽबुध्यन्त कृतबुद्धय: ।।
> सुप्तो तादात्म्यमापन्न आत्मनीन्द्रियवत् तत: ।
> कुम्भकास्त्रोदयात् तत्र सैन्यमास गतासुवत् ।।
> — सीताचरितम्, ८।२६-३३

यहां चन्द्रकेतु एवं उनके सैनिकों तथा दूसरी ओर कुश एवं लव के हृदयस्थ उत्साह वीर रस का स्थायी भाव है । कुश लव तथा चन्द्रकेतु एवं उनकी सेना परस्पर एक दूसरे के आलम्बन विभाव हैं । विपक्षी सैनिकों का परस्पर शर संधान अस्त्र संपात, ललकार, युद्ध स्थल आदि उद्दीपन विभाव हैं । योद्धाओं का अपने-अपने रथ, घोड़े, हाथी तथा सहायक पदाति सैनिकों का अन्वेषण आदि अनुभाव सैनिकों के गर्व, स्मरण, तर्क आदि संचारि भाव हैं ।

१- सीताचरितम्, ६। २३-२७

इस प्रकार यहां उत्साह स्थायी भाव आलम्बन, उद्दीपन अनुभाव, विभाव एवं संचारिभावों से परिपुष्ट होता हुआ वीर रस की परिणति को प्राप्त हो चुका है। इसी प्रकार अष्टम सर्ग में ऐसे अन्य अनेक स्थल हैं जहां वीर रस का सफल परिपाक हुआ है[१]।

वात्सल्य रस —

> तस्मिन् क्षणे लक्ष्मणसंभवोपि ज्येष्ठां सुवं प्राप तथा शिरः स्वम् ।
> ननाम तत्पादकुशेशयाभ्यामवाप्यसादृश्यविमाननाभ्याम् ॥
>
> प्रियस्य पुत्रं निजदेवरस्य सा चापि नप्तारमिवाशु मुग्धिन ।
> शिशिङ्‌घ, किन्त्वस्य तपोवनीयान्यपाचिकीर्णान्न रजांसि तस्मात् ॥
>
> — सीताचरितम्, १०।३०,३३,३४, ३६

यहां सीता का पुत्र कल्प चन्द्रकेतु विषयक स्नेह, वात्सल्य का स्थायी भाव है। चन्द्र केतु आलम्बन विभाव है। चन्द्रकेतु का बढ़ीनि मां वैदेही को प्रणाम करना तथा उनके चरण तीर्थ को न छोड़ना आदि उद्दीपन विभाव हैं, वैदेही द्वारा चन्द्र केतु के सिर का सूंघा जाना,उसके ललाट पर तपोवन की धूलि से तिलक करना, उसका एक क्षण स्पर्श आदि अनुभाव हैं।

१- सीताचरितम्, ११८। ११-१२

सीता के औत्सुक्य, इत्यादि संचारि भाव हैं। इस प्रकार सीता का हृदयस्थ चन्द्र केतु विषयक स्नेह आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव, संचारी भावों से परिपुष्ट होकर वात्सल्य रस की चरम भूमि में पहुंच चुका है।

इसी प्रकार सीताचरितम् के प्रथम, षष्ठ, अष्टम, नवम एवं दशम सर्गों में अन्य अनेक ऐसे स्थल हैं जहां वात्सल्य रस का हृदयस्पर्शी सफल निर्वाह हुआ है।[१]

निष्कर्षत: सीताचरितम् महाकाव्य में अंगिरस के रूप में शान्त रस और अंगभूत रसों के रूप में शृङ्गार, करुणा, रौद्र, वीर, वात्सल्यादि अन्य रसों का भी यथा स्थल सफल परिपाक हुआ है। पद्मभूषण पंडितराज रामेश्वर शास्त्री द्रविड़ ने भी सीताचरितम् में शान्तरस को अंगीरस स्वीकार किया है तथा अन्य रसों को अंगभूत।

१- सीताचरितम्, १।१२-२४, ६।४६-७१, ८। ६४-६६
९।५७, ५८, १०।१-७, १०-१४
आदि।

<u>अलंकार विवेचन -</u>

वस्तुत: अलंकार शब्द अलम् `डु कृञ् करणे` धातु से `भाव`[1] अथवा `करण`[2] अर्थ में घञ् (अ) प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है -- भावात्मक `अलङ्कृति` (शोभा) अथवा `आभूषण`। इन्हीं दोनों अर्थों को दृष्टि में रखकर `अलंकार` की निरुक्ति भी दो प्रकार से की जाती है --

१- `अलङ्करोति इति अलङ्कार:` अथवा अलङ्कृतिरलंकार: ।

२- `अलङ्क्रियते अनेनेति अलङ्कार: ।

इन दोनों में प्रथम निरुक्ति भावपरक है जिसके अनुसार अलंकार-परिधि में काव्य का समग्र सौन्दर्य तथा उसके उत्कर्षक समस्त हेतु आ जाते हैं। इस प्रकार इस व्युत्पत्ति के अनुसार अलंकार सौन्दर्य भी है और उसका उत्कर्षक हेतु भी । अतएव इस मान्यता के अनुसार काव्य-सौन्दर्य, इसके उत्कर्षक हेतु, गुण, रीति, वृत्ति , प्रवृत्ति आदि सारे काव्य तत्त्व अलंकार की परिधि में अन्तर्भुक्त हो जाते हैं। किन्तु ध्यातव्य है कि अलंकार सौन्दर्य और उसका उत्कर्षक हेतु कार्य-कारण न्याय से एक साथ कैसे हो सकता है ? यही कारण है कि काव्यशास्त्रकारों ने इस निरुक्ति को अधिक मान्यता नहीं दी है । दूसरी व्युत्पत्ति करण प्रधान है, जिसके अनुसार अलंकार काव्य के स्वाभाविक शोभा का अभिवर्धक अथवा उसका उत्कर्षक हेतु है । इस मान्यता के अनुसार अलंकार की परिधि में काव्य के दृष्टि से उसके केवल अनुप्रास आदि शब्दालंकार एवं उपमादि अर्थालंकार आते हैं तथा न लोक की दृष्टि से कटक कुण्डल आदि शरीर के शोभाभिवर्धक स्वर्णादिनिर्मित आभूषण । आचार्य कुन्तक ने भी स्पष्ट रूप से इसी तथ्य की ओर संकेत करते हुये काव्य की दृष्टि से अलंकार[3] की परिधि में <u>अनुप्रासोपमादि शब्दार्थालंकारों</u> को ही स्वीकृति दी है । प्राचीन एवं आधुनिक

१- भावे -- अष्टाध्यायी, ३।३।१८।

२- अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् । - वही, ३।३।१९

३- अलङ्कृतिरलंकार: करणव्युत्पत्त्या पुनरलङ्कार शब्दोऽयमुपमादिषु वर्तते ।
- `कुन्तक` वक्रोक्तिजीवितम् ।

अधिकांश मानक काव्यशास्त्रमर्मज्ञों ने भी स्पष्टत: इसी तथ्य का सर्वात्मना समर्थन किया है ।

जहां तक विशुद्ध काव्यशास्त्रीय दृष्टि से अलंकार को परिभाषित करने का प्रश्न है तो यह प्रश्न भी तिलतण्डुलवत् स्पष्ट है ।

आचार्य मम्मट के मतानुसार जो काव्य के शब्दार्थ रूपी शरीर के शोभाधान द्वारा परम्परया काव्यात्मभूत रस का भी कभी-कभी उपकार करते रहते हैं । वे अनुप्रास उपमादि 'अलंकार' कहलाते हैं जैसे - हार आदि शरीर की शोभाधान द्वारा परम्परया शरीरी (आत्मा) के शोभा के गौण रूप से उत्कर्षक होते हैं[1] ।

साहित्य-दर्पणकार आचार्य विश्वनाथ का भी अभिमत है कि जो शब्दार्थ के अस्थिर धर्म होते हुये भी उसकी शोभा के उत्कर्षक हैं और परम्परया रसादि के भी उपकारक हैं वे अनुप्रासोपमादि अलंकार कहलाते हैं जैसे कटककुण्डल अंगदादि शरीर के अस्थिर धर्म होते हुये उसकी शोभा के उत्कर्षक हैं परम्परया गौण रूप से शरीरी के भी[2] ।

ध्वन्यालोककार आचार्य आनन्दवर्धन ने भी 'अङ्गाश्रितास्त्वलङ्कारा-मन्तव्या कटकादिवत्' कहकर उपर्युक्त मान्यता को भी स्वीकार किया है[3] ।

१- उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित् ।
हारादिवदलङ्कारास्तेऽनुप्रासोपमादय: ।।
- काव्यप्रकाश, ८। सू० ८७

२- शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्मा: शोभातिशायिन: ।
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलङ्कारास्तेऽङ्गदादिवत् ।।
- साहित्यदर्पण, १०।१

३- तमर्थमवलम्बन्ते येऽङ्गिनं ते गुणा: स्मृता: ।
अङ्गाश्रितास्त्वलङ्कारा: मन्तव्या: कटकादिवत् ।।
- ध्वन्यालोक, २।६

इस प्रकार सर्व-सम्मत रूप से जो मुख्य रूप से काव्य के शब्दार्थ रूपी शरीर की शोभा के उत्कर्षक हेतु हैं किन्तु पुन: उसके द्वारा परम्परया काव्यात्म स्थानीय रसादि का भी कभी-कभी उत्कर्ष करते रहते हैं ऐसे अनुप्रासादि शब्दालंकार तथा उपमादि अर्थालंकार शब्दार्थ-शरीरी काव्य के 'अलंकार' कहलाते हैं ।

सौन्दर्य कवि और कविता का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है । कवि की जिस उर्वरा हृदयभूमि से कविता का जन्म होता है, वह सौन्दर्य से सर्वथा परिप्लावित होती है । सौन्दर्य से परिप्लावित होने के कारण ही कवि सदैव सौन्दर्यान्वेषी हुआ करता है । साथ ही उस सौन्दर्य के उत्कर्षक हेतुओं पर भी कवि दृष्टि सदैव अनुसन्धान करती हुयी चलती रहती है, यही कारण है कि सौन्दर्यान्वेषी कवि की कविता जहां एक ओर काव्य-सौन्दर्य से समृद्ध होती है वहीं दूसरी ओर उस सौन्दर्य के उत्कर्षक हेतु अलंकारादि से भी ।

काव्य यदि कवि की सौन्दर्यानुप्राणित रसात्मक अनुभूतियों की समग्र अभिव्यंजना है तो अलंकार उसका अविभाज्य अंग । जब कोई सफल कवि रचना करने बैठता है तो उसकी रसात्मक अनुभूतियों की अभिव्यंजना के प्रवाह में अलंकार स्वयं खिंचते चले जाते हैं किन्तु इसका अनुभव उसे कविता की सर्जना के क्षणों में नहीं अपितु उसके बाद ही होता है जब उसे पूर्ण कर पुन: पढ़ता है तब उसे यह अनुभव होता है कि अमुक स्थान पर अमुक अमुक अलंकार है जो काव्यगत स्वाभाविक सौन्दर्य का सहज रूप से उत्कर्ष कर रहे हैं । इस कोटि के अलंकार अपृथग्यत्ननिर्वर्त्य अथवा अयत्नज कहलाते हैं । ऐसे ही अयत्नज अलंकार काव्य की दृष्टि से प्रशस्त अतएव ग्राह्य होते हैं[१] । परन्तु इसके विपरीत जब कोई कवि यत्नपूर्वक अपनी कविता में अलंकारों की योजना करता है तो ऐसे यत्नज अलंकारों से काव्य की स्वाभाविक शोभा की अभिवृद्धि तो कौन कहे अपितु

१- रसाक्षिप्ततया यस्य बन्धः शक्यक्रियो भवेत् ।
अपृथग्यत्न निर्वर्त्यः सोऽलङ्कारो ध्वनौमतः ।।
- ध्वन्यालोक, २।१६

उसकी अपवृद्धि होने लगती है । ऐसे अलंकार यत्नज या प्रयत्न साध्य होने के कारण निन्द्य अतएव त्याज्य होते हैं ।

जहां तक सीताचरितम् महाकाव्य में अलंकारों के प्रयोग की सफलता असफलता का प्रश्न है तो इस दृष्टि से सीताचरितकार ने जिन अलंकारों का प्रयोग किया है वे प्रयत्न साध्य न होकर सहजरूप से ही काव्य-सर्जना के क्षणों में आये हैं । इसलिये काव्य के स्वाभाविक सौन्दर्य की अभिवृद्धि के उत्कर्षक होने के कारण सीताचरितम् में अलंकारों का प्रयोग काव्यशास्त्रीय दृष्टि से सर्वथा सफल कहा जा सकता है । सीताचरितम् महाकाव्य में कवि ने जिन अनेक अलंकारों की छटा बिखेरी है उनमें यमक, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, व्यतिरेक, अपह्नुति, प्रतिवस्तूपमा, अर्थान्तरन्यास, दृष्टान्त, दीपक, निदर्शना, पर्यायोक्त, आदि अलंकार विशेष रूप से विवेचनीय हैं ।

यमक -

लक्षण --

अर्थे सत्यर्थभिन्नानां वर्णानां सा पुन: श्रुति: । यमकम् ।।-का०प्र०६।११६ सूत्र

आचार्य मम्मट के अनुसार भिन्न-भिन्न अर्थों वाले सार्थक वर्णों की उसी क्रम से पुन: श्रुति (श्रवण अथवा पुनरावृत्ति) 'यमक' नामक शब्दालंकार कहलाता है ।[1] आचार्य विश्वनाथ के अनुसार भी भिन्न-भिन्न अर्थों वाले सार्थक स्वर व्यंजन समुदाय की उसी क्रम में आवृत्ति होने को 'यमक' कहते हैं ।[2]

दूसरे शब्दों में जिस स्वर व्यंजन समुदाय की आवृत्ति हो उसका एकांश

१- काव्य प्रकाश, ६। ११६

२- सत्यर्थे पृथगर्थाया: स्वरव्यंजन संहते:
क्रमेण तेनैवावृत्तिर्यमकं विनिगद्यते ।।
- साहित्यदर्पण

अथवा सम्पूर्णांश यदि निरर्थक भी हो तो कोई आपत्ति नहीं है किन्तु यदि उसका कोई एक अंश या सर्वांश सार्थक है तो आवृत्तांश निश्चित रूप से भिन्नार्थक होना चाहिये । क्योंकि समानार्थक शब्दों की आवृत्ति 'यमक' नहीं हो सकती है । ऐसी स्थिति में यमक के उदाहरण में चार स्थितियां हो सकती हैं -- कहीं दोनों पद सार्थक हो सकते हैं, कहीं दोनों पद निरर्थक हो सकते हैं । कहीं एक पद सार्थक और दूसरा निरर्थक हो सकता है । पुनश्च 'यमक' में आवृत्ति उसी क्रम से होनी चाहिये जिस क्रम में पूर्ववर्ती पद प्रयुक्त हुआ हो ।

उदाहरण -

स जनको जनकोपपराङ्•मुखो दुहितरं हितर(ञ्जि)क्त-मुत्तलाम् ।

जन-मनो नमनोदितपुण्यतामृतमवेक्ष्य बभूव कृतक्रियः ।।

सीताचरितम्, १०।६१

यह पदावृत्त यमक का उदाहरण है । यहां जनको-जनकोप में जनक की दो बार आवृत्ति हुयी है जिनमें प्रथम जनक (पिता) सार्थक और द्वितीय जनक निरर्थक है क्योंकि यह स्वतन्त्र न होकर 'जनकोप' का एक अंश है इसी प्रकार 'जन-मनो-नमनो' में नमन शब्द की दो बार आवृत्ति हुयी है जिसमें प्रथम नमन निरर्थक और द्वितिय नमन एकांश में ही सार्थक है क्योंकि यह नमनोदित पुण्यतामृतम् का एकांश है । पुनश्च 'हितरं हितर ञ' में 'हितर' की दो बार आवृत्ति हुयी है जिनमें दोनों ही हितर निरर्थक है । क्योंकि इनमें प्रथम तो 'दुहितरम्' का एकांश है और दूसरा 'हितरञ्जित मृत्तलाम्' का एकांश है । इस प्रकार यहां पदावृत्त 'यमक' का उदाहरण पूर्णत: स्पष्ट है ।

इसी प्रकार दशम सर्ग में यमक अलंकार के अनेक हृदयावर्जक उदाहरण उपलब्ध होते हैं ।

उपमा -

लक्षण -

साधर्म्यमुपमा भेदे ।। काव्यप्रकाश ।।

साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्यउपमा द्वयोः ।। साहित्यदर्पण ।।

आचार्य मम्मट के अनुसार उपमान और उपमेय में परस्पर भेद होने पर भी उनके साधर्म्य का वर्णन 'उपमा' अलंकार कहलाता है[1]। आचार्य विश्वनाथ का मत है कि एक ही वाक्य में दो पदार्थों के वैधर्म्य रहित तथा वाच्य सादृश्य को उपमा कहते हैं[2]।

इस प्रकार आचार्य मम्मट आदि मानक काव्य शास्त्रकारों ने मे जहां एक ओर उपमा का प्रयोजक साधर्म्य को मानते हैं वहीं विश्वनाथ आदि कुछ आचार्य वैधर्म्य रहित वाच्य सादृश्य को उपमा का प्रयोजक मानते हैं। ऐसी स्थिति में ध्यातव्य है कि जब वैधर्म्य रहित (अवैधर्म्य) अर्थात् साधर्म्य गर्भित साम्य ही उपमा का प्रयोजक हो तो स्पष्ट है कि यहां स्वयं साम्य का भी-प्रयोजक साधर्म्य ही तो हुआ।

ऐसी स्थिति में साधर्म्य को ही सीधे उपमा का ही प्रयोजक हेतु क्यों न माना जाय ? यही कारण है कि अधिकांश आचार्य साधर्म्य को ही 'उपमा' का प्रयोजक अन्तिम रूप से स्वीकार करते हैं, जिसके प्रथम-उद्भावना का श्रेय मम्मट को नहीं अपितु आचार्य उद्भट (७७५-८२५ ई० पू०) को है। जिन्होंने काव्यालंकार सार संग्रह में सर्वप्रथम उपमा का प्रयोजक साधर्म्य को बताकर इसके सत्रह (अथवा २१) भेदों का स्पष्टत: उल्लेख किया है।

उपमा के सामान्यत: दो भेद स्वीकार किये जाते हैं 'पूर्णोपमा' और 'लुप्तोपमा' इनमें पूर्णोपमा वहां होती है जहां उपमेय उपमान साधारण

१- काव्यप्रकाश

२- साहित्यदर्पण

और वाचक शब्द चारों ही शब्दत: उपात्त होते हैं । परन्तु जहां उपमेय आदि चारों में से किसी एक अथवा तीन तक की शब्दत: उपस्थिति नहीं होती है वहां `लुप्तोपमा` मानी जाती है । पूर्णोपमा और लुप्तोपमा के भेदों में विस्तार करके उद्भट ने १७ व २१, मम्मट ने २५, विश्वनाथ ने २७, जगन्नाथ ने ३२ अथवा १७० तक भेद स्वीकार किये हैं ।

उदाहरण --

> उदीर्य तर्कैर्विशदां सरस्वतीं सभामिमां धातुसुत: सुमेधसाम् ।
> उपाविशत् सूनृतवाग्, बृहस्पतिर्यथा सुधर्मां त्रिदिवे दिवौकसाम् ।।
> सीता०, १।५६

यह उदाहरण `वाक्यगा श्रौतीपूर्णोपमा` का है । यहां धातु सुत: (कुश) सुमेधसाम् (विद्वान लोग) सभा आदि क्रमश: उपमेय पद हैं और इनके उपमान हैं क्रमश: बृहस्पति:, दिवौकसाम् (देव गण) त्रिदिवे आदि । `तर्कै विशदां सरस्वतीम्` अर्थात् वाग्मिता साधारण धर्म है, यथा वाचक शब्द है -

> निशम्य दूतेन निवेदिताक्षरं प्रियातिरस्कारमयं च वाग्विषाम् ।
> घनायसाघातमिवाप्य वारिमुर्विदीर्णं कदा बत सोऽपि मूर्छित: ।।
> सीता०, २।२१

अर्थात् भगवान राम का कमल जैसा हृदय भी दूत के द्वारा कथित प्रिया तिरस्कारमयी अतएव लोहे के घन के आघात जैसी उस विषवाणी को (वाग्विषा) सुनकर विदीर्ण हो गया और वे भी मूर्छित हो गये ।

यह उदाहरण `समासगावाचकलुप्तोपमा` का है । यहां `वाग्विषाम्` समस्त पद में `प्रियातिरस्कारमयी `वाणी की उपमा `विष' से दी गई है जिसमें वाचक शब्द `इव` का लोप है जिसका स्पष्टीकरण यों है — `वाग्विषम इव` इति वाग्विषाम् (उपमित कर्मधारय समास) उपमेय वाग् और उपमान विष तो शब्दोपात्त ही हैं, मूर्छित होना साधारण धर्म भी शब्दोपात्त है, इस प्रकार यहां इस श्लोक में उपमेय वाग् उपमान विष,

मूच्छित होना साधारण धर्म आदि शब्दोपात्त हैं किन्तु वाग्विषामृ पद में उपमित कर्मधारय समास होने के कारण वाचक शब्द `इव` का लोप हो जाने से यह `समासगत वाचक लुप्तोपमा` का उदाहरण बन जाता है ।

इसी प्रकार सीताचरितम्[1] में आद्यन्त उपमा के विविध भेदों के भी उदाहरण उपलब्ध हैं ।

रूपक -

लक्षण—

रूपकं रूपितारोपो विषये निरपह्नवे ।। साहित्यदर्पण

तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः ।। काव्यप्रकाश

आचार्य मम्मट के अनुसार उपमान और उपमेय का जिनका भेद प्रसिद्ध हुआ करता है, उनका सादृश्यातिशयवश, जो अभेद वर्णन है उसे `रूपक` अलंकार कहते हैं[2] ।

विश्वनाथ का भी यही मत है कि अपह्नव रहित (निषेधशून्य) विषय (उपमेय) में रूपित के आरोप को रूपक कहते हैं[3] ।

१- सीताचरितम्, १।४,५,८,६,२१, २६,२८,३१,३६,४०,४१,४३,४४,४६,
४७,४६
२।२,८,१६,२१,३६-३८,४०-४२,४६,५०,५३,५६
३।१, १६,५४,
४।७२, ५।२-५, ७।४२-५४,६१
८।२,६,७,१०,११,१४,३७,७१
६।२,३,८,१८,३६,५०-५२,
१०।३-५ आदि ।

२- तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः ।।
- काव्यप्रकाश १०।१३८ सूत्र

३- रूपकं रूपितारोपो विषयेनिरपह्नवे ।।
- सा० दर्पण

आचार्य मम्मट ने रूपक के सांग रूपक, निरंग रूपक, माला रूपक और परम्परित रूपक जैसे स्पष्ट भेदों का विवेचन किया है पुनश्च इनमें सांग रूपक के समस्त वस्तु-विषयक और एकदेशविवर्ति के भेद से दो भेद तथा परम्परित रूपक के श्लिष्ट एवं अश्लिष्ट के भेद से दो भेद बताये हैं ।

उदाहरण —

नयस्तदर्थं किल दान-सामनी सभेददण्डे समुपास्य योज्यते ।
पदेषु तेष्वेव हि सृष्टिरूपिणी प्रवृत्तिशीला सुरभि: प्रवर्तते ।।

सीता०, १।५१

अर्थात् पुरुषार्थ के लिये `नय` की योजना की जाती है और उसके लिये साम, दान, भेद और दण्ड को अपनाया जाता है । सृष्टि रूपी प्रवृत्तिधर्मा सुरभि (कामधेनु) इन्हीं चार पैरों पर खड़ी होकर चला करती है ।

स्पष्ट है कि यहां सृष्टि पर कामधेनु का आरोप किया गया है तथा साम, दाम, भेद और दण्ड को इसके चार चरण बताये गये हैं । इस प्रकार यहां समस्त वस्तुविषयक सांगरूपक अलंकार की स्थिति स्पष्ट है ।

आवयोर्हृदयदुग्धसिन्धुनोत्थापितो यमनुरागनीरद: ।
दुर्दिनेष्वपि चिराय तदामौ विरहतापहरणाय चाक्षमाम् ।।

सीता०, ३।१८

अर्थात् निर्वासन के लिये उपस्थित सीता महाराज राम से कहती हैं कि हमारे हृदयरूपी दुग्धसिन्धु द्वारा उत्थापित यह अनुराग रूपी नीरद इन दुर्दिनों में भी विरह के सन्ताप को चिरकाल के लिये दूर करने में समर्थ रहेगा ।

स्पष्ट है कि श्लोक में एक देश विवर्ति नामक सांगरूपक अलंकार है । कारण, यहां अनुराग उपमेय (प्रेम) पर नीरद उपमान का आरोप किया गया है जो शब्दत: उपात्त है । किन्तु दुर्दिन का आरोप्यमाण ग्रीष्म ऋतु और विरहताप हरण का आरोप्यमाण वर्षण अर्थत: आक्षिप्त है । इस प्रकार

यहां कुछ आरोप्यमाण शब्दत: उपात्त हैं और कुछ अर्थत: आक्षिप्त, अतएव यहां 'एक देश विवर्ति सांगरूपक' की स्थिति पूर्णत: स्पष्ट है ।

यही नहीं सीताचरितम् में रूपक के विविध उदाहरण यत्र तत्र बिखरे पड़े हैं[1]।

<u>उत्प्रेक्षा -</u>

लक्षण -

भवेत् सम्भावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना ।। सा०दर्पण
सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत् ।। का०प्रकाश

आचार्य मम्मट के अनुसार उपमेय (प्रकृत) की उपमान (सम) के साथ सम्भावना (उत्कटैक कोटिक सन्देह) उत्प्रेक्षा अलंकार कहलाता है[2]। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार भी प्रकृत की सम या अप्रस्तुत वस्तु के रूप में जो सम्भावना की जाती है वही उत्प्रेक्षा अलंकार है[3] ।

आचार्य विश्वनाथ ने उत्प्रेक्षा के छप्पन भेदों का उल्लेख किया है और उत्प्रेक्षावाचक शब्दों की संगणना भी की है ।

१- सीता० - १। १६, २२, २३, २७, २६, ३५, ३६, ५१-५५, ६८
,, - २।६,२१, ५५, ३।१, ६८, ६३ आदि ।

२- सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतिस्य समेन यत् ।
- काव्य प्रकाश १० । १३६ सूत्र

३- भवेत सम्भावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना ।।
- सा० द०

उदाहरण -

> अथ रघुपतिकार्यवात्मदेवस्य साक्ष्या -
> झटिति विमलचेता निश्चिकाय स्वधर्मम् ।
> वदितुमथ च धैर्यात् किञ्चिदाकुञ्चिताक्षी
> कृततनुरिव काशी प्रक्रमं सा चकार ।।
> सीता०, २ ।६०

अर्थात् निर्वासन के लिये उपस्थित वैदेही जो भगवान राम की विमल चित्त वाली पत्नी है, अपने आत्म देवता की साक्षी पर अपने करणीय कर्तव्य का निश्चय किया और किञ्चित आकुञ्चित नेत्रों के साथ उन्होंने जब धैर्यपूर्वक बोलना आरम्भ किया तो उस समय ऐसा लगा कि मानो शरीर धारण करके साक्षात काशी ही बोल रही है ।

यह श्लोक मुख्य रूप से उत्प्रेक्षा का ही उदाहरण है न कि उपमा का । क्योंकि अचेतन काशी नगरी का शरीर धारण करके चेतन के समान बोलना, लोक-व्यवहार में सर्वथा असिद्ध है । और जब तक 'यह सिद्ध नहीं' होता तब तक अचेतन का बोलना शील के रूप में सम्भव न होने से उपमा की स्थिति भी नहीं बन सकती है । ऐसी स्थिति में अचेतन काशी को शरीर रूप धारण कराकर बोलने की उत्प्रेक्षा ही करायी जा सकती है । फलत: यहां श्लोक में पर्यवसायी रूप में उत्प्रेक्षा अलंकार ही स्वीकार्य होना चाहिये न कि उपमा ।

इसी प्रकार उत्प्रेक्षा के अन्य उदाहरण भी सीताचरितम् में अनेकत्र उपलब्ध होते हैं[१]।

१- सीताचरितम्, १।१५, ३७, ४०, ४२, ४५, ५८, ६२, ६८
२।६, २०, २२,६०,
३।५५, ७ । ५४ आदि ।

अतिशयोक्ति -

लक्षण -

सिद्धत्वेऽध्यवसायस्यातिशयोक्तिर्निगद्यते[1] ।।

आचार्य विश्वनाथ का मत है अध्यवसाय (उपमान के द्वारा उपमेय का निगरण) के सिद्ध होने पर अतिशयोक्ति अलंकार होता है । पुनः इन्होंने इसके पांच भेद बतलाये हैं -- (१) भेद में अभेद, (२) सम्बन्ध में असम्बन्ध, (३) अभेद में भेद, (४) असम्बन्ध में सम्बन्ध,(५) कार्य-कारण के पौर्वापर्य का अत्यय या अनियम । किन्तु आचार्य मम्मट ने अतिशयोक्ति के केवल चार भेद स्वीकार किये हैं, उपमान के द्वारा उपमेय का निगरण होने पर (२) प्रस्तुत अर्थ का अन्य रूप में से वर्णन (३) यदि के समानार्थक चेद आदि शब्द लगाकर कल्पना करना और चौथा कार्य-कारण पौर्वापर्य का विपर्यय[2] ।

स्पष्ट है कि विश्वनाथ की अतिशयोक्ति का प्रथम भेद और मम्मट का प्रथम भेद, विश्वनाथ का द्वितीय भेद, मम्मट का द्वितीय भेद, विश्वनाथ का चतुर्थ भेद, मम्मट का तृतीय भेद, विश्वनाथ का पंचम भेद और मम्मट का चतुर्थ भेद एक जैसा ही है ।

१- साहित्यदर्पण

२- निगीर्याध्यवसानन्तु प्रकृतस्य परेण यत् ।
प्रस्तुतस्य यदन्यत्वं यद्यर्थोक्तौ च कल्पनम् ।।
कार्य कारणयोर्यश्च पौर्वापर्य विपर्ययः ।
विज्ञेया तिशयोक्तिः सा ।।

- काव्य प्रकाश, १० । १५२ सूत्र

उदाहरण -

> शुक एषा यथात्र दाडिमं मणिपात्रे विघृतं विमृशतु ।
> पृथुकः कलहंससंभवोऽप्ययि कह्लारदलाम्बुविद्रुमम् ।।
>
> सीताचरितम्, ४।१७

अर्थात् निर्वासन के लिये उपस्थित वैदेही से उनकी बहन उर्मिला कहती है कि दीदी मेरी इच्छा है कि यह शुक मणि की कटोरी में रखे हुए अनार के दाने उठाने लग जाय, और कलहंस का छौना भी लाल कमल की पंखुड़ी पर रखे मूंगे चुगने लगे ।

यह श्लोक अतिशयोक्ति माला का उदाहरण है जिसमें शुक उपमान के द्वारा नासिका उपमेय का मणिपात्र उपमान के द्वारा अधर उपमेय का दाडिम उपमान द्वारा दन्तद्युति उपमेय का निगरण करके भेद में अभेद रूप में अतिशयोक्ति की स्थापना की गयी है ।

इसी प्रकार पुनः श्लोक के उत्तरार्ध में भी कलहंस सम्भव (हंस-छौना) उपमान के द्वारा नासिका उपमेय का कल्हार दल उपमान (रक्त कमल) द्वारा अधर उपमेय का अम्बुविद्रुम (मूंगा) उपमान के द्वारा दन्तकान्ति उपमेय का अध्यवसाय करके भेद में अभेद रूप अतिशयोक्ति स्थापित की गयी है ।

इस प्रकार यहां माला, अतिशयोक्ति की स्थिति सर्वथा स्पष्ट है ।

इसी प्रकार अतिशयोक्ति के अन्य मानक उदाहरण भी सीताचरितम् में यत्र-तत्र देखे जा सकते हैं[१] ।

१- सीताचरितम्, २।३४, ३५, ५२

३।६२, ४।४, १४,१७ आदि ।

व्यतिरेक -

लक्षण -

उपमानाद्यदन्यस्य व्यतिरेक: स एव स: [1] ।

आचार्य मम्मट के अनुसार उपमान की अपेक्षा उपमेय का जो विशेषरूप से आधिक्यपूर्ण वर्णन किया जाता है उसे ही व्यतिरेक अलंकार कहते हैं । इस प्रकार मम्मट जहां केवल उपमेय के व्यतिरेक को ही व्यतिरेकालंकार मानते हैं वहां आचार्य विश्वनाथ उपमान की अपेक्षा उपमेय की अधिकता ~~अथवा~~ अथवा नियमत: दोनों ही प्रकार के वर्णन में व्यतिरेक अलंकार स्वीकार करते हैं [2] । आचार्य मम्मट ने व्यतिरेक की कुल चौबीस भेद स्वीकार किये हैं जबकि विश्वनाथ ने कुल अड़तालिस भेद । फिर भी सामान्य रूप से व्यतिरेक की चार प्रमुख स्थितियां स्वीकार की गयी हैं । उपमेय की उत्कृष्टता अथवा उपमान की हीनता का हेतु शब्दत: कहना, उपमेय अथवा उपमान की उत्कृष्टता का हेतु न कहना तथा उनकी अपकृष्टता का हेतु कहना, अपकृष्टता का कारण न कहना किन्तु उत्कृष्टता का कारण कहना, उत्कृष्टता तथा अपकृष्टता दोनों के ही कारण को शब्दत: न कहना ।

उदाहरण —

शरत्सु शंखा दिवसेषु भास्कर: सुधांशुरह्नो निमिषेषु दीप्यति ।
गुणाय काले{र्ष्व}सिलेषु भावनं महत्सु ते दीप्यति दीप्रमोजसा ।।

जीता० २।१२

अर्थात् राष्ट्रपति राम का गुप्तचर उनकी प्रशंसा करते हुये कहता है कि

१- काव्य प्रकाश, १०। १५८ सूत्र

२- आधिक्यमुपमेयस्योपमानान्न्यूनताथवा ।।

- साहित्यदर्पण

हे नरलोक-पालक हंस केवल शरत्काल में ही सुशोभित होते हैं, सूर्य दिन के ही समय और चन्द्र दिन डूबने पर । परन्तु आपका ओज से प्रदीप्त और पवित्र यश सदैव सुशोभित होता रहता है ।

स्पष्ट है कि यहाँ हंस, सूर्य, चन्द्र, आदि उपमानों की अपेक्षा उपमेय यश का वर्णन आधिक्यपूर्ण किया गया है । उपमान की अपकृष्टता का हेतु और उपमेय की उत्कृष्टता का हेतु भी शब्दत: कह दिया गया है, इसलिये यहाँ प्रथम कोटि के व्यतिरेक का उदाहरण उपपन्न हो जाता है ।

इसी प्रकार सीताचरितम् में व्यतिरेक के अन्य उदाहरण भी विविध स्थलों पर देखे जा सकते हैं ।

अपह्नुति -

लक्षण -

प्रकृतं यन्निषिध्यान्यत्साध्यते सा त्वपह्नुति: [1] ।।

प्रकृतं प्रतिषिध्यान्यस्थापनं स्यादपह्नुति: [2] ।।

उपमेय का निषेध करके जो उसके स्थान पर उपमान की स्थापना की जाती है उसे अपह्नुति अलंकार कहते हैं । आचार्य मम्मट और विश्वनाथ ने प्राय: ऐसा ही मत व्यक्त किया है । किन्तु अपह्नुति के भेदों के सम्बन्ध में जहाँ आचार्य मम्मट इसके शाब्दी और आर्थी दो भेद स्वीकार करते हैं तथा इन दोनों भेदों में उपमेय का निषेध पहले और उपमान का आरोप तत्पश्चात् करते हैं वहाँ आचार्य विश्वनाथ यह भी मानते हैं कि आरोप करने के पश्चात भी उसका अपह्नव किया जा सकता है । इस प्रकार विश्वनाथ आरोप के पूर्वापर भेद के आधार पर दो भेद मानते हैं । जयदेव और कुवलयानन्दकार अप्पय दीक्षित इसके अनेक भेदों की व्याख्या करते हैं जैसे - शुद्धा अपह्नुति, हेतु अपह्नुति आदि ।

१- काव्यप्रकाश, १० । १४६ सूत्र

२- साहित्यदर्पण

उदाहरण -

तदनु कपिलधेनुतां दधाना विशदरश्चामपदेशत: स्वदुग्धे: ।
अधिगत-शशि-वत्सका निशा सा भुवनघटं परिपूरयांबभूव ।।
सीता० ७।५२

अर्थात् चन्द्र वत्स को पाकर कपिला धेनु जैसी रात्रि ने किरणों के बहाने अपनी दुग्ध धाराओं से भुवन घट को लबालब भर दिया । यह उदाहरण मम्मट के अनुसार आर्थी अपहनुति का है । यहाँ उपमेय चन्द्र, रात्रि, किरण और भुवन का निषेध करके इनके स्थान पर क्रमश: वत्स, कपिलाधेनु, दुग्ध घटादि उपमानों की स्थापना की गयी है तथा यह स्थापना अपदेश (व्याज) के माध्यम से की गयी है । अत: आर्थी अपहनुति का स्वरूप यहाँ पूर्णत: स्पष्ट है ।

प्रतिवस्तूपमा -

आचार्य मम्मट के अनुसार जब एक काव्य प्रकाशकार ही साधारण धर्म उपमेय वाक्य और उपमान वाक्य दोनों में पृथक-पृथक शब्दों से कहा गया हो तो वहाँ प्रतिवस्तूपमा अलंकार होता है[1], साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ ने भी प्राय: ऐसा ही मत व्यक्त किया है[2] । परन्तु आचार्य मम्मट जहाँ साधर्म्य मूलक प्रतिवस्तूपमा को स्वीकार करते हैं वहाँ विश्वनाथ वैधर्म्य मूलक प्रतिवस्तूपमा को भी ।

१-.. प्रतिवस्तूपमा तु सा ।
सामान्यस्य द्विरेकस्य यत्र वाक्यद्वये स्थिति: ।।
-काव्य प्रकाश, १०।१५२ सूत्र

२- प्रतिवस्तूपमा सा स्याद् वाक्ययोर्गम्यसाम्ययो: ।
एकोऽपि धर्म: सामान्यो यत्र निर्दिश्यते पृथक् ।।
- साहित्यदर्पण

उदाहरण -

ममैव किन्त्वत्र परिच्युतात्मनस्त्रुटिर्यदेषा जनतास्त्यशिक्षिता ।
पितुः स दोषः शिशुरपि यद् विषं भिषग्गुहि वाच्यो यदि वर्धते रुजा।।
सीता० २।२६

अर्थात् राष्ट्रपति राम सीता के विषय में अशिक्षित जनता के सन्देह के कारण को स्पष्ट करते हुये कहते हैं कि यदि अशिक्षित होने के कारण मेरी जनता (सीता के विषय में) अन्यथा सन्देह करती है तो इस विषय में अपराधी मैं भी हूं, जनता अशिक्षित है तो यह त्रुटि मेरी ही है । यदि कोई शिशु विष पान करता है तो यह दोष पिता का ही होता है और यदि किसी रोगी का रोग बढ़ता है तो उसमें वैद्य की ही निन्दा होती है ।

यह उदाहरण 'मालाप्रतिवस्तूपमा ' का है । यहां श्लोक के प्रथम दो चरण का वाक्यार्थ उपमेय तथा उत्तरार्ध के दोनों वाक्यार्थ उपमान है । 'कृतापराध की स्वीकृति' साधारण धर्म है जिसे उपमेय वाक्य में 'परिच्युतात्मनस्त्रुटिः ' के द्वारा किन्तु उत्तरार्ध दोनों उपमान वाक्यों में क्रमशः 'पितुः सदोषः एवं 'भिषग्गु हि वाच्यो ' जैसे भिन्न-भिन्न पदों से कहा गया है, इस प्रकार यहां स्पष्टतः माला प्रतिवस्तूपमा है । प्रतिवस्तूपमा के अन्य उदाहरण भी सीताचरितम् में यत्र तत्र उपलब्ध हैं ।

अर्थान्तरन्यास -

जहां सामान्य का विशेष से अथवा विशेष का सामान्य से साधर्म्य या वैधर्म्य द्वारा समर्थन किया जाय वहां अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है, ऐसा मम्मट का मत है[१] । किन्तु विश्वनाथ का अभिमत है कि जहां विशेष

१- सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते ।
यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा ।। -काव्यप्रकाश १०।१६५

से सामान्य का अथवा सामान्य से विशेष के कारण द्वारा कार्य का अथवा कार्य द्वारा कारण का साधर्म्य या वैधर्म्य के माध्यम से समर्थन किया जाय वहां अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है[1]।

इस प्रकार मम्मट जहां अर्थान्तरन्यास के दो साधर्म्य मूलक और दो वैधर्म्य मूलक चार भेद स्वीकार करते हैं वहां विश्वनाथ चार साधर्म्य मूलक और वैधर्म्यमूलक को मिलाकर आठ भेद मानते हैं ।

उदाहरण–

> कतिभिरुपासितुं वने यतमानेऽनृतभाषिणः शतम् ।
> उदिते रविमण्डलेऽन्यथा प्रलपन्तो न न कौशिकोपमाः ।।
>
> सीता०, ४।४२

अर्थात् सत्य की उपासना में यत्नशील एक व्यक्ति के समक्ष सैकड़ों असत्यभाषी व्यक्ति भी यदि कुछ विपरीत कहते हैं तो वे उदित रवि मण्डल के समक्ष उलूक पक्षी ही ठहरते हैं ।

स्पष्ट है कि यहां श्लोक के पूर्वार्द्ध सामान्य का श्लोक के उत्तरार्ध विशेष से समर्थन किया गया है और यह समर्थन साधर्म्य द्वारा किया गया है । इस प्रकार स्पष्ट है कि यहां साधर्म्य द्वारा विशेष से सामान्य का समर्थन रूप अर्थान्तरन्यास अलंकार है ।

इसी प्रकार अर्थान्तरन्यास के अन्य उदाहरणों को भी सीता चरितकार ने अपने महाकाव्य में यत्र तत्र प्रयोग किया है[2]।

१- सामान्यं वा विशेषेण विशेषस्तेन वा यदि ।
कार्यं च कारणेनेदं कार्येण च समर्थ्यते ।
साधर्म्येणेतरेणार्थान्तरन्यासोऽष्टधा मतः ।। – सा० द०

२- सीताचरितम्, १।२४, २।२७,३६,४७, ५६,
४।२१, ३१, ४६, ७० आदि ।

दृष्टान्त—

लक्षण :-

दृष्टान्त: पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिबिम्बनम्[1] ।।

दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुन: प्रतिबिम्बनम्[2] ।।

काव्यप्रकाशकार के अनुसार जहां उपमान वाक्य और उपमेय वाक्य दोनों में ही उपमान उपमेय इनके विशेषण और साधारण धर्म आदि सबका बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव दिखाया गया हो वहां `दृष्टान्त' अलंकार होता है । आचार्य विश्वनाथ ने भी ऐसा ही मत व्यक्त किया है ।

उदाहरण—

क एष मार्गो निजरक्षणे रतो नृपतिं दूषयते निजाधिपम् ।
किमत्र कार्यं भगवानुषर्बुधो भवेद् दिधक्षुर्यजमानमेव चेत् ।।
सीता० २।५७

अर्थात् यह कौन सा मार्ग है कि अपनी रक्षा में निरत अपने ही राजा को अनतर दूषित ठहराये किन्तु भगवान अग्निदेव यदि यजमान को ही जलाने दौड़ें तो क्या किया जा सकता है ?

यह साधर्म्य से दृष्टान्त का उदाहरण है । यहां श्लोक का पूर्वार्द्ध उपमेय वाक्य तथा उत्तरार्द्ध उपमान वाक्य है और इन दोनों वाक्यों में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव भी है, जो अधोलिखित रूप में स्पष्ट है ।

उपमेय वाक्य	उपमान वाक्य
क एष मार्गो	किमत्र कार्यम्
(`यदि' आक्षिप्त)	चेत्

१- काव्यप्रकाश, १० ।१५५ सूत्र

२- साहित्यदर्पण :

निवर्हणे कृतकृतम्	('यजने निरतम्' आदिप्त)
निजाधिपम्	यजमानम्
('हि' आदिप्त)	एवं
जन:	भगवान् उष्णांशु:
दृश्यते	दिवक्षु: भवेत्

इसी प्रकार सीताचरितम् महाकाव्य में दृष्टान्त अलंकार के अन्य उदाहरण भी देखे जा सकते हैं ।

दीपक -

लक्षण —

सकृद् वृत्तिस्तु धर्मस्य प्रकृताप्रकृतात्मनाम् ।
सैव क्रियासु बह्वीषु कारकस्येति दीपकम् ।।[1]

अप्रस्तुतप्रस्तुतयोर्दीपकं तु निगद्यते ।
अथ कारकमेकं स्यादनेकासु क्रियासु चेत् ।।[2]

आचार्य मम्मट के अनुसार जब उपमेय और उपमान दोनों के क्रियादि रूप धर्मों का एक ही बार ग्रहण किया जाय तो 'दीपक' अलंकार होता है । इस दीपक अलंकार के क्रिया दीपक और कारक दीपक दो भेद होते हैं इनमें क्रिया दीपक वहां होता है जहां अनेक कारकों के साथ एक ही क्रियादि रूप धर्म का सम्बन्ध हो और कारक दीपक होता है जहां बहुत सी क्रियाओं का एक ही कारक से सम्बन्ध होता है । आचार्य विश्वनाथ ने भी प्राय: ऐसा ही अभिमत व्यक्त किया है ।

१- काव्यप्रकाश, सूत्र १०।१५५

२- साहित्यदर्पण :

उदाहरण—

स राघवो भूमिमचिन्त्यकार्मुको वृष्णा स वज्री च दिवं ररक्षतु: ।
परस्परं यज्ञहविभिरम्बुद-प्रबन्धेश्चापि समेधितश्रियौ ।।

सीताचरितम, २।३

अर्थात् वह महाराघव राम अपना अचिन्त्य धनुष लेकर भूमि की और देवराज इन्द्र अपना वज्र लेकर द्यु लोक की रक्षा एक साथ कर रहे थे, राम इन्द्र को यज्ञ हवि प्रदान करते थे और इन्द्र राम के मेघों की वृष्टि । इस प्रकार दोनों की श्री वृद्धि होती जा रही थी ।

स्पष्ट है कि यहां श्लोक के पूर्वार्द्ध में `स राघव:`, स वज्री, आदि अनेक कारकों का `ररक्षतु:` क्रिया रूप एक ही धर्म से सम्बन्ध है । फलत: यहां क्रिया दीपक अलंकार का उदाहरण स्वत: सिद्ध हो जाता है ।

इसी प्रकार दीपक अलंकार के अन्य उदाहरण भी सीताचरितम् के विविध सर्गों में यत्र तत्र उपलब्ध होते हैं ।

निदर्शना—

लक्षण :-

सम्भवन् वस्तुसम्बन्धोऽसम्भवन्वाऽपि कुत्रचित् ।
अभवन् वस्तुसम्बन्ध उपमापरिकल्पक: निदर्शना[१] ।।

मम्मट के अनुसार जहां वस्तुओं (वाक्यार्थों) का परस्पर सम्बन्ध आपातत: असम्भव होते हुये भी उपमा में पर्यवसित हो जाय वहां निदर्शना अलंकार होता है । विश्वनाथ के अनुसार जहां वस्तुओं या वाक्यार्थों का परस्पर सम्बन्ध सम्भव या असम्भव होते हुये उनके बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव का बोध हो वहां निदर्शना होती है ।

१- काव्यप्रकाश, १०। १४८

इस प्रकार मम्मट जहां केवल असम्भव वस्तुओं के परस्पर असम्भव सम्बन्ध को उपमा में परिणत होने पर निदर्शना मानते हैं वहां विश्वनाथ उनके असम्भव सम्बन्ध को भी उसी रूप में स्वीकार करते हैं ।

उदाहरण–

भवति विरलसंहतेः सदैव द्युतिमतोऽपि जनस्य शत्रुभिः ।
इति वददिव दीपकं तमांसि शिरसि बभार रवौ गते स्तगर्मे ।।
सीता०, ७।५०

अर्थात् 'तेजस्वी व्यक्ति यदि संघ हीन हो जाय तो उस पर भी शत्रु का आक्रमण हुये बिना नहीं रहता ' यही कहता हुआ सूर्य के डूब जाने पर दीपक अपने शिर पर अन्धकार धारण करने लगा ।

यह उदाहरण वाक्यार्थ निदर्शना का है ।

यहां दीपक और अन्धकार का परस्पर सम्बन्ध असम्भव होते हुये भी उपमा – में पर्यवसित है । फलतः यहां वाक्यार्थ निदर्शना की स्थिति पूर्णतः स्पष्ट है ।

निदर्शना के अन्य प्रशस्त उदाहरण भी सीताचरितम् के अन्य सर्गों में उपलब्ध होते हैं ।

पर्यायोक्त–

लक्षण –
पर्यायोक्तं यदा भंग्या गम्यमेवाभिधीयते ।।[1]
पर्यायोक्तं विना वाच्यवाचकत्वेन यद्वचः ।।[2]

जहां व्यंग्यार्थ को सीधे न कहकर प्रकारान्तर से अभिधा द्वारा ही

१- साहित्यदर्पण
२- काव्यप्रकाश, १० ।११५

कह दिया जाता है वहां `पर्यायोक्त` अलंकार होता है । मम्मट और विश्वनाथ इसका लक्षण इसी रूप में स्वीकार करते हैं ।

उदाहरण —

तां मातृनिर्वेदवशां तथाच तां वत्सकप्रीतिवशामवेक्ष्य ।
अधीरतां हन्त गतं मुनित्वं, दीर्घं निश्वास च सद्गृहित्वम् ।।

सीताचरितम्, १०। ३८

अर्थात् मातृ हृदया वैदेही का वह निर्वेद और वह वात्सल्य देखकर मुनित्व अधीर हो उठा और सद् गृहित्व आश्वासन की लम्बी श्वास लेने लगा ।

स्पष्ट है कि यहां मुनित्व की अपेक्षा गृहित्व अपने को अधिक गुणवान मानने लगा — यह व्यंग्यार्थ प्रकारान्तर से उपर्युक्त रूप में अभिव्यक्त कहा गया है । फलत: यहां `पर्यायोक्त` अलंकार की स्थिति पूर्णतया स्पष्ट है ।

इस प्रकार सीताचरितम् महाकाव्य के अन्तर्गत यमक, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि विविध अलंकारों का सफल प्रयोग उसके विविध सर्गों में विविध विधि से दृष्टिगत होता है ।

छन्दो विवेचन -

छन्दस् शब्द `चदि आह्लादने` धातु से असुन् प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। इसीलिये `छन्दयति आह्लादयति इति छन्दः` अर्थात् जो मन को आह्लादित करे उसे छन्दस् कहते हैं। ऐसी छन्द कि निरुक्ति की जाती है। पारिभाषिक दृष्टि से छन्द वह शब्द-योजना है जो किसी विशेष नियम से वर्णों अथवा मात्राओं के बन्धन से नियमित होती है।

छन्द कविता के भावों को निश्चित वर्णों अथवा मात्राओं में बांध करके संयमित रूप से गतिशील बनाने का एक साधन है। छन्द के माध्यम से कविता में लयवाहिता, गति-वाहिता, आह्लादकता आदि विशेषतायें स्वयं ही आ जाती हैं जिससे कविता की गुणवत्ता में आशातीत समृद्धि होती है। छन्द ही वह माध्यम है जिससे कविता अपने विविध भावनाओं को विविध रूप में व्यक्त करती हुयी गतिशील होती है। कविता और छन्द में पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध को देखते हुए छन्द को जो कविता का चरण कहा गया है वह कोई अत्युक्ति नहीं है[1]।

भारतीय साहित्य में सफल कवि की पहचान भाव एवं रस के अनुरूप छन्दों के प्रयोग से मानी जाती रही है, यही कारण है कि संस्कृत साहित्य के कवियों ने महाकाव्य के प्रणयन में भाव और रस की वर्णना के अनुकूल विविध छन्दों का प्रयोग करते रहे। सीताचरितम् महाकाव्य का कवि भी इसका अपवाद नहीं।

सीताचरितकार ने वंशस्थ, मालिनी, मालभारिणी, रथोद्धता, वियोगिनी, पुष्पिताग्रा, मञ्जुभाषिणी, पृथ्वी, प्रहर्षिणी, मन्दाक्रान्ता, अनुष्टुप, हरिणी, उपजाति, वसन्ततिलका, द्रुतविलम्बित, मयूर एवं शिखरिणी आदि छन्दों का प्रयोग किया है।

१- छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथपठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।।
- पाणिनीय शिक्षा

सीताचरितम् के प्रथम सर्ग में कुल ६६ श्लोक हैं जिसके प्रथम ६६ श्लोकों में वंशस्थ का, दो (६७-६८) श्लोकों में मालिनी का तथा ६६वें श्लोक में मालभारिणी का प्रयोग किया है । द्वितीय सर्ग में कुल ६० श्लोक हैं जिसके प्रथम ५७ श्लोकों में वंशस्थ का तथा शेष ३ श्लोकों में मालिनी छन्द प्रयुक्त हैं । तृतीय सर्ग में कुल ६६ श्लोक है जिनमें प्रथम ६६ श्लोकों में रथोद्धता का प्रयोग हुआ है, दो श्लोकों ६७ वे, ६८ वें में वियोगिनी तथा अन्तिम ६६ वें श्लोक में 'पुष्पिताग्रा' छन्द का प्रयोग किया गया है । चतुर्थ सर्ग में कुल ७२ श्लोक हैं जिनमें १-६७ तक के श्लोकों में वियोगिनी का, ६८ वें में मञ्जुभाषिणी का और ६६वें तथा ७०वें में पुष्पिताग्रा, ७१वें में मालिनी का और ७२वें में पृथ्वी छन्द का प्रयोग किया गया है । पंचम सर्ग में कुल ७१ श्लोक हैं, जिनमें प्रथम ३४ श्लोक में प्रहर्षिणी का, ३५-६० के २६ श्लोकों में वंशस्थ का ६१वें में मालिनी का, ६२-६४ तक के तीन श्लोकों में पुनः वंशस्थ का ६५-६६ तक के पांच श्लोकों में पुनः मालिनी का तथा ७०-७१ तक के दो श्लोकों में मन्दाक्रान्ता का प्रयोग किया गया है ।

षष्ठ सर्ग में कुल ७१ श्लोक हैं जिनमें प्रथम ७० श्लोकों में पुष्पिताग्रा का तथा अन्तिम ७१वें श्लोक में मालिनी का प्रयोग किया गया है । सप्तम सर्ग में कुल ६३ श्लोक हैं, जिनमें प्रथम ५७ श्लोकों में पुष्पिताग्रा तथा ५८-से ६३ तक के छ श्लोकों में मालिनी का प्रयोग हुआ है । अष्टम सर्ग में कुल ७१ श्लोक हैं, जिनमें प्रथम ६६ श्लोकों में अनुष्टुप का, ७०वें में हरिणी का और ७१ वें में मालिनी का प्रयोग किया गया है । नवम सर्ग में कुल ६६ श्लोक हैं जिनमें प्रथम ६२ श्लोकों में उपजाति का, ६३-६५ तक के तीन श्लोकों में वसन्त तिलका तथा ६६ वें में मन्दाक्रान्ता का ।

दशम सर्ग में कुल ८२ श्लोक हैं, जिनमें प्रथम ५७ श्लोकों में उपजाति का, दो श्लोकों ५८-५६ में वसन्ततिलका, ६०-६४ तक के पांच श्लोकों में द्रुतविलम्बित, ६५ वें में मत्तमयूर का, ६६-७० तक के पांच श्लोकों में मन्दाक्रान्ता का, ७१-७४ तक के चार श्लोकों में शिखरिणी का तथा ७५-८२ तक के आठ श्लोकों में पुनः मन्दाक्रान्ता का प्रयोग किया गया है ।

इस प्रकार छन्दों के प्रयोग की विविधता की दृष्टि से सबसे अधिक छन्दों का प्रयोग दशम सर्ग में प्राप्त होता है, जिनकी कुल संख्या ६ है । उपजाति वियोगिनी आदि । इसके पश्चात् चतुर्थ सर्ग में भी पांच छन्दों का प्रयोग किया गया है, पंचम सर्ग में प्रहर्षिणी आदि चार छन्दों का प्रयोग मिलता है । प्रथम सर्ग में वंशस्थ आदि तीन छन्दों का, तृतीय सर्ग में रथोद्धता आदि तीन छन्दों का तथा अष्टम सर्ग में अनुष्टुप आदि तीन छन्दों का और नवम सर्ग में उपजाति आदि तीन छन्दों का प्रयोग किया गया है । इनके अतिरिक्त शेष सभी सर्गों में दो-दो छन्दों का प्रयोग किया गया है ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सीताचरितम् महाकाव्य के दसों सर्गों में वंशस्थ, मालिनी, मालभारिणी, रथोद्धता, आदि १७ छन्दों का प्रयोग हुआ है । जहां तक इन छन्दों के लक्षण एवं उदाहरण आदि का प्रश्न है तो उस दृष्टि से भी इनकी अपेक्षित विवेचना की जा रही है ।

वंशस्थ -

लक्षण

जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ[1] ।

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः जगण, तगण, जगण और रगण हों तथा पादान्त में यति हो उसे 'वंशस्थ' कहते हैं ।

उदाहरण -

I SISS IIS I SIS
स रामनामा भगवान् स मानव
स्तथा च कश्चिद् भरतेतिनामभाक् ।
विनिर्ममाते मिथिलौ, हिमाचलौ
महीधपिण्डानि यथाऽम्बुमिकाम् ।। १।२[2]

१- वृत्तरत्नाकरम्, ३। ४७
२- सीताचरितम्, १।२

इस प्रकार स्पष्ट है कि श्लोक के प्रत्येक चरण में क्रमश: जगण, तगण, जगण और रगण की स्थिति है तथा पादान्त में यति भी है । अतएव यहाँ `वंशस्थ` छन्द है ।

मालिनी -

लक्षण - ननमयययुतेयं, मालिनी भोगिलोकै:[१] ।।

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमश: दो नगण एक मगण दो यगण हों तथा ८ और सात वर्णों पर यति हो उसे `मालिनी` कहते हैं ।

उदाहरण - न न म य य

I III IIS. S SIS. SISS
निमिकुलतपसां वा सत्फलं, पुण्यपाको
रविकुलजनुषां वा नाकनीत्यार्यलक्ष्मी: ।
व्यरचयदवनिपालस्यार्थमिङ्गासनस्था
श्रितवपुरिव लोकस्योदयायोद्भासी श्री:[२] ।। १।६८

स्पष्ट है कि श्लोक के प्रत्येक चरण में क्रमश: दो नगण, एक मगण और दो गुरु हैं तथा आठ और सात वर्णों पर यति भी है । इस प्रकार श्लोक में `मालिनी` छन्द प्रयुक्त है ।

मालभारिणी -

लक्षण - विषमे ससजा गुरू समे चेत सभरा येन तु मालभारिणीयम्।।

जिस छन्द के प्रथम एवं तृतीय चरण में क्रमश: दो सगण, एक जगण और दो गुरु वर्ण हों तथा द्वितीय और चतुर्थ चरणों में क्रमश: सगण, भगण,

---

१- वृत्तरत्नाकर, ३।८३
२- जीवानन्दिनम्, १।६८

रगण तथा यगण हों उसे `मालभारिणी` कहते हैं ।

उदाहरण -

IISIISIS ISS
नरवानरराक्षसास्तर्वस्थं

IISS IISI SISS
वनतश्च्या नृपतेश्च मावबन्ध्यम् ।

अभिवीक्ष्य कुबुरावर्धमें-
म्यधिकं बुद्धि विशुद्धयो स्तलकों: ॥[१] १।६६

स्पष्ट है कि उपर्युक्त श्लोक के प्रथम एवं तृतीय चरणों में क्रमश: दो सगण एक जगण और दो गुरु वर्ण हैं, द्वितीय एवं चतुर्थ चरणों में क्रमश: सगण, भगण, रगण तथा यगण, आये हैं । फलत: यहां `मालभारिणी` छन्द का प्रयोग हुआ है ।

रथोद्धता —

लक्षण - रान्नराविह रथोद्धता लगौ ॥ ३।१८

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमश: रगण, नगण, रगण तथा एक लघु और एक गुरु वर्ण हों वह `रथोद्धता` कहलाता है ।

उदाहरण -

S ISIIISIS IS
सा निसर्गमधुरस्वरा तत:
सत्यवेश्मनि डिलिलेव देवता ।
आजहार हृदयानि मानिनी
बान्धवस्य पदुभाषिणी सती ॥ २।१

१- वीतरागचरितम्, १।६६
२- वृत्तरत्नाकर, ३।१८

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रत्येक चरण में क्रमशः रगण, नगण, रगण तथा एक लघु और एक गुरु वर्ण आये हैं । अतएव यहाँ श्लोक में रथोद्धता छन्द का प्रयोग हुआ है ।

वियोगिनी -

लक्षण -

विषमे ससजा गुरु समे सभरा लो थ गुरु वियोगिनी[1] ।।

जिस छन्द के प्रथम और तृतीय चरण में क्रमशः दो सगण एक जगण,और एक गुरु वर्ण हो तथा द्वितीय एवं चतुर्थ चरणों में क्रमशः सगण, भगण, रगण और लघु तथा गुरु वर्ण हों उसे वियोगिनी या सुन्दरी छन्द कहते हैं ।

उदाहरण -

।।ऽ ।।ऽ। ऽ।ऽ।।ऽऽ । ।ऽ।ऽ।ऽ
हृदयं हृदयेन संवदेदयमात्मा च वपुःपरिच्छिदाम् ।
अपनीय परात्परं विशेदिति हेतोर्गृहमेकिका सताम् [2] ।। ३।६७

स्पष्ट है कि उपर्युक्त श्लोक के प्रथम एवं तृतीय चरणों में क्रमशः दो सगण एक जगण और एक गुरुवर्ण है तथा द्वितीय एवं चतुर्थ चरणों में क्रमशः सगण, भगण, रगण, एक लघु और एक गुरु वर्ण है । अतएव यहाँ `वियोगिनी` छन्द प्रयुक्त हुआ है ।

१- वृत्तरत्नाकर, ४।१३

२- शीलवतिलम्, ३।६७

पुष्पिताग्रा -

लक्षण -

अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा[1] ।। ४।१०

जिस छन्द के प्रथम एवं तृतीय चरणों में क्रमश: दो नगण, एक रगण, और एक यगण हो तथा द्वितीय एवं चतुर्थ चरणों में क्रमश: नगण, दो जगण, रगण और एक गुरुवर्ण हो तो वह पुष्पिताग्रा छन्द कहलाता है ।

उदाहरण -

II IIII SI SI SS
निज-नरपति- धर्म- रक्षणायां

IIII SIIS IS ISS
हिमगिरि-निश्चलतां वहन् निराशी: ।

कृतवपुरिव कर्मयोग एवा

चापित-ममत्वतया तदान्वभाति[2] ।। ३।६८

स्पष्ट है कि उपर्युक्त श्लोक के प्रथम और तृतीय चरणों में क्रमश: दो नगण एक रगण, और एक यगण हैं तथा द्वितीय एवं चतुर्थ चरणों में क्रमश: एक नगण, दो जगण तथा एक रगण और एक गुरु वर्ण हैं । इसलिये इस श्लोक में पुष्पिताग्रा छन्द का प्रयोग है ।

मञ्जुभाषिणी -

लक्षण - सजसा जगौ भवति मञ्जुभाषिणी[3] ।।

१- वृत्तरत्नाकर, ४।१०

२- सीताचरितम्, ३।६८

३- वृत्तरत्नाकर, ३।७४

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमश: सगण, जगण, सगण, जगण और एक गुरु वर्ण हों तथा पांच और आठ वर्णों पर यति हो उसे मञ्जु-भाषिणी छन्द कहते हैं ।

उदाहरण -

IISIS II ISISI S
परिदेवनाविलमनोभिरेव मे,

प्रियकाङ्क्षिणीभिरपि यद् विचारितम् ।

यदपि स्थितिं तदपि रक्षायत् स्थितं,

गृहमेधितास्तु परमा परन्तु व: [1] ॥ ४।५८

पृथ्वी -

लक्षण -

जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरु: [2] ॥ ३।६४

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में जगण, सगण, जगण, सगण, यगण, एक लघु और एक गुरु वर्ण हों तथा आठ एवं नव वर्णों पर यति हो उसे `पृथ्वी` कहते है ।

उदाहरण -

IS IIISIS IIISIS SIS
अथ श्रियमिवोल्कया विवशयामिव स्वच्छता -

महाजपवन:, कुहूविधुकलामिवानाविलाम् ।

विदेहतनयां महामुनितप:प्रभूतां क्षमां,

विशुद्धिमिव मानसीं तिरयता: कठोरं जगत् [3] ॥ ४।७२

१- जानकीहरणम्, ४। ५८

२- वृत्तरत्नाकर, ३।६४

३- जानकीहरणम्, ४।७२

स्पष्ट है कि उपर्युक्त श्लोक के प्रत्येक चरण में क्रमश: जगण, सगण, पुन: जगण, सगण, यगण तथा एक लघु और एक गुरु वर्ण हैं । आठवें एवं नवें वर्ण पर यति भी है । अतएव श्लोक में पृथवी छन्द का उदाहरण घटित होता है ।

प्रहर्षिणी -

लक्षण -

म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयति: प्रहर्षिणीयम् ।[1] ३।७०

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में मगण, नगण, जगण, रगण और एक गुरु हो तथा तीसरे और दसवें वर्ण पर यति हो, उसे प्रहर्षिणी कहते हैं ।

उदाहरण -

SSS IIIISIS ISS
क्रैष्णा हिमकरकान्तो कन्या,

सम्पाते पवनकुलातमर्पयन्ती ।

प्रत्यूषे, बलकमनं कुमीमिरङ्गनो,

भाती द्युतिरिव जानकी कुलोके ।।[2] ५।२

स्पष्ट है कि उपर्युक्त श्लोक के प्रत्येक चरण में मगण, नगण, जगण, रगण और एक गुरु वर्ण है । अतएव इस श्लोक में 'प्रहर्षिणी' छन्द का प्रयोग मानना चाहिये ।

१- वृत्तरत्नाकर, ३।७०

२- जानकीहरणम्, ५।२

मन्दाक्रान्ता -

लक्षण -

मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैर्म्भौ नतौ ताद् गुरू चेत्[1] ।। ३।९७

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण, भगण, नगण, दो तगण और दो गुरू वर्ण हों तथा चार, छ और सात वर्णों पर यति हो तो उसे मन्दाक्रान्त कहते हैं ।

उदाहरण -

SSSS, IIII IS SISS ISS
पुनाभितां कथिरपि महान् स प्रतिच्छन्न प्रसीद -

त्वन्नवाणी वहिरुपगतामन्वबादीदितीव ।

पुत्रि ! स्वस्ति स्पृशतु चरणास्ते भुवं नः सुताभ्यां

राष्ट्रापर्वि दापयितुमिमे निर्मिता आगमा नः[2] ।। ५।७०

स्पष्ट है कि उपर्युक्त श्लोक के प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण, भगण, नगण दो तगण और दो गुरू वर्ण हैं तथा चार, छ एवं सात वर्णों पर यति भी है, इसलिये इस श्लोक में मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग मानना चाहिये ।

१- वृत्तरत्नाकर, ३। ९७

२- वीतरागस्तव, ५।७०

अनुष्टुप् -

लक्षण -

पंचमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयो: ।
षष्ठं गुरु विजानीयादेतत्पद्यस्य-लक्षणम् ।।[1]

जिस छन्द में पंचमाक्षर प्रत्येक चरण में लघु हो परन्तु सप्तम अक्षर दूसरे तथा चौथे चरण में लघु हो, षष्ठ अक्षर प्रत्येक चरण में गुरु हो उसे 'अनुष्टुप्' (पद्य) कहते हैं ।

उदाहरण -

IIS I ISS S IIS I ISIS
प्रतिपादितपुत्रा सा कथं दिव्यचतुर्भुजा ।

IS ISI
कमलार्पितशब्दार्था प्रतिमेव सुमङ्गला ।। ८।१[2]

स्पष्ट है कि उपर्युक्त श्लोक के प्रत्येक चरण में पंचम अक्षर लघु किन्तु द्वितीय एवं चतुर्थ चरणों में सप्तम अक्षर लघु है तथा षष्ठ अक्षर प्रत्येक चरण में गुरु है, इस प्रकार उक्त श्लोक में 'अनुष्टुप' छन्द का लक्षण स्वत: स्पष्ट है ।

१- छन्दोमंजरी, ४।७

२- श्रीरामचरितम्, ८।१

हरिणी -

लक्षण -

नसमरसला ग: षड्वेदैर्हरिणीमता[1] । ३ ।६४

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमश: नगण, सगण, मगण, रगण, सगण, एक लघु और एक गुरु हों तो उसे `हरिणी` कहते हैं । इस छन्द में छ, चार और सात वर्णों पर यति होती है ।

उदाहरण -

। ।।। ।ऽ । । । ।
कश्चिदयं महान् वीरैस्तैरात्मजै: परिवारितं
रघुपरिवृढं रामं धाम स्वकं खलु नीतवान्
जनकतनया ज्ञात्वाप्येतद् बभूव पराङ्मुखी
न खलु महिलां त्यक्तो भर्तुन्युदेति पुना रति:[2] ।।

स्पष्ट है कि उपर्युक्त श्लोक के प्रत्येक चरण में क्रमश: नगण, सगण, मगण, रगण, सगण, एक लघु और एक गुरु वर्ण है तथा छ, चार और सात वर्णों पर यति भी है अतएव इस श्लोक में स्पष्टत: `हरिणी` छन्द है ।

१- वृत्तरत्नाकर, ३।६४

२- जानकीहरणम्, ८ ।७०

उपजाति -

लक्षण -

अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ता: [१] ।।

जिस छन्द का कोई चरण अभी अभी कहे गये `इन्द्रवज्रा` के लक्षण द्वारा तथा कोई चरण `उपेन्द्रवज्रा` के लक्षण द्वारा बना हो उसे `उपजाति` कहते हैं । दूसरे शब्दों में जिस छन्द में इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा दोनों छन्दों के लक्षण भिन्न-भिन्न चरणों में पूर्णत: मिलते हों, उसे `उपजाति` कहेंगे । इसके कीर्ति, वाणी, माला, शाला आदि १४ भेद हैं ।

उदाहरण -

ऽऽ ।ऽऽ ।।ऽ ।ऽ । — इन्द्रवज्रा
बाढ़ेडु विदेहाधिपते: सुता तु,

।ऽ ।ऽऽ ।।ऽ।ऽ। — उपेन्द्रवज्रा
तथा तटस्था निखिलेड्गा तेड्गा ।

।ऽ ।ऽऽ । ऽ।ऽऽ — उपेन्द्रवज्रा
यथा विलोमात्मनि राक्षसी

ऽऽ।ऽ ऽ।।ऽ ।ऽ। — इन्द्रवज्रा
यद्वापि गौ: कापि परा स्वपुंसि [२] ।।

स्पष्ट है कि उपर्युक्त श्लोक के प्रथम एवं चतुर्थ चरण इन्द्रवज्रा के क तथा द्वितीय एवं तृतीय चरण उपेन्द्र वज्रा के हैं । ऐसी स्थिति में यहां `माया` नामक `उपजाति` छन्द का लक्षण घटित हो रहा है ।

१- वृत्तरत्नाकर , ३।३२

२- शीलावतीचरितम्, ६।३

वसन्ततिलका -

लक्षण -

उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ।[1] ३।७९

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः तगण, भगण, दो जगण और दो गुरु वर्ण हों तथा पदान्त में यति हो उसे 'वसन्ततिलका' कहते हैं ।

उदाहरण -

S S | S | | | S | | S | S S
मातः प्रसीद कुरु केरवसोदरं नः
साकेतकं पदनखेन्दुमयूखकृष्टम् ।
एते वयं मधुकरायितुमत्र यस्मात्
सम्यक् दामिमहि चिरात् प्रभृति प्रतृष्णाः ।।[2] १०।८८

स्पष्ट है कि उपर्युक्त श्लोक के प्रत्येक चरण में क्रमशः तगण, भगण, दो जगण तथा दो गुरु वर्ण है और पदान्त में यति भी है ऐसी स्थिति में श्लोक में 'वसन्ततिलका' छन्द मानना चाहिये ।

१- वृत्तरत्नाकर, ३ । ७९

२- सीताचरितम्, १०।८८

द्रुतविलम्बित -

लक्षण -

द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ ।।[1] ३।४९

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः नगण, दो भगण और अन्त में रगण हो तथा पदान्त में यति हो उसे द्रुतविलम्बित कहते हैं ।

उदाहरण -

II IS IIS I IS I S
कुश-लव-प्रसवा तु निशम्य ता,

वनगिरो मिथकीर्तिपरा अपि ।

समतया मतया विदुषां दधे,

श्रुतिमतीति मतीन्दुकलां श्रमात् ।।[2] १०।६४

स्पष्ट है कि उपर्युक्त श्लोक के प्रत्येक चरण में क्रमशः नगण, दो भगण और एक रगण हैं और पदान्त में एक यति भी है । इसलिये इस श्लोक में द्रुतविलम्बित छन्द है ।

१- वृत्तरत्नाकरम्, ३। ४९

२- श्रीतारचरितम्, १० ।६४

शिखरिणी -

लक्षण -

रसैः रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी [1] ।। ३ ।९३

जिस छन्द के अन्तर्गत प्रत्येक चरण में क्रमशः यगण, मगण, नगण, सगण, भगण एक लघु और एक दीर्घ वर्ण हों तथा छठे और बारहवें वर्णों पर यति हो, उसे 'शिखरिणी' कहते हैं ।

उदाहरण -

।ऽ ऽऽ ऽऽ । । । । । ।ऽऽ ।।।ऽ
प्रतिष्ठेयं बाला निमि-रघि-महावंशयशसां
प्रतिष्ठेयं बाला युगयुगकृते भारत-भुवः ।
प्रतिष्ठेयं बाला श्रुतिमहति मार्गे कृतधियां
यदेषा देहेन स्थितिमधित मृत्युं बयभुवः [2] ।। १०।७५

स्पष्ट है कि उपर्युक्त श्लोक के प्रत्येक चरण में क्रमशः यगण, मगण, नगण, सगण, भगण, एक लघु और एक गुरु वर्ण है तथा छ, और ग्यारह वर्णों पर यति है, इसलिये इस श्लोक में स्पष्ट रूप से शिखरिणी छन्द है ।

इस प्रकार सीता चरितकार ने भावों और रसों के अनुरूप विविध सर्गों में वंशस्थ, मालिनी, मालभारिणी, रथोद्धता, वियोगिनी आदि विविध छन्दों का सफल प्रयोग किया है ।

१- वृत्तरत्नाकर , ३।९३

२- सीताचरितम्, १०।७५

चतुर्थ अध्याय

-0-

अभिराज डा० राजेन्द्रमिश्र एवं उनका 'जानकीजीवनम्'

अभिराज डा० राजेन्द्र मिश्र : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व :

देवी संस्कृत एवं साहित्य की उद्भव स्थली भारतीय वसुन्धरा ने वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, माघ, भारवि, श्रीहर्ष, बिल्हण, जयदेव, पण्डितराज जगन्नाथ आदि जिन विश्व-विश्रुत अक्षय कीर्ति वाले क्रान्तदर्शी महाकवियों को जन्म दिया उसी प्रतिभा प्रसविनी भारतीय-धरित्री ने वर्तमान बीसवीं शती में भी एक ऐसे लोकोत्तर प्रतिभा सम्पन्न प्रशस्त ज्ञान धर्मा, महान रचना शिल्पी को भी त्रिवेणी के पावन अङ्क में जन्म दिया है । जिसमें एक साथ आदि कवि वाल्मीकि की क्रान्तिदर्शिता, व्यास की दिव्य-दृष्टि, कालिदास की रसमयता, श्रीहर्ष की दार्शनिकता, जयदेव की स्वर लहरी तथा बिल्हण की उक्ति विचित्रता एवं पण्डित राज जगन्नाथ की काव्यगरिमा आदि सब कुछ एकत्र देखा जा सकता है । वे हैं त्रिवेणी कवि अभिराज डा० राजेन्द्र मिश्र ।

त्रिवेणी कवि अभिराज राजेन्द्र मिश्र का जन्म उत्तर प्रदेश के जौनपुर जनपद में स्यन्दिका नदी के तट पर स्थित द्रोणीपुर ग्राम में पं० दुर्गाप्रसाद मिश्र एवं श्रीमती अभिराजी देवी के द्वितीय पुत्र-रत्न के रूप में २६ दिसम्बर, १९४२ ई० (पौष कृष्ण पंचमी वि० सम्वत् १९९९) को हुआ । दुर्भाग्य के वात्याचक्र से आहत नवजात प्रतिभा के पितृचरण का देहावसान शैशव के पूर्वाह्न में ही (२, १/२ वर्ष) हो जाने से उनके पालन-पोषण का ही नहीं अपितु समग्र शिक्षा दीक्षा का भी दायित्व प्राणपीयूषदात्री जननी पर ही आ जाता है, जो शनैः शनैः अपने दायित्व का निर्वाह धैर्यपूर्वक करती हुयी अपने इस सारस्वत पुत्र की प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था ग्राम्यांचल के ही विद्यालय में प्रारम्भ करवाती हैं । अवस्था के विकास के साथ-साथ प्रतिभा के विकास की पूंजी लेकर डा० मिश्र माध्यमिक कक्षा तक की शिक्षा जौनपुर जनपद के ही ख्याति प्राप्त विद्यालय अरविन्द इन्टर कालेज सेवी माथार से प्राप्त की । तदनन्तर बी०ए० एवं एम० ए० (संस्कृत) की शिक्षा पितृव्यचरण डा० आद्याप्रसाद मिश्र (पूर्व कुलपति, इलाहाबाद विश्वविद्यालय) के संरक्षण में प्राप्त की तथा

व उन्हीं के कुशल निर्देशन में 'संस्कृत साहित्य में अन्योक्ति वाङ्मय का उद्भव और विकास' विषय पर विद्वत्तापूर्ण शोधप्रबन्ध लिखकर इलाहाबाद विश्वविद्यालय से डी० फिल्० की गौरवशाली उपाधि वर्ष १९६६ में प्राप्त किया । तदनन्तर इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में ही प्राध्यापक पद पर नियुक्त होकर एक सम्मान्य अध्यवसायी प्राध्यापक के रूप में अदाय अध्यापन कीर्ति का उपार्जन करते हुये अपने सतत अध्यवसाय से उत्कर्ष करते हुये सम्प्रति ये उसी विभाग में प्रवाचक पद पर कार्यरत हैं ।

वैदुष्य एवं विद्या व्यसन की विरासत डा० मिश्र को अपने पितामह परमभागवत स्व० पं० रामानन्द मिश्र एवं पितृव्य प्रो० डा० बाबाप्रसाद मिश्र से मिली है । लघुवय में ही दिवंगत पिता के अभाव तथा स्नेहमयी माँ के महार्घ वात्सल्य ने डा० राजेन्द्र मिश्र के कोमल हृदय में कवित्व के संस्कार भरे । अतृप्त पितृ संरक्षण की दुरन्त लालसा, यौवन की उन्मादकता, तथा अप्रत्याशित सौख्य विघातक दुःखों के वात्याचक्र से आहत भावना प्रवण डा० मिश्र के मूक हृदय से उठने वाली भावोर्मि की लहरी उनके कण्ठ से कविता के रूप में फूट पड़ी, जो हिन्दी, संस्कृत एवं लोकभाषा (भोजपुरी) के रूप में तीन धाराओं में विभक्त होकर द्रुतगति से आगे बढ़ने लगी । साहित्य साधना के सूने मन्दिर में संकल्प का पाथेय लेकर अहर्निश सारस्वत समर्चा में तत्पर डा० मिश्र कच्छपी वादिनी वाणी के मन्दिर के साकार देवता बन गये ।

अभिराज डा० राजेन्द्र मिश्र प्रबुद्ध जीवन के प्रत्येक क्षण को सार्थकता पूर्वक साहित्य साधना के लिये ही जीते हुये वीणापाणि के चरणों में नैवेद्यवत् समर्पित संस्कृत कविता की जीवन्तता एवं नवकविता के समर्थ प्रतीक हैं । हिन्दी, संस्कृत एवं भोजपुरी के रससिद्ध प्रतिभाशील महान् रचनाकार हैं । डा० मिश्र न केवल एक सफल महाकवि ही हैं अपितु ये एक सफल नाटककार, गीतकार एवं कथाकार भी हैं । अपने साहित्य साधना के माध्यम से इन्होंने भगवती भारती के भाण्डागार को समृद्ध बनाने में अविस्मरणीय योगदान किया है । हिन्दी, संस्कृत एवं भोजपुरी में अद्यावधि प्रकाशित इनकी लगभग पचासों कृतियाँ हैं जो

निम्नवत उल्लिखित हैं --

१- नाट्यपञ्चगव्यम् (एकांकि-संग्रह:)
२- कविसमवायनम् ,, ,,
३- नाट्यपञ्चामृतम् ,, ,,
४- चतुष्पथीयम् ,, ,,
५- रूपरुद्रीयम् ,, ,,
६- रूपविंशतिका ,, ,,
७- प्रमद्वरा (नाटिका)
८- आर्यान्योक्तिशतकम् (खण्डकाव्य)
९- नवाष्टकमालिका ,,
१०- पराम्बाशतकम्
११- श्लाघ्यकाव्यम्
१२- वीरशतकम्
१३- मृगाङ्कदूतम्
१४- वाटीविलासम्
१५- विमानयात्राशतकम्
१६- देवभाषाशृङ्गारशतकम्
१७- चक्राद्रिप्रशतकम्
१८- काशीप्रत्यभिज्ञानशतकम्
१९- शृङ्गारवीथिशतकम्
२०- वनितारत्नशतकम्

२१- वाग्वधूटी (गीत-संग्रह:)

२२- मृद्वीका (नवगीत-संग्रह:)

२३- श्रुतिम्भरा ,, ,,

२४- कस्मै देवाय हविषा विधेम (प्रशस्ति संग्रह:)

२५- इक्षुगन्धा (कथा संग्रह:)

२६- अभिनवपञ्चतन्त्रम् (कथा संग्रह:)

२७- राङ्गडा ,, ,,

२८- वाल्मीकिजीवनम् (महाकाव्य)

२९- वामनावतरणम् ,,

३०- वाठीशीर्षभारतीया संस्कृति: (गवेषणाग्रन्थ:)

३१- छन्दोऽभिरामीयम् (छन्दश्शास्त्रम्)

३२- काव्यतरङ्गिणी (संस्कृत साहित्येतिहास:) पद्यबद्ध विवरण

<u>शोध एवं पाठ्यग्रन्थ -</u>

१- मणिकाञ्चन ।

२- संस्कृत साहित्य में अन्योक्ति ।

३- किरातार्जुनीयम् (प्रथम सर्ग: टीका सहितम्)

४- छन्दोऽलंकार सौरभम्

५- रत्निकाम्

६- कादम्बरीकथामुखम्

हिन्दी कृतियां -

१- वेदना (खण्डकाव्य)

२- पनघट (खण्डकाव्य)

३- मुक्तिदूत (खण्डकाव्य, महात्मा गांधी पर आधारित)
हाई स्कूल कक्षा के पाठ्यक्रम में निर्धारित (उ०प्र०)

४- पूर्णकाम (खण्डकाव्य, भरत पर आधारित)

५- गृहत्याग (खण्डकाव्य, बुद्ध पर आधारित)

६- अस्थिकलश (खण्डकाव्य, इन्दिरा पर आधारित)

७- मुक्तधारा (काव्यसंकलन)

८- दो पात नींबू : तीन पात अमोला (६० कविताएं)

९- सपनों में डूब गया मन । (५५ कविताएं)

१०- पलकों के बन्द द्वार । (६५ कविताएं)

११- बच्चों के पाहुन (शिशुकाव्य)

१२- पढ़ो और गुनो (शिशुकथाएं)

१३- वन के गीत : मन के मीत (शिशुकाव्य)

१४- नया विहान (शिशु एकांकी)

१५- तितली के पंख (शिशुकाव्य)

१६- महाभारत की किशोरकथाएं

१७- रक्ताभिषेक (शिशु एकांकी)

१८- विभवा (आंचलिक उपन्यास)

भोजपुरी रचनाएं :-

१- फगुनी बयार (गीतसंग्रह)

२- बदरा मडल मोरा कूल ।

३- मेघदूत का भोजपुरी रूपान्तर, मुद्रणाधीन

अप्रकाशित हिन्दी । भोजपुरी कृतियां :-

१- गन्धमादन (राष्ट्रीय काव्यसंग्रह)

२- तटस्था (वैचारिक मुक्तछन्द कविताएं)

३- सुपर्णा (खण्डकाव्य, पक्षिराज गरुड़ पर आधारित)

४- पाषाणी (खण्डकाव्य, अहल्या पर आधारित)

५- सुवर्णद्वीप (खण्डकाव्य, बालीद्वीप पर आधारित)

६- चिन्तानिकेत (काव्यरूपक)

७- सुर्यविजय (मंचीय नाटक, पांच अंक)

८- ब्रह्मवन्ती (पौराणिक नाटक, तीन अंक)

९- रोचनी (महाकाव्य, १५ सर्ग)

१०-बिरहा की रैन (भोजपुरी खण्डकाव्य)

११- सकुन्तला (भोजपुरी महाकाव्य, ९ सर्ग)

ज्ञातव्य है कि उपर्युक्त कृतियों में नाट्य पंचगव्यम्, अभि नवका व्यम्, नाट्य पंचामृतम्, सुबुद्धीयम्, प्रामहरा, आर्यान्योक्ति, शतकम्, नवाष्टकमालिका, वाङ्मयूटी एवं सुवीका आदि ९ कृतियां उत्तर प्रदेश शासन एवं संस्कृत अकादमी

उत्तर प्रदेश से पुरस्कृत भी हो चुकी है । यही नहीं कविराज राजेन्द्र मिश्र की कथाकृति `इक्षुगन्धा` को भारत सरकार की साहित्य अकादमी द्वारा संस्कृत साहित्य का सर्वोच्च राष्ट्रीय साहित्य अकादमी पुरस्कार सन् १९८८ के लिये प्रदान किया गया है ।

पुनश्च स्मरणीय है कि अभिराज डा० राजेन्द्र मिश्र की उज्ज्वल प्रतिभा को प्रश्रय देने के निमित्त भारत सरकार ने दो वर्षों के लिये (मई ८७ से अप्रैल १९८९ तक) उदयन युनिवर्सिटी, डेनपसार, बालीद्वीप (इण्डोनेशिया) में विजिटिंग प्रोफेसर पद पर नियुक्त किया, जहां रह कर उन्होंने अभूतपूर्व, उच्चकोटिक साहित्य-साधना की । इसी प्रवासकाल में उन्होंने दो विशाल-संस्कृत महाकाव्यों (जानकी जीवनम्, वामनावतरणम्) के अतिरिक्त हिन्दी-संस्कृत के २० अन्यान्य खण्डकाव्य, ३६ शोधनिबन्ध, १४ साहित्यिक आलेख, ५० स्फुट कविताएं तथा अनेकों लेख, संस्मरण, रिपोर्ताज भी लिखे जो समय-समय पर धर्मयुग, कादम्बिनी तथा अन्यान्य पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे ।

बालीप्रवास में डा० मिश्र ने जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य किया वह है बाली रामायण (रामायणककविन्) का प्रथम बार-देवनागरी लिप्यन्तरण तथा हिन्दी रूपान्तरण । उन्होंने इण्डोनेशिया की राष्ट्रभाषा में संस्कृत साहित्य का इतिहास (Sejarah Kesusastraan Samskrta) भी लिखा जो सन् १९८८ में डेनपसार बाली से ही प्रकाशित भी हुआ ।

अपनी महनीय साहित्य सेवाओं के लिये डा० मिश्र को राष्ट्रीय स्तर पर विद्वज्जनों का आशी: प्राप्त हुआ । डा० मिश्र के व्यक्तित्व में जहां एक ओर महाचार्यत्व का अप्रत्याशित गाम्भीर्य है वहीं दूसरी ओर उनका महाकवित्व अभिनय कला निष्णात नाट्यकीयत्व,-स्वरलहरी से मण्डित कण्ठ-माधुर्य से सम्पृक्त गीत कारित्व आदि सर्वथा दुर्लभ गुण भी विद्या विनय की पराकाष्ठा के साथ समवेत रूप में एकत्र अभिराम-रूप में सहसा: देखे जा सकते हैं । जीवन के अभावों, बाधाओं एवं विसंगतियों के वात्याचक्र में अनाहत उनका

युयुत्सु व्यक्तित्व अपने प्रशस्त-पथ का निर्माता स्वयं है । अपने इन्हीं गुणों के कारण डा० मिश्र को मित्रों, प्रशंसकों, स्वजनों और शिष्यों द्वारा अपूर्व अयाचित सम्मान, आत्मीयता, श्रद्धा एवं आशातीत शिखरस्थ प्रशंसायें भी उपलब्ध हैं ।

डा० मिश्र के गीतिकारिता की प्रशंसा करते हुये जहां एक ओर महाकवि सुमित्रानन्दन पन्त, डा० धर्मेन्द्र गुप्त, डा० रेवाप्रसाद द्विवेदी, डा० भास्कराचार्य त्रिपाठी, डा० चन्द्रभानु त्रिपाठी, डा० जगन्नाथ पाठक आदि प्रशंसा करते-हुये अघाते नहीं, वहीं दूसरी ओर उनकी नाट्यकला कुशलता की समीक्षा करते हुये डा० सिद्धेश्वर भट्टाचार्य, प्रो० डा० सुरेशचन्द्र पाण्डेय, प्रो० डा० रामकुमार वर्मा आदि भट्टाचार्यों ने इन्हें उच्चकोटि का नाट्य कवि स्वीकार किया है । तथा च प्रो० डा० सत्यव्रत शास्त्री, प्रो० डा० चण्डिका प्रसाद शुक्ल, प्रो० डा० शार्वे, प्रो० डा० रेवाप्रसाद द्विवेदी जैसे महान् रचना धर्मियों ने भी इनके कवित्व का लोहा मानते हुये इन्हें युगजीवी श्रेष्ठ महाकवि स्वीकार करते हैं ।

सीताचरितकार सनातन कवि डा० रेवाप्रसाद द्विवेदी ने इनके कवित्व, अभिनय कला तथा गीतमाधुर्य की प्रशंसा करते हुये स्वयं लिखा है कि - आपके महाकाव्य जानकी जीवन के प्रथम भाग ने द्वितीय भाग के लिये अधीर कर रखा है चित्त को । डा० विद्यानिवास जी भी इसी प्रकार इस उत्तम काव्य कृति की आतुर प्रतीक्षा करते मिले - - - - शकुन्तला की विदायी के बाद आपके ही इस काव्य में (अष्टम सर्ग) मिथिला की विदायी का करुण वात्सल्य सुलभ हुआ । विदेहराज को इसी काव्य में देख मिला । मिथिला की विदायी के बाद वे बड़े ही स्वाभाविक ढंग रहे हैं जब उन्हें क्षण भर भी नींद नहीं आती (८।७७), गौरव मद न किमु धत्ते कन्या दुहिता रचना समनुपा (८। ८०) सूक्ति भारतीयता की प्रतिच्छवि है -- - - - आपका अध्यवसाय स्तुत्य है - - - कवित्व, अभिनय, स्वर तथा संगीत का चतुरस्र कौशल आप में एक दुर्लभ योग है । आप अवश्य ही उच्चतम ख्याति अर्जित करेंगे ।

> दुष्यन्त रामौकसाना: शकुन्तलावैनिकमभाव: कविनाट्यमोक्ता ।
> संविधुक्तत्वा संस्कृतोऽयं राजेन्द्रमिश्रो का द्विलिपराज: ।।

अतएव त्रिवेणी कवि डा० मिश्र ने जो कविताकामिनीविलास, कालिदास की कविता, श्री हर्ष की वाणी, जयदेव के देव वचन, विल्हण के उक्तवैचित्र्य, पण्डितराज जगन्नाथ की काव्यगरिमा आदि को अपने काव्यद्रुम का क्रमशः मूल, तना, पत्र, सुमन, फल आदि बताया है वह कोई अत्युक्ति नहीं । अर्थवाद न ही अपितु पूर्णतः तथ्यवाद का साक्षात् निदर्शन है ।

मूलं श्रीकविकालिदासकविता श्रीहर्षवाणी तनुः
पत्रं श्रीजयदेवदेववचनं श्रीविल्हणोक्तं सुमम् ।
श्रीमत्पण्डितराजकाव्यगरिमा यस्य प्रपूतं फलं
जीयादन्त । निसर्गजोऽयमभिराहुराजेन्द्रकाव्यद्रुमः ।।

जानकी जीवनम् की कथावस्तु -

त्रिवेणी कवि अभिराज राजेन्द्र मिश्र विरचित जानकी जीवनम् महाकाव्य में कुल इक्कीस सर्ग हैं । जिनमें अयोनिजा सीता के जन्म से लेकर ऋषि वाल्मीकि द्वारा दीक्षित कुश एवं लव के द्वारा राम के राजप्रासाद में रामायणगान तक की कथावस्तु का नव्यातिनव्योन्मेषों से विकसित चारुतम रूप में वर्णन किया गया है ।

जानकी जीवनम् महाकाव्य के प्रथम सर्ग में कुल पचपन श्लोक हैं । जिनमें अयोनिजा सीता का वर्णन किया गया है । इसी सर्ग में बताया गया है कि विदेह जनपद में अनेक वर्षों-तक वर्षा न होने के कारण दारुण दुर्भिक्ष पड़ गया जिसके परिणामस्वरूप सीरध्वज जनक की सारी प्रजा में हाहाकार मच गया[1] । प्रजा के दुःखभार से पीड़ित मिथिलेश्वर सीरध्वज जनक अपने कुलगुरु गौतम नन्दन शतानन्द के पास जाकर प्रजाजन्य अपनी अन्तर्व्यथा को निवेदित किया कि कृपालुवर्य ! मैं आपकी शरण में प्राप्त हूं । भयानक दुर्भिक्ष तथा निदाघ की आग हमारी जनता रूपी लतावल्लियों को निरन्तर भस्म कर रही है। और मैं उपवन में स्थित वन्ध्य वृक्ष के सदृश उसका कल्याण करने में समर्थ नहीं हो पा रहा हूं । मनसिज के समतुल हे वसन्त ! मेरे स्वामी तो आप ही हैं, अतएव जिस प्रकार मेरा चरित्र कलङ्क पङ्क से प्रभावित न हो वैसा आप उपाय करें[2] ।

१- जानकीजीवनम्, १।१

२- दुरन्तदुर्भिक्षनिदाघदाहो दहत्यजस्रं जनतालतालीम् ।
न चाक्षमाराम इवावकेशी विधातुमीशः प्रणमामि तस्याः ।।
वसन्त हे पञ्चशराकृतिश्च प्रभुर्भवानेव ममास्ति मान्यः ।
न मे यथा स्याच्चरितं विलीनं कलङ्कपङ्के क्रियतां तदेव ।।

— जा० जी०, १। २०, २१

मिथिलेश्वर जनक की अन्त:पीड़ा को समझकर कुलगुरु शतानन्द उन्हें धर्म-सम्मत सान्त्वना देते हैं और कहते हैं कि वत्स ! निरर्थक भयभीत न हो,-और न ही आचरणहीन राजाओं की ओछी प्रवृत्ति को अपनाओ । प्रजाओं की इस विपत्ति में तुम्हारा दोष नहीं है । मनुष्य तो अपना ही कर्म विपाक भोगता है । दुर्दिन, तुषारपात, शालभीति, चक्रवात, आदि कोई भी प्रजा विनाशक अकल्याण केवल राजा के दोष से ही नहीं होता[1] । प्रजा तो राजा को सन्तान के समान प्रिय होती है । आप चिन्ता न करें । प्रजा सुख के निमित्त मैं धर्म-सम्मत उपाय बता रहा हूं ।

इसके पश्चात् शतानन्द मिथिलेश्वर जनक को सुवर्ण एवं मणि माणिक्यादि रत्नों से निर्मित हल को लेकर उन्हें स्वयं उसे-बैल के रूप में खींचने का परामर्श देते हैं[2] । और इस रूप में भूमि की जुताई करने पर अपार वृष्टि होने का आश्वासन देते हैं । तथा च साथ ही साथ यज्ञ द्वारा वर्षा के अधिष्ठातृ देव देवराज इन्द्र को भी प्रसन्न करने का परामर्श देते हैं । कुलगुरु शतानन्द के परामर्शानुसार जनक प्रजा के सुख के लिये स्वयं हल को खींचकर भूमि कर्षण कार्य में लग-गये[3] । ऋषियों, महर्षियों सहित सारी प्रजा समवेत स्वर

१- मुधा न भैषीर्गि च वत्स ! याता गतिं विभिन्नां खलु किम्प्रजानाम् ।
प्रजात्ययेऽस्मिन्न तवास्ति दोष: स्वकर्मपाकं भजते मनुष्य: ।।
न दुर्दिनं नो भिड़िकापातं न शालभीतिं न च चक्रवातम् ।
न वा प्रजानामहितं लभीयोऽप्यवेक्षते नृपतिरात्मदोषात् ।।
— जा० जी०, १। २४, २५

२- हलं विनिर्माय सुवर्णरत्नैस्त्वमेव धुर्येण कृषाण भेयम् ।
कृते त्वयैवं- दिशि तत्र कर्षणयां सुवृष्टिर्भविताऽप्रमेया ।।
— वही, १ । २८

३- वही, १ । ३३

में अपने राजा जनक की जय जय कार करने लगी । जिस समय जनक हल सींच रहे थे उसी समय उनके हल की नोंक के प्रहार से टूटे हुये अन्तराल भाग वाले एक कुम्भ पर सुखपूर्वक सोयी हुयी देवताओं की लक्ष्मी जैसी दैवी दीप्ति से संवलित एक बच्ची (बालिका) दिखायी पड़ी[1] । उसी समय मिथिलेश्वर जनक के लिये यह आकाशवाणी होती है कि वे उस देव प्रदत्त कन्या को उठा लें और उसे अपने घर आयी हुयी साक्षात लक्ष्मी ही समझें[2] । इसके अनन्तर कुछ ही क्षणों में प्रचुर वर्षा की बाढ़ से धरती जलमग्न हो जाती है । समस्त हृदय संताप्तदायक वातावरण एक क्षण में ही आनन्द महोत्सव के रूप में परिवर्तित हो जाता है । तदनन्तर आकाशवाणी के अनुसार कन्या रूप सीता को गोदी में लेकर सीरध्वज जनक शतानन्द सहित अपने राजप्रासाद में आ जाते हैं[3] ।

१- व्यलोकि सर्वैरपि लाङ्गलाग्रप्रहारभिन्नोदरकुम्भतल्पे ।
सुखं शयाना मदिरायताक्षी दिवौकसां श्रीरिव कापि बाला ।।
- जा० जी०, १।४२

२- अथाकिरत् नृपतौ क्षितावं स्यकर्णि वाणी वियदङ्गणोत्था ।
गृहाण सीरध्वज ! देवदत्तां सुतामिमां मत्त्विततलोकशोकाम् ।।
अवेहि राजन्ननपायदीप्तिं श्रियन्नु साक्षाद्गृहमागतान्ते ।
स्वकर्मणं स्यात्फलमात्मकर्म स्यचिन्तितं किन्तु विमातिभाग्यम् ।।
- वही, १।४५, ४६

३- अथ गगनगिरं तां श्रोत्रकुम्भैर्निपीय
[illegible] ।
जनककणिकामिव [illegible] गृहीत्वा
[illegible] ।।

- वही, १। ५३

द्वितीय सर्ग में कुल ५१ श्लोक हैं जिनमें जनक नन्दिनी सीता की शिशु केलि का हृदयावर्जक वर्णन किया गया है । इसी सर्ग में बताया गया है कि जनक नन्दिनी सीता शनैः शनैः सतत गति से चलने वाली दीपिका के सदृश बढ़ने लगीं और बालकेलियों से जनक, सुनयना माता-पिता को ही क्या अपितु प्रजाजनों को भी आनन्दित करने लगीं । कभी मनचाही बातों से मनोरंजन करने वाली सीता सखियों के साथ मिट्टी की चक्की (जतीला) बनाकर झूठमूठ ही मिट्टी पीसती, तो कभी किसी प्रिय सखी को हिरनी बनाकर स्वयं हिरन बनती, कभी कदम्ब वृक्ष पर हिंडोला झूलती हुयी मधुर गीत गाती तो कभी मुट्ठी के चावलों से कपोत शावकों को खिलाती, कभी घर घरौंदा बनाकर उसमें गुड़िया को दुल्हन बनाती तो कभी किसी सखी की नकल उतारती, तथा व ऐसी ही अनेक शिशु सुलभ बालकेलियों से सभी को प्रसन्न किया करती[1] ।

इस प्रकार सीता शनैः शनैः बचपन को विकसित करके यौवन की देहली पर पहुंच जाती है ।

तृतीय सर्ग में कुल पैंतालिस श्लोक हैं । जिनमें नवयौवना सीता के स्मरांकुर का वर्णन किया गया है । इस सर्ग में कमनीय कन्या वयोचित लावण्य वैभव से मण्डित जानकी के यौवन का सांगोपांग वर्णन विभिन्न हृदयावर्जक प्रतीक विधानों के द्वारा एक-एक करके शृंखलाबद्ध रूप में उत्कण्ठा पूर्वक उपन्यस्त किया गया है । यौवन के शिखर पर पहुंची हुयी तन्वंगी सीता ने मुग्धता का अपहरण करने वाले यौवनोचित अनुराग के अंकुर को यत्नपूर्वक विकसित करती हुयी विभिन्न वात्याचक्रों से वैसे ही सुरक्षित रखती हैं जैसे आंधी के झटके से दीपशिखा की रक्षा की जाती है[2] । मन में विद्यमान अनुकूल वेदनीय स्मरांकुर

१- जा० जी०, २।१०-२०

२- तथापि तन्वी मदनाभिलिप्सुं कुतोऽपि यत्नैरनुरागकन्दलम् ।

शिलाकलापव्यथितं [illegible] प्रवातकम्पादि तदीयधारणम् ।।

- वही, ३।३१

को परिवार के सदस्यों से गोपित करती हुयी पतिकामा वैदेही धूम बिम्ब से युक्त अग्नि शिखा के समान पूर्ण विलास के साथ शोभित होने लगी और कमलकोरक में भरे हुये मकरन्द रस का पान करके अलसायी हुयी भ्रमरी जैसी सीता स्वनिर्मित कमलोदर बन्धनों से जकड़ी होने पर भी पिता सीरध्वज जनक के घर में सुखपूर्वक निवास करती रहीं[1]।

चतुर्थ सर्ग में कुल ७८ श्लोक हैं जिनमें लोक विश्रुता सीता का राघव के प्रति पूर्वानुराग वर्णित किया गया है। इसी सर्ग में यह भी बताया गया है कि गाधिनन्दन विश्वामित्र यज्ञ रक्षा के लिये दाशरथि राम एवं लक्ष्मण को कोशलेश्वर दशरथ से मांगने आते हैं तथा वसिष्ठ के परामर्शानुसार दशरथ अपनी कुल कीर्ति के विस्तार हेतु राम एवं लक्ष्मण को विश्वामित्र को सौंपते हैं। विश्वामित्र राम और लक्ष्मण को लेकर उन्हें विविध दिव्यास्त्र सहित वेद, इतिहास, अङ्गशास्त्र, पुराणवार्ता[2], काव्यभेद, कामशास्त्र, चौंसठ कलाओं आदि में दीक्षित कर समर्थ बनाते हैं और उनके द्वारा धर्म विरोधी ताटका,

---

१- मनोगतं तत्सदकाण्डताण्डवं व्यपह्नुवानैव कुटुम्बिकाद्भयात् ।
निगीर्णनिर्यच्छिखतिग्मडम्बरा पतिंवरा साऽग्निशिखेव सध्वमा ।।
मधुकरीव सरोरुहसम्पुटप्रविलसन्मकरन्दरसालसा ।
निगडितैः कमलोदरबन्धनैः परिगताऽपि रराज पितुर्गृहे ।।
- जा० ह०, ३।४२,४३

२- निर्यद्दिनैः कतिपयैरथ राघवौ तौ
दिव्यायुधानि परिगृह्य गुरोः प्रसादात् ।
सम्प्रेष्य चापि दनुजान्निहतौ [illegible]
कौशाम्बमन्दिरमवाप्नुरात्मनो[illegible] ।।
वेदेतिहासपटुशास्त्रपुराणवृत्तैः
काव्योपभेदविशालकलाभिरिव ।
रात्री [illegible] परिपूर्णविद्यस्य [illegible] मेधां
[illegible] ।।
- जा० ह०, ४। ३६, ३७

सुबाहु, मारीच आदि राक्षसों का उन्मूलन करवाते हैं । इसी सर्ग में उक्त के अतिरिक्त यह भी बताया गया है कि जब विश्वामित्र राघवेन्द्र राम एवं लक्ष्मण को अपने पास बैठाकर उन्हें उपदेश दे रहे थे तो उसी समय उन्हें मिथिलेश्वर जनक के दूत द्वारा सीता के स्वयम्वर की निमन्त्रण पत्रिका उपलब्ध होती है । विश्वामित्र रघुनाथ राम एवं कुमार लक्ष्मण को सीता के रूप सौन्दर्य एवं दिव्यगुणों का बखान करते हुये उन्हें सीता के दर्शनार्थ उत्कण्ठित कर देते हैं।[1] गुरुवर्य्य विश्वामित्र की बातों को सुनकर सीता विषयक उत्कण्ठा से आक्रान्त राघवेन्द्र राम को उस रात में नींद नहीं आती । उचटी हुयी नींद वाले श्रीमन्त राम जनक नन्दिनी का बारम्बार स्मरण करते हुये तथा लक्ष्मण से कन्दर्प कथा की नायिका भूता सीता की मधुर स्मृतियों से सम्बद्ध मनोव्यथा को छिपाते हुये वे जैसे तैसे करवटों में ही वह रात बितायी[2] ।

पंचम सर्ग में कुल ६६ श्लोक हैं । जिनमें सौभाग्यवती सीता का रघुराज संगम कृष्णावर्णक रूप में उपस्थापित किया गया है । इसी सर्ग में बताया गया है कि मिथिलेश्वर जनक के स्वयम्वर में आमंत्रित विश्वामित्र के साथ कौशल कुमार राम एवं लक्ष्मण सीरध्वज जनक के यहाँ पहुँचते हैं । जनक विश्वामित्र से उन दोनों राजकुमारों का परिचय प्राप्त कर अपने को धन्य मानते हैं और राघव श्रीराम को सीतोचित वर के रूप में देखकर अनुमान करते हुये किसी विलक्षण सुख का अनुभव करते हैं । तदनन्तर उन सबका वे यथोचित राजकीय आतिथ्य करते हैं ।

१- जा० जी०, ४। ४२-४४

२- तस्यां रात्रौ मनसिजकथानायिकाऽकुण्टकेता:
काकुत्स्थोऽसौ क्षणमपि दृशौ मीलितुं नो शशाक
स्मारं स्मारं जनकतनयां जीतमिन्दुं त्रियामां
रामोऽनैषीत्कथमपि च तां सोदराद् गोपितात्मा ।।

— वही, ४ । ४६

विश्रामोपरान्त गुरुवर्य विश्वामित्र की आज्ञा से राम और लक्ष्मण उनकी सायंकालीन संध्या पूजा के लिये पुष्प चयन हेतु मिथिलेश्वर की वाटिका में जाते हैं[1]। वहां पहुंच कर राघवेन्द्र राम की स्मरांकुर भावना की अग्निशिखा उद्दीप्त हो उठती है किन्तु फिर भी राघव राम उस पुटपाक सदृश स्मर संताप को धीर गजराज के समान सहन करते हैं[2]। और वार्तालाप के माध्यम से वे अनुज लक्ष्मण से अपने संयम बन्ध के भग्न होने का कारण पूछते हुये वे उन्हें उसका अनुसंधान करने के लिये स्पष्ट कहते हैं कि प्रिय लक्ष्मण ! पता तो लगाओ कि करधनी में गुंथी हुयी किंकिणी की ध्वनि कहां से मेरे कानों में आ रही है। इस विलास वन में कहां मधुर गीत गाया जा रहा है[3]। अग्रज राम की मनोदशा को देखकर द्रवीभूत लक्ष्मण मनोनुकूल दिशा में मर्यादा सहित उनकी आज्ञा को शिरोधार्य कर आगे बढ़ते हैं।

छठें सर्ग में कुल ६७ श्लोक हैं जिनमें अनुरागिणी सीता एवं राम का पारस्परिक पूर्वराग का अत्यन्त मनोवैज्ञानिक वर्णन किया गया है। इसी सर्ग में यह बताया गया है कि अग्रज राम के आदेश को स्वीकार कर जब कुमार लक्ष्मण मिथिलेश्वर की विलासवनिका में आगे बढ़ते हैं तो उन्हें सखियों सहित गिरिजा पूजन के लिये आती हुयी जानकी दिखायी देती हैं। लक्ष्मण अग्रज राम को सखियों सहित आती हुयी जनक नन्दिनी सीता के विषय में सूचना

१- जा० जी०, ५।४४-४५

२- वही, ५। ५४-५५

३- क्व नु सारसनावलम्बिनी श्रवणान्तं समुपैति किङ्किणी ।
प्रिय लक्ष्मण मार्गयाचिरं विपिनेऽस्मिन्क्व नु गीयते कलम् ॥
- वही, ५। ६१

देते हैं[1]। इस पर राम अनुज सहित स्वर्ण चम्पा निकुंज में स्थिर होकर सखियों सहित आती हुयी जनकनन्दिनी सीता को देखने लगे उस समय राम परिपक्व प्रेम की निष्कपटता के कारण अत्यधिक विनीत होते हुये भी स्तम्भ होकर न कुछ कह सके और न हिलडुल सके तथा न ही शान्त रह पाये। पुनः वे अनुज लक्ष्मण से सीता विषयक उत्कण्ठा को स्पष्टतः कहने का लोभ संवारण भी नहीं कर सके। रघुराज राम द्वारा सीता की प्रशंसा सुनकर पुष्पचयन करने के व्याज से से छिपी हुयी सीता की कोई सखी तद्विषयक समाचार को सखियों सहित सीता को सुनाती है और सीता को उन्हें देखने के लिये स्वर्ण चम्पक निकुञ्ज की ओर बढ़ने का निवेदन करती है। सखियों सहित सीता जैसे ही प्राण वल्लभ प्रियतम रघुनाथ की छवि की आकांक्षा से मार्ग में डग भरती हुयी आगे बढ़ती हैं वैसे ही सीता के मुखचन्द्र को चकोर के समान निहारते हुये स्वर्ण चम्पा के कुञ्ज-कुटीर से स्वयं बाहर निकले हुये उत्कंठित राघवेन्द्र राम सीता को दिखायी देते हैं[2]। उस समय उन पुरुष सिंह कन्दर्पकोटि कमनीय श्री राम को सम्मुख देखकर सहेलियों की टोली सीता को अकेली छोड़कर धीरे से आगे बढ़ जाती है। उसी समय प्रिय समागम जनित भय के कारण पाण्डुर सीता के मुखचन्द्र पर लज्जा रूपी अमृत भरी के सैकड़ों बिन्दुओं का समूह उदय हो गया। किन्तु फिर भी वे राम से कुछ कहने में समर्थ नहीं हो सकीं। इस पर राम स्वयं संयमित वाणी में प्रीति का प्रकाशन करते हुये कहते हैं कि मंजुल दर्शने हे सुतनुके सीते! मुझे देखकर लज्जित क्यों हो रही हो। आश्चर्य है जिसको देखने की आकांक्षा से यहां तक आयी

१- प्रतिनिवृत्य ततोऽनुजमाकुलं मृदुगिरा निजगाद निवेदनम्।
ननु विलेखुलाऽऽर्य! सखीजनैस्सह विलासवनेऽत्र विराजते।।

यदि श्रुतैमपि पृथिवीपतेर्भवदुदारमनोऽत्र विलस्मर!
व्यतिकरस्सकलोऽपि श्रुतावितां भवत एव तदेति मताम्मम।।
– जा० जी०, ६।११, १२

२- वही, ६। ३५, ३६

हो उसी की उपेक्षा क्यों कर रही हो ?[1] हे कर मूर ! इतनी पार्श्ववर्तिनी होकर भी तुम यदि कुछ उत्तर नहीं देती तो निश्चय ही राम यही समझेगा कि प्रेम का शाश्वत और चिरन्तन होना संदिग्ध ही है[2]। पद के नखाग्रों से स्मर-वेदना को छिपाती हुयी वैदेही का वह एक क्षण एक युग हो गया । न वह आगे बढ़ पायी और न पीछे, न दहिने खिसक सकीं न बांयें । न ऊपर की ओर देखा और न नीचे । उस समय जानकी मूर्तिवत स्थिर रह गयीं[3]।

रघुनन्दन श्री राम अपनी हृदयवल्लभा सीता को स्मरानुभव रूपी महासागर में निमग्न देखकर अच्छा जाओ ! तुम्हारे मार्ग में बाधा नहीं उत्पन्न करूंगा[4]। धीरे से ऐसा कहकर मौन-सा हो गये । पुलक के कारण रोमा च का अनुभव करने वाले रघुराज राम जनकनन्दिनी के चिबुक को जैसे ही ऊपर उठाने का उपक्रम करते हैं वैसे ही सीता की सहेलियां खिलखिलाकर हंसने लगती हैं[5]। लज्जा के सागर में डूबी हुयी वैदेही प्रणयी राम से "अपि दयस्व मयि

१- किमिव मामवलोक्य विलज्जसे सुतनु मैथिलि । म कुलदर्शने ।।
प्रचलितासि यदीयविधूतया ननु तमेव जनं किमुपेक्षसे ?
- जा० जी०, ६। ५०

२- प्रतिवच: करभोरु ! न दीयते यदि मनागपि सङ्गतया त्वया ।
रघुवरोऽनुमिष्यति निश्चितं वितथमेव भवान्तरसौहृदम् ।।
- वही, ६।५४

३- न च ससार पुरो न च पृष्ठतो न खलु दक्षिणतो न च वामत: ।
उपरि नैव ददर्श न चाप्यधो व्यवहमूर्तिरिवावनिजा जनकी ।।
- वही, ६।५७

४- वही, ६ । ५८

५- चिबुकमुन्नमयत्यथ राघवे पुलकजाततनूरुहवेल्लने ।
सुचिखिखिरवलीजनकाक्रके: स्फुटमहासि सितं स्मितसावादिभि: ।।
- वही, ६। ५६

स्मरसुन्दर '। कहकर उनसे विदा लेती हुयी सखियों की टोली में जा विराजती है[1]। इधर राघव भी साभिप्राय लक्ष्मण की ओर देखते हुये उन्हें साथ लेकर धीरे-धीरे चले जाते हैं।

सप्तम सर्ग में कुल ६१ श्लोक हैं जिनमें परिणीता सीता का स्वयम्वर महोत्सव वर्णित है। इसी सर्ग में यह बताया गया है कि सीता की स्मृतियों में डूबे हुये रघुवेन्द्र राम दूसरे दिन गुरुवर्य वसिष्ठ के आदेशानुसार अनुज लक्ष्मण सहित मिथिलेश्वर जनक की प्राणदुहिता जानकी के स्वयम्वर महोत्सव में पदार्पण करते हैं। महोत्सव मण्डप में अन्य सभी राजाओं, राजकुमारों आदि के उपस्थित हो जाने पर सीरध्वज जनक कुलगुरु शतानन्द के समादेश से सीता के विवाह के सन्दर्भ में अपनी प्रतिज्ञा का उल्लेख करते हुये स्पष्टत: कहते हैं कि हे दूरागत राजकुमारों पराक्रम प्रदर्शन ही जिसकी प्राप्ति का मूल्य है ऐसी सौन्दर्य तथा शील में प्रख्यात मेरी सुलक्षणा पतिम्वरा जानकी इस स्वयम्वर महोत्सव में उसी उदारचेतन मनोभिलषित वर का पाणिग्रहण करेगी जो इस अजात शम्भु चाप 'पिनाक' को वेगपूर्वक उठाकर प्रत्यञ्चा को धनुर्दण्ड पर आरोपित कर देगा[2]। यह भी ज्ञातव्य है कि यह वही शम्भुचाप है जिसे प्रियतमा सती की अग्निदाह से उत्पन्न

१- अयि दयस्व मयि स्मरसुन्दर। ननु सखीनिकरोऽपहस्यते।
इति निवेद्य विमाभिनी जनकजा प्रययौ वरकामिनी॥

- जा० जी०, ६।६१

२- स्वयंवरेऽस्मिन्मम वीर्यशुल्का लावण्यशीलप्रथिता सुकन्या।
पतिंवराऽसैव कमप्युदारं ग्रहीष्यति प्रीतवरं कराभ्याम्॥

य एव वीरोऽजातशम्भुचापं द्रुतं समुत्थाय पिनाकमुख्ये:।
गुणं च कर्षेन गुणकि सोऽसौ सीतापतित्वेऽस्मपरायण॥

- जा० जी०, ७।१२, १३

वैराग्य भाव वाले धूर्जटी शंकर ने दक्ष प्रजापति को यमलोक भेजने के पश्चात् हमारे पूर्वज महाराज-देवरात को, उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर प्रदान किया था।[1] कुल परम्परा से प्राप्त मेरे पास संरक्षित देवाधिदेव भगवान शंकर का यह महाचाप आप सभी के अप्रमेय बाहुबल की परीक्षा ले रहा है।

इसके पश्चात् राजकुमारों को शिव धनु उठाने के लिये समादेश देकर जब जनक बैठ जाते हैं तो पांचसहस्र वीरों के द्वारा आठ पहियों पर चलने वाली मंजूषा रथिका पर स्वयम्वर वेदी पर लाया जाता है। सभी राजकुमार एक-एक करके उसे उठाने का यत्न करते हैं और कुछ तो उपहासवश धनुष के पास तक भी नहीं जाते ऐसी स्थिति में शम्भुचाप को उठा कर उसकी प्रत्यञ्चा चढ़ाना तो दूर रहा अपितु उसे कोई हिला भी नहीं सका।[2]

मिथिलेश्वर जनक समूची पृथ्वी को महावीरों से शून्य समझ कर जिस परिताप की पराकाष्ठा में पहुंचते हैं वह तो सर्वथा अनिर्वचनीय ही है।

वैदेही विवाह को सम्पन्न न होते हुये देख मिथिलेश्वर जनक अपनी प्रतिज्ञा पर स्वयं को अनेकशः कोसते हुये आंसुओं से लथपथ हो जाते हैं। सारा का सारा उपस्थित मिथिलेश्वर का प्रजा का दुःखार्णव में डूब जाता है।[3] सुनयना और सीता की अन्तर्व्यथा का अनुमान कोई सहृदय ही कर सकता है। जनक को प्रजा सहित दुःखसमोदधि में निमग्न देखकर- विश्वामित्र महाराघव श्री मन्त राम रामभद्र को देख, काल एवं परिस्थिति के अनुकूल दुर्धर्ष शम्भुचाप को उठाकर उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर वैदेही सहित सभी को आनन्दित करने के लिये आदेश देते हैं। और कहते हैं कि हे रघुनन्दन श्री राम उठो, निश्चय ही यह महाराजाधिराज जनक विपन्न हो रहे हैं। हे नरपुङ्गव तुम्हारा यह गुरु आदेश दे रहा है

१- बा० री०, ७।१५

२- वही, ७।३७-४७

३- वही, ७।४०-४२

इस दुर्धर्ष शम्भुचाप को उठाकर डोरी चढ़ा दो । वैदेही और विदेह को एक साथ आनन्दित कर दो[1]।

गुरुवर्य विश्वामित्र के समादेश से महाराघव राम भद्र धनुर्भञ्जनार्थ अप्रमेय मृगेन्द्र के समान उसके पास पहुंचते हैं और भगवान शंकर के 'पिनाक' एवं गुरु विश्वामित्र की समर्चना करके मृगाक्षी सीता की ओर देखकर क्षणैक में 'पिनाक' को मध्य से पकड़कर उठा लेते हैं, धनुष की प्रत्यञ्चा को जब तक वह धनुर्दण्ड पर आरोपित कर उसे पूर्ण करते हैं कि तब तक त्रिलोकी को कम्पित करता हुआ वह खण्ड खण्ड हो जाता है[2]।

सारा का सारा स्वयम्वर आनन्दसागर में डूब जाता है । सखियों के द्वारा लायी गयी राजहंसिनी जैसी जानकी मूर्ति के सम्मुख प्रज्ज्वलित आरती के सदृश तथा संचरणशीला चन्द्रिका के समान आगे बढ़ती हुयी जानकी रघुराज प्रियतम राम के पास यथाकथंचित वरमाला सहित आ गयीं । तदनन्तर 'स्मितमुख श्री राम को वरमाला पहनाती हैं और उनकी अर्धांगिनी बनती हैं[3]।

अष्टम सर्ग में कुल ८२ श्लोक हैं जिसमें प्रियाकुला सीता की विदाई, श्वसुरालय गमन आदि का मुक्तकण्ठ से वर्णन किया गया है । इसी सर्ग में मिथिलेश्वर जनक राघवेन्द्र राम और जानकी के विवाहोत्सव की पत्रिका कोशलेश दशरथ के पास भेजते हैं । हर्ष सिन्धु में निमग्न दशरथ कुलगुरु वसिष्ठ के निर्देशन में भव्य साज-सज्जा के साथ-बारातियों सहित मिथिला पहुंचते हैं । कुलगुरु-

---

१- जानकीजीवनम्, ७। ५६, ५७

२- वही , ७। ६८, ७०

३- मुग्धमुकुल्यवयस्याभि: प्रणोदिता मुग्धसुता च सीता ।
आरोप्य कण्ठे वरमाल्यमाशु प्राणेश्वरस्याजनि लज्जितेव ॥
विदेहजे ! त्वमिह कुलवधुकं कृतं मया यत्किल बालिकायाम् ।
क्षमस्वेति निगद्य नमी प्रियोदितं वा प्रियमाप तन्वी ॥
- जा० जी०, ७।८४, ८५

शतानन्द सहित जनक उन सबका यथोचित स्वागत सत्कार करते हैं तदनन्तर ब्रह्मर्षि वसिष्ठ और गौतम नन्दन शतानन्द दोनों राजपुरोहितों के निर्देशन में रघुराज श्री मन्त रामभद्र एवं मिथिलेश राजदारिका, जानकी का विधिवत् विवाह सम्पन्न होता है[1]। साथ ही साथ माण्डवी, उर्मिला एवं श्रुतकीर्ति का भी क्रमश: भरत, लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न के साथ उद्वाह संस्कार सम्पन्न होता है[2]। विवाहोपरान्त मंगलमयी लग्नवेला आने पर जनक ने राजरानी सुनयना की अनुमति से कुलाचारानुरूप अपनी सीता आदि कन्याओं को रामभद्र आदि जामाताओं के साथ श्वसुरालय अयोध्या भेजने का उपक्रम करते हैं।

इसी सर्ग में महाकवि की लोकोत्तर मेधा ने पुत्री की विदायी का जैसा हृदयद्रावी वर्णन किया है उसे पढ़कर कौन ऐसा सहृदय पाठक होगा जो आंसुओं से लथपथ होता हुआ भी बारम्बार पढ़ने का लोभ संवरण कर सके और कमनीय कन्या के पुत्री, पत्नी, गृहवधू, बहन, ननद, मां, सखी, सास, नप्तृ, पौत्री आदि विविध रूपों को देखकर नारी जाति को गौरव पद की महिमा से मण्डित देखने का अभिलाषी न बन जाय[3]।

नवम सर्ग में रामप्रिया सीता के बध्वाचार का एक सौ तीन श्लोकों में विविध आयामों के साथ वर्णन किया गया है। इस सर्ग में रामप्रिया जानकी आदि का श्वसुरालय अयोध्या में जाना, कौशल्यादि माताओं द्वारा उनका अभिनन्दन, बधुओं के दर्शनार्थ अयोध्यावासिनी नगरवधुओं की उत्ताल उत्कण्ठा, रामादि का जानकी आदि के साथ सौभाग्य रात्रि महोत्सव का हृदयावर्जक वर्णन उपन्यस्त किया गया है[4]। इसी सर्ग में लक्ष्मण आदि देवरों का सीता

१- जानकी जीवनम्, ८।३२-४०

२- वही , ८।४७

३- सुतेयं पत्नीयं भवनवधुकेयं च भगिनी
ननान्देयं श्वश्रू स्तनन्धयवितेयं च जननी ।
सखी नप्त्री पौत्री किमधिकमहो गौरवपदं
न किं धत्ते कन्या भुविजरचनायामनुपमा ।। - जा० जी०, ८।८०

४- जा० जी०, ९। ४३-४५

आदि मामियों के साथ हास-परिहास भी अत्यन्त रस-विलास के साथ विविध आयामों में उपस्थापित किया गया है[१]।

दशम सर्ग में सहचरी जानकी का वनवास ८६ श्लोकों में अत्यन्त आह्लादक रूप में सविस्तर वर्णित किया गया है। इसी सर्ग में यह वर्णन किया गया है कि कोशलेश दशरथ एकबार जब अपने शृङ्गार भवन में दर्पण उठाकर अपना मुख देख रहे थे तो सहसा दर्पण में प्रतिबिम्बित अपने मुखों पर उनकी दृष्टि जा टिकती है। वे देखते हैं कि अब उनके बाल श्वेत होने लगे हैं और अवस्था में भी वे वानप्रस्थ आश्रम के निकट आ पहुंचे हैं। फलत: वे वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करने के पूर्व अयोध्या की प्रजा को लोकप्रिय महाराघव राम के संरक्षण में सौंपकर सन्तुष्ट हो लेना चाहते हैं, एतदर्थ वे कुलगुरु वसिष्ठ के पास जाकर राघवेन्द्र राम के राज्याभिषेक का प्रस्ताव रखते हैं, और वसिष्ठ का हार्दिक अनुमोदन प्राप्त कर राज्याभिषेक की तिथि निश्चित कर तदनुकूल यथोचित तैयारी करने के लिये मन्त्रियों को आदेश दे देते हैं। साथ ही अनुपस्थित कुमार भरत एवं शत्रुघ्न को उनके मातामह गृह से लाने के लिये सन्देशवाहक दूत को भी प्रेषित कर देते हैं।

इसी बीच कैकेयी की अनन्य परिचारिका मन्थरा उसके पास आती है और उनसे उनके सपत्नीक पुत्र श्रीराम के राज्याभिषेक को कुमार भरत की अनुपस्थिति में विशुद्ध रूप में दशरथ द्वारा षड्यन्त्र किया जाना बताकर कैकेयी को अपने उत्तराधिकार के लिये उद्वेलित कर देती है। कैकेयी शीघ्र ही कोपभवन में चली जाती है जिसे सुनकर दशरथ स्वयं उनको मनाने के लिए जाते हैं और उसे कुछ भी मांगकर सन्तुष्ट हो लेने का वचन देते हैं। इस पर कैकेयी देवासुर संग्राम में दशरथ की प्राण-रक्षा के सन्दर्भ में उनके द्वारा दिये गये दोनों वरदान मांगती है। उनमें से प्रथम वर द्वारा कुमार भरत का राज्याभिषेक और द्वितीय वर

१- जा० जी०, ६ । ६१-६८

द्वारा राम का चौदह वर्षों का हृदयविदारक वनवास[1] । सत्यसंध दशरथ वचनबद्ध होने के कारण दोनों वरदान देने के लिये विवश हो जाते हैं ।

दशरथ के द्वारा प्रदत्त अम्बा कैकेयी को दिये गये वरदान के अनुसार राघवेन्द्र राम स्वयं सत्यसंध रघुकुल की कीर्ति को निष्कलङ्क बनाये रखने के लिये स्वमेव प्रिया वैदेही एवं अनुज लक्ष्मण के साथ वन की ओर प्रस्थान कर देते हैं[2] ।

ग्यारहवें सर्ग में अपहृता जानकी का 'रावणापहार' १९८ श्लोकों में अत्यन्त विस्तारपूर्वक विविध वक्रभंगियों के साथ उपन्यस्त किया गया है । इसी सर्ग में महाराघव राम का प्रिया वैदेही एवं अनुज लक्ष्मण के साथ अयोध्या से प्रस्थान करके शृंगवेरपुर से होकर चित्रकूट में कामदगिरि के उच्चशिखर पर निवास करने का तथा व वहां के वनवासियों के साथ उल्लासपूर्वक रहने का वर्णन किया गया है । इसके अनन्तर भरत का अपने गुरुजनों, नागरिकों तथा प्रजाजनों के साथ अग्रज रामचन्द्र को मनाने के उद्देश्य से चित्रकूट आगमन, राम द्वारा उन्हें अपनी चरणपादुका देकर अयोध्या पुनः प्रेषित करने, शूर्पणखा का अभिसार तथा राम के संकेत पर लक्ष्मण द्वारा उसका विरूपीकरण, शूर्पणखा के अपमान का प्रतिकार करने के लिये उसका खरदूषण, त्रिशिरा आदि का-ससैन्य राम से युद्धार्थ आना, तथा राघव के प्रचण्ड-शौर्य के समक्ष उन सबका धराशायी हो जाना, शूर्पणखा का दशकन्धर रावण से अपने-अपमान कर्ता रघुवंश कुमारों (राम एवं लक्ष्मण) का उल्लेख करना तथा स्वयं जानकी का अपहरण करने के लिये उसे प्रेरित करना, रावण का मातुल मारीच की सहायता से उन्हें कांचन मृग बनाकर तथा स्वयं

१- [illegible] राज्याभिषेकोत्सवेन सुतः स्थाप्यतामेव वरोऽयं स एकः ।।

[illegible] रामो वनान्ते ।
[illegible] वरोऽयं द्वितीयः ।।

– जा० जीवनम्, १०। ६६, ६७

२- वही, १० । ७८, ८८

यतिवर का छद्मवेश बनाकर सीता अपहरण हेतु राम के पर्णकुटीर के निकट पहुंचना,[1] मारीच के रूप पर मुग्ध सीता का राघव से उसके स्वर्णचर्म को प्राप्त करने के लिये आग्रह करना, प्रिया वैदेही के आग्रह पर राघव का उस कंचन मृग को मारने के लिये धनुष बाण सहित उसका पीछा करना, कांचन मृग रूप मारीच द्वारा छल पूर्वक राघव को कुटीर से सुदूर ले जाया जाना और उनके बाणों से सुदूर ले जाया जाना और उनके बाणों से आहत होकर हा लक्ष्मण कहकर आर्तनाद करना, मारीच के आर्तनाद को राघव का ही आर्तनाद समझ कर दु:ख कातरा वैदेही का अनुज राघव के रक्षार्थ बलपूर्वक लक्ष्मण को उनके पास भेजना, जानकी को एकाकी देखकर छद्मवेशधारी रावण का यतीश्वर रूप में वैदेही के समक्ष उपस्थित होकर उनसे भिक्षा याचना करना और भिक्षार्थ कन्दमूल फलादि को उनके द्वारा प्राप्त कर प्रसंगत: उनसे उनका परिचय पूछते हुये शनै: शनै: उनके रूप-सौन्दर्य की प्रशंसा करने के लिये उन्मुख होना और अन्ततः अपने वास्तविक रूप लङ्केश्वर रावण के रूप में आकर बलात् जानकी का अपहरण करना,[2] सीता का अपहरण कर ले जाते हुये रावण से पक्षिराज जटायु का युद्ध आदि क्रमश: वर्णित किया गया है ।

१- तामिवंशुमतापविहतनुं विहीर्णां वन्दिकामिव कालमेघ विछुन्नशोभाम् ।
रावणोऽवसरं निभाल्य महर्षिवेषी मैथिलीं कुलभावनामविपन्नचिन्ताम् ।।
- जानकी जीवनम्, ११। ८४

२- वामकेन निगृह्य मूर्द्धजपाशमन्यं दक्षिणेन भुजोरुकञ्च दृढं निगम्य ।
मैथिलीं स जहार तां परिदेवमानां क्रन्दितामसहायिनीं कुररीमुदीनाम् ।।

सोऽधिरुह्य रथं मनोजविनं मनोज्ञं मायिकं समयं ससार समीक्षमाणः ।
रामबाणभयं भिर्यं परिशङ्कमानः मायया रचितोऽसत्यविचिकष्णः ।।

- जा० जी०, ११। १०४, १०५

बारहवें सर्ग में तपस्विनी सीता का अशोक वनाश्रय ८३ श्लोकों में निरूपित किया गया है । इसी सर्ग में रावण द्वारा अपहृता जानकी को लंका के अशोक वन में ले जाकर स्थापित-करना, रावण का राक्षसियों द्वारा सीता को प्रलोभित करके उन्हें अपने प्रति विभिन्न प्रकार से अनुरक्त करने के लिये आदेश देना, उन सबका सीता को विविध प्रकार से प्रताड़ित करना, सीता-त्रिजटा संवाद, और त्रिजटा का जानकी को नीच रावण से सर्वथा निर्भय होकर रहने के लिये आश्वासन देना और तदर्थ उनकी यथाशक्ति सहायता करना, तदनन्तर लंकेश्वर रावण का रामवल्लभा जानकी से अपना अनुचित प्रणय निवेदन, जानकी द्वारा उसका भर्त्सनापूर्वक प्रतीकार, जानकी द्वारा अपमानित रावण का अपहृता वैदेही को विविध प्रकार प्रताड़ित करना आदि का क्रमशः वर्णन किया गया है ।

तेरहवें सर्ग में 'प्रत्युज्जीवित' जानकी की 'हनुमत्प्राप्ति' का ७७ श्लोकों में वर्णन किया गया है । इस सर्ग में लंकेश्वर के अशोक वन में राघव का सन्देश लेकर पहुंचे हुये हनुमान का सीता के समीप प्रच्छन्नरूप में रामकथा गायन, वियोगिनी जानकी का साश्चर्य रामकथा का गायन सुनना, हनुमान का रामकथा गायन के पश्चात् जानकी के समक्ष उपस्थित होकर उन्हें राघव की मुद्रिका अर्पित करना,[1] और स्वयं को उनका अनन्य दूत बताना, राघव के लिये जानकी का विलाप, हनुमान का जानकी को सान्त्वना देना, और उनसे राम के लिये पत्रिका एवं चूड़ामणि लेना,[2] हनुमान द्वारा अशोक वन का विध्वंसन, अक्ष कुमार का वध,

---

१- समर्पयामास मुदा ह्यङ्गुलीयं श्रीराममनामाङ्कितमादरेण ।
आनन्द येनां शृणु देवि सीते । मनस्समाधाय शुभं न याहि ।।
— जा० जी०, १३।३४

२- मदन्तिकान्नाथ । तवाङ्घ्रिपङ्कं पदं यदि स्यादुचिततन्नु यावत् ।
नेत्राम्बुनेरन्तु विभिन्नितैरवेलिखेत्स्वदेन्यं स्वयमेव सीता ।।
यथाकथा दे्ष्यति नो तथापि प्रभो । वियोगाग्नि सिक्तमुक्ता ।
पुत्रं समाधाय विभिन्नाभ्यां मायामनाथामव राघवेन्द्र ।।
प्राणार्पणं प्रेष्य विशालकायं विदेहजा प्रीतमनाः सहर्षम् ।
चूडामणिं वत्सलसान्त्वनार्थं समर्पयामास कपीश्वराय ।।
— जा० जी०, १३।४४, ४५, ४६

मेघनाद द्वारा नागपाश में आबद्ध हनुमान को लंकेश्वर की सभा में उपस्थित किया जाना, रावण-हनुमत्संवाद, हनुमान द्वारा रावण की भर्त्सना, क्रोधाभिभूत रावण का हनुमान की पूंछ को जलाने हेतु राक्षसों को आदेश देना, हनुमान द्वारा लङ्का दहन आदि का वर्णन किया गया है ।

चौदहवें सर्ग में कुल ८६ श्लोक हैं जिनमें समुद्धृता जानकी का निरूपण किया गया है । इस सर्ग में हनुमान द्वारा सीता की पत्रिका एवं चूड़ामणि को राम के लिये समर्पित करना तथा सीता के कारुण्य गर्भ निर्भर हृदयद्रावक सन्देश को रामभद्र के समक्ष निवेदित किया जाना, प्रिया वैदेही के सन्देश को सुनकर रघुवंशमणि श्री राम का शीघ्र ही उन्हें मुक्त करने के लिये ससैन्य लङ्का प्रस्थान, दक्षिणी सिन्धु पर नल नील द्वारा विशाल सेतु का निर्माण करवा कर उसके माध्यम से समूची राम सेना का लङ्का में पदार्पण, रावण का राम के सैन्यबल का ज्ञान प्राप्त करने के लिये अपने शुक एवं सारण नामक दोनों गुप्तचरों को राम की सेना में भेजना, शुक सारण का वानर का छद्मवेश धारण करके राम की सेना में पहुंचना, विभीषण द्वारा उनके पहचान लिये जाने पर वानरों द्वारा शुक-सारण का प्रताड़न तथा उन्हें राम का शरणागत बनाना, क्षमाशील राघव का उन दोनों दूतों को मुक्त करते हुये उनसे रावण के लिये शान्ति समर्थक सन्देश भेजना, शुक एवं सारण का रावण के पास जाकर राम की सेना सम्बन्धी अतुल पराक्रम का उद्गान करते हुये यथाशीघ्र रामवल्लभा जानकी को लौटा कर श्री राम के साथ मैत्री करने की प्रार्थना करना, जननी कैकसी, मातामह माल्यवान आदि के द्वारा समझाने पर भी दुर्मद रावण का राम से युद्ध करने का निर्णय लेना तथा राम के साथ घनघोर युद्ध करने के लिये अपने सैनिकों को आदेश देना, राम एवं लक्ष्मण द्वारा अपनी सेना की सहायता से रावण की आसुरी सेना के प्रहस्त, महोदर, धूम्रमाली, विरूपाक्ष घनमाली, अकम्पन, धूम्राक्ष, वज्रदंष्ट्र, कुम्भकर्ण, नरान्तक, त्रिशिरा, कुम्भ, निकुम्भ, मकराक्ष, आदि सभी प्रमुख वीरों का संहार, मेघनाद द्वारा राम और लक्ष्मण को नागपाश में बन्दी बनाया जाना, गरुड़ द्वारा उनका विमोचन, पुनः मेघनाद द्वारा माया सीता का राम के सैनिकों के मध्य हनुमान आदि के रोके जाने पर भी सहसा शिरश्छेदन[१], राम का

१- जा० जी०, १४ । ८८, ८६

उसे वास्तविक जानकी का शिरश्छेदन मानकर विलाप करना, विभीषण द्वारा उसे मेघनाद की माया शक्ति का प्रभाव बताकर जानकी के जीवित रहने का विश्वस्त समाचार देकर उन्हें पुन: युद्धार्थ उत्साहित करना, विजयाभिलाषी मेघनाद का निकुम्भिलादेवी का पुरश्चरण प्रारम्भ करना, लक्ष्मण का वानरों सहित वहां पहुंचकर पूजा रत मेघनाद को युद्ध के लिये ललकारना, मेघनाद और लक्ष्मण का तुमुलयुद्ध, लक्ष्मण द्वारा मेघनाथ का वध,[1] तदुपरान्त स्वयं लंकेश्वर रावण का अपने सैनिकों सहित महाराघव राम से युद्धार्थ समरांग में पदार्पण, राम-रावण का रौद्ररस पूर्ण रोमांचक संवाद तथा[2] दोनों का घमासान युद्ध, और अन्तत: महाराघव राम द्वारा रावण वध का रोमांचक वर्णन किया गया है ।

पन्द्रहवें सर्ग में कुल ८८ श्लोक हैं जिनमें मतिमती जानकी की अग्नि-परीक्षा का विशेष रूप से वर्णन किया गया है । इस सर्ग में रावण वध के अनन्तर राघवेन्द्र राम रावण वध विषयक समाचार को सीता तक पहुंचाने के लिये वातात्मज आ बनेय हनुमान को भेजते हैं । वायुनन्दन हनुमान यथाशीघ्र वैदेही के पास पहुंचकर उन्हें रावण वध का समाचार और साथ ही साथ

१- ततस्तुमुलसंगरोऽभवदनन्तशस्त्रान्वितो
अमर्षं शरपीडया कलदनाद आतङ्कितः ।
विलोक्य विनष्टकं प्रसरोषयुक्तलक्ष्मणा-
स्यकर्तं किल शीर्षकं मराटिति तस्य संराविणः ।।
- जा० जी०, १४।७०

२- अकर्तं शिरसां वयं च किल राक्षसेश्वरः
अपतत भुवि रावणः पुष्पवन्धुतो विरम ।
अचिन्त्यमिदमद्भुतं समरसाहसं दारुणं
विलोक्य नगस्थिता अनन्तापतेवनिरा: ।।
- वही, ८४, ८५

विभीषण के लङ्काधिपति होने का वृत्तान्त बता करके वैदेही को अपार हर्ष समुद्र में तरलाइत कर देते हैं । साथ ही साथ उन्हें यथाशीघ्र राघव के पास पहुंचने के लिये आग्रह भी करते हैं और कहते हैं कि सुवन श्री राम आपकी दर्शनोत्कण्ठा से व्यग्र हो रहे हैं । इसके अनन्तर यथाशीघ्र जानकी विभीषण द्वारा प्रेषित राक्षस सुन्दरियों के द्वारा सजधज कर शिविका में बैठकर राघव के दर्शनार्थ प्रस्थान करके शीघ्र उनके पास पहुंचने का उपक्रम करती हैं । वैदेही के दर्शनार्थ व्याकुल सभी नर वानर एवं राक्षसों के अपार सम्म को देखकर पुरुषोत्तम श्रीराम जानकी को शिविका से उतर कर पैदल ही अपने निकटतक आने का आदेश देते हैं जिससे दर्शनातुर नर-वानर, राक्षस सभी मैथिली का यथेष्ट दर्शन कर सकें । संयोग-वियोग के अनन्त भावनाओं के अगाध अम्बुधि में निमज्जित उन्मज्जित होती हुयी ज्योत्सना जैसी जानकी ने चिरकाल से ही अनदेखे प्रियतम राघव को साक्षात् भलीभांति जब देखती हैं तो उसी समय राघव की चरण छू लेने के पूर्व ही मर्यादा पुरुषोत्तम राम के द्वारा एक ऐसा वज्राघात होता है कि जिसकी अप्रत्याशित घटना से न केवल वैदेही अपितु नर,वानर, राक्षस समुदाय तथा च आकाशस्थ समस्त देवगण स्तम्भित से हो जाते हैं । राघव राम जानकी से उनके अपने निकट पहुंचने से पूर्व ही उन्हें सावधान करते हुये अत्यन्त कठोर शब्दों में राम-रावण महासंग्राम का मूल कारण केवल वैदेही को ही बताते हुये स्पष्ट कहते हैं कि सीते इस तथ्य को जान लो कि त्रैलोक्य को कम्पित करने वाले लङ्केश्वर रावण को अविश्वसनीय महासमर में मारकर मैंने यथाशीघ्र तुम्हारा उद्धार किया है एक मात्र तुम्हारे ही कारण यह महासमर हुआ[1]। सेतु पथ निर्माण कर सागर की मर्यादा भंग की गयी, महाबली वायुनन्दन को दुर्लंघ्य सागर लांघना पड़ा, वानरराज सुग्रीव को मेरा सहायक बनना पड़ा, विभीषण को लङ्केश्वर द्वारा अपमानित होकर मेरी शरण में आना पड़ा, नल, नील, अङ्गद आदि वानर राजों को तथा महाबली ऋक्षराज जाम्बवान आदि समस्त वीरों को तुम्हारे

१- वा० रा०, ११ । २४-२६

ही कारण समराङ्गण में जूझना पड़ा । मैंने रावण वध की प्रतिज्ञा पूरी कर अपने पौरुष से तुम्हारा उद्धार कर दिया है । हमारा तुम्हारा[1] यह मिलन महासमर का परिणाम मात्र है अब तुमसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है । इसलिये अब तुम जहां जाना चाहो जाओ अथवा यहीं लङ्का में ही रहो मैं तुम्हारे विषय में किसी प्रकार का विधि अथवा निषेध नहीं कर सकता क्योंकि तुम्हारे चरित्र पर शङ्का करने वाले इस समाज[2] को तुम्हारी पवित्रता का विश्वास करा-पाना निश्चय ही मेरे लिये दुष्कर है ।

राघव के कशाघात को सुनकर मरांसी हुयी कण्ठ वाली वैदेही अपनी चारित्र्यशुद्धि का एक से एक अकाट्य प्रमाण देती हुयी अन्तत: स्पष्ट करती हैं कि राघव मेरी पवित्र[3] आंखों में ही मेरा चरित्र प्रमाणित है आप स्वयं क्यों नहीं इसे पढ़ लेते ? और इस पर भी यदि आपको विश्वास न हो तो हनुमान, त्रिजटा आदि से क्यों नहीं पूछ लेते । यही नहीं यदि लंकेश्वर रावण आज जीवित होता तो वह स्वयं ही[4] मेरी शुद्धता का प्रमाण देता । वह कभी भी मेरे विषय में झूठ न बोलता ।

आप अपने सामाजिक यश के लिये मेरे उदात्त चरित्र को इस प्रकार अमर्यादित रूप से लाञ्छित कर रहे हैं । तत्वज्ञ होते हुये भी सब कुछ समझकर निश्चय ही पति होने के दुरभिमानवश आप पत्नी का साधिकार अपमान कर

१- जा० जी०, १५। २९, ३०

२- वही,   १५ । ३१-३३

३- विपन्नाविव: प्रकृत: प्रमाणमिव मदीयचारित्र्यमिहाद्य संशये ?
दृशोर्ममास्ते चरितं प्रमाणितं कथं त्वया नो स्वयमेव पठ्यते ?

- वही, १५ । ५२

४- वही,   १५ । ५३-५७

रहे हैं। उसका हवन कर रहे हैं[1] तो ठीक है अब आपकी द्वेषाग्नि की ज्वालाओं में ही अपने इस शरीर को आपके समक्ष ही भस्म करके आपके सामाजिक यश को सुरक्षित कर दे रही हूं। आप सन्तुष्ट हो लीजिये।

इसके पश्चात् वैदेही कुमार लक्ष्मण से अग्नि चिता तैयार करवाकर चारित्रिक शुद्धि के सम्बन्ध में भगवान अग्निदेव को साक्षी मानकर चिता में कूद पड़ती हैं[2]। भगवान अग्नि देव लोकोत्तर कान्ति सम्पन्न वैदेही को अपनी गोद में लेकर उनकी शुद्धि का स्वयं प्रमाण देते हुये नर, वानर, राक्षस, देवता आदि सभी को परितुष्ट कर उन्हें श्रीमन्त राम को अर्पित करते हैं। लोक दृष्टि में सर्वात्मना विशुद्ध चरित्रवाली सीता को राम सहर्ष स्वीकार करके अपनी अर्द्धांगिनी का पद देते हैं और कहते हैं कि हे अग्निदेव अब इस अग्नि-परीक्षा एवं देव-साक्ष्य के पश्चात् न तो राघव लोकापवाद का पात्र बनेगा और न ही वैदेही सीता। हे प्रभो हम दोनों ही आपके शुभाशीष से सौभाग्यशाली एवं सर्वथा पवित्र हो गये हैं[3]।

१- स्वलोककीर्तिरियती प्ररोचना ममार्यशीलस्य च कौरलाञ्छना ?
कुतो न्विदं राघव ! तत्वपारग ! ध्रुवं पतित्वेन जुहोषि गेहिनीम् ॥
- जा० जी०, १५ ।६१

२- मनो न मे राघवपादपङ्कजं गतं यदि क्वापि विमुच्य जीवने ।
तदद्य मां रक्षतु सर्वतोमुखं स्वशीरशीतो भगवान् स पावकः ॥

विशुद्धचारित्र्यवती यदि ध्रुवं भवेन्मनोवाक्करणैश्च जानकी ।
तदद्य तां पातु विभाष्टुवाकदिक्लोकसाक्षी नु भूतभावनः ॥
- वही, १५ ।६९, ७०

३- वही, १५ । ७३-७७

सोलहवें सर्ग में कुल ८२ श्लोक हैं जिनमें राजमहिषी जानकी सहित महाराघव राम के राज्याभिषेक का मुख्यतया वर्णन किया गया है इस सर्ग में रावण वध के अनन्तर विभीषण को लङ्का का अधिपति बनाना, विभीषण के द्वारा लाये गये पुष्पक विमान पर ससैन्य आरूढ़ होकर वैदेही एवं लक्ष्मण सहित अयोध्या के लिये राघव का प्रस्थान करना, मध्ये-मध्ये मार्ग के प्रमुख स्थलों का रोचक वर्णन करते हुये राम द्वारा वल्लभा जानकी का मनोविनोद करना, किष्किन्धा-पर्वत के समीप पहुंचकर जानकी के आग्रह पर सुग्रीव की पट्ट महिषियों को अयोध्या ले जाने के लिये पुष्पक विमान पर आरूढ़ कराना, चित्रकूट, प्रयाग में त्रिवेणी संगम को पार करके ब्रह्मर्षि भरद्वाज के आतिथ्य को राम के द्वारा स्वीकार किया जाना, और वहीं से कुमार भरत को सान्त्वना देने के लिये मद्र पुरुष वेश में हनुमान को अपने आगमन की सूचना देने के लिये नन्दिग्राम में प्रेषित करना, हनुमान का भरत के पास पहुंचकर उन्हें वैदेही एवं लक्ष्मण सहित ससैन्य राघव के यथाशीघ्र अयोध्या में पहुंचने की सूचना देना, कुमार भरत का गुरुवर्य वसिष्ठ के निर्देशन में विजय, जय, सुमन्त्र आदि महामात्यों प्रजाओं सहित राम का अभिनन्दन करने के लिये तैयार होकर प्रतीक्षा रत रहना, जानकी एवं लक्ष्मण सहित राघव का पुष्पक विमान द्वारा अयोध्या पहुंचना, उन सबका परस्पर अनन्त भावनाओं में मग्न होकर विविध प्रकार से हर्षातिरेकवाहक सम्मिलन और शीघ्र ही उसी दिन मर्यादापुरुषोत्तम राम का जानकी सहित राज्याभिषेक आदि क्रमशः अत्यन्त संरम्भ के साथ वर्णन किया गया है[1]।

सत्रहवें सर्ग में कुल ६४ श्लोक हैं जिसमें संशयिता जानकी के जनापवाद का मुख्य रूप से वर्णन किया गया है। इस सर्ग में राम का सिंहासनारूढ़ होकर कुलगुरु वसिष्ठ के आदेश से राज्य को सर्वथा सुखी एवं सम्पन्न बनाने के लिये

१- जा० जी०, १६। ७६, ८०

महामात्यों की सहायता से लोकोत्तर राम राज्य की स्थापना करना, रामराज्य, सीता का गर्भवती होना, कुमार लक्ष्मण, शत्रुघ्न आदि द्वारा भाभी वैदेही का विविध प्रकार से परिहास करना और इसी बीच में गुप्तचर दुर्मुख अपनी पत्नी[1] के समक्ष वैदेही के चरित्र पर आक्षेप करने का राघव से निवेदन करना, वैदेही के चरित्र विषयक अपमान के वज्राघात से आहत राघव का अन्न जल छोड़कर एकान्त प्रकोष्ठ में किसी से न मिलने का व्रत लेकर सीता के ग्रहण एवं त्याग के द्वन्द से आक्रान्त होना, राघव की दशा सुनकर जानकी किं वा लक्ष्मण सहित सारे राजपरिवार का विषाद समुद्र में मग्न होना, कुमार लक्ष्मण द्वारा दुर्मुख से राघव की चिन्ता का कारण जानकर तथा च राघव के सीता परित्याग विषयक भावी निर्णय की सम्भावना का अनुमानकर क्रोधाभिभूत होकर गुरु वसिष्ठ के पास पहुंचना, एवं उनसे समस्त समाचार निवेदित करते हुये राघव को वैसा निर्णय न लेने के लिये गुरुवर्य वसिष्ठ से निवेदन करना, सीता के चारित्र्य शुद्धि का अनन्त प्रमाण प्रस्तुत करते हुये कुमार लक्ष्मण का स्पष्टत: यह कहना कि गुरुदेव रघुवंश-पूज्य रोष मूर्च्छित राघव को आप शान्त करें, प्रजानुरंजन में निष्ठा रखने वाले अवधेश्वर श्रीराम ने यदि पुन: रजक के कलङ्क वचनों से उन्मादित होकर देवि मैथिली को निर्वासित किया तो निश्चय ही महा अनर्थ होगा[2]। गुरुवर्य मैं शपथपूर्वक कह रहा हूं यदि आर्या जानकी के साथ ऐसा कुछ भी हुआ तो मैं अपने अप्रतिम बाणों से इस अयोध्यापुरी को ही क्षण भर में जलाकर भस्म कर दूंगा और बाद में स्वयं भी सरयू के जल में समाधि ले लूंगा[3]। मैथिली जानकी दिव्योद्भवा राजर्षि जनक की कन्या है

१- नृपतेर्वचनं निशम्योध्वाननो नेत्रवारिनिषिक्तगात्रो दुर्मुख: ।
कथितैर्नु वाचिकैरथे प्रभो । मैथिलीचरितं प्रजाऽऽलं शंकते ।।
-जा० जी०, १७।२८

२- वही, १७ । ३१

३- सत्यमेव वदामि देवैषां पुरीमिमां निर्मिमेष शरैरयोध्याम् ।
मज्जितास्सरयूजले ... प्रभो । ...म् ।।
- वही, १७ । ४२

कोई सामान्य नारी नहीं, वे रघुवंश की महीयसी कुल देवी हैं, रघुवंश की वंश-धरा हैं, वे राघव के हाथ की क्रीडा शुकी नहीं है कि जब चाहा तब हाथ पर बैठाया और फिर पिंजड़े में ठूंस दिया, वह कौशल साम्राज्य की लोकसम्मत साम्राज्ञी भी है अतएव उस यशस्विनी को तिरस्कृत या अपमानित करने का अधिकार स्वयं राघव को भी नहीं है[1]। राजहंस कन्या के समान उसने मानसरोवर रूप अयोध्या का राजप्रसाद को त्यागकर वनवास के असह्य कष्टों को भोगा है और उस परिस्थिति में भी वैदेही ने अपने सेवा एवं स्नेह प्रेम से राघव को निरन्तर सुख ही दिया है। रावण द्वारा अपमानित होने के साथ-साथ उसी रावण नगरी में सारे समाज के समक्ष ही राघव के द्वारा देवी सीता अपमानित की गयी, अपनी चरित्र की परीक्षा के लिये उन्हें मेरे हाथों रची गयी अग्निचिता पर भी चढ़ना पड़ा किन्तु फिर भी अपने पवित्रता के कारण जली नहीं[2]। प्रजापति ब्रह्मा, धूर्जटी शंकर, अग्निदेव, पितृचरण महाराज दशरथ आदि सभी ने जिस सीता की पवित्रता का साक्ष्य देते हुये राघव से उसे ग्रहण कराया, भला इससे अधिक महान् गौरव और क्या हो सकता है[3]।

उसकी पवित्रता की पराकाष्ठा क्या हो सकती है। यह क्षुद्र कीट नारकीय प्राणी धोबी महीयसी देवी सीता के पवित्र चरित्र पर आक्षेप कर रहा है जिसने जिन्दगी भर[4] केवल कपड़े की मैल ही धोया परन्तु आज तक अपने मन का मैल नहीं धो सका। मैं तो इसलिये आपके पास आया हूं कि आप कौशल साम्राज्य के राजपुरोहित होने के कारण उसके नियामक हैं, संरक्षक हैं, कल्याण कर्ता हैं। दृढ़ संकल्प शील क्रोधातुर राघव को शान्त करने में आपके अतिरिक्त कोई समर्थ नहीं है।

१- वा० वी०, १७ । ४३, ४४

२- वही, १७ । ४७

३- वही, १७ । ४८

४- वही, १७ । ४९

कुमार लक्ष्मण के भयानक प्रतिरोध को देखकर दारुण व्यथा से व्यथित कुलगुरु वसिष्ठ ने सान्त्वना देते हुये राघव के लिये यह सन्देश देते हैं कि वत्स लक्ष्मण ! यहां से जाकर किवाड़ों की दरार से ही राघव को उनके गुरु वसिष्ठ का सन्देश कह देना कि गुरुवर्य वसिष्ठ ने बड़ी गम्भीरता से यह सन्देश भेजा है कि हे राघव मेरी उपेक्षा करके तुम्हें कोई भी मनमाना निर्णय नहीं लेना है[1]।

गुरुवर्य वसिष्ठ का सन्देश लेकर कुमार लक्ष्मण राघव के कक्ष के निकट जाकर निवेदित करते हैं, साथ ही स्वयं भी कहते हैं कि हे देव आप अपने हृदय को इन वात्याचक्रों से सन्तप्त न करें। सम्पूर्ण लोक का जीवन आपके ही हाथ में है अतएव समाज एवं अपने कुटुम्ब की रक्षा करें[2]।

अठारहवें सर्ग में कुल ११७ श्लोक हैं जिनमें पुण्यशीला जानकी के चरित्र विषयक लोकापवाद का निर्णय मुख्य रूप से वर्णित किया गया है। इस सर्ग में कुलगुरु ऋषि वसिष्ठ के आदेशानुसार सीता के लोकापवाद का निर्णय करने के लिये एक अखिल राष्ट्रीय महालोक सभा का आयोजन किया जाता है जिसमें ऋषियों, राजर्षियों, बटुकगणों आदि के सहित समाज के सभी प्राणी एक साथ उपस्थित होते हैं तदनन्तर गुरु वसिष्ठ उस विशाल महासभा के मध्य में निर्मित महामंच पर विराजमान होते हैं जिनके दक्षिण पार्श्व में राम आदि चारों भाई तथा वाम पार्श्व में विजय, जय, सुमन्त्र आदि आठों मंत्री, प्रमुख सेनापति विराजमान होते हैं।

१- गच्छ वत्स ! कवाटरन्ध्रोद्भोषितः भाष्य द्रुतमेव रामं मद्वचः ।
मामुपेक्ष्य न निर्णयो ग्राह्यस्त्वया कोऽपि राघव ! सन्दिशत्येवं गुरुः ॥
- जा० जी०, १७।५५

२- गत्वा सौधकवाटरन्ध्रनिकटं सौमित्रिरातंस्वरै-
र्वासिष्ठं वचनं निवेद्य तु रामं तथाऽभाषत ।
प्रोवाच स्वयमेव देव ! कुरु मैवं मुधं ताप्य
त्वद्धस्ते हि जीवितं प्रभुते ! रक्षा लोकं कुलम् ॥
- वही, १७।६२

इसके अनन्तर विशाल जन-सम्मर्द से आकीर्ण लोकसभा को सीता-विषयक अपवाद का निर्णय करने के उद्देश्य से ब्रह्मकोटि ऋषि वसिष्ठ, जलधर सरीखे मन्द्र एवं उदात्त कण्ठ से फूटती वाणी में सभासदों को सम्बोधित करना प्रारम्भ किया कि -- अयोध्यावासी समस्त नागरिकों - आप लोगों के जीवन में सहसा एक नृशंस राज भय उपस्थित हो गया है जिसके समाधान हेतु मुझ राजपुरोहित द्वारा आप लोग प्रार्थनापूर्वक बुलाये गये हैं । वह राज भय यह कि कल सान्ध्य बेला में महाविष्णु के साक्षात् अवतार रघुराज श्री मन्त राम को उनके राजनियुक्त गुप्तचर दुर्मुख ने यह सूचना दी कि अयोध्या नगरी में ही कोई एक भगवती जानकी के चरित्र पर आक्षेप कर रहा है बस उसी क्षण से पराकाष्ठागत मनोव्यथा वाले प्रजानुरंजन हेतु कृतसंकल्प महाराघव ने भोज्यान्न एवं जल का परित्याग कर दिया है । राजभवन का कपाट बन्द कर वह रात्रि में भी नहीं सो सके हैं । कुमार लक्ष्मण से यह सारा समाचार पाकर मैंने भी रात में ही उन्हें अपना सन्देश भेजा कि -- 'राम बिना मुझसे पूछे तुम्हारे द्वारा कोई भी अनर्थकारी प्रतिज्ञा नहीं की जानी चाहिये'[1], मैं समझता हूं कि कुमार लक्ष्मण के उन प्रयत्नों और आप सबके सौभाग्य से ही वह महाविनाश रात में टल गया । अब आज की इस प्रातबेला में जो कुछ मन्तव्य है उसके प्रमाण तो आप सब स्वयं हैं । नगरवासियों ! सागर पर्यन्त विस्तृत कोसल साम्राज्य कि वसुन्धरा का कल्याण अब तो उस एक के ही आधीन है जिसने भगवती सीता के पावन चरित्र पर आक्षेप किया है । इसीलिये मैंने उसे भी पत्नी सहित इस सभा में बुलवाया है । यह संसद एक मात्र जनमत में निष्ठा रखने वाली लोकमत का अनुगमन करने वाली, लोक विकसित व्यवस्था वाली है ।

१- सौमित्रितो वृत्तमिदं निशम्य ममापि रात्रौ प्रहित:स्वमन्त्र: ।
अन्यायमापृच्छ्य न कापि राम ! कार्या त्वयाऽनर्थकरी प्रतिज्ञा ।।

- जा० जी० १८ ।४१

अतएव इस लोकसभा में लोकमत की गवेषणा करने में किसी भी राजा अथवा प्रजा को भय नहीं होना चाहिए और न ही दैन्य भाव । परन्तु सीता के चरित्र के विषय में निर्णय लेने के पूर्व आप सभी लोग भगवती सीता के पवित्र चरित्र के विषय में मैं जो कुछ कहना चाहता हूं उसे आप सभी लोग कान खोल कर सुन लें और विवेकपूर्वक उस कथ्य पर विचार कर लें -- यों तो सीता के पवित्र चरित्र के विषय में अनन्त प्रमाण हैं किन्तु उनमें से कोई उनके किसी एक ही प्रमाण पर खरा उतर जाय तो मैं सीता के चरित्र को लांछित मान सकता हूं । सीता ने लङ्का में जो अग्नि परीक्षा दी है क्या वह उनके चरित्र की सामान्य परीक्षा है फिर भी जो राजमहिषी देवी सीता के चरित्र को लांछित कर रहा है वह स्वयं भी मात्र एक बार अग्नि-चिता पर चढ़कर अपने चरित्र की पवित्रता का प्रदर्शन करे । सम्मान्य पौरजनो ! बस केवल मेरा इतना ही निवेदन है कि अब रजक द्वारा वैदेही के चरित्र पर आक्षेप किये गये लोकापवाद का निर्णय भी उसी एक निकष पर जनता जनार्दन करें ।

ऋषि वशिष्ठ की वाणी को सुनकर सारी सभा स्तब्ध रही और वह रजक चीखता-चिल्लाता हुआ आत्मनिन्दा करता हुआ प्रथमतः वशिष्ठ तदनन्तर स्वयं श्री भक्त राम के चरणों को पकड़कर क्षमापूर्वक आत्मोद्धार हेतु स्वयमेव भगवती सीता के पवित्र चरित्र पर आक्षेप करने वाले अपने आपको मृत्यु दण्ड देने के लिये धर्म नियामक गुरु वशिष्ठ एवं राजाधिराज महाराजा राम से पौनः पुन्येन आर्त निवेदन करने लगा । तथा च अन्त में उसने अन्तिम रूप से यह भी कह डाला कि हे रघुनाथ ! ऋषि वशिष्ठ की वाणी का अमृत पीकर मेरी बुद्धि की जड़ता विनष्ट हो चुकी है । अब मैं अयोध्यापति श्रीराम के विष्णु रूप को

१- चरित्रमात्मन्यदि चेद्रजकाः प्रजाजनो यो हि विरुद्धबुद्धिः ।

चितां समारुह्य निजं चरित्रं प्रदर्शयत्सोऽपि स्वकं पवित्रम् ।।

— चा० ची०, १८।७८

और भूमिजा देवी सीता के लक्ष्मी रूप को स्पष्ट देख रहा हूं[1] । हे स्वामी आज मेरा पुनर्जन्म हुआ है । शरीर तो वही पुराना है परन्तु चैतन्यात्मा सर्वथा नवीन हो गयी है । कारुण्य पारावार भगवन्त रघुनाथ आपने निषादराज गुह, शबरी, जटायु आदि का उद्धार किया है, मुझ दासानुदास का भी उद्धार कीजिये । मुझे मेरे अपराध के अनुकूल (मृत्यु दण्ड) दण्ड दीजिये । हे नाथ ! कृतापराध परन्तु अब निर्मल आत्मावाला दीन हीन मैं यदि आपके द्वारा यथोचित रूप से दण्डित करके सन्तुष्ट नहीं किया गया तो आज ही आप सुनेंगे कि अपने ही द्वारा किये गये प्रयत्नों से मैंने अपना अन्त कर लिया[2] ।

रजक के आर्तनाद को सुनकर क्रोधाभिभूत सम्पूर्ण लोकसभा किंवा स्वयं धर्मनियन्ता कुलगुरु वसिष्ठ एवं श्री भरत राम भी दयार्द्र होकर सजल नयन हो गये । राम उसे उठाकर गले लगाते हैं । और दामादान देते हुये उससे स्पष्ट कहते हैं कि -- हे रजक तुम्हारे हृदय की निर्मलता को देखकर मैं परितुष्ट हो गया हूं, हे तात ! मैं प्रजाजनों की सौगन्ध खाकर तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि[3] तुम्हारी ओर से मेरा मन बिल्कुल निर्मल हो गया है । अत: तुम शान्तमना अपने घर जाकर नियत कर्म में लग जाओ । इस कोसल साम्राज्य में सज्जनों को राम से[4] कोई भय नहीं है परन्तु दुर्जनों की राम से रक्षा भी नहीं है । जो व्यक्ति जहां

१- युष्माभिरार्या अमृतं निपीय किन्तु ह्यधीनं मम दुष्टिभाग्यम् ।
विलोकये सम्प्रति विष्णुरूपं लक्ष्मीमिमां भूमिसुतां च दिव्याम् ।।
- बा० वी०, १८।१०१

२- वही, १८ । १०४

३- वही, १८ ।११०

४- प्रजाधि मैवं ननु भद्र ! शान्तस्थिरं समाधाय कुरुष्व कार्यम् ।
भयं न रामादिह सज्जनानामसज्जनानामपि नैव रक्षा ।।
- वही, १८ । ११२

कहीं भी जिस किसी कार्य में लगा हुवा है वहीं पर वह समुन्नत बने, जिससे हमारा भारत राष्ट्र नगराज हिमालयसदृश सर्वतोमुखी सफलता के साथ अपनी उच्चता को सुरक्षित रखते हुये अपने यश के उज्ज्वल प्रकाश से देदीप्यमान हो सके ।

१९ वें सर्ग में कुल ७२ श्लोक हैं जिनमें वीरप्रसविनी सीता के कुश एवं लव दोनों पुत्रों के जन्म महोत्सव, बालकेलि, ऋषि वाल्मीकि के निर्देश में शिक्षा-दीक्षा आदि का विशेष रूप से वर्णन किया गया है । इसी सर्ग में अभिनव प्रस्थान के साथ इस तथ्य का भी वर्णन किया गया है कि जिस समय राघवेन्द्र श्री भन्त राम ऋषि वाल्मीकि को अपने निर्देशन में शिक्षा देने के कुश एवं लव को अर्पित कर रहे थे उसी समय अपने उन दोनों पुत्रों की सम्यक् देख-रेख के लिये वैदेही के विशेष आग्रह पर उन्हें भी कुछ समय के लिये कुश-लव के साथ ब्रह्मर्षि वाल्मीकि के आश्रम में रहने के लिये भेज देते हैं और कुछ समय के पश्चात् स्वयं-राम भी भाइयों के साथ वाल्मीकि के आश्रम में जाकर उन्हें सीता को लाने का वचन भी दे देते हैं[१] । तदनुकूल अश्वमेध यज्ञ के पूर्व वे जानकी को वाल्मीकि के आश्रम से ले भी आते हैं । तथा कुश और लव को अपनी शिक्षा के दीक्षान्त समारोह पर्यन्त महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में रहने देते हैं ।

२० वें सर्ग में कुल ५७ श्लोक हैं जिनमें धर्मांगिनी सीता एवं राम के अश्वमेध यज्ञ का विशेष रूप से सविस्तार विवेचन प्रस्तुत किया गया है और इसी सर्ग में अश्वमेध यज्ञ के पूर्णाहुति के समय कुश एवं लव सहित आदि काव्य रामायण महाकाव्य के प्रणेता कवि ऋषि वाल्मीकि का आगमन भी स्पष्टतः निरूपित किया गया है ।

२१ वें सर्ग में कुल १७० श्लोक हैं जिनमें स्वयं महाराघव रामभद्र के

१- बा० वी०, १९ । ५७ -५९

यशस्वी पुत्रों कुश एवं लव के द्वारा अश्वमेध यज्ञ की पूर्णाहुति के पवित्र प्रभात-वेला में सम्पूर्ण रामकथा का गायन हृदयावर्जक गान्धर्वी स्वरलहरियों के साथ गाया गया है जिसे पढ़कर कोई भी सहृदय सचमुच भावावेग की सर्वोच्च कक्षा में पहुंच कर झूमकर गुनगुनाने का लोभ संवरण नहीं कर सकता[1]।

इस प्रकार वाल्मीकि जीवन काल सम्बन्धी राम कथा को सीता द्वारा प्रमाणित अभिनव प्रस्थान पूर्वक नित्य नवनवोन्मेषों के साथ वर्णन कर अक्षय कीर्ति पाने का सहज अधिकारी बन गया है ।

--

१- वाल्मीकि रामायण, २९। २४, ९४, ६४ आदि

नेतृनिर्णय एवं पात्र-विवेचन :

भूमिका —

किसी भी काव्य की बहुत कुछ सफलता उस काव्य से जुड़े पात्रों पर निर्भर करती है । कथा वस्तु के विस्तार में कथानक से जुड़े पात्रों की अहं भूमिका को नकारा नहीं जा सकता । जहां तक जानकी जीवनम् महाकाव्य से सम्बन्धित पात्रों के विवेचन का प्रश्न है वहां काव्यकार ने अपनी जिस सूझ बूझ का परिचय दिया है वह नि:सन्देह स्पृहणीय है ।

जानकी जीवनम् महाकाव्य में जिन अनेक पात्रों का उल्लेख मिलता है उनमें पुरुष पात्रों के अन्तर्गत जनक, दशरथ, वसिष्ठ, राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, कुश, लव, विश्वामित्र, बालि, सुग्रीव, हनुमान, रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण, मेघनाद, खरदूषण, त्रिशिरा, मारीच, सुबाहु, दुर्मुख, रजक आदि तथा नारी पात्रों में सुनयना, कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी, जानकी, उर्मिला, माण्डवी, श्रुतिकीर्ति, ताड़का, शूर्पणखा, मन्दोदरी, कैकसी आदि पात्र संगणना क्रम की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं ।

चारित्रिक विवेचना की दृष्टि से जानकी आदि नारीपात्र तथा राम, लक्ष्मण, जनक, वसिष्ठ, रावण आदि पुरुष पात्र विशेष रूप से विवेचनीय हैं ।

नेतृनिर्णय एवं पात्र-विवेचन :

भूमिका —

किसी भी काव्य की बहुत कुछ सफलता उस काव्य से जुड़े पात्रों पर निर्भर करती है। कथा वस्तु के विस्तार में कथानक से जुड़े पात्रों की वह भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। जहां तक जानकी जीवनम् महाकाव्य से सम्बन्धित पात्रों के विवेचन का प्रश्न है वहां काव्यकार ने अपनी जिस सूझ बूझ का परिचय दिया है वह नि:सन्देह स्पृहणीय है।

जानकी जीवनम् महाकाव्य में जिन अनेक पात्रों का उल्लेख मिलता है उनमें पुरुष पात्रों के अन्तर्गत जनक, दशरथ, वसिष्ठ, राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, कुश, लव, विश्वामित्र, बालि, सुग्रीव, हनुमान, रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण, मेघनाद, खरदूषण, त्रिशिरा, मारीच, सुबाहु, दुर्मुख, रजक आदि तथा नारी पात्रों में सुनयना, कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी, जानकी, उर्मिला, माण्डवी, श्रुतिकीर्ति, ताड़का, शूर्पणखा, मन्दोदरी, कैकसी आदि पात्र संगणना क्रम की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

चारित्रिक विवेचना की दृष्टि से जानकी आदि नारीपात्र तथा राम, लक्ष्मण, जनक, वसिष्ठ, रावण आदि पुरुष पात्र विशेष रूप से विवेचनीय हैं।

जानकी -

त्रिवेणी कवि अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने अपने महनीय महाकाव्य जानकी जीवनम् के अन्तर्गत नायिकाभूता अयोनिजा जानकी के जिन विविध रूपों का विविध आयामों के साथ रसमय तूलिका से चित्रित किया है उनमें अयोनिजा जानकी जनक नन्दिनी जानकी नवयौवना जानकी लोकविश्रुता जानकी, अनुरागिणी जानकी, परिणीता जानकी, प्रियानुगता जानकी, रामप्रिया जानकी, सहचरी जानकी, अपहृता जानकी, तपस्विनी जानकी, प्रत्युपजीवित जानकी, समुद्गता जानकी, मधुमती जानकी, राजमहिषी जानकी, संशयिता जानकी, पुण्यशीला जानकी, वीरप्रसविनी जानकी, अयोगिनी जानकी, अनुकीर्तिता जानकी आदि स्वरूप विशेषरूप से विवेचनीय है ।-

अयोनिजा जानकी का वर्णन जानकी जीवनकार ने अपने महाकाव्य के प्रथम सर्ग में निरूपित किया है । जिसमें अयोनिजा जानकी की उत्पत्ति, प्रजा के दुःख से-दुःखी अनावृष्टि के निवारण हेतु जनक द्वारा सोने के हल से जोती जाती भूमि से बतायी गयी है । और उसी के कारण इनका प्रथम नाम सीता भी स्वीकार किया गया है[1]। किसी नारी की योनि से उत्पन्न न होकर स्वयमेव अवतार लेने के कारण इन्हें अयोनिजा कहा गया है । पुनश्च जनक के द्वारा पुत्री के रूप में स्वीकार किये जाने के कारण इन्हें जानकी कहा गया है[2]।

जनक नन्दिनी जानकी का वर्णन महाकाव्य के द्वितीय सर्ग में सविस्तार किया गया है जिसमें उनकी शिशुकेलि का वर्णन सर्वोपरि है । शिशुकेलि के सन्दर्भ में ही जनक जब सुनयना की उपस्थिति में जानकी से-यह पूछते हैं कि बेटी ! `हम

१- हलेन राजंस्तव भूमिकर्षे कृते यतोऽप्राप्यि सुकन्यकेयम् ।
ततो भविष्यत्यभिधानमस्याः प्रथेत ! सीतेति च लोकपूताम् ।।
-- जा० जी०, १। ५८

२- वही, १ । ६०

दोनों में से तुम्हें कौन अधिक प्रिय लगता है[1]। पितृचरण जनक के मनोभिप्राय की तर्कना करती हुयी जानकी कभी पिता की और देखती है तो कभी मां की और स्पष्टत: कुछ कह नहीं पाती, और अश्रुपात करने लगती हैं। जनक जानकी के पिता एवं माता के प्रति एक समान आसक्ति को देखकर और उसकी विलक्षण अभिव्यक्ति का दर्शन कर जानकी की प्रशंसा किये बिना नहीं रह पाते और कहते हैं कि मेरी बिटिया कितनी गुणवती है[2]।

नव यौवना जानकी का रसमय वर्णन महाकाव्य के तृतीय सर्ग में उदात्त रसविलास के साथ प्रस्तुत किया गया है जहां जानकी किशोरावस्था की देहली को पारकर स्मरांकुर के संयत महासिन्धु में स्नान करने लगती है और स्वप्न में यदा-कदा किसी ऐसे रसिक नायक की कल्पना करती है जो जलधर सदृश नीलाभ अंगों तथा शरीर वाला, प्रभा से देदीप्यमान, पूर्णचन्द्र सदृश आनन वाला सद्गुणों का भाण्डागार, धुरीण धनुर्धारियों में श्रेष्ठ, पीन वक्षस्थल, अपार पराक्रम सम्पन्न, महावीर प्रशंसनीय शोभन-चारित्र्य कुल का आह्लादक हो। स्वप्न के क्षणों में भी जिसका रूप लावण्य वैदेही हृदय में नहीं बसा सकी जागरण में जब वही पुरुषोत्तम दाशरथि राम सीता के हृदय में सदा सदा के लिये रच बस गया[3]।

लोकविश्रुता जानकी का वर्णन महाकाव्य के चतुर्थ सर्ग में उपलब्ध होता है। जहां विश्वामित्र के द्वारा विदेह नन्दिनी लोकविश्रुत सीता की प्रशंसा सुनकर रघुराज राम का उनके प्रति अन्तरंग अनुराग जागृत हो उठता है। रात्रि में राघव को जानकी की मधुर स्मृतियां सोने नहीं देती। उनकी सम्पूर्ण रात्रि जागरण में

१- अथैकदा बालतरप्रभातके प्रेसेदिवांसी पितराबुपागता।
प्रबुध्य पृष्टा जनकेन सस्मितं क आवयोस्तेऽतितरां नु रोचते ।।
- जा० जी०, २। ३०

२- वही, २। ३५

३- वही, ३। ३५-३६

ही बीत जाती है । जानकी जीवनकार लिखता है कि कन्दर्प कथा की नायिका भूता सीता से आकृष्ट मनोवृत्ति वाले रघुनन्दन राम उस रात में क्षण भर के लिये भी आंख मूंदने में समर्थ नहीं हो सके । उचटे हुये नींद वाले श्री राम ने जनक नन्दिनी का बारम्बार स्मरण करते हुये तथा लक्ष्मण से अपनी मनोव्यथा छिपाते हुये यथा-कथंचित वह रात बितायी[1] ।

सौभाग्यवती जानकी का उल्लासपूर्ण वर्णन महाकाव्य के पंच सर्ग में सविस्तर प्रस्तुत किया गया है । अनुरागिणी जानकी का वर्णन महाकाव्य के षष्ठ सर्ग में मनोवैज्ञानिक रूप से उपस्थित किया गया है जिसका चरमोत्कर्ष रूप उस समय देखने को मिलता है जब रघुराज श्री राम और जनकनन्दिनी जानकी एक दूसरे के समक्ष उपस्थित होकर भी स्मरानुभव सिन्धु में डूबे होने के कारण मौन के मौन ही रह जाते हैं । जानकी तो उस समय न आगे बढ़ पाती हैं न पीछे, न दायें खिसक पायीं, न बायें, न ऊपर की ओर देखा और न ही नीचे की ओर, मूर्तिवत खड़ी की खड़ी रह गयीं । स्मरानुभव सिन्धु में निमग्न प्रणयिनी सीता को देखकर राघव राम जब उनका चिबुक उठाते हैं तो दूरवर्तिनी सखियां हंस देती हैं[2] । सखियों के परिहास से लज्जित जानकी - `अपि वयस्य मयि स्मरसुन्दर`[3] । कहकर अनुनयपूर्वक राघव से शीघ्र विदा लेकर कांपती हुयी लम्बे डग भरती पल भर में सखियों के पास पहुंच जाती है ।

१- तस्यां रात्रौ मनसिजकथानायिकाऽऽकृष्टचेता:
काकुत्स्थोऽसौ क्षणमपि दृशौ मीलितुं नो शशाक
स्मारं स्मारं जनकतनयां वीतनिद्रं त्रियामां
रामोऽनैषीत्कथमपि च तां सोदराद् गोपितात्मा ।।
- जा० जी०, ४। ४६

२- वही, ६ । ५६

३- वही, ६ । ६१

परिणीता जानकी का वर्णन महाकाव्य के सप्तम सर्ग में अत्यन्त हृदयावर्जक रूप में उपन्यस्त किया गया है जिसका चरम निदर्शन उस समय देखने को मिलता है जब वरमाला पहनाती हुयी जानकी से राम विनोद करते हुये कहते हैं[1] कि सीते ! एकबार पुन: कह दो न -- मुझ पर दया कीजिये (अयि दयस्वेति) रसिक राघव को आह्लादित करती हुयी जानकी हल्की मुस्कान-गर्भित, चंचल चितवन रूपी वाणी से सभा के बीच में ही एकबार पुन: 'हे प्राणेश्वर दया कीजिये'[2] (अयि दयस्व प्राणेश्वरेति) कहकर निश्चल खड़ी रहीं ।

प्रियानुगता जानकी का वर्णन महाकाव्य के अष्टम् सर्ग में किया गया है जिसका हृदयावर्जक रूप उस समय देखने को मिलता है जब विवाह की सप्तपदी की प्रक्रिया पूरी करती हुयी जानकी अन्त में पूर्णत: राघव की ही हो जाती है, और पिता जनक से कहती है कि खेद है बाबा अब दुल्हे के साथ मेरी यह सातवीं भांवर[3] पूरी हो रही है, मायके के सुख से वंचित मैं अब पारयी सम्पत्ति हो गयी हूं । केवल अपने पति की ही अब हो गयी हूं ।

इसके पश्चात् वैदेही जानकी मिथिला से विदा होकर श्वसुरालय अयोध्या प्रस्थान करती हैं । वैदेही जानकी की विदायी में सचमुच राजर्षि विदेह सदेह होते हुये भी विदेह हो गये हैं । उनके लोक विश्रुत नाम विदेह वास्तविक अर्थों में यहीं[4] चरितार्थ देखा जा सकता है ।

१- विदेहजे ! ब्रूहि पुनस्तदुक्तं श्रुतं मया यत्किल वाटिकायाम् ।
अये वयस्येति निशम्य नर्म प्रियोदितं सा ह्रियमाप तन्वी ।।
- जा० जी०, ७।८५

२- ईषत्स्मितस्फुटकटाक्षवाचा प्रसादयन्ती दयितं हृविल्लम् ।
मध्येसभं चाहमये दयस्व प्राणेश्वरेति प्रतिमायिता सा ।।
- वही, ७। ८६

३- वही, ८१ ४०

४- वही, ८ ।७७

रामप्रिया जानकी का वर्णन नवम् सर्ग में किया गया है जिसका चरम रूप राघव एवं जानकी के रसमय परस्पर सहवास में देखने को मिलता है । जानकी जीवनकार लिखता है कि उस समय जनक नन्दिनी सीता के लिये प्रतिक्षण सारा वातावरण विपर्यस्त ही लगता रहा । चांदनी से चराचर किये गये घाम वाला दिन सूर्य के बजाय चन्द्रमा सा लगता था । चन्द्रिका चर्चित रातें सूर्य की तीखी धूप से युक्त लगती थीं । प्रियतम राघव की उपस्थित में अन्धकार प्रकाश और उनके अभाव में प्रकाश भी सघन अन्धकार जैसा लगता था[1] ।

सहचरी जानकी का वर्णन महाकाव्य के दशम सर्ग में किया गया है । जहां वनवास के लिये प्रस्थान करते हुये राघव के साथ स्वयं जानकी भी उनकी सहचरी बनकर उनके साथ ही प्रस्थान करती हैं[2] ।

अपहृता जानकी का वर्णन महाकाव्य के ग्यारहवें सर्ग में सविस्तार किया गया है । जहां छद्मवेशी रावण द्वारा मारीच की सहायता से राम की सहचरी जानकी का बलपूर्वक हरण किया गया है[3] । तपस्विनी जानकी का वर्णन महाकाव्य के बारहवें सर्ग में उपन्यस्त है । जहां रावण के द्वारा अपहृता जानकी अशोक वन में रहती हुये अपने पातिव्रत धर्म की रक्षा घोर तप से करने में सफल होती हैं, जिसमें त्रिजटा का योगदान विशेषरूप से प्रशंसनीय है ।

प्रत्युज्जिविता जानकी का वर्णन महाकाव्य के तेरहवें सर्ग में मिलता है जहां राम दूत हनुमान को प्राप्त कर जानकी को पुन: जीवनदशा प्राप्त होती है । और वे अपनी व्यथाकथा पूर्ण पत्रिका को चूडामणि सहित राम के लिये

१- दिनं चान्द्रं ज्योत्स्नातुलिततपनं शीतलकरं
   निशीथिन्यो नूनं प्रखरकिरणप्रहरणा: ।
   तमो ज्योतिर्ज्योतिस्तमनतम इत्येवमनिशं
   विपर्यस्तं सर्वं जनकतनयायास्समभवत् ॥ - जा०जी०, ९।१०१

२- राज्यं चारु विहाय सौम्यमनसा यान्तं वनं वल्लभं
   वैदेही जनजीवने सहचरीभूताऽन्वगात् म्मुदा ।
   तद्वृत्तं सकलं समन्वतरविस्फूर्तौ महाकाव्यन:
   इत्थं पूर्तिमुपेत्यगं हि दशम:श्रीजानकीजीवने ॥- जा०जी, १०।८८

३- वही, ११ । १०४, १०५

हनुमान के हाथों में अर्पित करती हुयी कहती हैं कि हे नाथ ! यदि मेरी पाती मेरे पास से आपके चरणों की दूरी तक लम्बी हो और आंसुवों में घोली गयी नेत्राजन की रोशनाई से आपकी सीता स्वयमेव लिखने बैठे तब भी आपके वियोग से सिञ्चित कथ्य तथ्य वाली उसकी व्यथा की कथा समाप्त न हो पायेगी । हे राघवेन्द्र प्राणनाथ ! द्रुतगति से पहुंचकर विपन्न भार्या को उबार लीजिये[1] ।

समुद्धृता जानकी का वर्णन चौदहवें सर्ग में उपलब्ध होता है जहां महा राघव राम ने वैदेही का हरण करने वाले दनुजेन्द्र रावण का वध करके अपने अपार पौरुष से विपन्न भार्या, भार्या जानकी का उद्धार किया है ।

भर्तृमती जानकी का वर्णन महाकाव्य के पन्द्रहवें सर्ग में प्राप्त होता है जहां भर्ता महाराघव राम के मनोभाव को देखकर वैदेही जानकी ने अग्निपरीक्षा देकर अपनी-चरित्र की पवित्रता को स्थापित कर पुरुषोत्तम राम को पत्नी रूप में स्वीकार करने के लिये विवश कर देती है । ब्रह्मा, अग्निदेव आदि देवों की साक्षिता में राघव पूतचरिता जानकी को स्वीकार कर उन्हें अपनी पत्नी के रूप में सम्मान देते हैं[2] । रामहिषी जानकी का वर्णन सोलहवें सर्ग में उपलब्ध होता है जहां लङ्का विजय के अनन्तर साकेत में पहुंचे हुये वैदेही सहित राघव का समस्त अयोध्या नागरिक, कुलगुरु वसिष्ठ सहित अभिनन्दन करते हैं और तत्काल उसी दिन अभिनन्दन महोत्सव में ही गुरु वसिष्ठ राम का राज्याभिषेक

१- मदन्तिकान्नाथ ! तवाङ्घ्रिमूलं पत्रं यदि स्यादुपिततन्तु यावत् ।
नेत्राञ्जनैरश्रुविमिश्रितैश्च लिखेत्स्वयं स्वयमेव सीता ।।
व्यथाकथा पूर्णेष्यति नो तथापि प्रभो ! वियोगात्तव सिक्तमूला ।
द्रुतं समागत्य विपन्न भार्यां भार्यामिनाथामव राघवेन्द्र ।।

— जा० जी०, १३ । ४४, ४५

२- वही, १५ । ८३-८७

कर पुण्यचरिता वैदेही को राजमहिषी पद पर सहर्ष स्थापित करते हैं[1]।

संशयिता जानकी का वर्णन सत्रहवें सर्ग में किया गया है जहां गुप्तचर दुर्मुख के मुख से राघव रजक के द्वारा सीता के चरित्र पर किये गये मिथ्या लोकापवाद को सुनकर मर्माहत हो जाते हैं तथा व संदिग्ध चरिता वैदेही के ग्रहण एवं त्याग के द्वन्द्वों में झूलने लगते हैं[2]।

पुण्यशीला जानकी का भव्यतम वर्णन महाकाव्य के अट्ठारहवें सर्ग में अत्यन्त विस्तार के साथ किया गया है जहां संशयिता जानकी के चरित्र की पावनता को सिद्ध करने के लिये स्वयं धर्मसिन्धु के नियामक कुलगुरु वशिष्ठ विशाल लोकसभा के समक्ष अनेकानेक सबलतम तर्कों के द्वारा श्रीमन्त राम को महाविष्णु का अवतार और वैदेही को साक्षात कमलालया लक्ष्मी का अवतार बताकर लोकापवाद से जानकी को मुक्ति दिलाते हैं[3]।

वीर प्रसविनी जानकी का वर्णन महाकाव्य के उन्नीसवें सर्ग में सविस्तार प्रस्तुत किया गया है जहां पुण्यशीला जानकी कुश एवं लव जैसे अप्रतिम पुत्रों को जन्म देकर अपनी वीरप्रसविता की धन्यता को चरितार्थ करती है[4]।

अर्धांगिनी जानकी का निरूपण महाकाव्य के बीसवें सर्ग में सविस्तार देखा जा सकता है जहां अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न करने के समय राज-राजेश्वर राम जानकी को अर्धांगिनी के रूप में स्वीकार कर उनके साथ-साथ ही अश्वमेध यज्ञ की दीक्षा-ग्रहण करते हैं[5]।

१- जा० जी०, १६ । ७६

२- वही , १७ । २६-३२

३- वही , १८ । १०१

४- वही, , १६ । १

५- दिनेऽश्वमेधमखने प्रविविक्षु तस्मिन् साध्वी स्थिताऽऽदितमनुव्रतयाऽवसाथ: ।
पाटीरगन्धघनसारविमिश्रितश्च सख्ये रराज विबुधान् सुखरस्तवीत: ।।
- वही, २० ।१६, १७

अनुकीर्तिता जानकी का वर्णन इक्कीसवें सर्ग में उपलब्ध होता है जहां स्वयं जानकी के ही हृदयखण्ड भूत कुश एवं लव रामायण गान प्रस्तुत करते हुये जानकी एवं महाराघव राम के कीर्ति का विभिन्न आयामों में विविध लय, ताल एवं छन्दों के साथ अनुकीर्तन करते हुये समस्त श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध कर उनका हृदय जीत लेते हैं ।

इस प्रकार जानकी जीवनम् की जानकी जिन अनेक रूपों में विविध आयामों के साथ रूपायित की गयी है और देवीत्व की जिस उदात्त पराकाष्ठा की पीठ पर स्थापित की गयी है उनका ऐसा रूप निदर्शन सम्पूर्ण रामकथा सम्बन्धी आज तक के किसी महाकाव्य में सर्वथा दुर्लभ ही नहीं अपितु अलभ्य भी है ।

एतदर्थ जानकी जीवनकार निःसन्देह एकमात्र भूयसी बधाइयों के के सुपात्र हैं ।

१- कविमुनिजनगायी राघवश्री यशोघ: क्वचिदमलमय लोकोऽसंख्यगायी महार्घ ।
रघुपतिगुणगीतं जानकीजीवनं यं नयनसलिलमग्नास्तास्थिरे सन्निपत्य ।।

— जा० जी०, २१ । १६

राम -

त्रिवेणी कवि अभिराज राजेन्द्र मिश्र विरचित जानकी जीवनम् महाकाव्य के अन्तर्गत राघवेन्द्र श्री मन्त राम कहीं अयोनिज होते हुये भी दशरथ नन्दन राम के रूप में चित्रित किये गये हैं, तो कहीं जानकी वल्लभ राम के रूप में, कहीं वह वनवासी राम के रूप में तो कहीं लोकरक्षक राम के रूप में। कहीं राजा राम के रूप में तो कहीं उत्तमोत्तम मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में, तथा च कहीं-कहीं स्पष्टतः पूर्ण परात्पर ब्रह्म के रूप में।।।

दाशरथि राम का वर्णन जानकी जीवनम् महाकाव्य के चतुर्थ सर्ग में स्पष्टतः किया गया है, जहां यह बताया गया है कि राम अयोनिज महा विष्णु होते हुये भी कोशलेश दशरथ के पुत्र-रूप में इस धरा धाम पर अवतार लिये हैं[1]।

१- रामो भिराम चरितो मदनाङ्गयष्टि,
स्त्याबाजुमाङुरविन्दविलोचनोऽसौ ।
तस्मात्स्वयं निखिललोकपतिर्मुरारि -
मैत्र्यमौरवतार विलाध्ययोध्यम् ।।

- जा० जी०, ४ ।२

यही नहीं इसी सर्ग में अन्यत्र यह स्पष्टत: निरूपित किया गया है कि दशरथ के राम आदि चारों पुत्रों में राम उन्हें प्राणाधिक प्रिय हैं। यही कारण है जब विश्वामित्र यज्ञ रक्षार्थ दशरथ से राम एवं लक्ष्मण की याचना करते हैं तो दशरथ उनसे स्पष्ट निवेदन करते हैं कि हे पूज्यपाद कुशिक नन्दन ! मैंने वृद्धावस्था में पुत्रेष्टि यज्ञ द्वारा इन पुत्रों को प्राप्त किया है इसीलिये समुद्र जल के साथ मछलियों की जीवन वृत्त सदृश अपने पुत्रों के साथ में भी निरन्तर एक विलक्षण आसक्ति का अनुभव करता हूं।[2] इन चारों पुत्रों में ज्येष्ट पुत्र राम मुझे प्राणाति प्रिय है वे मेरी सम्पूर्ण प्राणशक्ति के प्रतिरूप हैं अंगों की चेतना है। मेरे हृदय नेत्रों की दीप्ति है। पूज्यपाद अधिक क्या कहूं बस यही समझिये कि राम के रहते हुये इस धराधाम पर मेरी भी कुशल मंगल स्वीकरणीय है। प्राण-भूत श्रीमन्त राम के बिना दशरथ बनकर जीवित रह पाना सम्भव नहीं है।[2]

जानकी वल्लभ श्री राम का अभिराम रूप तो अविराम रूप से कविराज अभिराज ने पंचम सर्ग से लेकर इक्कीसवें सर्ग तक सुतरामुज्ज्वल रूप में विविध आयामों के साथ दाम्पत्यजीवन की उत्थान पतन की विविध रंगभूमियों की पृष्ठभूमि में ऐसा अभिव्यंजित किया गया है कि भावनापूर्ण सहृदयपाठक उसे पढ़कर सचमुच कृतकृत्य हो उठता है।

जानकी जीवन कार ने जानकी वल्लभ श्री राम के संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों का जैसा रसप्लावित हृदयावर्जक वर्णन किया है वह सब कुछ अपनी पराकाष्ठा पर है।

जानकी वल्लभ श्री राम के संयोग पक्ष का आह्लादक वर्णन छठें, सातवें, नवें तथा दसवें सर्गों में सविस्तार उपन्यस्त किया गया है। छठें सर्ग में

१- जा० जी०, ४।२३

२- वही, ४।२४, २५

जब जनक कि विलास वाटिका में पूर्व राग के सन्दर्भ में सहेलियों के साथ जानकी रघुराज श्री राम के दर्शन के लिए उनके निकट पहुंचती है तो स्वाभाविक लज्जावश उनके नेत्र राम की ओर मुक्त रूप से उठते नहीं, स्मरानुभव रूपी महार्णव में निमग्न राजदारिका जानकी से राघव राम मर्यादा की परिधि में खड़े होकर धीरोदात्त नायक के समान कहते हैं कि हे म ञ्जुल-दर्शन सुतनु के सीते । आश्चर्य है कि जिसे देखने की आकांक्षा से तुम यहां आयी हो उसी राघव से लज्जित होकर उसकी इस प्रकार उपेक्षा क्यों कर रही हो[१] । हे करभोरु । इतनी पार्श्व वर्तिनी होकर तुम यदि कुछ उत्तर नहीं देती हो तो निश्चय ही रघुवर राम-यही समझेगा कि प्रेम का शाश्वत और चिरन्तन होना संदिग्ध है[२] । उस समय जानकी स्मरांकुर की पराकाष्ठा में पहुंची हुयी पदनखों के अग्र भाग से भूमि कुरेदती हुयी न आगे बढ़ सकी न पीछे, न दाहिने खिसक सकी न बायें, न ऊपर की ओर देखा न नीचे, अचल मूर्ति जैसी स्थिर रही[३] । स्मरानुभव सिन्धु में आकण्ठ मग्न प्रणयिनी जानकी को देख जब राघव जनक नन्दिनी की चिबुक उठाते हैं तो उसी समय जानकी की दूरस्थ सहेलियां खिल खिलाकर हंस देती हैं[४] । सखियों के व्यंग्यपूर्ण नर्म हास

१- किमिव मामवलोक्य विलज्जसे सुतनु मैथिलि । म ञ्जुलदर्शने ।।
प्रचलितासि यदीयदिदृक्षया ननु तमेव जनं किमुपेक्षसे- ?
- जा० जी०, ६।५०

२- प्रतिवचः करभोरु । न दीयते यदि ममापि समुन्नतया त्वया ।
रघुवरो मनुविष्यति निश्चितं क्षितमेव भवान्तरसौहृदम् ।।
- वही, ६।५५

३- न च चचार पुरो न च पृष्ठतो न खलु दक्षिणतो न च वामतः ।
उपरि नैव ददर्श न चाप्यधो स्थाणुमूर्तिरिवावनिजा जानकी ।।
- वही, ६-।५७

४- जा० जी०, ६।५८

को सुनकर लज्जित जानकी वल्लभ श्री राम से कहती है कि हे स्मर सुन्दर ! मुझ पर दया कीजिये[1] । सखियां मेरी हंसी उड़ा रही हैं एतदनन्तर राम जानकी की विवशता का अनुभव करते हुये उनसे कहते हैं कि अच्छा ! जाओ, तुम्हारे मार्ग में व्यवधान नहीं बनूंगा । ऐसे ही सप्तम सर्ग में धनुर्भङ्ग के पश्चात् जब जानकी वर माला लेकर राघव के पास उन्हें पहनाने के लिये पहुंचती हैं तो विनोद प्रिय जानकी वल्लभ राम पुन: विलास वनिका के मिलन की स्मृति दिलाते हुये जानकी से कहते हैं कि विदेह जे सीते ! एकबार पुन: उस कही गयी बात को कहो न जो मैंने विलास वनिका में सुनी थी -- मुझ पर दया कीजिये (अये दयस्वेति) । विनोदी[2] राघव के द्वारा परिहास वचन को सुनकर तन्वंगी जानकी लज्जित हो उठती हैं । किन्तु रसिकेश्वर प्राण वल्लभ श्री राम के विनोद के लिये जानकी हल्की मुस्कान से युक्त चंचल चितवन रूपी बाणों से उस विशाल सभा के मध्य में ही एक बार पुन: धीरे से विदग्धतापूर्वक कह गयीं कि "हे प्राणेश्वर दया कीजिये"[3] (दयस्व प्राणेश्वरेति) ।।

ऐसे ही नवें तथा दसवें सर्ग में जानकी वल्लभ राम के संयोग पक्ष से सम्बन्धित अन्य अनेक चित्र देखे जा सकते हैं ।

जानकी वल्लभ राम के वियोग पक्ष का रूप तो रावण के द्वारा वैदेही हरण के पश्चात् उनके पाषाणद्रावी पुटपाकप्रतीकाश व्यथा गर्भित वियोग-वेदना से देखा जा सकता है । जहां वह लतावल्लरियों, पक्षियों, पशुओं, पर्वतों

१- अयि दयस्व मयि स्मरसुन्दर । ननु सखीनिकरोऽपहस्यते ।

इति निशम्य वचोऽभिलाषिणी जनकजा प्रययौ वरकम्पिनी ।।

- जा० जी०, ६। ६१

२- वही, ७ । ८१

३- वही, ७। ८६

प्रपातों, गोदावरी नदी, विशाल पंचवटी, दण्डक वन देव तथा देवियों से प्रिया वैदेही के विषय में पूछते हुये मनोव्यथा से आविद्ध राघव ने समूचे दण्डक वन को ही रुला दिया[1]। और अन्तत: अनुज लक्ष्मण ने शपथ दे देकर उन्हें जैसे तैसे शान्त किया। अधिक दृष्टान्तों से क्या लाभ ? बस पाठक इतना ही समझें कि इधर उधर अपने चारों ओर विद्यमान समूची प्रकृति को ही वैदेहीमय देखते हुये चेतनाशून्य राघव प्रस्रवण गिरि पर वर्षा के चातुर्मास को कैसे बिताया इसे तो वही जानते हैं। कभी-कभी तो पाषाण शिला पर मन: शिला के रंग से प्रिया वैदेही की आकृति बनाकर भी उन्हें परितोष न होता तब गिरती अश्रुधारा से उन्हें पोंछकर वह बारम्बार अपनी प्राणेश्वरी जानकी का रूपांकन करते[2]। कभी-कभी शिला पर शयन करते रामचन्द्र प्रगाढ़ निद्रा में सीता को प्राप्त कर आवेग पूर्वक चूमने लगते, परन्तु प्रगाढ़ आलिंगन के मध्य जागरण वश भग्न हो जाने पर प्रमत्त राघव मुक्तकण्ठ से पाषाणद्रावी करुण-क्रन्दन करने लगते[3]।

वैदेही वल्लभ राघव की यह व्यथा कथा तो वर्णनातीत ही है। बताने मात्र से समाप्त होने वाली नहीं है। प्रिया वैदेही के वियोग की वह

१- लताविलानानि वनानि पर्वतश्च गोदावरीं पञ्चवटीं विशालाम् ।
गिरिं प्रपातं वनदेवदेवी: प्रियां नु पप्रच्छ चिराय राम: ।।
विदेहजाशून्यवनं विलापैर्व्यलीलपद्राघव आधिविद्ध: ।
स लक्ष्मणेनानुवरेण नुतेनाकारि शान्त: शपथै: स्वकीयै: ।।
— जा० जी०, १३।११, १२

२- निर्माय रूपं क्वचिदश्मपट्टे मन:शिलाभिर्न तुतोष कामम् ।
च्युताश्रुभि: प्रोञ्छितलेख्य प्राणेश्वरी-रूपमसौ लिलेख ।।
— वही, १३।२२

३- शिलाशय: क्वापि च गाढनिद्र: प्रियामवाप्याशु चुचुम्ब राम: ।
गाढोपगूढे नु मध्यजागरे प्रमत्तवित् रुरोद मुक्तम् ।।
— वही, १३।२३

लोकोत्तर वेदना या तो राम जानते हैं या देवी वैदेही सीता या फिर स्वयं विधाता ही ।।[1]

वनवासी राघव का चित्रण जानकी जीवनम् काव्य के दशम सर्ग के अन्तिम चरण से प्रारम्भ होकर चौदहवें सर्ग तक अत्यन्त विस्तार के साथ विविध सोपानों में विन्यस्त है । इन्हीं सर्गों में राम वनवास के उन असह्य दुखों को भी इतने सन्तुलित चित्त से धैर्यपूर्वक निश्चल मनोभाव से भोगा है और उसी दशा में अपने रामत्व का जैसा महिमामय प्रदर्शन किया है वह सब कुछ सचमुच कल्पनातीत ही है ।

अयोध्या के राजप्रासाद एवं समृद्ध साम्राज्य को अम्बा कैकेयी एवं पितृचरण दशरथ के समादेश से तिलांजलि देकर जटा वल्कल, बद्ध केश मनस्वी सौम्यमना श्री राम, प्रिया वैदेही एवं अनुज लक्ष्मण के साथ वन की ओर प्रस्थान कर शृंगवेर,[2] प्रयाग होते हुये चित्रकूट को दण्डक वन पंचवटी आदि स्थानों से होते हुये कामदगिरि पर निवास करते हुये वहां के कोल किरात भिल्लादि वनवासियों किं वा ऋषियों, तपस्वियों के साथ वनवास अवधि को बिताते हुये अत्रि, सुतीक्ष्ण शरभंग के साहचर्य में जो जीवनदर्शन एवं आध्यात्मिक बल प्राप्त किया और तपस्वियों की पावन स्थली दण्डक वन को राक्षसों से मुक्त करने के लिये प्रतिज्ञा की तथा च विराध खरदूषण, त्रिशिरा आदि राक्षसों का विनाश कर धर्म-सम्मत लोक रक्षा का व्रत लिया वह सब कुछ वनवासी राम के उदात्त व्यक्तित्व का उत्कर्षक हेतु ही है ।

मारीच और रावण के छल से वैदेही का हरण, पक्षिराज जटायु

१- कथाशेषं कथनैरसाध्या विवेचनमर्हतीति स्फुटम्मे ।
   वियोगदुःखं स्वयमेव रामो जानाति सीता दुःखिताऽथवाऽसौ ।।

   - जा० जी०, १२। २४

२- वही, १० । ७६, ७८

का पितृवत अन्त्येष्टि संस्कार, वानर राज सुग्रीव से मैत्री, मित्र के दु:ख से दु:खी होकर महाबली बालि का हनन, सुग्रीव को किष्किन्धा का अधिपति बनाकर उनकी समग्र वानर सैन्य बल को अपने अनुकूल कर रावण द्वारा अपहृता जानकी का कपिपुङ्गव हनुमान द्वारा पता लगाना, दक्षिणी सिन्धु पर सेतु निर्माण करवाकर लंकेश्वर रावण पर आक्रमण कर तथा कुल सहित दनुजेन्द्र रावण की ऐहिक लीला समाप्त कर प्रिया वैदेही का उद्धार करना और इसी व्याज से समूची त्रिलोकी को संकटों से मुक्त कर अपने रामत्व की उदात्त प्रतिष्ठा करना आदि सब कुछ वनवासी श्री मन्त महाराघव राम के ही व्यक्तित्व के विविध रूप हैं।[१]

लोक रक्षक राम का रूप तो वनवास अवधि में दण्डक वन में राक्षसों से वसुधा को निष्कण्टक करने के लिये की गयी प्रतिज्ञा से ही समारम्भ हो जाता है जिसका चरमोत्कर्ष रावण-वध के रूप में पहुंचकर पुन: राजाराम के रामराज से जुड़ जाता है। इन सभी तथ्यों का विवेचन ग्यारहवें सर्ग से लेकर १७ वें सर्ग तक यथास्थल देखा जा सकता है।

राजा राम का लोकाभिराम रूप रावण वध के अनन्तर अयोध्या पहुंच कर उनके राज्याभिषेक से लेकर अश्वमेध यज्ञ तक के वर्णन में विविध आयामों के रूप में देखा जा सकता है। इन सभी सोपानों का वर्णन सत्रहवें सर्ग से लेकर १९ वें सर्ग तक में यथा स्थल किया गया है।

राजा राम के लोकोत्तर रामराज्य का वर्णन करते हुये त्रिवेणी कवि जानकी नाथ लिखता है कि महाराघव राम द्वारा भूमण्डल का प्रशासन किये जाने पर चतुर्दिक लीला के साथ एवं नवीन श्रीराज्य की स्थापना हुयी। ईति-भीति से मुक्त अयोध्या स्वाधीन पतिका गर्विता नायिका के समान इठलाने लगी।[२] रघुनाथ के पदविक्रम से उल्लसित समग्र वसुधा फलों, फूलों एवं सस्यों से लहलहा उठी। नदियां जल प्रवाहों से पूरित हो गयीं। पोखरे लबालब पानी से भर गये,

---

१- जा० वी०, द्रष्टव्य द्रष्टव्य, ११-१४ सर्ग तक

२- वही, १७।१

वनप्रदेश के हिंस्र पशुओं से वातावरण सर्वत्र निर्भय हो गया, अनन्त नीलाकाश यज्ञ की धूम्रराशियों से रघुनाथ के उज्ज्वल यश को सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में बिखेरने लगा। धूलियां शान्त हो गयीं। हवायें सुरभित होकर बहने लगीं, मेघ यथावसर बरसने लगे। छह ऋतुयें सन्तुलित रूप से यथाक्रम अपने वैभवों के साथ आने जाने लगीं। प्रजाजनों के हृदय में धर्म, संस्कृति, शील एवं सौन्दर्यादि सद्भाव संस्कार अनुप्राणित हो चले। कल्याणकारी मानव लौकिक अभ्युदयों एवं पारलौकिक नि:श्रेयसों की प्राप्ति में लग गये। सभी मनुष्य अपनी-अपनी परिस्थिति में सन्तुष्ट रहे। कोई भी किसी के ताप का कारण नहीं था। फलत: वर्णाश्रम धर्म में प्रतिष्ठित-समस्त भारतीय समाज आलोकक रामराज का सुखभोगने लगा। वे सबके सब राघव के शासनकाल में अपने-अपने कर्तव्यों के प्रति पूर्णरूपेण निष्ठापूर्वक समर्पित थे जिससे सर्वोदय सम्पन्न राम का शासन अपने दिव्य गुणों से स्वर्ग को भी अतिक्रान्त कर गया।[1]

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का चरमोत्कर्ष रूप को उस समय देखा जा सकता है जब रावण का वध के अनन्तर दर्शनोत्सुका प्रिया वैदेही को मनसा: पूतातिपूत समझते हुये भी महाराघव राम उन्हें अपने उदात्त रघुवंश के अनुरूप न समझकर अपनी अर्धांगिनी बनाने से विमुख हो जाते हैं और लोक मुख को बन्द करने के लिये उनका परित्याग ही उचित समझते हैं तथा कहते हैं कि हे सीते! स्वाभिमान सम्पन्न मैंने अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करते हुये अपने उज्ज्वल पौरुष का विस्तार किया है अब न संसार से कोई भय है और न ही कठिनता,हमारी तुम्हारी समन्विति इस महासमर की समाप्ति का परिणाम मात्र रही। अब तुमसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। तुम स्वेच्छया जहां कहीं भी जा सकती हो, मैं तुम्हारी स्वतन्त्रता में किसी प्रकार से बाधक नहीं बनूंगा।[2] दशानन के संस्पर्श से अपवित्र की गयी है वैदेही तुम उसकी कामुक दृष्टि से देखी गयी हो तथा चिरकाल तक उसके राजमहल में अवस्थित रही हो। मेरे लिये तो दक्षिण पयोधि का सेतु बन्धन दुष्कर नहीं लगा, मायायुद्ध में निष्णात राक्षसों का वध भी कठिन

१- वा० रा०, १७।२-१२

२- वही, ११।१०, ११

नहीं लगा, परन्तु हे सीते ! तुम्हारे चरित्र पर शंका-सन्देह करने वाले समाज को तुम्हारी पवित्रता का विश्वास करा पाना मेरे लिये दुष्कर है सीते ! दुष्कर है[1]।

किन्तु जब वैदेही अग्नि परीक्षा के माध्यम से अपनी चरित्रशुद्धि का लोकोत्तर सबलतम प्रमाण प्रस्तुत करती है तथा स्वयं भगवान अग्निदेव, समस्त देवों के साथ प्रजापति ब्रह्मा एवं स्वयं दशरथ आदि भी सीता की पवित्रता का मुक्त कण्ठ से साक्ष्य सहित उद्गान करते हुये उन्हें राघव को स्वीकार करने हेतु धर्म-सम्मत आदेश करते हैं तो राघव मर्यादापूर्वक वैदेही को स्वीकार करते हुये स्पष्ट कहते हैं कि - हे प्रभो अब इस अग्नि परीक्षा एवं देव-साक्ष्य के पश्चात् न तो राघव लोकापवाद का पात्र बनेगा और न ही देवी वैदेही सीता।

हम दोनों ही अब आप लोगों के मंगलाशीष से मर्यादित होकर सौभाग्यशाली एवं पवित्र बन चुके हैं[2]।

ऐसे ही अन्य अनेक सन्दर्भ हैं जहां महाराघव राम की मर्यादापुरुषोत्तमता का चारुतम निदर्शन देखा जा सकता है।

यों तो राम के परात्पर ब्रह्म रूपत्व का निरूपण जानकी जीवनकार ने यथा स्थल अनेकत्र किया है परन्तु १८ वें सर्ग में कुलगुरु धर्मपुरोधा ब्रह्मर्षि वसिष्ठ के माध्यम से विशाल लोकसभा के समक्ष श्री मन्त राम के महाविष्णु के अवतार होने का सविस्तार जो अनेक तर्क प्रस्तुत किये हैं उसे सुनकर किसी भी सनातन धर्म विमुख अवैष्णव का वह सारा-का सारा अज्ञानान्धकार एक ही क्षण में सर्वथा प्रकाश के रूप में परिणत हो सकता है और उस प्रकाश में वह दाशरथि राम के उस पूर्ण परात्पर ब्रह्म के स्वरूप का साक्षात् दर्शन कर स्वयं को भी वैष्णव धर्म में दीक्षित करने से अपने आपको रोक नहीं सकता[3]।

१- जा० जी०, १५।३२

२- वही, १५।८६, ८७

३- वही, १८।२१-३८

ब्रह्मर्षि वसिष्ठ दाशरथि राम के ब्रह्म रूपत्व का पोषण करते हुये विशाल जनसभा को सम्बोधित करते हुये कहते हैं कि प्रिय पौरजनो ! दाशरथि राम सामान्य मानव नहीं हैं स्वयं महाविष्णु के रूप में इस धराधाम पर अवतरित हुये हैं तत्वविमर्शिनी जिस दृष्टि से मैं राम को देख रहा हूँ वह आप लोगों को दुर्भाग्यवश प्राप्त नहीं है। राम की ईश्वरीयता को अगस्त्य, वाल्मीकि, सुतीक्ष्ण, विश्वामित्र आदि जैसे लोकोत्तर दृष्टि सम्पन्न तत्वदर्शी महर्षि ही जानते हैं तथा व स्वयं मैं भी उनके उस भागवत रूप से अवगत हूँ[1]। ताटका, सुबाहु, मारीच, विराध, खरदूषण, त्रिशिरा आदि के साथ-साथ कुम्भकर्ण तथा त्रैलोक्य विजेता दनुजेन्द्र कुख्यात रावण को जिसने बन्धु बान्धवों सहित समरांगण में मार-गिराया और लोकभय को सदा के लिये शान्त कर दिया। आश्चर्य है ! क्या वह व त्रैलोक्य रक्षक राम तुम्हीं लोगों के समान, जिन्हें कि अपनी ही शक्ति पर विश्वास नहीं है सामान्य मनुष्य ही है ? क्या वह राम अपूर्व कर्मा महामानव नहीं ? अयोध्यावासियों अपने ही मन से यह प्रश्न पूछो ! और सोचो[2] !!

इस प्रकार स्पष्ट है कि जानकी जीवनकार ने राम के उपर्युक्त जिन अनेक रूपों की उपस्थापना अपने महाकाव्य में की है उनमें उनकी परात्पर ब्रह्मरूपता का निदर्शन सर्वोपरि है। जानकी जीवन कार की यह उक्ति सर्वथा अक्षिप्त है !

ब्रह्माण्डे विलसति वसुधेयं
वसुधायां रघुवंशः
रघुवंशे विलसति रघुनाथे
रघुनाथे विश्वांशः ॥

– जा० जी० २१। १६३

—

१– जा० जी०, १८। २१-२४

२– वही, १८। २६

लक्ष्मण -

जानकी जीवनम् के पुरुष पात्रों में कुमार लक्ष्मण का स्थान महत्वपूर्ण है । इस महाकाव्य में इनके अनेक रूप उपलब्ध होते हैं जिनमें दशरथ-नन्दन लक्ष्मण, रामानुज लक्ष्मण, उर्मिला वल्लभ लक्ष्मण, धनुर्धर लक्ष्मण, नारी सम्मान रक्षक धर्मपरायण लक्ष्मण आदि रूप विशेषतया उल्लेखनीय हैं ।

दशरथनन्दन लक्ष्मण का रूप इस महाकाव्य के चतुर्थ सर्ग में उस समय उपलब्ध होता है जब यज्ञ रक्षा के लिये स्वयं राजर्षि विश्वामित्र दशरथ के यहां जाकर उनसे उनके राम एवं लक्ष्मण दोनों पुत्रों की याचना करते हैं तो उस समय द्वैध की स्थिति में पड़े हुये दशरथ को स्वयं वसिष्ठ भी यह उपदेश देते हैं कि विश्वामित्र जैसे गुरु के संरक्षण में रहकर आपके ये दोनों कुमार उत्कर्ष को ही प्राप्त होंगे अतएव आप राम एवं लक्ष्मण को इन्हें देने में अपने मन को सहज संस्तुत करके इन्हें दे दें[१] ।

रामानुज लक्ष्मण का स्वरूप तो जानकी जीवनम् के चतुर्थ सर्ग से लेकर इसके अन्तिम सर्ग पर्यन्त अविच्छिन्न रूप से उपलब्ध होता है । रामानुज लक्ष्मण जहां पंचम एवं षष्ठ सर्ग में राम के जानकी विषयक पूर्वानुराग को उद्दीप्त कर उसे सफल बनाने में यथाशक्य सहयोग करने, अग्रज राम के मनोभाव को देखकर एवं उनके आदेश को सुनकर स्वयं उनकी प्राणेश्वरी वैदेही जानकी को जनक की निकास वाटिका में खोजकर उन्हें स्वयं वहां तक पहुंचाते हैं, दोनों का सम्मिलन कराकर उनके पूर्वराग को सफल बनाते हैं वहीं दूसरी ओर १३वें सर्ग में वैदेही हरण के पश्चात् उनके वियोग में समूचे दण्डक वन को मनोव्यथा से विंधे हुये अपने आर्त क्रन्दनों से राम जब भर देते हैं तो अनुज लक्ष्मण उन्हें विविध प्रकार से सान्त्वना देते हुये शान्त करते हैं ।

यही नहीं अपितु वन प्रस्थान करते समय निःसंकोच भाव से राम को ही अपना सर्वस्व मानकर वल्लभा उर्मिला को छोड़कर स्वयं भी वल्कल वस्त्र धारण

१- जा० जी०, ४। २१, २६

कर राम की सेवा का व्रत लेकर वनवासी रूप में उनके साथ चल देना, मन,वाणी, और कर्म से उनकी सेवा करना, लंका के समरांगण में दाहिनी भुजा के समान उनके लिये निरन्तर युद्ध करना आदि ऐसे अनेक प्रमाण हैं जो रामानुज लक्ष्मण के उज्ज्वल रूप को प्रतिपद प्रकाशित करते रहते हैं । यही नहीं १५वें सर्ग में राम सीता से स्पष्ट कहते हैं - सीते ! मेरा यह दुलारा भाई लक्ष्मण अपने समस्त सुख वैभवों को तिलांजलि देकर मात्र तुम्हारे लिये आत्मविनाश तक के भयानक संकटों को झेलता रहा[1]।

उर्मिला वल्लभ लक्ष्मण का स्वरूप नवें सर्ग में विशेष रूप से देखने को मिलता है जहां वह अपने हृदय वल्लभा उर्मिला को व्यंग्यपूर्ण अपने वचनों से विनोदित करते हुये उन्हें अपूर्व अन्तरंग सुख प्रदान करते हैं । मिथिला को 'शिथिला' उर्मिला को 'पंकिला' कहते हुये उनके पिता जनक की धनुर्भंग विषयक प्रतिज्ञा को दुहराते हुये हास्यपूर्ण[2] वचनों से उर्मिला सहित उनकी सभी बहनों को अपूर्व परिहास्य प्रदान करते हैं ।

धनुर्धर लक्ष्मण का रूप यों तो न्यूनाधिक रूप में महाकाव्य में यत्र तत्र सर्वत्र देखने को मिलता है किन्तु इसका चरमोत्कर्ष रूप उस समय देखने को मिलता है जब निकुम्भिला देवी की उपासना में रत इन्द्रविजेता मेघनाद को युद्धार्थ ललकारते हुये रामानुज स्पष्ट करते हैं कि रे वंचक अब दिखा अपना पौरुष, तू अपना शरीर छिपाकर मायावी प्रहार करता है । समरांगण में तुझे लज्जा नहीं आती । तू झूंठी माया से निर्मित जानकी का वध करता है ? राक्षस ! अब आज मैं तेरा माया कौतुक देखूंगा[3] । रावण के सपूत ! तेरा लोकविश्रुत इन्द्र विजय विषयक पराक्रम भी देखूंगा ।

१- लक्ष्मणो मे दुर्ललितस्सहोदरो मदर्थमन्त्यक्तसमग्रवैभवः ।
स्वकर्मिवात्सल्यात्मदर्थमप्रसह्यकष्टं स्वहृदयमानदेवर: ।।
- जा० जी०, १५ ।२६

२- वही, ६ । ६५-६८

३- वही, १३। ३८-४५

इसके पश्चात् आतंकित मेघनाद और धनुर्धर लक्ष्मण में जो वर्णनातीत युद्ध होता है वह सब कुछ अद्भुत ही है । किन्तु धनुर्धर लक्ष्मण माया युद्ध निष्णात् मेघनाद का शौर्य दर्पित उन्नत माल कुछ ही क्षण में अपने बाणों से विच्छिन्न कर पृथक् कर देते हैं[1] जिसे देखकर हनुमान आदि सभी वीर योद्धा कुमार लक्ष्मण को दुलारने लगते हैं । तथा च स्वयं महाराघव भी अनुज के महापराक्रम से उत्साहित एवं हर्षित हो उठते हैं ।

नारी सम्मान रक्षक धर्मपरायण लक्ष्मण का स्वरूप सत्रहवें सर्ग में उस समय देखने को मिलता है जब दुर्मुख के मुख से वैदेही के चरित्र विषयक लांछन को सुनकर उनके ग्रहण एवं त्याग के द्वन्द्व में पड़े हुये सर्वथा तटस्थ चित्त राघव की मन: स्थिति को गुरुवर्य वसिष्ठ के पास जाकर उनसे निवेदित करते हुये वे स्पष्ट कहते हैं कि रघुवंश पूज्य-हे गुरुवर्य रोषमूर्छित राघव को आप शान्त करें । प्रजानुरंजन में निष्ठा रखने वाले अयोध्यापति श्रीराम ने यदि पुन: रजक के कलङ्क वचनों से उन्मादित होकर देवी मैथिली को निर्वासित किया या त्याग दिया तो निश्चय ही महा अनर्थ होगा । गुरुदेव मैं सच कह रहा हूं कि यदि आर्या वैदेही के साथ ऐसा कुछ भी हुआ तो अपने तीक्ष्णगामी शरों से मैं इस अयोध्या नगरी को ही क्षणभर में जलाकर भस्म कर दूंगा और बाद में स्वयं भी सरयू के जल में डूब मरूंगा। वैदेही दिव्य उद्भव वाली मिथिला की राजदारिका है कोई सामान्य नारी नहीं । वह सूर्यवंश की महीयसी कुल देवी है, राजर्षि जनक की पुत्री है । कोशलेश्वर महाराज दशरथ की दुलारी पुत्रवधू भी है । वह कोसल साम्राज्य की लोकसम्मत साम्राज्ञी भी है अतएव उन्हें तिरस्कृत अथवा अपमानित करने का अधिकार स्वयं महाराघव को भी नहीं है[2] ।

इस प्रकार जानकी जीवनम् के लक्ष्मण कहीं दशरथनन्दन के रूप में तो कहीं रामानुज के रूप में, कहीं उर्मिला वल्लभ के रूप में तो कहीं समरधीर महाधनुर्धर के रूप में तथा च इन सबके ऊपर नारी सम्मान रक्षक धर्मपरायण के रूप में उत्तरोत्तर उत्कर्षशाली के रूप में उपलब्ध होते हैं ।

१- जा० जी०, १५ । ७०

२- ,, ,, १७।३०-३१

वसिष्ठ -

जानकी जीवनम् महाकाव्य के अन्तर्गत उल्लिखित पुरुष पात्रों में रघुवंश के कुलगुरु ज्ञानधर्मी वसिष्ठ का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है । जानकी जीवनम् के वसिष्ठ अनेक रूपों में रूपायित किये गये हैं जिनमें ब्रह्मपुत्र वसिष्ठ सप्तर्षि प्रमुख वसिष्ठ, रघुवंश पुरोधा वसिष्ठ, अकालपक्व वसिष्ठ, अतीन्द्रिय ज्ञान सम्पन्न त्रिकालज्ञ वसिष्ठ, धर्मनियन्ता वसिष्ठ आदि ऐसे रूप हैं जो विशेषतया उल्लेखनीय हैं ।

ब्रह्मर्षि वसिष्ठ के उक्त सभी रूपों का समवेत रूप महाकाव्य के १८ वें सर्ग में उनके उस आत्मोद्बोधन में ही मिल जाता है जिसमें उन्होंने पूत-चरिता वैदेही के चरित्र को लोकापवाद से मुक्त करने के लिये विशाल लोकसभा का आयोजन कर उसे उद्बोधित किया है[१] ।

ब्रह्मर्षि वसिष्ठ विशाल लोकसभा को सम्बोधित करते हुये जहां यह कहते हैं कि प्रिय नागरिकों अपनी तपश्चर्या के प्रभाव से मैं त्रिकालवेदी हूं । ऋतु तथा सत्य के महत्व को समझता हूं । अपनी तप की महिमा के ही कारण मैं सप्तर्षियों में गिना जाता हूं । मैं प्रजापति ब्रह्मा का मानस पुत्र हूं । और मेरा नाम है वसिष्ठ ।

प्रजापति ब्रह्मा के आदेश वश तथा मर्त्यलोक के कल्याण हेतु ही मैंने इस धरा धाम में चिरकाल से सूर्यवंशी नरपतियों के कुलगुरु बनने की प्रतिष्ठा अंगीकार कर रखी है । इस सूर्य वंश में शौर्य पराक्रम वाले जाने कितने भूपाल उत्पन्न हुये और मृत्यु का वरण कर कीर्ति शेष रह गये परन्तु अकालपक्व मैं अपना वही पुराना शरीर धारण किये हूं । भगीरथ, मित्रसह दिलीप, रघु, अज दशरथ, आदि को इसी वसिष्ठ ने अपने तपस्तेज से लौकिक अभ्युदयों का अधिकारी बनाया और अब अपने ब्रह्म तेज, अखण्ड तप तथा भूरिभाग्यों की महिमावश रामभद्र

१- जा० जी०, १८।१६-८२

जैसे महापुरुषों का पौरोहित्य सम्पादित कर रहा हूं ।

प्रिय नागरिकों ! दशरथनन्दन राम सामान्य मानव नहीं हैं अपितु स्वयं महाविष्णु ही राम के रूप में इस पृथवी पर अवतीर्ण हुये हैं । अपने तपोबल से उपार्जित एवं अनुभूत अपने अतीन्द्रीय योग को आज मैं आप सबके समक्ष प्रस्तुत कर रहा-हूं । राम की ईश्वरीयता भी इस लोक में साधारण प्राणियों द्वारा अनुभवगम्य नहीं है । अगस्त्य बाल्मीकि, सुतीक्ष्ण एवं विश्वामित्र जैसे तपस्वी ही उस दिव्य रूप को जानते हैं तथा व स्वयं मैं भी उस दिव्य रूप से अवगत हूं ।

उपर्युक्त निदर्शन से स्पष्ट है कि ब्रह्मर्षि वशिष्ठ में जहां एक ओर ब्रह्म-पुत्रता है वहीं सप्तर्षि मुख्यता भी, जहां एक ओर वे रघुवंश पुरोधा हैं वहीं दूसरी ओर वे अकालपक्ष्य और जहां एक ओर वह अतीन्द्रीय ज्ञान-सम्पन्न त्रिकाल-दर्शी हैं वहीं दूसरी ओर वे धर्मनियन्ता भी । महाकाव्य के १८ वें सर्ग में सीता के चरित्र को सर्वथा विशुद्ध प्रमाणित करने के लिये वशिष्ठ ने जो विशाल लोकसभा के समक्ष धर्म सम्मत व्याख्यान दिया है और स्पष्टत: उनके चरित्र को प्रमाणित करते हुये जो यह कहा है कि बिना किसी पक्षपात के मैंने देवी सीता के देवी रूप के सन्दर्भ में रजक के अकारण उत्पन्न द्रुहाजन्य महान् अज्ञान के परिप्रेक्ष्य में प्रजापति राघव के भावी विधायक अधिकार के सम्बन्ध में औचित्य को निरूपित कर दिया है । अब मैं आगे की समस्त कार्यवाही को आप सभी जनता जनार्दन के अधीन करता हूं जिससे भावी युग में लोग यह न कहें कि धर्म-तत्त्व का महासिन्धु बूढ़ा ब्रह्मर्षि वशिष्ठ क्या मर गया था ? जिसके रहते यह दारुण अनर्थ हुआ । अब इसी कलङ्क से बचने के लिये मैंने आप लोगों को बुलाया है ।

इस कथ्य से ब्रह्मर्षि वशिष्ठ के धर्म नियन्ता होने की अभीष्ट परिपुष्टि हो जाती है ।

—

जनक -

जानकी जीवनम् के प्रमुख पात्रों में मिथिलेश्वर जनक का स्थान कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं है । जानकी जीवनम् के जनक के व्यक्तित्व में राजर्षिता, प्रजापालकत्व तथा पितृता का अद्भुत संगम है ।

जनक की राजर्षिता का परिचय महाकाव्य के प्रथम सर्ग से ही उपलब्ध होने लगता है । अकाल दुर्भिक्ष से पीड़ित जनता को देखकर जब वे श्रुतियों के साक्ष्य-बल पर निर्णय लेते हुये यह कहते हैं कि श्रुतियों का ऐसा प्रमाण है कि प्रजा वर्ग राजा के ही कर्मों का भोग करता है । आरोहण कला में निपुण होकर भी घुड़सवार बेलगाम घोड़े पर बैठ करके नीचे गिर जाता है । अतएव मेरे ही किसी पूर्व अथवा वर्तमान जन्म में किये गये किसी पाप के कारण मेरी प्रजायें दु:खी हैं[1] । जनक के इस कथन से उनके महाज्ञानी होने का स्पष्ट संकेत मिलता है ।

राजर्षि जनक के प्रजा पालक रूप का निदर्शन भी महाकाव्य के प्रथम सर्ग से ही उपलब्ध होने लगता है । अकाल दुर्भिक्ष से पीड़ित प्रजा के दु:ख को दूर करने के लिये कुलगुरु शतानन्द के परामर्शानुसार अपेक्षित वर्षा करवाने के निमित्त सोने के हल को स्वयं खींचकर खेत को जोतना तथा वहां उपस्थित ऋषियों महर्षियों एवं ब्राह्मणों के द्वारा उनके इस कर्म की यह प्रशंसा करना कि प्रजा की हित-कामना करने वाला ऐसा कोई नरेश न हुआ, न है, और न ही त्रिलोकी में होने वाला है जो इस प्रकार कृषि-कर्म करके प्रजा की भलाई कर सके । शिवि, दधीचि, रन्तिदेव, पृथु, मनु, नहुष, अम्बरीश आदि सभी को जनक अपने प्रजापालन कीर्ति से अतिक्रान्त कर गये हैं[2] ।

जनक के पितृत्व का निदर्शन भी महाकाव्य के प्रथम सर्ग के अन्तिम चरण से प्रारम्भ होकर अष्टम सर्ग पर्यन्त यथा स्थल चारुतम रूप में उपन्यस्त किया गया है । जिसकी पराकाष्ठा उस समय देखने को मिलती है जब वह अपनी

१- जा० जी०, १। ६-८

२- वही , १। २५, २६

हृदय-दुहिता जानकी के विवाह की प्रतिज्ञा करते हैं और स्वयम्वर में आहूत कोई भी राजकुमार शिवधनुष को उठाकर उस पर प्रत्यंचा नहीं चढ़ा पाता है । उस समय जानकी दुर्भाग्य से सन्तप्त जनक आंसुओं से लथपथ हुये स्पष्ट कहते हैं कि समागत बन्धुओं मैंने पुत्री के विवाह के सन्दर्भ में छोटी सी प्रतिज्ञा कर डाली जिसके दुःखद परिणाम सम्प्रति उन्मुख हो रहे हैं । किसको दोष दूं । सच तो यह है कि प्रतिज्ञा करने वाला मैं ही दोषी हूं । लगता है विधाता ने वैदेही का विवाह ही नहीं रचा है तो फिर परिश्रम करना व्यर्थ है । बेटी वैदेही का अकल्याण करने वाला शठ मैं ही हूं जिसने बिना सोचे समझे ऐसी संदिग्ध प्रतिज्ञा कर डाली[1] ।

यही नहीं ८ वें सर्ग में वैदेही के विदायी के समय पुत्री वियोग जन्य व्यथा से अतिक्रान्त जनक को रोने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं सूझता । बारम्बार मुंह सिर और स्मृत हो जाये अभिप्रायों को समझाकर जानकी को हृदय से लगाकर पिता जनक असह्य वेदनाओं के कारण ऐसे ही अलग कर दिये गये जैसे कोई तड़फड़ाते बछड़े वाली गाय को । सीता अपनी बहनों के साथ धीरे-धीरे आंखों से ओझल होकर दूर निकल जाती है । वैवाहिक प्रक्रिया का समारोह भी पूर्णता को प्राप्त हो जाता है । किन्तु चेतना और बुद्धि की क्रियाशीलता से विरहित विदेह जनक अपने राजमंदिर में कहीं भी क्षणमात्र के लिये भी सोने में समर्थ न हो सके[2] ।

अतएव यह कहना कोई अत्युक्ति नहीं कि जानकी जीवनम् के जनक में राजर्षिता की सरस्वती प्रजापालकता की यमुना तथा पितृता की गंगा की अबाध त्रिवेणी बह रही है ।

१- जा० जी०, ७।५१-५२

२- गता सीता दूरं स्वसृभिरथ सार्धं विधुमुखी
समारोहोऽप्येवं परिणयविधेः पूर्तिमगमत् ।
विदेहोऽसौ किन्तु व्यपगतविचित्तबुद्धिव्यतिकरो
न निद्रातुं राज्ञी क्षणमपि शशाक क्वचिदपि ।।
– जा० जी, ८। ७७

रावण -

जानकी जीवनकार ने रावण के व्यक्तित्व को जिन अनेक रूपों में रूपायित किया है उनमें शम्भुभक्त रावण, दनुजेन्द्र रावण, लम्पट रावण, रामारि रावण आदि का रूप मुख्यतया उल्लेखनीय है ।

शम्भु भक्त रावण का रूप तो उस समय देखने को मिलता है जब वह वैदेही का हरण करने के लिये मारीच के साथ प्रस्थान करता है और सीता को अकेली देखकर शम्भुभक्त यतीवर के छद्म वेश में मैथिली के पर्णकुटी के निकट पहुंचता है । जानकी जीवनकार लिखता है कि जिस समय महर्षि के वेश में लङ्कापति रावण मैथिली के निकट पहुंचा उस समय उसका रम्य शरीर दिव्य लाल रंग के रेशमी वस्त्रों से ढका हुआ था । उसके उन्नत भाल पर शम्भु भक्त का प्रतीक त्रिपुण्ड सुशोभित था । उसके हाथों में पलाश दण्ड एवं कमण्डल थे ।। उसकी आंखें अनुरक्त एवं मदिर थीं तथा अधरों पर मन्द हास विद्यमान था ।[1]। धीर एवं शान्त गति से समीप पहुंचकर गृहिणी अनोचित चर्चाओं का उपदेश देते हुये तथा मृदु वाणी से सीता के गुण, रूप एवं शील की प्रशंसा करते हुये रावण के ने वैदेही से भिक्षा याचना की ।

इससे स्पष्ट है कि रावण मनसत: भगवान आशुतोष का परमभक्त था । तभी तो उसने छद्म वेश के रूप में भी शिव के त्रिपुण्ड को नहीं त्यागा । दनुजेन्द्र रावण का परिचय तो सर्वविदित ही है । यही नहीं वैदेही हरण के प्रसंग में रावण अन्तत: अपने वास्तविक रूप में प्रकट होकर सीता से स्पष्ट कहता भी है कि हे सीते ! अब मैं तुम्हारी भलाई के लिये वास्तविक तथ्य प्रकट कर रहा हूं । तुम देवों एवं असुरों पर विजय प्राप्त करने वाले मुझ ऐश्वर्यशाली का वरण

१- बिभ्रत्कुसुम्भांशुकमात्तदेह: शाम्भवस्य दधत्त्रिपुण्ड्रकमुत्तमाङ्गे ।
पाणिनात्तपलाशदण्डकमण्डलुरय प्रीत्यारुणालोचनो धृतमन्दहास: ।।

- जा० जी० ११। ८५

करो । हे शुभे ! मैं साक्षात् लङ्कापति रावण हूं । तुम्हारे मुखचन्द्र के लिये उत्कण्ठित हूं और तुम्हारे दिव्यरूप सुधा से आकृष्ट होकर ही यहां आया हूं[1] ।

देवराज इन्द्र भी मुझे प्रातः, मध्याह्न एवं सन्ध्या वेला में मुझे प्रणामा बलि अर्पित करता है । और भयवश लङ्का में चन्द्रमा भी अपनी सोलह कलाओं में कभी ह्रास नहीं करता । प्रचण्ड सूर्य भी अधिक नहीं तपता । और न ही पवन आंधी तूफान उठाता है । सीते ! समस्त लोकों पर मेरा अखण्ड प्रभुत्व है[2] ।

इस प्रकार जानकी जीवनम् में रावण की प्रथम प्रस्तुति ही वस्तुतः खलेन्द्र के रूप में ही करायी गयी है ।

लम्पट रावण का व्यक्तित्व तो वैदेही हरण के उपक्रम से लेकर युद्ध-पर्यन्त परिव्याप्त है । रावण को धिक्कारती हुयी सीता जहां यह कहती हैं कि दशानन ! देवों पर तुम्हारे आधिपत्य और निर्वीर्य पौरुष पर धिक्कार है । और धिक्कार है मालिन्य पूर्ण तुम्हारे इस निकृष्ट हृदय को । यदि तुम अपनी इन्द्रियों को ही नहीं जीत सके तो इन्द्र पर विजय पाने से क्या लाभ[3] ?

१- साम्प्रतं प्रकृतं वदामि हिताय सीते । मां भजस्व सुरासुरोज्जयिनं समुद्यम् ।
रावणोऽस्मि शुभे ! त्वदास्यमृगाङ्कसिन्धुः आगतस्तव दिव्यरूपसुधाकृष्टः ।।
- जा० जी०, ११।६४

२- वही, ११ । ६५

३- सा क्रुद्धमुपेत्य वैदेह्युवाच दैन्यक्रोधवरोधभयार्दिता शृणु भो दशास्य !
धिक् ते दर्पोरुषं त्रिदशाधिपत्यं धिक् च ते मलिनार्पितं हृदयं निकृष्टम् ।।
इन्द्रियं न जितं किमिन्द्रजयेन तव हृदयो न गतं तदन्तरणोज्झिता वा ?
निष्कले त्वयि का नु चन्द्रकलासमीक्षा अर्पिता भवता त्वयैव कृताऽस्ति वार्त्ता ।।
- वही, ११ । ६८, ६९

इसके माध्यम से जानकी जीवनकार ने रावण की लम्पटता की ही निन्दा की है । ऐसे ही १२वें सर्ग में भी उसकी लम्पटता का सविस्तर वर्णन किया गया है जहां वह अशोक वनिका में स्थित राघव प्रिया वैदेही से धर्मविरुद्ध अनुचित प्रणय निवेदन करता है ।

रामारि रावण का रूप इस महाकाव्य के चौदहवें सर्ग में अपनी पराकाष्ठा पर दिखायी देता है जहां वह समान्त में स्वयं ही इन्द्रविजयी पुत्र मेघनाद के वध के अनन्तर सुत शोक से आहत स्वयं ही उन्मत्त गजराज के समान घूमता हुआ क्रोधाग्नि में राघव को ललकारता हुआ उनसे युद्ध करने के लिये साक्षात ससैन्य आ पहुंचता है और कहता है कि अरे श्री हीन ! आज वह रावण अपने कुलदाय का फल तुम्हें अर्पित करेगा जिसने अपने विक्रम के प्रसार से देवों को भी जीत रखा है जो समूची त्रिलोकी में अद्वितीय शूर है ! आश्चर्य है क्या तू रण-भूमि में मुझ रावण को पहचान नहीं रहा है ?[1]

रावण के अपमानजनक वचनों को सुनकर महाराघव राम उन सारे वचनों का उत्तर एक साथ अपने बाणों से देना प्रारम्भ कर देते हैं । राम रावण का वह भयावह संग्राम उत्तरोत्तर बढ़ता चला जाता है । रावण वधाकांक्षी देवगण आकाश में खड़े निहारते रहे । राघव बारम्बार उसका शिरश्छेद करते परन्तु विधाता के वरदानवश वह तत्क्षण[2] पुन: उद्गत होता रहा । इस घटना से राघव भी अपमानित हो उठते हैं । और अन्त में पूरी शक्ति के साथ क्रोधपूर्वक आग्नेय शर

१- अद्य किल राघवं वञ्चको रावणा मत्क्रियम्
कुलदायकफलानि ते समुपनेष्यते रावण: ।
अये मुषितकेशव ! स्मरसि किन्न मां विक्रम-
प्रसारजितनिर्जरं त्रिभुवनैकमल्लं रणे ।।
- जा० जी०, १४। ७६

२- वही, १४ । ८३

को संधानित कर दशानन के सभी शिरों को एक साथ ही काट गिराया और उसका विशाल कबन्ध तत्काल धराशायी हो गया । रामादि रावण सदा के लिये धरा धाम से सुरधाम चला गया[१]।

इस प्रकार जानकी जीवनकार ने रावण के बहुआयामी रूप को सफलतापूर्वक उपस्थापित करने का यत्न किया है ।

--

१- चकर्त शिरसां चयं स किल रुक्मपुंखशरः
पपात भुवि रावणः पृथुकबन्धको चिरम् ।
अचिन्त्यमितमद्भुतं समरलोक्य दारुणं
विलोक्य मनुजेश्वरा बन्धकावधेयानरा: ॥
- जा० जी०, १४ । ८५

काव्य सौन्दर्य-विवेचन :

काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से त्रिवेणी कवि अभिराज राजेन्द्र मिश्र विरचित जानकी जीवनम् महाकाव्य का रामकथा विषयक महाकाव्यों में गौरवशाली स्थान माना जा सकता है ।

वर्णाश्रम व्यवस्था, पुरुषार्थ, संस्कार, धर्म दर्शन, यज्ञ तपश्चर्या, प्रकृति चित्रण, प्रेम चित्रण, हास्य व्यंग्य, विनोद, लोकतन्त्र, विवेचन, संगीत आदि विविध शास्त्र चर्चा, भारतीय संस्कृति की स्थापना आदि ऐसे मानक बिन्दु हैं जहां जानकी जीवनम् का काव्य-सौन्दर्य अपनी पराकाष्ठा पर देखा जा सकता है ।

जानकी जीवनकार ने सनातन धर्म सम्मत गुणानुकूल वर्णाश्रम व्यवस्था का वैज्ञानिक वर्णन अपने महाकाव्य में यथा-स्थल किया है । महाकाव्य के सत्रहवें सर्ग में रामराज्य का वर्णन करते हुये कवि लिखता है कि रामराज्य में सभी मनुष्य अपनी-अपनी परिस्थिति में सन्तुष्ट रहे, कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे के दोषा पाप का कारण नहीं था । वर्णाश्रम धर्म में प्रतिष्ठित भारतीय समाज आह्लादक रामराज्य का सुख भोग रहा था[1]। धर्मान्तिक, यन्त्रक, तक्षक, नयज्ञ, वैद्यक, कुम्भकार, मालाकार, कम्बलकार, गान्धिक, आरामिक, रजक, कुविन्द, शौण्डिक, नट नर्तक, जौहरी, मल्लाह गोताखोर, कहार, माथुररथ रोधक, मनिहार, इन्द्रय-वैद्य, किसान, शिल्पी, कंसकार, चर्मकार, सुधाकार, द्वारपाल, सूत, मागध, बन्दी, वैतालिक, कवि विद्वान, वेद, मर्मज्ञ, मन्त्री, सैनिक, ब्रह्मचारी, राज्याश्रित पुरोहित[2] किंवा चारों वर्णों एवं चारों आश्रमों के सभी लोग राघव के शासनकाल में सभी लोग अपने-अपने कर्मों में निष्ठा पूर्वक समर्पित थे । जिसके[3] परिणाम स्वरूप सर्वोदय सम्पन्न रामराज्य स्वर्ग को भी अतिक्रान्त कर रहा था ।

1- वर्णाश्रमव्यवस्थायां भारते रामराज्यसुखमन्वभू भोगावहम् ।
स्वस्थितौ परितोषिताः सर्वजनाः कारणं न बभूव कोऽप्यन्यस्याघ ।।
- जा० जी०, 17। 6

2- वही, 17।8-11

3- ईदृशं कर्मसु निरतैः सर्वैऽपि ते राघवे जाति मेदिनी मदस्यार्पिताः ।
तेन रामराज्यं स्वर्गमप्यतिक्रान्ते दिवौकसः ।।
- वही, 17।12

इसी प्रकार महाकाव्य के चतुर्थ एवं बीसवें सर्ग में भी वर्णाश्रम व्यवस्था का उदात्त वर्णन मिलता है ।

जानकी जीवनम् महाकाव्य में धर्मादि चारों पुरुषार्थों का यथा स्थल समुचित वर्णन किया गया है । रामराज्य का वर्णन करते हुये सत्रहवें सर्ग में महाकाव्यकार ने लिखा है कि वैभव सम्पन्न रामराज्य में प्रजाजनों के हृदयों में धर्म, संस्कृति-शील एवं सौजन्यादि सद्भाव समूह संस्कार अनुप्राणित हो चले थे । कल्याण की कामना करने वाले सभी मनुष्य लौकिक अभ्युदय एवं पारलौकिक कल्याणों में लगे थे[१]।

इसी प्रकार बीसवें सर्ग में भी राम राज्य का ही वर्णन करते हुये कवि पुनः लिखता है कि रामराज्य में धर्म की पूर्ण प्रतिष्ठा थी, चारों ही वर्ण सावधान होकर पारस्परिक सद्भाव एवं मंगल कामना से युक्त होकर अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए सत्यों, तपश्चर्याओं यज्ञों तथा दानों से अभिमण्डित चारों ही चरणों से युक्त धर्म अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच चुका था[२]। यह भी ध्यातव्य है कि जिस रामराज्य में ब्रह्मर्षि ज्ञान धर्मा वशिष्ठ जैसा कि धर्म सिन्धु का नियामक हो और जो अपनी ज्ञान गरिमा, तपश्चर्या, लोकोत्तर सिद्धियों, देव सम्पत्तियों आदि से रघुवंश का पौरोहित्य कर रहा हो । रघुवंश के रघु आदि से लेकर राघव राम तक के राजाओं को जो धर्म की मर्यादा में दीक्षित करता रहा हो ऐसे रामराज्य में धर्म अपनी पराकाष्ठा पर क्यों न हो ?

१- धर्मसंस्कृतिशीलसौजन्यादिका हृत्सु भावचया: प्रजानां तस्थिरे ।
लौकिकाऽभ्युदये स्फुरन्निःश्रेयसे व्यापृता मनुजा: स्वयं स्वस्तिका: ।।
— जा० जी०, १७।१

२- स्वं स्वं नियोगमनुबन्धुरथाप्रमत्ता: सद्भावमङ्गलयुताश्च तुरीयवर्णा: ।
सत्यैस्तपोभिरथ यज्ञैर्महितैश्च दानैः धर्मश्चतुष्पदयुतस्समवाप काष्ठाम् ।।
— वही, २० । ५

जानकी जीवनम् महाकाव्य में सनातन धर्म सम्मत जातक आदि संस्कारों का सम्यक् वर्णन किया गया है । जिनमें जातक संस्कार, निष्क्रमण संस्कार, नाम करण संस्कार, विद्यारम्भ संस्कार, विवाह संस्कार तथा अन्त्येष्टि संस्कारादि का यथा स्थल विशेष रूप से दर्शनीय है ।

महाकाव्य के द्वितीय सर्ग में जानकी का जन्ममहोत्सव, चौथे सर्ग में रामादि का जन्म महोत्सव तथा उन्नीसवें सर्ग में कुश लव आदि का जन्म महोत्सव जहां एक ओर जातक संस्कार को प्रतिबिम्बित करता है वहीं महाकाव्य के प्रथम एवं द्वितीय सर्ग में जानकी, सीता आदि सीता के विविध नामकरण, चतुर्थ सर्ग में रामादि का नामकरण, उन्नीसवें सर्ग में कुश लव का नामकरण, नामकरण संस्कार का प्रतिनिधित्व करता है ।

चतुर्थ सर्ग में वसिष्ठ के परामर्शानुसार राम और लक्ष्मण का गुरुवर्य विश्वामित्र के साथ जाना, कलाकल विद्या सहित विविध शास्त्रास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करते हुये विविध पुराणेतिहास, कथा, काव्य, नाटक, उपनिषद्, दर्शन, धर्मादि का ज्ञान प्राप्त करना, उन्नीसवें सर्ग में स्वयं राघव द्वारा कुश एवं लव को शिक्षा देने के लिये ब्रह्मर्षि वाल्मीकि को सौंपना तथा उन दोनों का वाल्मीकि से अपूर्व ज्ञान प्राप्त करना विद्यारम्भ संस्कार के सबल प्रमाण हैं ।

अष्टम सर्ग में राघव एवं जानकी का सांगोपांग विवाह वर्णन विवाह संस्कार का सर्वोत्तम निदर्शन है ।

ग्यारहवें सर्ग में राघव राम द्वारा पितृ चरण दशरथ को उनकी अन्त्येष्टि के सन्दर्भ में तिला बलि अर्पित करना, पुनः वैदेही हरण के पश्चात् राक्षस के द्वारा आहत पक्षिराज जटायु का राघव के द्वारा संस्कार किया जाना आदि ऐसे अनेक सन्दर्भ हैं जहां सनातन धर्म सम्मत अन्त्येष्टि संस्कार का स्वरूप देखा जा सकता है ।

जानकी जीवनम् महाकाव्य में वैष्णव धर्म दर्शन का उदात्त निरूपण किया गया है । अठारहवें सर्ग में जानकी जीवनकार ने ज्ञानधर्मा वसिष्ठ के माध्यम से वैष्णव दर्शन की जैसी वैज्ञानिक प्रस्तुति करायी है वह सब [illegible] देखते

ही बनता है । ब्रह्मर्षि वसिष्ठ विशाल जनसभा को सम्बोधित करते हुये राम के महाविष्णुत्व की स्थापना के सम्बन्ध में कहते हैं कि सम्मान्य नागरिकों ! दाशरथि राम साधारण मानव नहीं है वे साक्षात् महाविष्णु के अवतार हैं जिस दिव्य दृष्टि से मैं राम को देख रहा हूं दुर्भाग्यवश वह आप लोगों को प्राप्त नहीं है[1] । जहां पहुंचने में शरीर समर्थ नहीं होता वहां सूक्ष्म मननिर्विशंक भाव से प्रवेश कर जाता है और जहां मन भी प्रवेश में असमर्थ होता है वहां सर्वज्ञात्मा सहजत: प्रविष्ट हो जाती है[2] । शक्ति सामर्थ्य की यह उत्तरोत्तर सुक्ष्मता तपोबल से ही प्राप्त की जा सकती है[3] । जिससे अतीन्द्रीय ज्ञान सम्पन्न मानव ईश्वरीयता का सहज दर्शन कर सकता है । राम की ईश्वरीयता को अगस्त्य, वाल्मीकि, सुतीक्ष्ण एवं विश्वामित्र तथा सुमन्त्र जैसे महर्षि ही जानते हैं[4] ।

जानकी जीवनम् महाकाव्य में तपश्चर्या तथा यज्ञ संविधान का भी यथा स्थल पर्याप्त वर्णन किया गया है । वसिष्ठ, विश्वामित्र, अगस्त्य, अत्रि, सुतीक्ष्ण, वाल्मीकि आदि जैसे ऋषियों की उग्र तपश्चर्या जहां एक ओर तपस्या की महिमा का निदर्शन है वहीं दूसरी ओर जनक, दशरथ का पुत्रेष्टियाग विश्वामित्र का धर्म यज्ञ तथा बीसवें सर्ग में स्वयं महाराघव का अश्वमेध यज्ञ, यज्ञ संविधान का भी उज्ज्वल निदर्शन प्रस्तुत करता है[5] ।

राम के अश्वमेध यज्ञ की प्रशंसा करते हुये कुल गुरु वसिष्ठ स्पष्ट कहते

१- न मानवो दाशरथि: पृथिव्यां स्वयं महाविष्णुरिहाऽवतीर्ण: ।
दृष्ट्वा मया तत्त्वनिमीलनया पश्यामि रामं युष्मा न वा ते ।।
— जा० जी०, १८।२१

२- वही, १८। २२

३- वही, १८। २३

४- वही, १८। २४

५- वही, २०।८-३२

हैं कि हे राम भद्र ! भुवनाधिप राज राजेश्वर ! आपका यह श्रेष्ठ अश्वमेध यज्ञ निरुपद्रव सम्पन्न हुआ है । ऐसा यज्ञ इस भूतल पर न पहले कभी हुआ था और भविष्य में भी ऐसे सफल यज्ञ के होने की सम्भावना भी नहीं है । हे रघुपते ! आपके यज्ञ जैसा यज्ञ तो इन्द्र, वरुण और यम ने भी नहीं कराया है तो फिर केवल लौकिक स्वल्प प्रभुता सम्पन्न नरपतियों की क्या गणना[1] ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जानकी जीवनकार ने न केवल तपश्चर्या एवं यज्ञ संविधान का बाह्य वर्णन मात्र किया है अपितु अपने साधना के बल से उनका स्वानुभूत सत्याधारित तत्त्व भी उजागर किया है ।

जानकी जीवन महाकाव्य में लोकतन्त्र की पूर्ण स्थापना की गयी है । महाकाव्य के सत्रहवें सर्ग से लेकर बीसवें सर्ग तक निरूपित रामराज्य का मूलाधार लोकतन्त्र ही है ।

अट्ठारहवें सर्ग में सीता के लोकापवाद का निर्णय करने के लिये कुल गुरु वशिष्ठ ने जिस लोकसभा का आयोजन किया है और अपने सारगर्भित तर्क-सम्मत व्याख्यानों के माध्यम से जनता जनार्दन द्वारा ही पुनः वैदेही को लोकापवाद से मुक्त कराकर उन्हें महालक्ष्मी के पद पर अभिषिक्त किया है वह सब कुछ लोकतंत्र की सफल परिणति ही है[2] ।

ब्रह्मर्षि वशिष्ठ रामराज्य को लोकतन्त्र पर आधारित राज्य घोषित करते हुये स्पष्ट कहते हैं कि सम्मान्य नागरिकों ! यह संसद एक मात्र जनमत में

१— सोऽयं समाप्तमहर्षिवसन्तरोधात् आशीर्वचांसि वितरामि च ते समेध्यात् ।
पूर्णोऽश्वमेधसुमखो निरुपद्रवस्ते भूतो न भूर्वीमिह नो भविताऽपि नूनम् ॥

नेन्द्रेण नैव वरुणेन न वा यमेन सम्पादितो रघुपते ! समरूपयज्ञः ।
का वा कथा प्रमितभूमिभुवां नृपाणां प्राग्वर्तिनां तनुबलप्रभुताकलितानाम् ॥

— जा० जी०, २० । ३४, ३५

२— जा० जी०, १८ । ६१-८२

निष्ठा रखने वाली है लोक समृद्ध तन्त्र वाली तथा लोक के ही द्वारा विकसित व्यवस्था वाली है । इस लोकतंत्र में जनता के मत की गवेषणा करने में न तो किसी राजा को भय होना चाहिये और न ही किसी प्रजा को[1] । पौरजनो । यह पवित्र रामराज्य वैयक्तिक परतन्त्रता का विरोध करता है । इस राम राज्य में प्रजा राजा के अधिकारों से नियन्त्रित नहीं है प्रत्युत राजा ही प्रजा के अधिकारों में आबद्ध है[2] ।

इसी प्रकार अन्य अनेक सर्गों में भी यथास्थल लोकतन्त्र की स्थापना देखी जा सकती है । जानकी जीवनम् महाकाव्य में वर्णित प्रकृति चित्रण के द्वारा काव्य-सौन्दर्य में अपरिमित समृद्धि परिलक्षित होती है । महाकाव्य के नवें सर्ग में प्रभात वर्णन एवं वसन्त वर्णन तथा ग्यारहवें सर्ग में शृंगवेर, चित्रकूट, कामदगिरि, गंगा, यमुना, त्रिवेणी, गोदावरी, तमसा, पम्पा सरोवर आदि के वर्णन में कवि का प्रकृति चित्रण सर्वथा चित्ताकर्षक दृष्टिगत होता है । इसी प्रकार ग्यारहवें सर्ग में अशोक वन वर्णन के सन्दर्भ में किया गया प्रकृति चित्रण भी कुछ कम उत्कर्षशाली नहीं है । इसके अतिरिक्त सूर्योदय, मध्याह्न, सायं, रात्रि आदि का महाकाव्य में किया गया यथा स्थल वर्णन भी उसके प्रकृति चित्रण को उद्दीप्त करने में सहायक सिद्ध हुआ है ।

जानकी जीवन कार ने सृष्टि में परिव्याप्त प्रेम चेतना का भी सफलतम वर्णन करने का यथाशक्य प्रयास किया है । महाकाव्य के प्रथम नौ सर्गों में राघव एवं जानकी के पारस्परिक प्रेम को अनेक सोपानों में विकसित करते हुये जिस पराकाष्ठा पर पहुंचाया है वह सब कुछ उसकी लोकोत्तर प्रतिभा

१- इयं सभा लोकमतैकनिष्ठा लोकानुगा लोकमिहाश्रयन्ती ।
 गवेषणे लोकमतस्य भूयं न राजनीतिर्न च दैन्यभाव: ।।

— जा० जी०, १८ ।४४

२- वही, १८ । ४५

से प्रसूत प्रेम चेतना का हृदय संवाद भी कहा जा सकता है । जहां पहुंचकर प्रेमी और प्रेमिका एक प्राण और दो गात हो जाते हैं । एक ही दीपक की दो शिखा बन जाते हैं । शरीर के व्यवधानों को पारकर क्रमशः शारीरिक,मानसिक, आदि धरातल से उपर उठते हुये किसी एक ही लोकोत्तर धरातल पर जाकर प्रतिष्ठित हो जाते हैं । जानकी जीवनम् में जानकी एवं राघव का प्रेम चित्रण जहां एक ओर आरम्भिक चरण में इन्द्रियोन्माद को स्पर्श कराता है, वहीं दूसरे चरण में वह मानसिक धरातल पर पहुंचकर अपूर्व स्मरसुख की अनुभूति कराता है तथा व तृतीय चरण में पहुंचकर जब वह मर्यादा की पृष्ठभूमि में स्थापित हो जाता है तो उस समय प्रेम की फलश्रुति भी अपूर्व सामाजिक प्रतिष्ठा के रूप में दृग्गोचर होती है और अपने अन्तिम चरण में वह तुरीय धरातल पर पहुंचकर जनमान्तर सौहृद का भी कारण बन जाता है ।

जानकी जीवनकार ने राघव एवं वैदेही के संयोग विधायक प्रेम का चित्रण विशेष रूप से जहां आठवें सर्ग में किया है वहीं उनके प्रेम के विप्रलम्भ रूप का भी वर्णन बारहवें एवं तेरहवें-सर्गों में चरमतम रूप में किया है । कहीं कहीं त्रिवेणी-कवि ने भग्न प्रेम का भी वर्णन किया है और उसका यह भग्न प्रेम-वर्णन पन्द्रहवें सर्ग में अपनी पराकाष्ठा पर उस समय दिखायी देती है जब रावण-वध के अनन्तर उपस्थित की गयी जानकी से वह उनके लोकापवाद के कारण उन्हें स्वीकार करने से सर्वथा विमुख से हो जाते हैं उस समय कवि ने जानकी के माध्यम से भग्न प्रेम का जो हृदयद्रावी वर्णन करवाया है वह सब कुछ सर्वथा अनुपम है ।

इस प्रकार जानकी जीवनकार ने प्रेम के विविध पक्षों का जैसा सफल वर्णन महाकाव्य में करने का यत्न किया है वैसा अन्य किसी भी महाकाव्य में सर्वथा दुर्लभ है ।

जानकी जीवनकार ने महाकाव्य के विविध स्थलों में यथावसर हास्य व्यंग्यपूर्ण विनोद का भी सरस वर्णन किया है । नवम सर्ग में कुमार लक्ष्मण का बचपना उर्मिला को भिक्षिका को शिक्षिका तथा उर्मिला को पाठिका कहकर

उसका परिहास करना, श्वसुर जनक की धनुर्भंग विषयक प्रतिज्ञा की हंसी उड़ाना तथा च जानकी, माण्डवी आदि भाभियों के साथ परस्पर विविध प्रकार के हास्य व्यंग्यपूर्ण वचनों से उन सबका मनोविनोद करना आदि ऐसे अनेक सन्दर्भ हैं जहां जानकी-जीवनकार त्रिवेणी कवि की सहजात विनोदी प्रकृति विशेष रूप से उभर कर पाठकों के समक्ष आती है। यही नहीं सत्रहवें सर्ग में आपन्न सत्वा सीता से कुमार लक्ष्मण आदि देवर तो उनकी गर्भभार मन्थरता का ऐसा परिहास करते हैं कि वैदेही उन लोगों के समक्ष अन्य लोगों की उपस्थिति में आने से कतराने लगती हैं[1]।

इस प्रकार यथावसर शिष्ट हास व्यंग्य विनोद का भी जानकी जीवनम् महाकाव्य में पर्याप्त वर्णन मिलता है।

जानकी जीवनकार ने नारी सम्मान को जिस उदात्त पृष्ठभूमि पर प्रतिष्ठित करने का यत्न किया है वह सब कुछ सर्वथा अनुपम है।

महाकाव्य के नवम् सर्ग में सीता विदायी सन्दर्भ में नारी के विविध रूपों का महिमामय उद्गान करते-हुये उसे जिस महनीय धरातल पर कवि ने प्रतिष्ठित किया है वह सब कुछ देखते ही बनता है। त्रिवेणी कवि लिखता है कि जैसे लहलहाती फसलों वाली हंसती हुयी तुषारापात से प्रकम्पित काया वाली, ग्रीष्म ऋतु में उष्मावलित प्रखर किरणों से झुलसी हुयी वसुधा नाना परिवर्तनों के बावजूद भी सन्तुष्ट रहती है, उसी प्रकार यह कन्या भी निरन्तर विविध कष्टों को सहती हुयी भी कभी विकार भाव को नहीं प्राप्त होती[2], प्रत्येक परिस्थिति

१- पलितं चिबुकं किमर्थं ? येन ते स्फुटमेव हि लक्ष्यते मनोधरम् ।
 गुम्फिता मव मा व्यथा वन्द्यते सत्वरं स्थविरा ततोऽहं देवि ।।
 वामनं कथमीक्षसे पीतं तु ते मन्थरं वर्ततेऽतितुं किं कारणात् ?
 लक्ष्मणं यदि पाकलनं स्यादहं देवि । तत्करयामि साहायं तव ।।
 -जा० जी०, १७।१५-१६

२- [illegible] तुषारबिन्दुभिनवतनैः कम्पिततनुः
 [illegible] प्रखरकिरणैर्गुम्फितमयी ।
 [illegible] विविधपरिवर्तेरपि धरा
 [illegible] नि प्रमाति विकारं भजति [illegible] ।।-जा० जी०, [illegible]

में स्वयं को ढाल लेती है । यही किसी को बेटी है तो किसी की पत्नी, किसी की गृहवधू है तो किसी की बहन, किसी की ननद है तो किसी की सास, किसी की पुत्रवधू है तो किसी की मां, किसी की सखी है तो किसी की नप्तृ और पौत्री - और और क्या कहा जाय विधाता की सृष्टि में अतुलनीय यह कन्या भला कौन सा गौरवशाली पद नहीं धारण करती ।

इस प्रकार काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से जानकी जीवनम् महाकाव्य अपने बहुआयामी सौन्दर्य संविधानों के कारण नि:सन्देह एक सफलतम महाकाव्य कहा जा सकता है ।

रसविवेचन :

रस संविधान की दृष्टि से त्रिवेणी कवि अभिराज राजेन्द्र मिश्र विरचित जानकी जीवनम् महाकाव्य का अपना एक विशेष गौरवशाली सौन्दर्य है । शृङ्गार आदि ऐसा कोई रस नहीं जिसका सफल संविधान इस महनीय महाकाव्य में न हुआ हो । इसमें जहां एक ओर इन्द्रियोन्मादक सृष्टि व्यापी रसराज शृङ्गार का महासिन्धु उत्ताल तरंगाघात के साथ उद्वेलित हो रहा है वहीं दूसरी ओर हास्य व्यंग्य की पराकाष्ठा पर पहुंचा हुआ हास्य रस भी सहृदय पाठकों का चित्तानुरंजन करने में सन्नद्ध दिखायी देता है । यदि एक ओर सृष्टि के कण कण को रुलाने वाली करुणा का अमन्द प्रसार है तो दूसरी ओर धनुष परशु, कुठार, भल्ल विविध शास्त्रास्त्रों की झंकार से अनुप्लावित रौद्र एवं वीर रसधारा भी कुछ मन्द नहीं । मायावी राक्षसों के भयानक युद्धों एवं क्रियाकलापों के माध्यम से जहां एक ओर भयानक रस विलास पा रहा है वहीं दूसरी ओर रणांगण में योद्धाओं के मारकाट से रुण्ड-मुण्ड के साथ बहती रक्तधारा बीभत्स रस की भूमिका निभाने में प्रत्यक्ष दृग्गोचर होती है ।

मायावी राक्षसों के अनन्य सामान्य कृत्यों तथा स्वयं वैदेही की अग्नि परीक्षा आदि जैसे असाधारण व्यापारों से अद्भुत रस की धारा भी बहती हुयी दृष्टिगत होती है । वसिष्ठ, विश्वामित्र, अगस्त्य, अत्रि, सुतीक्ष्ण, वाल्मीकि आदि साधना की पराकाष्ठा पर पहुंचे हुये महर्षिगण जहां एक ओर शान्त रस की उज्ज्वल धारा में आकण्ठ मग्न हैं वहीं दूसरी ओर वात्सल्य की निर्झरिणी भी उद्दाम आवेग के साथ बहती हुयी परिलक्षित होती है । भक्ति रस की धारा भी लुप्त नहीं है । अपितु वह भी महाकाव्य के विविध सर्गों में यथा स्थल ऋषियों महर्षियों की पर्णशाला में साकार है ।

ज्ञातव्य है कि जानकी जीवनम् महाकाव्य में त्रिवेणी कवि ने यद्यपि शृङ्गार, करुण, वीर, शान्त इन चारों रसों का अधिक विस्तार से वर्णन किया है किन्तु फिर भी इनमें उसका मर्यादित शृङ्गार सर्वोपरि है और इसी को इस महाकाव्य का अंगीरस भी स्वीकार करना चाहिये । अन्य रसों को इसका

अंगभूत रस मानना चाहिये । अब प्रसंगोपात शृङ्गारादि उपर्युक्त प्रमुख रसों की कतिपय उदाहरण भी प्रस्तुत किये जा रहे हैं ।

शृङ्गार -

चिबुकमुन्नमयत्यथ राघवे पुलकजाततनूरुहकेतने ।
प्रतिनिलीनसखीजनमण्डलैः स्फुटमहासि जितं न्विति वादिभिः ।।
-जा० ही० ६ ।५६

पुलक के कारण रोमांच का अनुभव करने वाले राघव द्वारा जनक-नन्दिनी की ठुड्डी ऊपर उठाते ही, झुरमुटों में छिपी सहेलियों की टोली ने `विजय हो गई` कहते हुए खिलखिला कर हंसना प्रारम्भ कर दिया ।

श्रमजघर्मकणाञ्चितविग्रहा श्लथविपाण्डुरकम्रकपोलिनी ।
कमलनीविवशाम्बरोधिनी कलितकामसुखादिमभूमिका ।।
- जा० ही० ८।६२

थकावट के कारण उत्पन्न पसीने से व्याप्त शरीर वाली, (लज्जा तथा भय के कारण) मुरझाये तथा पियराए हुए शोभन कपोलों वाली तथा प्रेम-वशात् से ठुकराई गई सन्ध्याकालीन कमलिनी के समान - कामसुख की प्रथमानुभूति की आकलन करने वाली ।

यहां राघव एवं जानकी परस्पर एक दूसरे के आलम्बन विभाव हैं । जनक की एकान्त पुष्पवाटिका गिरिजा मन्दिर सरोवर आदि उद्दीपन विभाव हैं । पुलक, रोमांच, कम्प आदि अनुभाव हैं । उन्माद, व्रीडा, चापल्य, हर्ष आदि संचारी भाव हैं । उक्त आलम्बन उद्दीपन, अनुभाव, उन्माद आदि संचारी भावों से परिपुष्ट रति स्थायी भाव संयोग शृङ्गार रस के रूप में परिणत है ।

इसी प्रकार वियोग शृङ्गार का भी उदाहरण प्रस्तुत है ।

विनमि हयं वनविवरमपट्टे मनसिजकामिनी कुतोऽत्र कामगु ।
मधुकरवृन्दैः प्रोञ्छितशलभे प्राणेश्वरी स्वामकृत्तिकेव ।।
- जा० ही०, १३ ।२२

व्यथाकथेयं कथनैरसाध्या विदेहजामतुरिति स्फुटम्मे ।
वियोगदु:खं स्वयमेव रामो जानाति सीता दुःखिणोऽथवाऽसौ ।।
- जा० जी० १३।२४

यहां अपहृता जानकी आलम्बन विभाव है । एकान्त प्रस्रवणगिरि, वर्षाकाल आदि उद्दीपन विभाव हैं । जानकी का स्मरण एवं राम द्वारा उनका रूपांकन, अश्रुपात, रोमांच, स्वप्नालिंगन एवं क्रन्दन आदि अनुभाव हैं । मद, विषाद, उत्सुकता, उन्माद स्मृति आदि संचारी भाव हैं । इस प्रकार उक्त आलम्बनोद्दीपन, विभावानुभाव एवं संचारि भावों से परिपुष्ट रति नामक स्थायी भाव वियोग श्रृङ्गार के रूप में व्यंजित होकर आस्वाद्य बन गया है ।

इसी प्रकार महाकाव्य के तीसरे सर्ग से लेकर नवें सर्ग तक तथा ग्यारहवें, बारहवें, तेरहवें, पन्द्रहवें, सत्रहवें तथा उन्नीसवें आदि सर्गों में श्रृङ्गार के उभय पक्षों का सविस्तार मादक प्रस्तार देखा जा सकता है ।

<u>करुणा -</u>

निकृत्यपतिदेवरप्रथितमस्तकौ जानकी
विलोक्य विललाप सा करुणया जनौ बिभ्रती ।
मदंगलजीवितौ ! रघुकुलावतंसौ कथं
दशामुपगताविमां निहतराक्षसौ धन्विनौ ??

विपर्ययकारणं दयित ! मन्दभाग्याऽस्म्यहं
धिगस्तु मम जीवितं तदिदमेव जह्यामिह ।
प्रसीद दशकन्धर ! जितमनोरथ ! प्रार्थये
ममापि खिल मस्तकं सपदि छिन्धि खड्गाहतै: ।।
- जा० जी०, १४ । २८, २९

यहां राघव एवं लक्ष्मण का राक्षस द्वारा ऐन्द्रजालिक निर्मापित आलम्बन विभाव है । राघव एवं लक्ष्मण के छिन्न मस्तक को देखना उनके पराक्रम आदि का स्मरण अपनी दीनदशा का जानकी को बोध, पराक्रम आदि

उद्दीपन विभाव हैं । जानकी का करुण विलाप एवं अपने दुर्भाग्य को कोसना आदि अनुभाव हैं । ग्लानि, चिन्ता, स्मृति, दैन्य, विषाद आदि संचारी भाव हैं ।

इस प्रकार उक्त आलम्बनोद्दीपन विभाव, करुणाविलाप आदि अनुभाव, ग्लानि आदि संचारी भावों से परिपुष्ट शोक स्थायीभाव करुणारस के रूप में अभिव्यंजित होकर सहृदयों द्वारा स्वाद्य है ।

इसी प्रकार दसवें सर्ग में राम का वनगमन ग्यारहवें सर्ग में राघव का पितृमरण दशरथ के मृत्यु का समाचार सुनकर करुण विलाप करना और उन्हें तिलांजलि देना, रावण द्वारा आहत जटायु की अन्त्येष्टि करना, चौदहवें सर्ग में मेघनाद द्वारा माया सीता के वध को वास्तविक समझकर राघव का विलाप करना आदि ऐसे अनेक स्थल इस महाकाव्य में भरे पड़े हैं जहां करुण रस की अमन्द धारा प्रवहमान है ।

वीररस -

विभास्य विभावोचाव तदिति मातलिस्मारितो
गिरिं वरविदं पुरा ननु प्रजापते: श्रेयसे ।
कास्त्वकृपया कितं स्फुरदमोघपेतामहा-
मिषं दशदिशं ततो रघुपति: क्रुधा सन्दधे ।।

चकर्त शिरसां चयं स किल रुक्मपुंखशर:
पपात भुवि रावण: पृथुकबन्धभूतोऽचिरम् ।
अचिन्त्यविभवमद्भुतं समरलाघवं दारुणं
विलोक्य मनुतुष्टवा जनकजापतेर्वानरा: ।।

- जा० जी०, १४ ।८४-८५

यहां दनुजेन्द्र रावण एवं उसकी सेना आलम्बन विभाव, ब्रह्मा के वरदान के प्रभाववश राम के द्वारा काटे जाते हुये रावण के मस्तक का पुन: पुन: उद्भूत होना एकान्त युद्ध के दुर्धर रण-भेरियों, सैनिकों की ललकार आदि

उद्दीपन विभाव हैं। असूया, आवेग, उग्रता, धृति आदि संचारी भाव हैं। तथा व इन उक्त आलम्बनोद्दीपन विभाव, अनुभाव एवं असूया आदि संचारी भावों से परिपुष्ट राम का व उत्साह स्थायीभाव वीररस के रूप में परिणत है।

इसी प्रकार महाकाव्य के चतुर्थ सर्ग में राम-लक्ष्मण द्वारा ताड़का, सुबाहु आदि का वध, सप्तम सर्ग में जनक के द्वारा आयोजित धनुर्यज्ञ, ग्यारहवें सर्ग में वनवासी राम के द्वारा खरदूषण, त्रिशिरा, कबन्ध, विराध आदि राक्षसों का वध, बीसवें सर्ग में राम का अश्वमेध यज्ञ आदि ऐसे अनेक स्थल हैं जहां वीररस प्रसार पा रहा है।

<u>शान्तरस -</u>

> न मानवो दाशरथिः पृथिव्यां स्वयं महाविष्णुरिहा वतीर्णः।
> दृष्ट्या यया तत्वविमर्शशक्त्या पश्यामि रामं तुलना न सा ते ।।
>
> रामस्य दैवत्वमपीह लोके न चास्ति साधारणावेविषम् ।
> अगस्त्यवाल्मीकिसुतीक्ष्णविश्वामित्रा विजानन्ति सुवेद्मि चाहम् ।।
>
> - रा० वी०, १८।२१-२५

यहां विष्णु के अवतारभूत राघव आलम्बन विभाव, विशाल लोकसभा में राघव की अचिन्त्य महिमा की वशिष्ठ द्वारा चर्चा उद्दीपन विभाव, पुलक, पश्चात्ताप, तल्लीनता, परमानन्द की अवस्था आदि अनुभाव है। निर्वेद, मति, हर्ष, धृति आदि संचारी भाव है। तथा इन उक्त आलम्बनोद्दीपन विभावों, पुलकादि अनुभावों एवं निर्वेद मति आदि संचारी भावों से परिपुष्ट 'शम' स्थायी भाव शान्त रस के रूप में परिणत है।

इसी प्रकार महाकाव्य के विभिन्न स्थलों में शान्त रस की अनन्य

धारा बहती हुयी दृग्गोचर होती है ।

यही नहीं नवें और सत्रहवें सर्ग में हास्य रस, ग्यारहवें, बारहवें, तेरहवें, चौदहवें एवं सत्रहवें सर्ग में रौद्र रस, चौदहवें तथा पन्द्रहवें सर्ग में अद्भुत रस, दूसरे, चौथे एवं उन्नीसवें सर्ग में वात्सल्य रस का सफल परिपाक यथास्थल सविस्तर देखा जा सकता है । तथा च इक्कीसवें सर्ग में तो त्रिवेणी कवि ने एक साथ ही शृङ्गार आदि समस्त रसों की सरितायें अपने हृदय हिमालय से उतार कर उद्दाम शक्ति के साथ प्रवाहित की हैं ।

--

अलङ्कार-विवेचन :

जानकी जीवनम् महाकाव्य के अन्तर्गत अनुप्रास, यमक, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास निदर्शना, एकावली, व्यतिरेक, विरोधाभास, स्वभावोक्ति आदि अलंकारों का सफल प्रयोग दृष्टिगत होता है । यह भी ध्यातव्य है कि जानकी जीवनकार ने अपने इस महाकाव्य में अर्थान्तरन्यास अलंकार के प्रयोग में विशेष रुचि प्रदर्शित की है ।

अनुप्रास अलंकार -

पुराविदेहेषु बबौ मा प्रं बहूनि वर्षाणि किल व्यतीयुः ।
प्रजासु हाहाकृतिवेदनोत्थं निकामदुःखं प्रमुखीबभूव ॥
- जा० जी०, १।१

स्पष्ट है कि उपर्युक्त श्लोक में `ब` व्यंजन की अनेकशः आवृत्ति हुयी है अतएव यहां वृत्य अनुप्रास की स्थिति स्वतः स्पष्ट है ।

यमक अलंकार -

दुरन्तदुर्भिक्षनिदाघदाहो दहत्यवक्रं वनताडतालीम् ।
न मध्यमाराम इवावकेशी विधातुमीशः प्रभवामि तस्याः ॥
-जा० जी०, १।२०

उपर्युक्त श्लोक के द्वितीय चरण में आगत `ताड` शब्द का दो बार आवर्तन हुआ है जिसमें दोनों ही निरर्थक हैं अतएव यहां यमक की स्थिति स्पष्ट है ।

उपमा अलंकार-

मधुकरीव सरोरुहसम्पुटप्रविलसन्मकरन्दरसालसा ।
निभृतैः कमलोदरबन्धनैः परिगताऽपि रराज पितुर्गृहे ॥
- जा० जी०, ३।४३

यहाँ सीता उपमेय, भ्रमरी उपमान अलसाना साधारण धर्म तथा इव वाचक शब्द है अत: यहाँ पूर्णोपमा की स्थिति अत्यन्त स्पष्ट है ।

रूपक अलंकार -

महोत्सवोऽथ प्रबभार पेशल: प्रभावेनेषु क्रमशो विसृत्वर: ।
समुत्पतिष्णुर्नितरां मनोहरो गृहीतचेतोमृगबन्धवागुर: ।।
-जा० जी०, २।२

यहाँ चित्त पर मृग का आरोप होने के कारण रूपक अलंकार की स्थिति स्वत: गतार्थ है ।

उत्प्रेक्षा अलंकार-

अनङ्गगन्धमीमृदुतल्पसन्निभां कलामरोमोदधरिन्धणिप्रभाम् ।
बभार सीता त्रिवलीमनुत्तमां रतेस्सपयास्थलिकामिवैव किम् ।।
- जा० जी०, ३।११

उपर्युक्त श्लोक में जानकी की त्रिवली में रति की उत्प्रेक्षा करने के कारण उत्प्रेक्षा अलंकार की स्थिति स्पष्टत: देखी जा सकती है ।

अर्थान्तरन्यास अलंकार-

अथोऽपि रामेण समं कुमारा कृता: कुमारीभिरथाधिपस्य ।
वनश्रियावाप्तसुखे वसन्ते सुखं न कासां वनवल्लरीणाम् ।।
- जा० जी०, ८। ४७

यहाँ श्लोक में विशेष का सामान्य से साधर्म्य समर्थन रूप अर्थान्तर-न्यास अलंकार है ।

निदर्शना अलंकार-

हन्त राजसुते ! क्व ते लवलीलताभं कोमलं वपुरिदृशं क्व च भूमिशय्या ?
पल्वलेषु विविन्वतीं किल राजहंसीं दवीरान् परिलक्ष्य मे हृदयं प्रभिन्नम् ।।
- बा० वी०, ११। ६२

यहां लवलीलताभ शरीर प्रकृत का भूमि शैया के साथ असबन वस्तु सम्बन्ध है और इस वाक्यार्थ का पर्यवसान राजहंसी को पङ्किल पल्वल में निवास करने के समान बताकर उपमन में पर्यवसित किया गया है । फलत: यहां निदर्शना अलंकार है ।

एकावली अलंकार -

न तद्गृहं यन्न विकीर्णगीतकं न गीतकं व्यायतमुर्च्छनं न यत् ।
न मुर्च्छनं यन्न रसाक्तवाचिकं न वाचिकं यन्न सुधासहोदरम् ।।
- बा० वी०, २।७

स्पष्ट है कि यहां गृह के विशेषण के रूप में वितीर्ण गीतक, गीतक के विशेषण के रूप में व्यायत मुर्च्छन, मुर्छन के विशेषण के रूप में रसाक्त वाचिक, और वाचिक के विशेषण के रूप में सुधासहोदर शब्द को उत्तरोत्तर उपन्यास होने से एकावली अलंकार की स्थिति स्पष्ट है ।

व्यतिरेक अलंकार -

भवते न पृथक्त्वमेवनामपि राहुग्रसिते विधौ मुधी ।
उपरागभिमं न वेद्मि हा प्रविभक्ता तवचन्द्रचन्द्रिकम् ।।
- बा० वी०, १२। ३८

अर्थात् अशोक वनस्थ जानकी कहती हैं कि राहु के द्वारा ग्रसित का क्षिण भाग भर भी चन्द्रिका वियोग की वेदना को कहां प्राप्त करती है । क्योंकि ग्रहण के बाद तो चन्द्र और चन्द्रिका पुन: एक हो जाते हैं परन्तु अपने

ऊपर लगे इस ग्रहण को मैं समझ नहीं पा रही हूं । जिसमें कि अमृतवर्षी चन्द (रामचन्द्र) एवं चन्द्रिका (जानकी) को एक दूसरे को वियुक्त कर दिया है ।

स्पष्ट है कि यहां चन्द्र ग्रहण रूप उपमान की अपेक्षा राघव एवं जानकी के वियोग रूप उपमेय का आधिक्यपूर्ण वर्णन किया गया है । अतएव व्यतिरेक अलंकार है ।

स्वाभावोक्ति अलंकार -

हेमसन्निभरोमराजिपरीतकाय: उत्प्लवैर्विदधत्सुखं कलनैस्सहेलम् ।
स्निग्धलोलविलोकनै: कुतुकं वितन्वन् मैथिलीं मृगरूपधृक् स जगाम तूर्णम् ।।

वऊकै: स्वकागतैर्नटनैर्विलोलैर्वलुतिर्यगीक्षणै: प्रकृतक्रियाभि: ।
जानकीहृदयं जहार स ताटकेय: सम्मुखं गरपि प्रमोहपरोऽभिरामै ।।
- जा० जी०, ११। ६१, ७०

उपर्युक्त श्लोकों में मृग के सहज व्यापारों का यथार्थ चित्रण होने के कारण स्वभावोक्ति अलंकार का स्वरूप अत्यन्त स्पष्ट है ।

इसी प्रकार उपर्युक्त विवेचित अनुप्रास, यमक, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि सभी अलंकारों के अन्य अनेक उदाहरण महाकाव्य के विविध सर्गों में यथा-स्थल देखे जा सकते हैं । इस प्रकार अलंकार योजना की दृष्टि से जानकी जीवनम् सफल कहा जा सकता है ।

छन्दो विवेचन :

छन्दो विधान की दृष्टि से जानकी जीवनम् महाकाव्य एक सफल महाकाव्य है । इस महाकाव्य में कुल २१ सर्ग है जिनमें विविध छन्दों का यथा स्थल सफल प्रयोग किया गया है ।

जानकी जीवनम् महाकाव्य के कुल ५५ श्लोक हैं जिनमें प्रथम ५२ श्लोकों में उपन्द्रवज्रा, ५३ वें में मालिनी तथा ५४, ५५ वें श्लोकों में शार्दूलविक्रीड़ित छन्द प्रयुक्त है ।

द्वितीय सर्ग में ५१ श्लोक हैं जिनमें प्रथम ४६ श्लोकों में उपेन्द्रवज्रा तथा अन्तिम दो श्लोकों में शार्दूल विक्रीड़ित छन्द का प्रयोग किया गया है ।

तृतीय सर्ग में कुल ४५ श्लोक हैं जिनमें प्रथम ४२ श्लोकों में उपेन्द्रवज्रा, ४३ वें में द्रुत विलम्बित तथा अन्तिम दो श्लोकों में शार्दूलविक्रीड़ित छन्द प्रयुक्त है ।

चतुर्थ सर्ग में कुल ४८ श्लोक हैं जिनमें प्रथम ४४ में वसन्ततिलका, ४५वें में द्रुतविलम्बित, ४६ वें में मन्दाक्रान्ता तथा अन्तिम दो श्लोकों में शार्दूल विक्रीड़ित छन्द का प्रयोग किया गया है ।

पंचम सर्ग में कुल ६६ श्लोक हैं जिनमें १-६२ तक वियोगिनी, ६३, ६४ में शिखरिणी, तथा ६५,६६ श्लोकों में शार्दूलविक्रीड़ित प्रयुक्त हैं ।

छठें सर्ग में कुल ६७ श्लोक हैं जिनमें १-६३ तक वियोगिनी, ६४वें में मन्दाक्रान्ता तथा अन्तिम तीन श्लोकों में शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का प्रयोग किया गया है ।

सातवें सर्ग में कुल ९१ श्लोक हैं । प्रथम ८७ श्लोकों में उपेन्द्रवज्रा, ८८, ८९ में द्रुतविलम्बित तथा अन्तिम दो श्लोकों में शार्दूलविक्रीड़ित छन्द प्रयुक्त है ।

आठवें सर्ग में कुल ८२ श्लोक हैं जिनमें प्रथम ७६ श्लोकों में उपेन्द्रवज्रा, ७७-८० में शिखरिणी तथा अन्तिम दो श्लोकों में शार्दूलविक्रीड़ित का प्रयोग मिलता है ।

नवें सर्ग में कुल १०३ श्लोक हैं जिनमें १-९८ तक अनुष्टुप, ९९,१०० में द्रुतविलम्बित, १०१ वें में शिखरिणी और अन्तिम दो श्लोकों में शार्दूल विक्रीड़ित छन्द प्रयुक्त है ।

दसवें सर्ग में कुल ८९ श्लोक हैं जिनमें प्रथम ८५ श्लोकों में भुजङ्गप्रयात, ८६, ८७ में हरिणी तथा अन्तिम दो में शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का प्रयोग किया गया है ।

ग्यारहवें सर्ग में कुल ११८ सर्ग हैं जिनमें मालिनी, शार्दूलविक्रीड़ित आदि छन्दों का प्रयोग किया गया है ।

बारहवें सर्ग में कुल ८३ श्लोक हैं जिनमें प्रथम १-७७ तक के श्लोकों में वियोगिनी, ७८, ८१ तक में वसन्ततिलका शेष दो में शार्दूल विक्रीड़ित छन्द प्रयुक्त है ।

तेरहवें सर्ग में कुल ७७ श्लोक हैं जिनमें १-७३ तक के श्लोकों में उपेन्द्रवज्रा, ७४, ७५ में मालिनी, और अन्तिम दो श्लोकों में शार्दूलविक्रीड़ित छन्द प्रयुक्त है ।

चौदहवें सर्ग में कुल ८९ श्लोक हैं जिनमें प्रथम ८७ श्लोकों में पृथ्वी तथा अन्तिम दो श्लोकों में शार्दूल विक्रीड़ित का प्रयोग किया गया है ।

पन्द्रहवें सर्ग में कुल ८९ श्लोक हैं । प्रथम ८१ श्लोक में इन्द्रवंशा, ८२, ८३ में मालिनी तथा, ८४-८९ तक के श्लोकों में शार्दूल विक्रीड़ित छन्द प्रयुक्त हैं ।

सोलहवें सर्ग में कुल ८२ श्लोक हैं जिनमें १-७२ तक में मालिनी,

७३-७८ तक में वसन्ततिलका तथा अन्तिम चार श्लोकों में शार्दूलविक्रीड़ित छन्द का प्रयोग किया गया है ।

सत्रहवें सर्ग में कुल ६४ श्लोक हैं जिनमें मालिनी, शार्दूलविक्रीड़ित आदि छन्दों का भलीभांति प्रयोग किया गया है ।

अट्ठारहवें सर्ग में कुल ११७ श्लोक हैं जिनमें १-११४ तक के श्लोकों में उपजाति तथा अन्तिम तीन श्लोकों में शार्दूलविक्रीड़ित छन्द प्रयुक्त है ।

१९ वें सर्ग में कुल ७१ श्लोक हैं जिनमें प्रथम ६५ श्लोकों में द्रुतविलम्बित, ६६-६८ तक के श्लोकों में वसन्ततिलका तथा अन्तिम तीन में शार्दूलविक्रीड़ित छन्द प्रयुक्त है ।

बीसवें सर्ग में कुल ५७ श्लोक हैं जिनमें प्रथम ५३ श्लोकों में वसन्ततिलका तथा अन्तिम चार श्लोकों में शार्दूलविक्रीड़ित छन्द प्रयुक्त है ।

इक्कीसवें सर्ग में कुल १७० श्लोक हैं जिनमें इन्द्रवंशा, मालिनी, शार्दूलविक्रीड़ित तथा मात्रिक भेद छन्दों का सफल प्रयोग यथा स्थल द्रष्टव्य है ।

उपर्युक्त विवेचन से यह भी स्पष्ट है कि व बाम्की जीवनम् महाकाव्य में अनुष्टुप, उपेन्द्र वज्रा, मालिनी, शार्दूलविक्रीड़ित, द्रुतविलम्बित, वसन्ततिलका, मन्दाक्रान्ता, भुजंग प्रयात, हरिणी, वियोगिनी, पृथ्वी, इन्द्र वंशा, उपजाति, वंशस्थ तथा शिखरिणी आदि छन्दों का सफल प्रयोग किया गया है ।

यह भी ध्यातव्य है कि प्रथम सर्ग के अन्तिम दो श्लोक जो शार्दूलविक्रीड़ित छन्द में विरचित है, परवर्ती सभी सर्गों के अन्त में दुहराये गये हैं ।

पञ्चम अध्याय

-o-

'वाल्मीकि रामायण' तथा 'जानकीचरितामृतम्'

'सीताचरितम्' एवं 'जानकीजीवनम्'

वाल्मीकि रामायणम् तथा जानकी चरितामृतम् -

आदि कवि वाल्मीकि प्रणीत वाल्मीकि रामायण राम कथाश्रित संस्कृत साहित्य का आदि महाकाव्य स्वीकार किया जाता है, जिसका रचना-काल सामान्यत: सर्वसम्मत ६०० ई० पू० माना जाता है । इस आदि महाकाव्य में राम के जन्म से लेकर लङ्का विजय करके अयोध्या में उनके राजसिंहासनारूढ़ होने तक की कथा को वर्णित किया गया है ।

श्री राम स्नेहिदास विरचित जानकी चरितामृतम् नामक महाकाव्य भी राम कथाश्रित महाकाव्य है जिसका प्रणयन एवं प्रकाशन वि० सं० २०१४ तदनुसार १९५७ ई० में हुआ है । इस महाकाव्य में जीवों के उद्धार हेतु अपने साकेत धाम में राम एवं सीता के इस निर्णय से कि वे दोनों दशरथ एवं जनक के यहां अवतार लेंगे । इस सीता राम सम्वाद से लेकर राम एवं सीता के परिणय तक की कथा अत्यन्त विस्तार से तथा अवशिष्ट आगे राम की लङ्का विजय करके अयोध्या में सिंहासनारूढ़ होने तक की कथा अत्यन्त संक्षेप में वर्णित की गयी है । वाल्मीकि रामायण में रामकथा का श्लोकात्मक वर्णन काण्डों, अध्यायों तथा श्लोकों में किया गया है ।

जानकी चरितामृतम् महाकाव्य में रामकथाश्रित उपर्युक्त कथा-वस्तु का पद्यात्मक वर्णन केवल अध्यायों एवं श्लोकों के क्रम में ही किया गया है ।

वाल्मीकि रामायण की रचना का प्रेरणास्रोत जहां क्रौञ्च वध एवं ब्रह्मा का परामर्श बताया गया है और उसके माध्यम से राम को चरित्र नायक के रूप में प्रस्तुतकर जनमानस के समक्ष किसी ऐसे आदर्श की उपस्थापना करना है जिससे कल्याण का भी मानव अपने चरित्र को उन्नत रखते हुये पुरुषार्थ एवं आदर्श की दृष्टि से एक महनीय मानक प्रतिमान स्थापित कर सके और अधोमुखी मानवता का मार्ग-दर्शन कर सके ।

जानकी चरितामृतम् महाकाव्य की रचना का प्रेरणास्रोत स्वयं

सर्वेश्वरी जानकी की अहेतुकी इच्छा को ही महाकवि ने बताया है । तथा च इसके माध्यम से जीवों के कल्याण हेतु ज्ञान, भक्ति और कर्म, इन तीनों मार्गों में से भक्ति मार्ग को स्वीकार करके भक्ति मार्ग की ही इस महाकाव्य में आद्यन्त सविस्तर विवेचना एवं प्रतिपादना की गयी है-। जिसके माध्यम से जीवदास,सख्य, वात्सल्य एवं शृङ्गार आदि चारों भेदों में से किसी एक को स्वीकार कर तदनुकूल आचरण करता हुआ सर्वेश्वरी सीता एवं सर्वेश्वर राम की उपासना कर आत्मोद्धार कर सके, परम पुरुषार्थ मोक्ष को प्राप्त कर सके ।

वाल्मीकि रामायण में सीता की उत्पत्ति हल द्वारा जोती जाती हुयी भूमि से बतायी गयी है । महर्षि अत्रि के आश्रम में अनसूया के समक्ष भगवती सीता अपनी उत्पत्ति के सम्बन्ध में स्वयं बताती है कि वीर और धर्मज्ञ मिथिलेश्वर जनक क्षात्रिय कर्म निरत न्यायपूर्वक पृथ्वी पर शासन करते थे, एक बार जब वे हल से खेत जोत-रहे थे तभी मैं पृथ्वी फोड़कर उत्पन्न हुयी और संसार में उनकी पुत्री के नाम से प्रसिद्ध हुयी ।

जानकी चरितामृतम् महाकाव्य में बताया गया है कि वस्तुत: साकेत धाम में सर्वेश्वरी सीता एवं सर्वेश्वर राम ने स्वयं ही जीवों के कल्याणार्थ जनक एवं दशरथ के यहां अवतार लेने-का निर्णय किया । तदनुकूल जब राम लक्ष्मण आदि सहित दशरथ के यहां जन्म ग्रहण कर लेते हैं तो उनके जन्मोत्सव के उपलक्ष में दशरथ अपने मित्र सीरध्वज जनक को भी आमन्त्रित करते हैं । राम-जन्म का महोत्सव सुनकर न केवल ब्रह्मर्षि एवं राजर्षि ही उपस्थित होते हैं अपितु ब्रह्मा आदि समस्त देवगण भी उपस्थित होते हैं । नारद जी स्पष्ट रूप से दशरथ को बधाई देते हुये कहते हैं कि आपके यहां तो स्वयं त्रिदेवों द्वारा भी वन्दनीय परात्पर ब्रह्म नारायण ने ही अवतार लिया है अतएव आप इनकी ईश्वरीय भावना से ही सेवा करें ।

सीरध्वज जनक देवताओं की ऐसी सम्मति सुनकर तथा राम के उस त्रैलोक्य मोहन रूप को देखकर मुग्ध हो जाते हैं और उन्हें पुत्र रूप में प्राप्त करने के लिये चिन्तित हो उठते हैं, उनकी दृष्टि में जन्मत: किशोर रूप में यदि

विचार आता है कि राम का पुत्रत्व तो केवल उनके पिता, विद्यागुरु एवं श्वसुर को ही उपलब्ध हो सकता है इनमें जन्मदाता पिता का स्थान तो दशरथ को मिल चुका है, गुरु का स्थान तो कुलर्षि वसिष्ठ ने ले लिया है तो अब ऐसी स्थिति में केवल श्वसुर का ही स्थान शेष बचता है । यह भी निश्चित है कि सर्वेश्वर राम का प्राय सम्बन्ध केवल साकेत धाम की अधिष्ठातृ सर्वेश्वरी सीता से ही नित्य रूप से सम्भव है अतएव यदि सर्वेश्वरी सीता मेरे यहां पुत्री के रूप में जन्म ले लें तो हम राम को जामाता के रूप में प्राप्त कर उनके पुत्रत्व लाभ का सुख उपलब्ध कर सकते हैं । सर्वेश्वरी सीता की प्राप्ति के लिये जनक अगस्त्यादि महर्षियों को बुलाकर उनसे अपनी उक्त समस्या का समाधान पूछते हैं और उन महर्षियों के परामर्शानुसार वे पुन: भगवान आशुतोष की अष्टवर्षीय घोर तपस्या करते हैं । फलत: आशुतोष शंकर प्रकट होकर जनक को सफल मनोरथ का वरदान देते हुये उन्हें सीता को पुत्री रूप में प्राप्त करने हेतु यज्ञ करने का आदेश देते हैं । सीरध्वज जनक तदनुकूल अगस्त्यादि ऋषियों का आवाहन कर कुलगुरु शतानन्द की अध्यक्षता में पुत्रेष्टि यज्ञ प्रारम्भ करते हैं और उसके पूर्णाहुति के समय सर्वेश्वरी सीता स्वयं अपनी यूथेश्वरियों सहित यज्ञवेदी से प्रकट होती हैं । जनक सर्वेश्वरी सीता को विश्वरूप को देखकर उनसे पुन: शिशु रूप में परिणत होकर अपनी पुत्री के रूप में होने का आग्रह करते हैं, जनक की भक्ति के अनुकूल सीता शिशु रूप में परिणित हो जाती हैं । तदनन्तर जनक एवं सुनयना उन्हें अपनी पुत्री के रूप में स्वीकार कर तथा अपनी गोदी में लेकर राजप्रासाद में आ जाते हैं ।

जानकी चरितामृतम् में यह बताया गया है कि जब जनक सर्वेश्वरी सीता के लिये पुत्रेष्टि यज्ञ कर रहे थे तो उस समय उन्होंने अपने मित्र दशरथ को रामादि चारों पुत्रों सहित निमन्त्रित किया था । जानकी के जन्म-महोत्सव के समय सुनयना के आग्रह पर जनक रामादि चारों राजकुमारों को भी अपने राज-प्रासाद में बुलाते हैं तथा रामादि जनक के यहां पहुंचकर अम्बा सुनयना के साथ वह विहार आदि करते हुये न केवल उनका वात्सल्य ही स्वीकार करते हैं अपितु मिथिला के कंचन वन में शिशुकेलि करती हुयी जानकी से किशोर राम का वाचिक

शिशु सुलभ हृदय संवाद भी होता है । वाल्मीकि रामायण में ऐसे किसी भी सन्दर्भ का उल्लेख नहीं मिलता ।

जानकी चरितामृतम् में जो यह बताया गया है कि कंचन वन में रास लीला करती हुयी किशोरी जानकी जब राम के लिये उन्मन हो जाती है तो उनकी प्रधान यूथेश्वरी चन्द्रकला उनकी इच्छा को समझकर शीघ्र ही अयोध्या के कनक भवन से जिस किसी भी स्थिति में ले आने के लिये अपनी सहचरी सखियों को भेजती है वे सब प्रच्छन्न वेश में अयोध्या के कनक भवन में पहुंचकर शयनरत राम को अपनी माया-शक्ति से मिथिला के कंचन वन में लाकर चन्द्रकला के समक्ष उपस्थित कर देती हैं । चन्द्रकला राघव का एक मनोरंजक आश्चर्यमय संवाद भी होता है तदनन्तर चन्द्रकला ही राम एवं सीता का सम्मिलन कराकर रासलीला के माध्यम से उन दोनों के पूर्व राग को पुष्ट करती है । पुन: रासलीला के पश्चात् किशोरी जानकी की आज्ञानुसार चन्द्रकला राम को पूर्ववत् अयोध्या के कनक भवन में पहुंचा देती है ।

आदि कवि वाल्मीकि प्रणीत रामायण महाकाव्य में जानकी चरितामृतम् के उक्त कथ्य का कहीं भी किसी प्रकार का कोई संकेत नहीं मिलता ।

वाल्मीकि रामायण में सीता के विवाह के सन्दर्भ में धनुर्यज्ञ का आयोजन तथा राम के द्वारा शम्भु चाप का तोड़ा जाना जिस रूप में वर्णित किया गया है उसी रूप में उस सन्दर्भ का जानकी चरितामृतम् में कथन किया गया है । परन्तु वाल्मीकि रामायण में जहां परशुराम की उपस्थिति राम और सीता के विवाह के पश्चात् जनक के यहां से विदा होकर मार्ग में जाते समय बतायी गयी है वहां जानकी चरितामृतम् में राम के द्वारा धनुर्भंग के पश्चात् तथा विवाह के पूर्व ही धनुर्यज्ञ की भूमि में ही परशुराम की उपस्थिति, परशुराम लक्ष्मण संवाद आदि सब कुछ बताया गया है ।

जानकी चरितामृतम् महाकाव्य में राम के विवाह के पश्चात् जानकी आदि के सहित उनके अयोध्या में पहुंचने पर विहारनाट्य लीला एवं जिस रामायण लीला का बाल कुमारियों के माध्यम से प्रदर्शन कराया गया है वैसा वाल्मीकि

रामायण में कोई वर्णन नहीं मिलता ।

जानकी चरितामृतम् में चन्द्रकला, हेमा, क्षेमा, आदि जिन अनेक यूथेश्वरियों तथा स्नेहपरा एवं जीवा सखी के उद्धार आदि का वर्णन किया गया है, उन सबका वाल्मीकि रामायण में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता ।

इस प्रकार वाल्मीकि रामायण के परिप्रेक्ष्य में जानकी चरितामृतम् महाकाव्य में अनेक प्रशंसनीय परिवर्तन उपलब्ध होते हैं जिनका रामकथा के विकास के दृष्टिकोण से विशेष महत्त्व स्वीकार किया जाना चाहिये ।

--

वाल्मीकि रामायणम् तथा सीताचरितम् -

वाल्मीकि रामायण के उत्तर काण्ड में जो अधिकांश विद्वानों द्वारा प्रक्षिप्त माना जाता है उसमें राम के द्वारा सीता परित्याग के सम्बन्ध में यह बताया गया है कि राम के सिंहासनारूढ़ होने के पश्चात् जब सीता आपन्नसत्वा होती है तो उनकी उस दोहदावस्था में राम जब उनकी अभीष्टाकांक्षा के सम्बन्ध में पूछते हैं तो वे एक रात्रि किसी अरण्य में जाकर निवास करने तथा वहां की सहज प्राकृत सुषमा को देखने की इच्छा व्यक्त करती हैं । दूसरे ही दिन दुर्मुख के द्वारा राजाराम को सीता के चरित्र के विषय में रजक द्वारा किये गये आक्षेप का समाचार प्राप्त होता है । राम इस मर्माहत समाचार से पीड़ित होकर अपने यश को उज्ज्वल बनाये रखने के लिये गर्भिणी सीता को बिना उन्हें बताये,लक्ष्मण के द्वारा गंगा के निकट वाल्मीकि आश्रम-के समीप उन्हें छोड़ आने के लिये भेजवा देते हैं । लक्ष्मण सीता को रथ पर बैठाकर वाल्मीकि आश्रम के कुछ पूर्व ही वनस्थली में सीता को उतार देते हैं और वहीं जब उनके चरित्र पर किये गये सारे आक्षेपों से अवगत कराते हैं और राम द्वारा उनके परित्याग के रहस्य को भी स्पष्ट कर देते हैं ।

सीता चरितकार ने सीता के उपर्युक्त उत्तर जीवन को ही लेकर अपने सीताचरितम् महाकाव्य का दस सर्गों एवं ६६४ श्लोकों में प्रणयन किया है । परन्तु वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड में जहां राम ने सीता की दोहदेच्छा के सम्बन्ध में उनसे प्रश्न किया है, और दूसरे दिन दुर्मुख के मुख से सीता के चरित्र के विषय में धोबी द्वारा किये गये आक्षेप सुनकर उसे सीता को बिना बताये, लक्ष्मण द्वारा उन्हें वन में छोड़ आने के लिये आदेश देते हैं और वन में ही लक्ष्मण उनके परित्याग के रहस्य को स्पष्ट करते हैं वहां सीताचरितकार ने न तो सीता के दोहदेच्छा के सम्बन्ध में कोई प्रश्न करवाया है और न ही दुर्मुख के द्वारा उपलब्ध सीताचरित विषयक लोकापवाद को सुनकर वे सीता से उसे छिपाते हैं । प्रत्युत अपनी रचना में वे लक्ष्मणादि सभी बन्धुओं, कौशल्यादि माताओं तथा सभी भाभियों के समक्ष सीता को बुलवा कर उनके परित्याग का सकारण प्रस्ताव

रखते हैं और कौशल्यादि माताओं के अनुरोधवश उन्हें वाल्मीकि आश्रम में छोड़ने के लिये लक्ष्मण को आदेश देते हैं। लक्ष्मण रथ पर बैठाकर वाल्मीकि के आश्रम के निकट गंगा के तटवर्ती वनस्थली में सीता को पहुंचाकर पुन: भग्न-हृदय होकर वे अयोध्या वापस आ जाते हैं।

वाल्मीकि रामायण में जहां यह बताया गया है कि ब्रह्मर्षि वाल्मीकि गंगा स्नान करने के लिये जाते हुये मार्ग में जानकी को देखकर वह उन्हें अपने मित्र जनक की पुत्री तथा दशरथ की पुत्र वधू समझकर तथा व राम की आपन्नसत्वा धर्मचारिणी नारी स्वीकार कर उन्हें अपने आश्रम में ले जाते हैं और उनके आश्रम में ही जानकी कुश एवं लव को जन्म देती हैं परन्तु सीता चरितकार ने यह बताया है कि जानकी जब लक्ष्मण के द्वारा गंगा तट पर स्थित वनस्थली में छोड़ दी जाती हैं तो वे लक्ष्मण के चले जाने के थोड़ी ही देर पश्चात् प्रसव वेदना से पीड़ित होकर कुश एवं लव दोनों पुत्रों को जन्म देती हैं इसके पश्चात् ही गंगा स्नान के लिये जाते हुये महर्षि वाल्मीकि से उनका साक्षात्कार होता है और वे सीता को दोनों पुत्रों सहित अपने आश्रम में ले जाते हैं।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार सीता वाल्मीकि के आश्रम में जब राम से मिलने को होती हैं तो राम के द्वारा आग्रह करने पर भी वे अयोध्या जाना स्वीकार न कर दोनों के समक्ष ही पृथ्वी से अपना मार्ग मांगती हैं और सबके देखते ही देखते धरती फटती है और सीता भू प्रवेश कर जाती हैं।

सीताचरितम् में सीता के इस भू प्रवेश को एक आध्यात्मिक समाधान

दिया गया है वह यह कि जब राम वाल्मीकि के आश्रम में स्वयं पहुंचते हैं और वाल्मीकि से सीता को मिलाने के लिये अनुरोध करते हैं तो प्रजाजनों एवं जनक आदि सहित राम के निवेदन को स्वीकार कर वाल्मीकि एक विशाल सभा का आयोजन जनक की अध्यक्षता में करते हैं और उसी समय सीता को उपस्थित भी करवाते हैं तथा कुश एवं लव को सबके समक्ष राम को वशिष्ठ के माध्यम से राम को समर्पित भी करते हैं । जब राम की प्रजा, मातायें आदि सीता से अयोध्या चलने का अनुरोध करती हैं तब वे अयोध्या जाना उचित न समझकर धर्मपति राम पिता जनक कुलगुरु वशिष्ठ, कौशल्या आदि सकल माताओं, वाल्मीकि तथा अन्य सभी प्रजाजनों के समक्ष योग द्वारा राम का ध्यान करती हुयी अपनी शरीर त्याग देती हैं तदनन्तर वाल्मीकि की सम्मति से वशिष्ठ, जनक, रामादि सभी के सहयोग से उसी स्थल पर सीता की भू समाधि बना दी जाती है ।

इस प्रकार सीताचरितम् में राम के लङ्का विजयोपरान्त अयोध्या में सिंहासनारूढ़ होने से लेकर सीता की भू समाधि तक की कथावस्तु का ही चित्रण किया गया है जिसमें वाल्मीकि रामायण की अपेक्षा यथा स्थल प्रशस्त परिवर्तन किया गया है जिसका राम कथा के विकास के दृष्टिकोण से अपना विशिष्ट महत्व माना जा सकता है ।

—

वाल्मीकि रामायणम् तथा जानकी जीवनम् -

आदि कवि वाल्मीकि प्रणीत वाल्मीकि रामायणम् तथा त्रिवेणी कवि अभिराज राजेन्द्र मिश्र विरचित जानकी जीवनम् -- इन दोनों महाकाव्यों में जहाँ एक ओर पर्याप्त समानतायें हैं वहीं दूसरी ओर उक्त दोनों महाकाव्यों में कुछ ऐसे मौलिक भेद हैं जो दोनों की पृथक्-पृथक् सत्तात्व के नियामक हैं ।

१- वाल्मीकि रामायण और जानकी जीवनम् ये दोनों ही महाकाव्य राम-कथाश्रित महाकाव्य हैं ।

२- वाल्मीकि रामायण और जानकी जीवनम् दोनों ही महाकाव्य रामकथा के माध्यम से किसी ऐसे लोकोत्तर महानायक को जनमानस के समक्ष प्रस्तुत करना चाहते हैं जिसके माध्यम से पतनोन्मुखी मानवता को अपने उत्कर्ष के लिये देश, काल एवं परिस्थित के अनुकूल यथोचित मार्ग-दर्शन मिलता रहे ।

३- वाल्मीकि रामायण और जानकी जीवनम् दोनों ही महाकाव्यों में दैवी एवं आसुरी दोनों ही संस्कृतियों का परस्पर संघर्ष कराकर आसुरी संस्कृति पर दैवी संस्कृति की विजयपताका फहरायी गयी है ।

४- दोनों ही महाकाव्यों में,सत्य और असत्य में,धर्म और अधर्म में,सदाचार और कदाचार में,न्याय और अन्याय में, आदर्श और पतन में, पुण्य और पाप आदि उदात्त मानवीय मूल्यों में परस्पर घोर संघर्ष कराकर असत्य पर सत्य की, अधर्म पर धर्म की, कदाचार पर सदाचार की, पतन पर आदर्श की, अन्याय पर न्याय की, पाप पर पुण्य की प्रभुता स्थापित करके उदात्त मानवीय मूल्यों के साथ-साथ सार्वकालिक नैतिक मूल्यों की स्थापना कराने का यथाशक्ति स्तुत्य यत्न किया गया है ।

५- इन दोनों ही महाकाव्यों में वर्ण-व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था, पुरुषार्थ, संस्कार, शिक्षा, यज्ञ, तप, तपोवन, नारी जागरण, नारी सम्मान,

लोकतन्त्र, राष्ट्रभक्ति आदि का यथास्थल समान रूप से सम्यक् निरूपण किया गया है ।

६- इन दोनों ही महाकाव्यों में जानकी की उत्पत्ति जनक के द्वारा भूमि जोतते हुये हल के द्वारा भूमि से बतायी गयी है तथा दोनों ही महाकाव्यों में धनुर्यज्ञ के माध्यम से राम एवं जानकी का विवाह भी समान रूप से वर्णित है ।

७- दोनों ही महाकाव्यों में कोशलेश्वर दशरथ के द्वारा अपनी वृद्धावस्था का बोध होने पर ज्येष्ठ पुत्र श्रीराम के राज्याभिषेक का वसिष्ठ आदि की सम्मति से निर्णय लेना और तदनुकूल राष्ट्रीय स्तर पर तैयारी करना समान रूप से वर्णित किया गया है ।

८- दोनों ही महाकाव्यों में परिचारिका मन्थरा के द्वारा राम के राज्याभिषेक के सन्दर्भ में कैकेयी को प्रतिपक्ष के रूप में उकसाये जाने का समान रूप से वर्णन उपलब्ध होता है ।

९- दोनों ही महाकाव्यों में कैकेयी के वरदान के फलस्वरूप भरत के राज्याभिषेक तथा राम के वनगमन का समान रूप से सविस्तर वर्णन किया गया है ।

१०- दोनों ही महाकाव्यों में वनगमन करते हुये राम के द्वारा मार्ग में शृङ्गवेरपुर में निवास, गंगा को पार करना, तथा प्रयाग होते हुये चित्रकूट में जाना, पंचवटी, कामदगिरि पर रहना, शूर्पणखा का राम के पास आकर प्रणय निवेदन करना, राम का वैदेही की ओर संकेत कर स्वयं को विवाहित एवं एकपत्नीव्रत बताकर अपत्नीक अनुज लक्ष्मण के पास परिहासपूर्वक उसे प्रेषित करना, लक्ष्मण एवं राम द्वारा अपमानित शूर्पणखा का भयंकर मायावी रूप प्रकट करना, राम के संकेत पर शूर्पणखा का विरूपीकरण, खरदूषण आदि का राम से युद्ध, तथा राम द्वारा खरदूषण आदि का संहार, शूर्पणखा का रावण के पास जाकर समस्त वृत्तान्तों को सुनाना, रावण का मारीच को स्वर्ण मृग के रूप में भेजकर यती के वेष में स्वयं को परिवर्तित कर सीता

व्याज के माध्यम से राम और लक्ष्मण को सीता से दूर कर एकाकिनी जानकी का अपहरण करना, रावण द्वारा जटायुवध, सीता के द्वारा ऋष्यमूक पर्वत पर अपने आभूषण को गिराना, अशोक वन में रावण द्वारा सीता को स्थापित कर राक्षसियों के कड़े नियन्त्रण में रखना, उन्हें अपने प्रति आसक्त कराने के लिये राक्षसियों तथा स्वयं भी विविध प्रकार से प्रलोभन देना, प्रताड़ित करना, अपहृता जानकी द्वारा रावण का सफल विरोध, त्रिजटा द्वारा वैदेही को निरन्तर सान्त्वना दिया जाना आदि सन्दर्भों को समान रूप से वर्णित किया गया है ।

११- दोनों ही महाकाव्यों में वैदेही के वियोग में राम का विलाप, जटायु का अंत्येष्टि संस्कार, सुग्रीव से मैत्री, राम द्वारा बालि का वध, हनुमान द्वारा जानकी का लङ्का में पता लगाना, और राम को उसकी सूचना देना, ससैन्य राम का लङ्का पर आक्रमण करने के लिये दक्षिणी सिन्धु पर नल नील द्वारा पुल का निर्माण करवाना, ससैन्य लङ्का पहुंचकर जानकी को मुक्त कराने के लिये भीषण राम-रावण संग्राम का वर्णन समान रूप से किया गया है ।

१२- दोनों ही महाकाव्यों में रावण द्वारा राम एवं लक्ष्मण का ऐन्द्रजालिक शिर बनवाकर जानकी के समक्ष छिन्न मस्तक राघव और लक्ष्मण का उपस्थापन, तथा जानकी को अपने अनुकूल करने का प्रयत्न, जानकी का करुण विलाप, रावण से अपने वध की प्रार्थना तथा सरमा द्वारा सीता को राम एवं लक्ष्मण के जीवित रहने की सूचना देकर उन्हें आश्वस्त करना आदि ऐसे अनेक तथ्य हैं जो दोनों ही महाकाव्यों में न्यूनाधिक रूप में वर्णित किये गये हैं ।

१३- इसके अतिरिक्त यह भी ज्ञातव्य है कि वाल्मीकि रामायण और जानकी जीवनम् में जहां इतने साम्य हैं वहीं जानकी जीवनम् में ऐसे अनेक प्रसङ्ग महत्वपूर्ण बिन्दु हैं जिनका अपना एक स्थापित महत्त्व है । उदाहरणार्थ - कतिपय बिन्दु उल्लिखित हैं ।

(क) यद्यपि वाल्मीकि रामायण और जानकी जीवनम् रामकथाश्रित महाकाव्य हैं परन्तु जहां वाल्मीकि रामायण के चरित्र नायक स्वयं मर्यादापुरुषोत्तम राम हैं वहीं जानकी जीवनम् महाकाव्य में चरित नायक का स्थान स्वयं जानकी को दिया गया है।

(ख) वाल्मीकि रामायण का प्रारम्भ जहां रघुवंश के वर्णन से प्रारम्भ होता है वहीं जानकी जीवनम् महाकाव्य का प्रारम्भ निमिवंशीय जनक के दुर्भिक्षपीड़ित राज्य-वर्णन से प्रारम्भ होता है।

(ग) यद्यपि वाल्मीकि रामायण और जानकी जीवनम् दोनों में ही सीता के पूर्व राग का न्यूनाधिक रूप में वर्णन मिलता है किन्तु फिर भी जानकी जीवनम् में जानकी के स्मरांकुर, राघवानुराग एवं रघुराव संगम आदि के सहित इन दोनों के पूर्वराग का जैसा विस्तृत एवं मनोवैज्ञानिक वर्णन किया गया है वैसा निःसन्देह अन्यत्र सर्वथा दुर्लभ है।

(घ) वाल्मीकि रामायण में परशुराम की उपस्थिति चतुर्थ तथा राम-सीता विवाह के पश्चात् विदा होकर अयोध्या जाते समय मार्ग में करवायी गयी है। परन्तु जानकी जीवनम् महाकाव्य में कवि ने परशुराम की उपस्थिति कहीं भी नहीं करवायी है।

(ङ.) वाल्मीकि रामायण में हनुमान जिस समय राम पत्नी जानकी की खोज में लङ्का में स्थित अशोक वन में पहुंचते हैं उस समय वहां उनके समक्ष प्रकट होकर मुद्रिका अर्पण के पश्चात् समस्त वृत्तान्त सुनाते हैं और सीता को यह भी आश्वासन देते हैं कि यदि वे शीघ्र चलकर राम से मिलना चाहती हैं तो हनुमान साथ ले जाने के लिये तत्पर हैं। परन्तु इस बिन्दु पर जानकी एक प्रौढ़, सम्पन्न अभिजात नारी के समान अपनी लोक-प्रतिष्ठा को ध्यान में रखती हुयी भक्त हनुमान को विविध प्रकार से समझा बुझाकर उनके साथ न जाना ही उचित समझती है।

जानकी जीवनम् महाकाव्य में ऐसा कुछ भी कथन नहीं किया गया है। वाल्मीकि रामायण में जिस समय हनुमान सीता से राम की मुद्रिका के स्थान पर किसी अभिज्ञानपरक वस्तु की याचना करते हैं उस समय जानकी हनुमान को न केवल अपनी चूड़ामणि अपितु इन्द्र पुत्र जयन्त द्वारा वनवास काल में कदाचार का भी वृत्तान्त सुनाती हुयी हनुमान से राघव के लिये सन्देश देती हैं और उनसे शीघ्र ही आत्मोद्धार की इच्छा व्यक्त करती हैं।

परन्तु जानकी जीवनम् महाकाव्यकार ने सीता के द्वारा राम के लिये हनुमान को पत्रिका सहित चूड़ामणि भिजवाया है। जानकी जीवन कार का सीता के द्वारा चूड़ामणि के साथ पत्रिका का भिजवाया जाना सभ्यता के विकास के परिप्रेक्ष्य में युगबोध के अनुरूप नि:सन्देह एक सहृदय हृदय श्लाघ्य प्रशस्त अभिनव प्रयोग माना जा सकता है।

(ङ) वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड में जिस रूप में सीतावनवास की स्वीकृति की गयी है उसका जानकी जीवनकार ने अनेक प्रबल प्रमाणों से न केवल खण्डन किया है अपितु उसे सर्वथा निराधार एवं अमानवीय भी सिद्ध किया है।

जानकी जीवनकार ने कुश एवं लव के साथ राम वल्लभा जानकी को भी वाल्मीकि के आश्रम में तो राम द्वारा अवश्य भेजवाया है। परन्तु वे अश्वमेध यज्ञ में आये हुये ब्रह्मर्षि वाल्मीकि को अपने दोनों पुत्रों को शिक्षा देने के निमित्त कुश एवं लव का विद्यागुरु बनने के लिये स्वीकार कर लेने पर अपने पुत्रों के साथ स्वयं जानकी के इस आग्रह पर कि कुश एवं लव अभी बहुत छोटे हैं तपोवन के जीवन से सर्वथा अपरिचित हैं अतएव उनके साथ वाल्मीकि आश्रम में जाकर उनके कुछ दिन साथ रहकर जब उनके दोनों पुत्र तपोवन के जीवन से अभ्यस्त हो जायेंगे तो राम उन्हें स्वयं अपने भाइयों के साथ जाकर उन्हें अयोध्या वापस लायेंगे।

जानकी जीवनकार ने जानकी के अयोनिजा, जनकनन्दिनी, नव-यौवना, सौभाग्यवती, अनुरागिणी, परिणीता, प्रियानुगता, रामप्रिया, सहचरी, उपहृता, तपस्विनी, प्रत्युज्जीविती, आदि जिन इक्कीस रूपों का सर्गों में क्रमानुसार रूप में वर्णन किया है वह सब कुछ त्रिवेणी कवि की निःसन्देह अपनी मौलिक प्रतिभा से प्रसूत एक प्रशस्त अभिनव प्रस्थान की ही फलश्रुति है जो अन्यत्र सर्वथा अप्राप्य है ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जानकी जीवनकार ने जानकी के जन्म से लेकर उनके पुत्रों सहित वाल्मीकि आश्रम में जाना, तदनन्तर पुत्रों के जीवित होने पर पुनः उन दोनों का राम की सभा में आकर रामायण गान करने की कथावस्तु का विविध प्रशस्त परिवर्तनों के साथ अभिनव प्रयोग सहित नव्यातिनव्य उत्कर्षों के साथ वर्णन किया है । अतएव जानकी जीवनम् कार त्रिवेणी कवि अभिराज राजेन्द्र मिश्र की अपने इस महाकाव्य के सन्दर्भ में की गयी यह प्रशस्ति केवल प्रशस्तिवाद ही नहीं । अर्थवाद ही नहीं ।। अपितु सर्वांशतः तथ्यवाद भी है ।।।

सहायक-ग्रन्थ-सूची

सहायक-ग्रन्थ-सूची

१- ऋग्वेद ।

२- यजुर्वेद ।

३- अथर्ववेद ।

४- संहिता ग्रन्थ (काठक, कपिष्टल, मैत्रायणी, तैत्तरीय आदि) ।

५- ब्राह्मण ग्रन्थ (ऐतरेय, शतपथ, जैमिनीय आदि) ।

६- आरण्यकग्रन्थ (बृहदारण्यक, शांखायन आदि) ।

७- उपनिषद् -(आरण्यक, कौषितकीय आदि) ।

८- गृह्यसूत्र - पारस्कर तथा कौशि कौशिक आदि ।

९- वाल्मीकिरामायण (गीता प्रेस, गोरखपुर) ।

१०- महाभारत (गीताप्रेस, गोरखपुर) ।

११- पुराण ग्रन्थ - (हरिवंश पुराण, विष्णुपुराण, वायुपुराण, ब्रह्माण्ड पुरण, भागवतपुराण, कूर्मपुराण, वाराहपुराण, अग्निपुराण, अग्निपुराण, लिंगपुराण, वामनपुराण, ब्रह्मपुराण, गरुड़पुराण, स्कन्दपुराण, पद्मपुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, नृसिंह पुराण, वह्नि पुराण, शिव-पुराण, देवीभागवत पुराण, सौर पुराण, कल्कि पुराण आदि) ।

१२- रघुवंश महाकाव्यम् - (कालिदास) ।

१३- रावण-वध - (भट्टि काव्य

१४- जानकीहरण - (कुमारदास)

१५- रामचरित - (अभिनन्द)

१६- रामायणमंजरी - (क्षेमेन्द्र)

१७- उदार राघव- (मल्लविरचित)

१८- जानकी परिणय - (चक्रविरचित)

१९- रामलिङ्गामृतम्

२०- राघोल्लास

२१- रामरहस्यम् - (मोहन स्वामी) ।

२२- प्रतिमानाटकम् - (भास कृत)

२३- अभिषेक नाटकम्

२४- महावीर चरितम् - भवभूति

२५- उत्तर रामचरितम् - ,,

२६- कुन्दमाला - (दिङ्नाग)

२७- अनर्घराघवम् - (मुरारिकृत)

२८- बालरामायण - (राजशेखर कृत)

२९- हनुमन्नाटक - (दामोदर मिश्र)

३०- आश्चर्य चूडामणि - (शक्तिभद्र)

३१- अद्भुत दर्पण - महादेव

३२- मैथिलि कल्याण - हस्तिमल्ल

३३- उन्मत्तराघव -(भास्कर कृत)

३४- रामाभ्युदय - व्यासमिश्र

३५- जानकीपरिणय - रामभद्र दीक्षित

३६- अध्यात्मरामायण

३७- अद्भुत रामायण

३८- तत्वसंग्रह रामायण

३९- भुशुण्डि रामायण

४०- महारामायण

४१- मन्त्ररामायण

४२- वेदान्त रामायण

४३- वशिष्ठीय रामायण

४४- जानकी चरितामृतम् (रामस्नेहिदास)

४५- सीताचरितम् - (डा० रेवाप्रसाद द्विवेदी)

४६- जानकीजीवनम् - (डा० राजेन्द्र मिश्र)

हिन्दी ग्रन्थ :-

१- मैथिलि कल्याण (हस्ति मल्ल)

२- रामकथा (डा० कामिल बुल्के)

३- रामभक्ति शास्त्र (डा० राम निरंजन पाण्डेय)

४- रामभक्ति साहित्य में मधुरोपासना (भुवनेश्वर मिश्र 'माधव)

५- भारतीय वाङ्मय में सीता का स्वरूप - (डा० कृष्णदत्त अवस्थी) ।

६- संस्कृत साहित्य का इतिहास (पं० बल्देव उपाध्याय) ।

७- संस्कृत साहित्य की रूपरेखा (पं० चन्द्रशेखर पाण्डेय) ।

अंग्रेजी ग्रन्थ :

१- दस रामायण (एच० याकोबी)

२- हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर (विन्टरनित्स)

३- हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर (ए० ए० मैक्डोनल)

४- द रिडिल आफ द रामायण (सी० वी० वैद्य)

विविध :

१- मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ

२- नागरी प्रचारिणी पत्रिका

३- कल्याण विशेषांक रामाङ्क